Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

सर्वस्व

गरस्व

मोहन विद्यासागर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

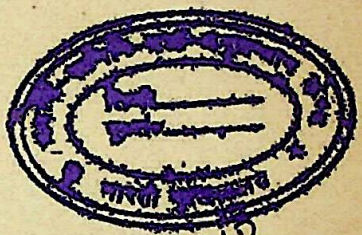

2613

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाणिनि कन्या महाविद्यालय
तिथी
पुस्त०
भारती पुस्तकालय

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थ माला-४१

26B

ओ३म्

सरस्वती-भाष्य-सहितः

संस्कार-समुच्चयः

पाणिनि कन्या महाविद्यालय
आचार्या
पण्डिता प्रज्ञा-मेधा देवी

[जिसमें महर्षि दयानन्दसरस्वती निर्मित संस्कारविधि पर आधत
गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि-पर्यन्त सोलह संस्कार
तथा
वाग्दान, शिलान्यास, गृहप्रवेश, प्रायश्चित्त-विधि, श्रावणी-
उपाकर्म, जन्मदिवस-विधि, स्वातन्त्र्यदिवस-विधि, दत्तकस्वी-
करण-विधि आदि आर्यों में प्रचलित नाना विधियों
का अपूर्व संग्रह]

मदनमोहन विद्यासागर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ग्रन्थ का सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

प्रथम संस्करण—१०००
चैत्र, वि० सं०—२०२७
दयानन्दाब्द १४६
अप्रेल, ई० सन् १९७०
शकाब्द १८९२
सृष्टिसंवत् १९६०८५३०७०

मूल्य—१२-००

प्रकाशक—
श्री मन्त्री—
रामलाल कपूर ट्रस्ट,
गुरुबाजार, अमृतसर

मुद्रक—
सुरेन्द्रकुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
सोनीपत (हरयाणा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तिथी
पु०सं०
2613

प्राक्कथन

श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर कृत इस 'संस्कार समुच्चयः' ग्रन्थ में संस्कार-विधि के सभी संस्कारों की पूरी विधि और सम्पूर्ण मन्त्रों की व्याख्या के साथ आर्यों में प्रचलित एवं समय-समय पर किये जाने वाले विविध कर्मों की (इनका निर्देश विषय-सूची में देखें) विधियां दी गई हैं। एक प्रकार से यह आर्यों के लिये सम्पूर्ण गृह्य-कर्म-काण्ड का पूरा पद्धति-ग्रन्थ बन गया है। पुरोहितों को कर्म कराने में जो बहुविध कठिनाइयां समय-समय आती थीं, वे निश्चय ही इस ग्रन्थ से दूर हो जायेंगी, ऐसा हमारा मत है।

माननीय पण्डितजी स्वयं कुशल कर्मकाण्डी विद्वान् हैं, अतः उन्हें पुरोहितों की सभी कठिनाइयों का पूर्णतया ज्ञान है। आपने वर्षों के अध्ययन और मनन के पश्चात् यह ग्रन्थ लिखा है। ग्रन्थकार को इस कार्य में कितना श्रम उठाना पड़ा होगा, इस बात को तो वे ही महानुभाव समझ सकते हैं, जिन्होंने इस प्रकार का कुछ कार्य किया हो। किसी विद्वान् कवि ने सत्य ही कहा है—

विद्वान् एव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

विद्वान् कृतकर्मा ही किसी विद्वान् के परिश्रम को समझ सकता है। मूर्ख विद्वान् के परिश्रम को उसी प्रकार समझने में असमर्थ होता है, जैसे वन्ध्या (सन्तान-रहित) स्त्री पुत्रोत्पत्ति के समय होने वाली महती वेदना को अनुभव करने में असमर्थ होती है।

यद्यपि माननीय पण्डितजी ने संस्कार-विधि में आये संस्कार-कर्मों के अतिरिक्त आर्यों में विविध समयों पर क्रियमाण कर्मों की विधियां और उनके मन्त्रों का उचित विनियोग सूक्ष्मविचार व महान् परिश्रम से संकलित किया है, पुनरपि 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार यत्र-तत्र विमति हो सकती है। परन्तु इस मतभेद से इस ग्रन्थ की उपादेयता और महत्त्व में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं आता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयं ग्रन्थकार ने भी विनयपूर्वक लिखा है कि जो महानुभाव यथा स्थान विनियोगोचित मन्त्रों के विषय में और पद्धत्यंश में सुझाव देंगे, उन्हें अगले संस्करण में कृतज्ञता-पूर्वक ग्रहण किया जायेगा।

ग्रन्थकार के दूर-देश (हैदराबाद) में विराजमान होने के कारण मुद्रण में कुछ त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। यद्यपि मैंने यथामति सहृदयतापूर्वक उचित रूप से छापने में पूरा प्रयत्न किया है, तथापि यह सम्भव है कि कुछ स्थानों में कतिपय भूलें रह गई हों। कुछ स्थलों पर ग्रन्थकार के साथ विशिष्ट आत्मीयता होने के कारण उनकी कृति की उपयोगिता को बढ़ाने की दृष्टि से अनुमति के विना भी न्यूनाधिक्य किया है। आशा है इसके लिये माननीय पण्डितजी मुझे क्षमा करेंगे।

श्री माननीय रामरक्खा-दम्पती ने बड़ी उदारता-पूर्वक सात सहस्र रुपया पूर्ण-प्रकाशन व्यय स्वीकार किया है; उसके लिये आप विशेषतः ट्रस्ट के और सामान्यतः सब के हार्दिक अभिनन्दन एवं धन्यवाद के पात्र हैं। आपके निष्काम-भावना से दिये गये सहाय से वह कार्य संपन्न हुआ है, जिसकी आवश्यकता आर्य-समाज में प्रारम्भकाल से अनुभव की जा रही थी।

अन्त में मैं अपने अनन्यहृदय मित्र श्री मदनमोहन विद्यासागर के प्रति ट्रस्ट की ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूं, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रम-पूर्वक इस अत्युपयोगी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखकर और ट्रस्ट द्वारा प्रकाशन करवा कर हमें अनुगृहीत किया है। **'इसकी बिक्री से प्राप्त धन से इसी ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण हो'**, लेखक की इस शुभेच्छा की पूर्त्ति, सब सज्जन इस ग्रन्थ को पढ़कर करें, ऐसी पाठकों से विनम्र प्रार्थना है।

कीर्तिरक्षर-संबद्धा चिरं तिष्ठति भूतले।

सदुक्ति के अनुसार दाता-यजमान और विद्वान् पुरोहित दोनों की कीर्ति-यशः चिरस्थायी हो, यही हमारी कामना है।

शिवरात्रि २०२६
रा. ला. क. ट्र. बहालगढ़ (सोनीपत)

विदुषां वशंवदः
युधिष्ठिर मीमांसक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेखक के अन्य प्रकाशित-ग्रन्थ

१. जन-कल्याण का मूल मन्त्र (गायत्री-मन्त्र की नवीन व्याख्या दीक्षा-पद्धति। पं०सं०) प्रेस में — दो रुपये पच्चीस पैसे

२. संस्कार-महत्त्व (संक्षेप में षोडश संस्कारों का प्रामाणिक परिचय। द्वि. सं.) अप्राप्य — दो रुपये पच्चीस पैसे

३. वेदों की अन्तःसाक्षी का महत्त्व : वेद स्वरूप निर्णय (वेद चार हैं, ईश्वरीय ज्ञान हैं आदि विषयों पर प्रामाणिक निबन्ध। नवीन सं०) — एक रुपया

४. आर्य-स्तोत्र (मानववादी आर्यों के लिए प्रतिदिन पारायण करने योग्य स्तोत्र) अप्राप्य — पचास पैसे

५. आर्य-समाज क्या चाहता है ? अप्राप्य — दस पैसे

६. आर्यन-मैनिफेस्टो (आर्यसमाज का संक्षिप्त परिचय) अप्राप्य — पचास पैसे

७. ईश्वर-प्रत्यक्ष — पचास पैसे

८. मुक्ति और उसके साधन — एक रुपया

९. आर्य-सिद्धान्त-प्रदीप (ऋषि दयानन्द सम्मत आर्य-सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचक ग्रन्थ) — एक रुपया पच्चीस पैसे

१०. आर्य-सिद्धान्त-मुक्तावली (इसमें ऋषि दयानन्द प्रतिपादित आर्य-सिद्धान्तों के दार्शनिक लक्षण संगृहीत हैं) — एक रुपया पच्चीस पैसे

११. ज्ञान का आदि स्रोत : ओ३म् (प्रेस में) — एक रुपया

१२. पञ्चमहायज्ञ-प्रदीप — तीन रुपया

१३. संस्कार-समुच्चय — बारह रुपया

मदनमोहन विद्यासागर
प्रेममन्दिर
महर्षि दयानन्द मार्ग, नारायणगुड़ा,
हैदराबाद-२९ (आंध्र प्रदेश)

2613

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्णपात्र-दक्षिणा-संकल्प

हमारी बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित कराने की इच्छा थी, जिससे सभी जन सरलता से संस्कार करा सकें। श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर वेदालंकार ने हमारी यह इच्छा जिस उत्तमता से पूरी की है, हम उनके धन्यवादी हैं। यद्यपि सबके कामों को साधने वाले परम पिता परमात्मा ही हैं, तथापि उसी की प्रेरणा से प्रेरित हो, हम श्री पण्डितजी के परिश्रम को सफल करने के लिये उन्हें 'पूर्णपात्र-दक्षिणा' में सप्तसहस्र मुद्रायें दे रहे हैं। संस्कार-विधि में जगद्गुरु महर्षि दयानन्द ने जैसे लिखा है, वैसे ही वे एक "शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जाननेहारे, अच्छे विद्वान्, संस्कार-कर्म करने में कुशल, निर्लोभी, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, स्वाध्यायशील, वैदिक-मतावलम्बी, वेदवित्, सर्वोपकारी, गृहस्थ पुरोहित हैं।" संस्कारों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान व अन्वेषण बहुत गहरा है। हम प्रभु से उनके दीर्घायुष्य व सर्वविध अभ्युदय की कामना करते हैं।

पुनश्च परमश्रद्धेय श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक के भी हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमारे इस संकल्प की पूर्ति में पूरा-पूरा सहयोग दिया है, तथा श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट के सब संचालकों, विशेषतः श्री मान्य भ्राता सुरेन्द्रकुमार कपूर के भी हम धन्यवादी हैं, कि उन्होंने इसे अपने ट्रस्ट की ओर से सुन्दर रूप में प्रकाशित कर श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर जी के दीर्घकालीन श्रम को मूर्त्तरूप दिया है, और हमें गौरवान्वित किया है।

२० जीन्स, रामकुटीर,
सिकन्दराबाद (आ० प्र०)

रामरक्खा बी० ए०
सौ० सरस्वतीदेवी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समर्पण

श्री नन्दलाल आर्य

अ० सौ० यमुनादेवी

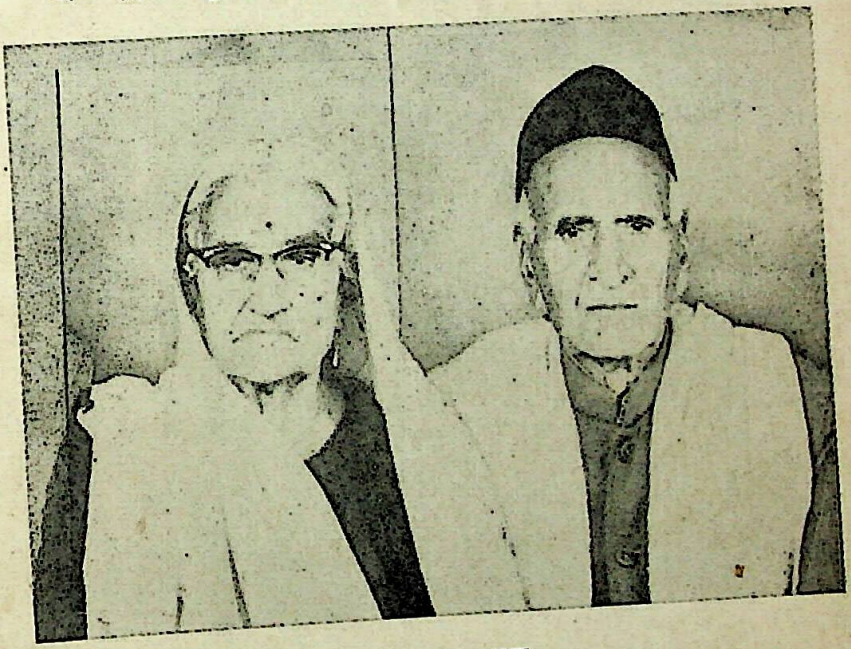

जन्म—
माघ अमावास्या बृह. सं. १९४३
२५ नव. सन् १८८६

जन्म—
वैशा. बदि ७ शनि. सं. १९४७
१० मई सन् १८९०

अर्प्यते तु कृतिर्ह्येषा पितृणामृण-मुक्तये ।
आत्मनः पितरौ वन्दे जन्म-'धर्म'-प्रदायकौ ॥

—मदनमोहन विद्यासागर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पं० मदनमोहन विद्यासागर

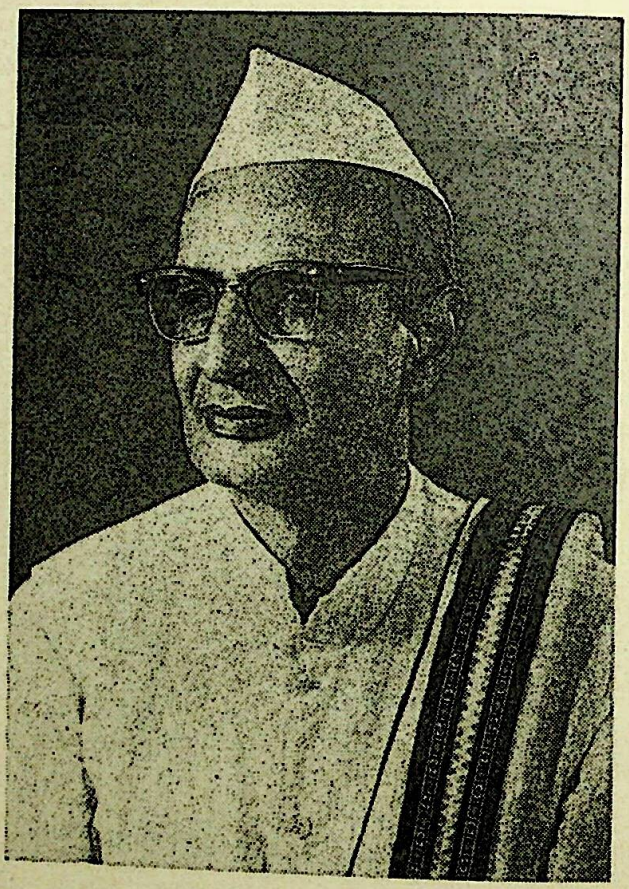

जन्म—माघ सुदि ५ वि० सं० १९७१ २१ जनवरी १९१५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूमिका

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः[1]

मनुष्य के लिये, अपने जीवन को 'आर्य'[2] अर्थात् ज्ञानमय प्रगतिशील और सफल बनाने का मुख्य साधान संस्कार हैं, क्योंकि इन से 'दोषापनयन' अर्थात् जीवन के शारीरिक मानसिक दोषों को दूर करके 'गुणाधान' अर्थात् जीवन में शारीरिक मानसिक सामाजिक उत्तम गुणों का प्रवेश कराया जाता है। इसी का व्यावहारिक नाम 'चरित्र- निर्माण' है। चरित्र-निर्माण की ऐसी वैज्ञानिक योजना किसी भी मत-मजहब-सम्प्रदाय में उपलब्ध नहीं होती।

यह मानव को संस्कारी बनाने की पद्धति चिरकाल से इस भारत देश में प्रचलित है। मध्यकाल में इसका जो 'मानवीय' रूप था, वह विकृत हो 'साम्प्रदायिक' बन गया। ऋषि दयानन्द ने पुनः इसका उद्धार-परिष्कार किया।

संस्कार सोलह हैं। इनके स्वरूप की विवेचना हमने पृथक् **'संस्कार-महत्त्व'**[3] नामक पुस्तिका में की है। इनकी विधियां ऋषि दयानन्द कृत **'संस्कार-विधि'** ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ का आधार यही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके रचना-क्रम के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ के 'विषय-प्रवेश' प्रकरण में विशेष लिख दिया है।

सबसे प्रथम ऐसी पुस्तक रचने का संकल्प मैंने १४ सितम्बर मंगलवार १९४८ ई. सन् को तेनाली (जि. गुण्टर, आन्ध्र प्रदेश) में किया था। उस समय तेलगू भाषा में इसी ढंग पर, परन्तु संक्षिप्त रूप में 'संस्कार-समुच्चयमु' नाम से एक ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित

---

१. ऋक् १०।१३।१ ॥

२. आर्य पद 'ऋ' गतौ से बना है। गतेस्त्रयोऽर्थाः-ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च।

३. पुस्तक अब अप्राप्य है। मूल्य २.५०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी किया था; जिनमें अन्त्येष्टि को छोड़ शेष सब संस्कार छापे थे। फिर अन्त्येष्टि व शुद्धि-पद्धति पृथक् मुद्रित कराये थे। अब उसके द्वितीय संस्करण का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का प्रयत्न करते रहने पर भी, प्रकाशन के उचित साधन, धन व मुद्रण-स्थान का समुचित प्रबन्ध न हो सकने से, मेरा वह संकल्प मूर्त्त रूप ग्रहण न कर सका।

प्रभु के अनुग्रह से अन्ताराष्ट्रिय ख्याति-प्राप्त श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक से मेरा साक्षात् १९६७ दिस. मास में हुआ। उनके द्वारा श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट परिवार से मेरा परिचय हुआ। घनिष्ठता का कारण श्री भ्राता सुरेन्द्रकुमार कपूर की सुपुत्री अखण्ड सौ० उमा बहिन (अमृतसर) भी है। परिचय होने के क्षण से ही इस परिवार का सर्वविध सहाय स्नेह-सत्कार मुझे मिलने लगा है। इनकी इच्छा 'संस्कार-विधि' को सटिप्पण छापने की थी, जिसकी सूचना भी वेदवाणी में दी गई थी। मैंने यह कार्य शुरु कर दिया है।

गतवर्ष श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक के हैदराबाद आने पर श्री भ्राता रामरक्खा जी अकस्मात् मेरे गृह पर आये। आपके मन में बहुत दिनों से अर्थ सहित संस्कार-विधि छपवाने की इच्छा थी। उसी समय वह निश्चय हो गया कि सटिप्पण संस्कार विधि छापने से पूर्व, अर्थ सहित संस्कार-विधि पहले प्रकाशित की जावे।

साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि इन सोलह संस्कारों के अतिरिक्त देशाचार के अनुसार प्रचलित विधि-विधानों का समावेश भी इसमें किया जावे। जिन अवसरों के लिये 'विधि' निर्दिष्ट नहीं है, उनकी भी 'कल्पना' ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित विधि के अनुसार करके, उन्हें प्रकाशित किया जावे। अतः इस पुस्तक में ऐसी विधि भी मिलेगी, जैसे 'स्वातन्त्र्य-दिवसोत्सव-विधि'।

इस में हमने सब मन्त्रों का विनियोग परक अर्थ करने का प्रयत्न किया है। यह श्रम व सूक्ष्म-बुद्धि साध्य कार्य है। श्रम किया जा सकता है; पर सूक्ष्म-बुद्धि तो योगिजनों की ही हो सकती है। सो इस में कहां तक सफलता मिली है, इसका निर्णय विद्वान् पाठकों पर छोड़ते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरे, इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के 'भाव व शैली' को यथा-सम्भव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है।

तीसरे, नाम-करण अन्न-प्राशन, कर्ण-वेध व विवाह में कुछ नवीन मन्त्रों का विनियोग भी हमने संस्कार-सौष्ठव के निमित्त किया है। जिनको मान्य न हो, वे उन्हें छोड़ सकते हैं। जिन मन्त्रों का विनियोग किया हैं, उन से भी अधिक संगत या उस भाव के पोषक मन्त्र जिन विद्वानों के स्वाध्याय में आये हों, वे सूचित करके पुण्यभाग् बने, ताकि अगले संस्करण में उनका उपयोग किया जा सके।

श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर मीमांसक के लिये इसका प्राक्कथन लिखने के लिए कृतज्ञता प्रगट करता हूं। उन्होंने इसका समुचित संशोधन कर दिया है। मुद्रणकार्य भी अपने साक्षात् निरीक्षण में कराया है। यह उनकी विशेष कृपा है।

इस विषय में अन्य भी कई विद्वानों ने लिखा है। मैंने सब का सार ग्रहण किया है। **विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।**

संस्कारों के सम्बन्ध में मेरे मान्य पिता श्री नन्दलाल आर्य का विशेष अध्ययन है। उनसे मुझे बहुत प्रेरणा व सुझाव मिले हैं। ऐसे ही मान्य ज्येष्ठ भ्राता सत्यप्रकाश एम. ए. भी इस पुस्तक के प्रकाशित होने में प्रेरक कारण है। **पितृभ्यो नमो भ्रातृभ्यो नमः।**

यह पुस्तक इस भव्यरूप में प्रकाश में न आती,[1] यदि मान्य भ्राता श्री रामरक्खाजी तथा उनकी सतीमणि सौ० बहिन सरस्वती-देवी इसके मुद्रण का भार[2] न उठाते। हमने अ० सौ० सरस्वतीदेवी के नाम पर ही इसके भाष्य का नाम **सरस्वती-भाष्य** रखा है। लेखक की (अथर्व २।२९।२) उनके लिये निम्न शुभ-कामना है—

ओम् आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम्॥

---

१. ऋषि दयानन्द के परमभक्त, आर्य-समाज के दीवाने।

२. 'पूर्णपात्र-दक्षिणा' में सप्त-सहस्र की पुण्य-राशि से मुझे सत्कृत कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् ।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ॥

इस कर्म के अनुष्ठान में, मैंने यहां जो कुछ विधि से अधिक अथवा न्यून किया है, उसको इष्ट-संवर्धक दोष-निवारक सर्वज्ञ परमात्मा जानता है। वह मेरे इस सुन्दर-इष्टकर्म को सफल बनाये।

यदशुद्धमसम्बद्धम् अज्ञानाल्लिखितं मया ।
विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं नीरक्षीरविवेकिभिः ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेद्यतः ॥
विद्वान्सः शोधयन्तु वै पावना यज्ञभावनाः ॥

शिवरात्रि २०२७

६ मार्च, १९७०

मदनमोहन विद्यासागर

हैदराबाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
विषय-प्रवेश यज्ञदेश-यज्ञशाला (७), यज्ञकुण्ड (८), यज्ञ-समिधा (९), होम-द्रव्य (९), आहुति-परिमाण (१०), स्थालीपाक (११), यज्ञ-पात्र (१२), ऋत्विक्-सत्कार दान-दक्षिणा (१३), प्रत्येक संस्कार से सम्बद्ध विशेष द्रव्य (१४),	१
सामान्य-प्रकरण संकल्प (२६), आचमन अंगस्पर्श (२९), ईश्वर-स्तुतिप्रार्थनोपासना (३२), स्वस्तिवाचन (४०), शान्तिकरण (७२), अग्न्याधान (९४), अग्नि-प्रदीपन (९६), त्रिसमिदाधान (९८), पांच आहुति (१०३), जल-प्रसेचन (१०४), आघारावाज्य-भागाहुति (१०६), चार व्याहृति आहुति (१०७), स्विष्टकृदाहुति (१०८), चार पावमानी आहुति (११०), मंगल अष्टाज्याहुति (११४), पूर्णाहुति (१२१), महावामदेव्य गान (१२२),	२४
गर्भाधानसंस्कार-विधि	१२६
पुंसवनसंस्कार-विधि	१४८
सीमन्तोन्नयनसंस्कार-विधि	१५३
जातकर्मसंस्कार-विधि	१६३
नामकरणसंस्कार-विधि परिशिष्ट (१८९)	१८१
निष्क्रमणसंस्कार-विधि प्रातः सूर्य-दर्शन (१९३) रात्रि में चन्द्रदर्शन (१९४)	१९१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्नप्राशनसंस्कार-विधि १९५

चूडाकर्मसंस्कार-विधि २०४

कर्ण [नासिका] वेध-संस्कार-विधि २१२

उपनयनसंस्कार-विधि २०९

उपवीत-धारण (२२०), व्रताहुति (२२४),

वेदारम्भसंस्कार-विधि २३५

गायत्रीमन्त्रोपदेश (२४१), पिता द्वारा ब्रह्मचारि-कर्तव्योपदेश (२४५), परिशिष्ट-आचार्योपदेश (२५३)

समावर्तनसंस्कार-विधि २५६

स्नातक को आचार्योपदेश (२६७)

विवाहसंस्कार-विधि २७१

विधियों की संक्षिप्त व्याख्या (२८०), वाग्दान =सगाई (२८३), मंगलस्नान-मण्डपविधि=सैंत (२९२), सामान्ययज्ञ (२९६), द्वाराचार=मिलनी (३०३), वर की अर्चना=सत्कार-विधि (३०६), कन्यादान (३१५), प्रतिज्ञा (३१९), राष्ट्रभृद् आदि आहुति (३२५), पाणिग्रहण (३४१), प्रदक्षिणा—लाजाहोम (३३४), सप्तपदी (३५२), आशीर्वाद (३५५), उत्तर विधि—ध्रुव अरुन्धती दर्शन आदि (३५६), बिदाई (३६५), पतिकुल में—स्वागत-यज्ञ-आशीर्वचन (३६८),

वानप्रस्थसंस्कार-विधि ३७६

संन्याससंस्कार-विधि ३८६

अन्त्येष्टिकर्म-विधि ४१८

परिशिष्ट अन्तिम शोक-दिवस (४४९), उत्तराधिकार=पगड़ी बंधाना (४५१)

पुनर्विवाह-संस्कार—नियोगकर्म-विधि ४५६

पुनर्विवाह-विधि (४५९), नियोग-विधि (४७४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शालाकर्म-विधि ४८३

शिलान्यास (४८४), गृह-प्रवेश (४९२), उपवन, प्रपा (प्याऊ) स्थापन (५०७), विद्यालय धर्मशाला आदि स्थापन (५११),

प्रायश्चित्त (शुद्धि-संस्कार) विधि ५१३

शुद्धि प्रार्थना-पत्र (५२८)

वर्धापनसंस्कार-विधि (जन्मदिवस-विधि) ५२९

विवाहदिवस-विधि ५३९

आयुष्काम-पद्धति ५४५

स्वातन्त्र्यदिवसोत्सव-विधि ५५२

पक्षेष्टि (दर्श-पौर्णमास) पद्धति ५६९

नवसंवत्सरेष्टि-विधि ५७४

उपाकर्म-पद्धति ५८०

परिशिष्ट (५९२)

वाणिज्यकल्प-विधि ५९२

अक्षरारम्भ-विधि ६०४

कन्यासुभगकरण-विधि ६०८

दत्तकस्वीकरण-विधि ६१६

संस्कार-संबन्धी बधाई गीत ६२१

सर्व-ऋतु-सामान्य हवन-सामग्री ६२२

भजन-संग्रह ६२३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहायक-ग्रन्थ तथा ग्रन्थ-संकेत-सूची

संस्कार व यज्ञादि मुख्यतः 'गृह्य-कर्य' हैं, जिनका विधान गृह्य सूत्रों में है। श्रौत कल्प सूत्रों व स्मृत्यादि में भी इनके वर्णन हैं। यद्यपि इसमें पारस्कर, आश्वलायन व गोभिल गृह्य-सूत्रों के अधिक प्रमाण दिये हैं। तथापि खादिर, द्राह्यायण, शाङ्खायन, मानव, आदि अन्य सब गृह्य सूत्रों का परिशीलन इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व किया गया है।

मनु, याज्ञवल्क्य, संवर्त्त, देवल के अतिरिक्त चौवन स्मृतियों (मनसुखराय मोर, क्लाइव स्ट्रीट कलकत्ता) का पारायण भी इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व किया गया है।

तैत्तिरीयारण्यक का मुख्यतः और गोपथ, शतपथ का साधारणतः पाठ भी किया है और उपनिषद् भी देखे हैं।

संस्कारचन्द्रिका (आत्माराम अमृतसरी) व संस्कारचन्द्रिका (श्री पं० हरिदत्त शास्त्री चतुर्दशं तीर्थ) दोनों ग्रन्थों का, श्री पं० भीमसेन शर्मा कृत षोडश संस्कारविधि तथा श्री पं० गंगाप्रसाद शास्त्री कृत षोडश संस्कारविधि तथा एतद्विषयक अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया है।

स्वरचित 'जन-कल्याण का मूल मन्त्र' (गायत्री) 'पञ्चमहायज्ञ-प्रदीप' व 'संस्कारमहत्त्व' ग्रन्थों का आधार भी रक्खा है।

इस ग्रन्थ का सबसे मुख्य आधार ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वामी विरचित **संस्कारविधि**[1] ग्रन्थ है। इसमें निर्दिष्ट यज्ञविधि को, वैदिक व असाम्प्रदायिक होने से हमने स्वीकार किया है। इसके साथ ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,[1] सत्यार्थप्रकाश, पंचमहायज्ञविधि[1] आदि ग्रन्थ भी देखे हैं। 'पूना-प्रवचन'[1] अर्थात् उपदेश-मञ्जरी तथा 'ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन'[1] का उपयोग भी किया है।

---

१. ये सब ग्रन्थ श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, के प्रकाशन हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋग्वेद-यजुः-साम-अथर्व वेद[1] से मन्त्रों का विनियोग कर उनके अर्थ निश्चय के लिये यद्यपि प्रायः सभी भाष्यकारों[2] के भाष्यों पर विचार किया है, तथापि मुख्य आधार ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद-भाष्य व यजुर्वेद-भाष्य हैं। बहुत से पदों के अर्थ के लिये 'वेदार्थकोष' का तथा कई पदों के निर्वचन के लिये यास्कमुनि कृत निरुक्त का प्रयोग किया है। महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य नवा. १.१.१. के अनुसार मन्त्रों में एक दो स्थानों पर 'योग-वियोग' की ऊहा विनियोग के सौष्ठव के लिये की है।

सं० वि०	=संस्कार विधि
स० प्र०	=सत्यार्थप्रकाश
ऋ०वे० भा०भू०	=ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
पं०म० वि०	=पञ्चमहायज्ञविधि
ऋ० भा०	=ऋग्वेद भाष्य
यजुः भा०	=यजुर्वेद भाष्य
ऋ०...मं०...सू०...मं०	=ऋग्वेद
यजुः...अ०...मं०	=यजुर्वेद
अथ० का...	=अथर्ववेद
य० भा० प्र०	=यजुर्वेद भावार्थ-प्रकाश
तैत्ति० आ०	=तैत्तिरीयारण्यक
शत० ब्रा०	=शतपथ ब्राह्मण
म० स्मृ० या मनु०	=मनुस्मृति।

अन्य स्मृतियों के संकेत, स्मृति का आधा नाम आगे स्मृ०।

याज्ञ० स्मृ०	=यथा याज्ञवल्क्यस्मृति
.....गृ०	=गृह्यसूत्र (यथा पारस्कार गृह्यसूत्र)
ऋ० द०	=ऋषि दयानन्द
द० स०	=दयानन्द सरस्वती
यु० मी०	=युधिष्ठिर मीमांसक
ग्र० क०	=ग्रन्थकर्त्ता

---

१. परोपकारिणी सभा अजमेर तथा स्वाध्यायमण्डल पारड़ी द्वारा प्रकाशित मूल वेद। २. जयदेव, क्षेमकरणत्रिवेदी, सातवलेकर, भगवताचार्य आदि के।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

संस्कार-समुच्चय

विषय-प्रवेश

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मनुष्यमात्र को विना स्त्री पुरुष भेद के उत्तम संस्कारी बना, अभ्युदय वा निःश्रेयस का सत्यमार्ग दिखाने वाले मानव धर्म के अग्रदूत ऋषि दयानन्द सरस्वती ने बहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्ण पक्ष ३० शनिवार* के दिन संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण का लेखन किया था। उसमें संस्कृतपाठ एकत्र और आर्यभाषा पाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करनेवाले ऋत्विजों को संस्कृत और भाषा दूर-दूर होने से संस्कार कराने में कठिनता पड़ती थी। इसलिये उक्त दयालु महर्षि ने परोपकार की भावना से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ़ वदि १३ रविवार† के दिन संस्कारविधि का पुनः संशोधन कर के छपवाने का विचार किया।

उस नवीन संस्करण में जिस-जिस संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण वचन और प्रयोजन है, वह-वह संस्कार के पूर्व लिखा। तत्पश्चात् जो-जो संस्कार में कर्त्तव्य विधि है उस-उस को क्रम से लिख कर पुनः उस संस्कार का शेष विषय, जो कि दूसरे संस्कार के किये जाने तक करना चाहिये, वह लिखा और जो विषय प्रथम संस्करण में अधिक

---

*यह कालनिर्देश गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। उत्तर भारतीय-पञ्चाङ्ग के अनुसार मार्गशीर्ष कृष्णा अमावस्या शनिवार का दिन समझना चाहिये। विशेष देखें 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ ८०-८३।

† यह काल निर्देश उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार ही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिखा था, उसमें से भी कुछ को अत्यन्त उपयोगी न जान कर निकाल दिया और नये संस्करण में जो-जो अत्यन्त उपयोगी विषय है, वह-वह अधिक भी लिखा था। क्योंकि जिन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम संस्करण में लेख किया था, उसमें सब लोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी, इसलिये इसमें उसको सुगम कर दिया। क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग ही समझ सकते थे, साधारण पढ़े लिखे मनुष्य नहीं।

इस संशोधित संस्करण में प्रथम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, तदनन्तर सामान्यप्रकरण, पश्चात्, गर्भाधानादि अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे और सब मन्त्रों का अर्थ भी उसमें नहीं लिखा है, क्योंकि इसमें कर्मकाण्ड का विधान है, इसलिये ऋषि ने विशेष कर क्रिया का विधान ही लिखा। परन्तु जहां-जहां अर्थ करना आवश्यक समझा वहां-वहां अर्थ भी कर दिया और "शेष मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेदभाष्य में लिखे हैं, जो देखना चाहें, वहां से देख लेवें" ऐसा संकेत भी कर दिया। अब यही संस्करण संस्कार कराने के लिये सर्वत्र आर्य [हिन्दू] जनों में प्रमाणरूप से प्रचलित है।

इसमें, सामान्य-विषय जो कि सब संस्कारों के आदि में और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिये, वह प्रथम सामान्यप्रकरण में दिया है और जो मन्त्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की विशेष-विशेष संस्कारों में अपेक्षित है, उसके पृष्ठ पंक्ति की प्रतीक देकर उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी है कि जिसको देख के सामान्यविधि की क्रिया यजमान वा पुरोहितादि वहां सुगमता से कर सकें। और सामान्ययज्ञ का विधि भी सामान्यप्रकरण में पूरा लिखा है कि यह विधि करके संस्कार का अपेक्षित कर्त्तव्यकर्म करे।

परन्तु अनुभव में ऐसा आया कि संस्कारविधि को सामने रख-कर यज्ञ-संस्कार कराना; ऋषि दयानन्द द्वारा सुगम कर दिये जाने पर भी अत्यन्त कठिन होता है। इसी कारण यज्ञ संस्कारों में कई असंगतियां आ जाती हैं और उनकी एकरूपता नष्ट हो जाती है।

यद्यपि 'संस्कार-यज्ञ में क्रिया करनी ही मुख्य है' इस लिये 'सब मन्त्रों का अर्थ' लिखना ऋषि ने आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने समझा कि 'कर्म करने में कुशल वेदवित् विद्वान् गृहस्थ ही' इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य के 'शरीर आत्मा को सुसंस्कृत करने वाले' ऋत्विग् कर्म करेंगे, जो संस्कृत विद्या के जानने हारे होने से मनुष्यों को मन्त्रों का अर्थ और क्रियाओं का भाव विदित करा देंगे।

परन्तु उस परोपकारी महान् ऋषि का आशय लेकर उसके अनुयायियों ने उसे पूरा न किया, क्योंकि वैसे लक्षणयुक्त वेदवित्, सद्धर्मी गृहस्थों ने इस कर्म को अपनाया नहीं। परिणामतः संस्कारों के उत्तम भाव मनुष्यों पर प्रकट नहीं हुए।

इस प्रकार न विधि का ज्ञान ठीक रहा और न अर्थ का ज्ञान। इसलिए हमारा यह प्रयत्न है। इसमें विधियों को स्पष्ट पृथक्-पृथक् लिखा है, और सब मन्त्रों के अर्थ 'ब्रह्मा से लेकर मनु व्यास-जैमिनि और दयानन्द' पर्यन्त ऋषि परम्परा द्वारा सम्मत वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल देने का हमने अल्प प्रयास किया है। इससे अब संस्कारों का का ज्ञान पूर्वक व सुचारु रूप से करना-कराना सब के लिए सुगम हो जावेगा। ऋषि दयानन्द की आज्ञानुसार "जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिए संस्कारों का [यथाविधि, यथासमय अवश्य] करना, [कराना] सब मनुष्यों को अति उचित है (सं० वि० भूमिका पृ० ३)*।"

यह संस्कारविधि मनुष्य मात्र के लिए है। किसी विशेष जाति वालों के लिये वा मत वालों के निमित्त नहीं बनाई गई। संस्कृत भाषा का प्रचार व महत्त्व भारत देश में होने से प्रत्येक भारतीय को इसमें निर्दिष्ट पद्धति से ही सोलह संस्कार कराने चाहियें।

ऋषि दयानन्द द्वारा निर्धारित क्रम ही मुख्यतः हमने स्वीकार किया है। सरलता के लिए हमनें निम्न क्रम रखा है—

प्रथम—इसमें ऋत्विग्वरण तथा संकल्प पाठ रक्खा है। यज्ञ कर्म प्रारम्भ होने से पूर्व ही ये दोनों क्रियायें अवश्य कराई जानी चाहिए। प्राचीन याज्ञिक परम्परा भी ऐसी ही है।

तत्पश्चात् ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन वा शान्ति-करण; जिसका मुख्य प्रयोजन सब के विनायक सवितादेव ईश्वर

* इस ग्रन्थ में जहां जहां संस्कारविधि के पृष्ठों का संकेत है, वहां सर्वत्र रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण के अनुसार है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अनुग्रह सामर्थ्य वा सहाय से 'विघ्न-विनाश अर्थात् दुरिता परासवन'* कर 'सब दिशाओं से अभय एवं मित्र लाभ'† करना है।

पुनः आचमन अङ्गस्पर्श, अग्न्याधान, त्रिसमिदाधान, पञ्च आज्याहुति, जलप्रसेचन, आघारावाज्यभागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार, स्विष्टकृताहुति, प्राजापत्याहुति, [चौल. समावर्त्तन और विवाह में] 'ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आर्यूषि; की चार मुख्य होमाहुति, 'ओम् त्वं नो अग्ने' की सर्वत्र मंगल कार्यों में की जानेवाली आठ आहुतियां, पुनः एक मन्त्र से पूर्णाहुति तीन और मंगलकार्य निमित्त सामवेदोक्त महावामदेव्य गान करना चाहिए।

सामान्यतः ये सब कर्म गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सब संस्कारों में लगभग एक से ही कर्त्तव्य होते हैं। इसलिये यह सामान्य विधि, सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखदी है। सब संस्कारों के आरम्भ में बार-बार नहीं लिखी। इस की जो क्रिया वा मन्त्र संस्कारों में जहां-जहां अपेक्षित हैं, उसके पृष्ठ पंक्ति वा प्रतीक देकर उन कर्त्तव्य संस्कारों में निर्देश कर दिया है, परन्तु जो विधियां कर्त्तव्य संस्कार में अधिक स्थानों में मध्य मध्य में विहित है, उन को वहां पूरा का पूरा छाप दिया है, ताकि संस्कार करने-कराने वाला, सामान्य विधि की वह क्रिया वहां-वहां सुगमता से कर-करा सकें।

आगे यह ध्यान देना चाहिए कि 'कर्त्तव्य संस्कार' के निमित्त विशेष होम 'त्वं नो अग्ने' की आठ आहुतियों के पश्चात् करके, 'सूर्यो ज्योतिः' से 'अग्ने नय' तक के दैनिक अग्निहोत्र से संस्कार की समाप्ति नहीं करनी चाहिए। प्रायः ऐसा ही सर्वत्र होता है और ऐसी ही पुस्तकें भी मुद्रित की गई हैं।‡ परन्तु यह विधि ठीक नहीं। ऋषि दयानन्द के अनुसार 'कर्त्तव्य संस्कारों का विशेष होम, 'ओम् अग्नये स्वाहा'–'ओम् इन्द्राय स्वाहा' इन चार आघारावाज्यभागाहुति के बाद करना चाहिए। संस्कार सम्बन्धी होम की विशेष आहुतियां देकर पुनः

---

*विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। (ई० स्तु० प्रा० उपा० का प्रथम मन्त्र)।

†सर्वाः आशा मम मित्रं भवन्तु। (शा० क० का अन्तिम मन्त्र)।

‡द्र०, वैदिक प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद ३, उ० प्र० द्वारा प्रकाशित संस्कार माला।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'भूरग्नये स्वाहा' आदि चार व्याहृति-आहुति से सामान्य-प्रकरणोक्त विधि महावामदेव्य गान पर्यन्त करके कर्त्तव्य संस्कार समाप्त करना चाहिए।

दूसरे, संस्कारसमाप्ति पर गायत्री मन्त्र से तीन आहुतियां देना दिलवाना, तथा 'ओम् द्यौः शान्तिः' से शान्तिपाठ और 'यज्ञरूप प्रभो'* गाना भी ऋषि दयानन्दानुसार व गृह्यसूत्रों में निर्दिष्ट विधान के अनुसार ठीक नहीं है। सब आर्यों को इसका त्याग करना चाहिए। संस्कारसमाप्ति सामवेदोक्त महावामदेव्य गान से होनी चाहिए।

यज्ञ संस्कार समाप्ति और आशीर्वाद की क्रिया हमने प्रायः एक जैसी करदी है, ताकि एकरूपता, संस्कार विधान में आ जावे।

संस्कारविधि में प्रयुक्त बालक वा पुत्र का अर्थ सामान्यतः शिशु या सन्तान है। वैदिक संस्कार बालक बालिका दोनों के लिए समानरूप से विहित हैं। इसलिये हमने कई स्थानों पर शिशु पद का प्रयोग कर दिया है। आशीर्वाद के भी दो प्रकार कर दिये हैं; जिस से आशीर्वाद दिलाते समय कठिनाई न हो।

संस्कार विधि में निर्दिष्ट कर्णवेध वा नामकरण में संस्कार के विशेष मन्त्र नहीं है। हमने वेदों से तद्विषयक कुछ मन्त्रों को चुन, उनका विनियोग वहां कर दिया है। ऐसे ही अन्नप्राशन में भी कुछ मन्त्र विनियुक्त किये हैं। इनसे ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट विधि को बल वा समर्थन ही मिला है, ऐसी हमारी विनम्र सम्मति है। इस सम्बन्ध में विद्वान् आर्यजन विचारें।

संस्कार विधि में सब संस्कारों के साथ-साथ 'कुछ प्रमाण भाग' है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग 'कर्त्तव्यबोध' रूप भी है; जैसे, वेदारम्भ तथा वानप्रस्थ, संन्यास में। कुछ भाग उस संस्कार सम्बन्धी अन्य बहुत से विषयों को बताने वाला भी है; जैसे विवाह संस्कार में 'गृहाश्रम प्रकरण'। हमने इन सबको इस ग्रन्थ में मुद्रित नहीं किया और केवल संस्कारों का 'विधि-भाग' मात्र प्रकाशित किया है, क्योंकि हमारा इस संस्कार विषयक ग्रन्थ को छापने का मुख्य उद्देश्य संस्कारों का सुगमता से किया-कराया जाना, है। सो विधि सम्बन्धी भाग संस्कारविधि से पृथक् करके विस्तृत मन्त्रार्थ सहित

---

* स्व० पं० लोकनाथ तर्कशिरोमणि द्वारा रचित गीत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छापा जा रहा है, ऐसा आर्यजनों को जानना चाहिये । जिन्होंने संस्कार से सम्बद्ध अन्य विषयों को जानना हो, उनके लिये संस्कार-विधि पृथक् छपी उपलब्ध है ।*

हमने यद्यपि इसमें मन्त्रों का पूरा-पूरा अर्थ 'ऋषि दयानन्द के मन्तव्यानुसार लिखने का यत्न किया है; तथापि 'अर्थों का उत्तर-दायित्व' अपने ऊपर लेना उचित समझते हैं। कुछ ही समय पश्चात् संस्कारविधि का ऐसा संस्करण प्रकाशित किया जावेगा, जिसमें सब मन्त्रों के अर्थ ऋषि दयानन्दकृत होंगें ।

हमने संस्कारों की व्याख्या नहीं की है, यह इस पुस्तक को रचने का उद्देश्य नहीं है। जिन्हें, व्याख्या पढ़नी हो, उन्हें स्व० पं० आत्माराम अमृतसरी कृत 'संस्कार-चन्द्रिका' पढ़नी चाहिये ।

इस में सोलह संस्कारों के अतिरिक्त, हमने परिशिष्ट में कुछ अन्य विधियां भी छापी हैं। वर्त्तमान में ऐसे भी बहुत से प्रसंग आते हैं, जब धार्मिक आर्यजन, यज्ञविधि से उनका प्रारम्भ चाहते है। जैसे नवीन गृह का प्रारम्भ अर्थात् शिलान्यास। ऋषि ने 'गृहप्रवेश-विधि लिखी है, हमने उन्हीं की निर्दिष्ट संस्कार-पद्धति के अनुसार **'शिलान्यास विधि'**, किसी भी प्रकार के गृह निर्माण के प्रारम्भिक संस्कार के रूप में बनाकर प्रकाशित करदी है। ऐसे **'जन्म-दिवस-विधि'** की कल्पना भी हमने की है। इसी प्रकार विवाह संस्कार से सम्बद्ध बहुत से देशाचार प्रचलित हैं, जिनका रूप पाखण्ड का नहीं है। जैसे **'वाग्दान विधि' 'मिलनी'** आदि आदि। हमने इनके लिये भी विधियां कल्पित करके लिखी हैं। ऐस ही कोई नवीन व्यापार करते समय दुकान वा कारखाना खोलते हैं। तन्निमित्त यज्ञ कराना चाहते है। हमने उनकी विधियां भी कल्पित कर दी हैं। आर्य-जीवन को पूर्णतः संस्कारानुसारी बनाना ही, इनकी कल्पना का मुख्य उद्देश्य है। यज्ञ संस्कार सम्बन्धी सब प्रकार की आवश्यकताओं की सुगमता से पूर्ति करने के निमित्त ही इस पुस्तक की रचना की गई है ।

साथ आर्यों के विशेष पर्वों पर किये जाने वाले कर्मों का भी

---

* हमारी सम्मति में 'संस्कार-विधि' का सर्वोत्तम शुद्ध संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत, (हरयाणा) द्वारा प्रकाशित है । मूल्य १–७५, सजिल्द २-२५ है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उल्लेख कर दिया है। देशभक्ति से प्रेरित होकर, **मातृभूमि-पूजन** वा **राष्ट्राभिवन्दन** भी भूमण्डल के समस्त नागरिक करते हैं। अतः हम ने अपने राष्ट्रिय-महत्त्व के दिवस पर करने के लिये भी एक विधि लिखी है। इन सबके लिये हमने अपनी अल्पबुद्धि से वेदमन्त्रों का चयन करके तत्तद्विषयक पद्धतियां बनाई हैं।

यज्ञ वा संस्कार सम्बन्धी वस्तु संग्रह

"मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गल कार्यों में [=शुभावसरों पर] अपने और पराये कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें* (सं० वि० २२)।" इस इष्टतम कर्म† यज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिये, जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन को आगे लिखते हैं—

यज्ञदेश तथा यज्ञशाला

यज्ञदेश को संस्कार-स्थान भी कहते हैं। "यज्ञ का देश पवित्र और जहां का स्थल, वायु शुद्ध हो, जहां किसी प्रकार उपद्रव अर्थात् (कोलाहलादि विघ्न) न हो; तथा जहां का वातावरण भी धार्मिक हो, ऐसा होना चाहिये।"‡

सामान्यतः संस्कार अपने गृह पर करना उत्तम है। यदि ऐसी सुविधा न हो, तो किसी सार्वजनिक प्रार्थना-मन्दिर, धर्मशाला आदि में किया जा सकता है।

यज्ञशाला को यज्ञमण्डप भी कहते हैं। सस्कार स्थान निश्चय हो जाने पर, इसका निर्माण होना चाहिए। देश-काल-परिस्थिति सर्वथा अनुकूल हो, तो यज्ञदेश वा यज्ञशाला दोनों को विशेष रूप से अलंकृत करना चाहिए। संस्कारों के निमित्त यह अधिक से अधिक बारह हाथ (साढ़े तीन से पांच मीटर) और न्यून से न्यून आठ हाथ (अर्थात् तीन मीटर) सम चौरस चौकोण और कम से कम सात हाथ ऊंची अवश्य होनी चाहिये। चार खम्भे होने चाहियें। यह यज्ञशाला इतनी बड़ी होनी चाहिये कि उसमें यजमान तथा ऋत्विग् आदि अच्छी प्रकार से बैठ सकें और प्रदक्षिणा आदि सब क्रियायें

---

*यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। †श्रेष्ठतमाय कर्मणे (यजुः १।१)।

‡द्र०। सं० वि० पृष्ठ २२ का भाव।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुचारु रूप से कराई जा सकें। "यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बान्धे; नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हल्दी आटे के रेखाओं से सुभूषित करें।" (सं० वि० २२)। अलंकार के लिए कदलीस्तम्भ, केले तथा आम के पत्ते लिए जाने चाहियें।

यज्ञकुण्ड

इसको होमकुण्ड, हवनकुण्ड वा कुण्ड भी कहते हैं। यह यज्ञशाला अर्थात् वेदी के मध्य में स्थित होना चाहिये। इसका आकार नीचे चित्र में प्रदर्शित ढ़ंग से होना चाहिये।

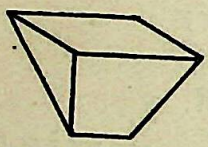

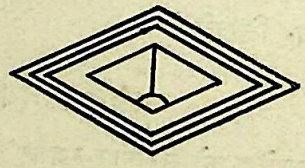

संस्कार के निमित्त, एक एक हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण ऊपर से, उतना ही गहरा और तले में उसका चतुर्थांश अर्थात् हाथ का एक चौथाई लम्बा चौड़ा, कुण्ड, यदि भूमि खोदने लायक हो, तो वहां खोदकर बनाना चाहिये। बृहद्यज्ञादि के लिए, दो हाथ का ऊपर से चौड़ा सम चौरस, उतना ही गहरा और आध हाथ नीचे सम चौरस चौकोण कुण्ड बनावें। इनमें पांच पांच अंगुल ऊंची तीन मेखला बनावें। तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करके बनानी चाहिये (सं० वि० पृ० २३ के आधार पर)।

इस यज्ञकुण्ड को भी चारों दिशाओं में पूर्ववत् आटे हल्दी कुंकुमादि से सुभूषित करना चाहिये।

यदि ऐसा कुण्ड बनाने की सुविधा न हो, तो इसी आकार के बने लोहे वा ताम्बे के कुण्ड में संस्कार करना चाहिये। खोदकर कुण्ड बनाने योग्य भूमि न हो, बना बनाया धातु का कुण्ड भी उपलब्ध न हो, तो नीचे मिट्टी वा रेता बिछाकर वा ईंट रखकर ऊपर लोहे वा किसी धातु की चादर वा बड़ा साफ तसला परात आदि रखकर संस्कार यज्ञ सम्पन्न कर लेना चाहिये। क्योंकि संस्कार मुख्य है, कुण्डादि सब साधन हैं। उपयुक्त साधन के अभाव में मुख्य कर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञ-समिधा

पलाश, शमी, पीपल, वड़, गूलर, आम, बिल्व, चन्दन और बादाम वृक्ष की समिधायें, जो प्रायः निर्धूम होती हैं दुर्गन्ध पैदा नहीं करती हैं, वेदी के प्रमाणे छोटी वड़ी कटवा लेवें, और यज्ञकुण्ड के बीच चारों ओर बराबर कर रखें। परन्तु अच्छी प्रकार देख लेवें कि ये समिधा कीड़ा लगी, मलिनदेशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों और खूब सूखी हों। त्रिसमिदाधान के लिए बारह समिधा आठ अंगुल प्रमाणें की, सम्भव हो तो चन्दन की पहले ही कटवा कर पृथक रख ले।

होम द्रव्य अर्थात् हवन सामग्री

१···अपने और पराये कल्याण के लिये किये जाने वाले होम के निमित्त निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञ कुण्ड में देवें। **प्रथम-सुगन्धित**—कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि॥ **द्वितीय-पुष्टिकारक**—घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि। **तृतीय-मिष्ट**—गुड़, शर्करा अर्थात् शक्कर, सहत अर्थात् मधु, छुवारे, दाख (किशमिश) आदि। **चतुर्थ-रोगनाशक**—सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियां।*

२·····जो ये चार प्रकार के बुद्धि, वृद्धि, [=पुष्टि] शूरता, धीरता, बल और आरोग्य [=स्वास्थ्य] करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उसका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके ·····वायु और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता=शुद्धता होती है, उससे सब जीवों को परमसुख होता है।

इन उत्तम सात्त्विक पदार्थों की सुगन्धि नासिका द्वारा मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होने से, उसके शरीर की 'रस रक्त...वीर्य' आदि सप्त धातुयें शुद्ध होती हैं, जिससे मन शुद्ध हो, बुद्धि उत्तम संस्कारों वाली बनती हैं।

---

* द्र.। सं. वि. २३; पं. म. वि. ३८; ऋ. भा. भू. ५४,५५,२८८॥

आजकल बाजार में हवनसामग्री तय्यार मिलती है। सर्वऋत्वनुकूल तथा विशेष विधि से ऋत्वनुकूल सामग्री का नुस्खा हमने पहले लिख दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३ उत्तम तो यह है कि घृत गाय का हो। अभाव में दूसरा घृत ले सकते हैं। परन्तु डालडा आदि जमा हुआ तेल यज्ञ संस्कार में सर्वथा वर्जित है।

४ कम से कम एक किलो शुद्ध घृत तथा ढ़ाई तीन किलो सामग्री संस्कार के लिये लेवें। घृत को गरमकर, छान, उस में सुगन्धित द्रव्य वा सामग्री में घृत वा खण्ड शर्करा मिला लेवें।

घृत तथा अन्य पदार्थों की आहुति का परिमाण

१. वैसे छः मासे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून होना चाहिये और जो इससे अधिक करे, तो बहुत अच्छा है।* ...वा-अन्य मोहन-भोगादि [तथा होम द्रव्य] जो कुछ सामग्री हो, अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे।*

२. देश काल स्थिति के अनुसार आहुति का परिणाम अल्प किया जा सकता है। अब घृत की एक एक माशे तथा सामग्री की तीन-तीन माशे की आहुति न्यून-से-न्यून होनी चाहिये। परन्तु संस्कार में होम करना कभी न छोड़े।

संस्कार के समय मन्त्र पढ़ने का प्रयोजन

...मन्त्र पढ़ के यज्ञ व संस्कार करने का...प्रयोजन [यह है कि] (१) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे संस्कार करने के फल अर्थात् लाभ विदित स्मरण हो जाएं। (२) और मन्त्रों की बार-बार आवृत्ति होने से [वेद मन्त्र] कण्ठस्थ रहें। (३) मानव धर्म ग्रन्थ वेद पुस्तकों का पठन-पाठन और उनकी रक्षा भी होवे। (४) इनके पढ़ने से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना और... [उसका] होना विदित होते हैं, कि कोई नास्तिक न हो जाए। इसलिए यज्ञ [आदि] सब उत्तम मांगलिक कर्म वेदमन्त्रों से ही करने चाहिए।†

---

* द्र. स. प्र. ३, ५५। सं. वि. पृ. ३७ के अनुसार।

† द्र. स. प्र. ३, ५४ तथा ऋ. भा. भू. ६४ पृ. के अनुसार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब पदार्थ बनावे। इसका प्रमाण—

ओ३म्, देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः॥[1] तैत्ति० सं० १।२।१।२॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्यों को यथावत् शुद्ध कर लेना अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर रक्खें। फिर इन द्रव्यों को यथायोग्य परिमाण में मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर घी के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल वा जावित्री, सेर भर मीठा अर्थात् मिश्री सब डाल कर, मोहनभोग बनायें। इसी प्रकार अन्य मीठा—भात, खीर, खीचड़ी[1], मोदक आदि होम के लिए बनावें।

चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने का विधि—(ओम् अग्नये[2] त्वा जुष्टं निर्वपामि)[3] अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार-चार मूठी चावल[4] आदि ले के

---

१. 'अन्य मीठा' के प्रकरण में और 'खीर' तथा 'मोदक' के बीच में निर्देश होने से यह खिचड़ी मीठी बनाई जायेगी। यज्ञ में लवण का निषेध होने से इसमें नमक नहीं डाला जायेगा।

२. मन्त्र में अग्नि पद देवतावाचक पद का उपलक्षण है। जिस-जिस कर्म की प्रधान आहुतियों का जो-जो देवता हो उस-उस देवता के लिये ग्रहण की जाने वाली हवि के मन्त्र में 'अग्नये' के स्थान पर उस-उस देवतावाचक पद का चतुर्थी विभक्ति में प्रयोग करना चाहिये। यथा इन्द्रदेवताक कर्म में 'इन्द्राय त्वा·····'।

३. तुलना—आश्व० गृह्य १।१०।६॥

४. प्रधान होम की प्रत्येक आहुति के लिये चार-चार मुट्ठी प्रमाण द्रव्य लेकर पाक किया जाता है, परन्तु आहुति का प्रमाण अङ्गुष्ठ पर्वमात्र ही है। शेष हव्य द्रव्य यज्ञशेष के रूप में यजमान एवं ऋत्विजों द्वारा भक्षणीय होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ओम् अग्नये[1] त्वा जुष्टं प्रोक्षामि[2]) इस मन्त्र से सब पदार्थों को अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थली में डाल अग्नि से पका लेवें। जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो, तभी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें और उस पर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र

यज्ञ संस्कारादि मङ्गल कार्यों में, विशेषकर चांदी, सोना, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ (सं० वि० २५, ३६) अथवा ताम्बे के पात्र होने चाहिये। पीतल [वर्त्तमान में स्टेनलेस स्टील] के भी वर्तन वर्त्ते जा सकते हैं। विशेष संस्कार में (जहां उल्लेख किया जायेगा वहां) आहुति के बाद घृत बिन्दु छोड़ने के लिये 'कांसे का पात्र' (सं० वि० ५७) होना चाहिये।

होमद्रव्य रखने के लिये तीन या चार थालियां, घृतपात्र एक या दो, आहुति डालने के लिये दो लम्बे चमसे, आचमन के लिए चार गिलास या पंचपात्र वा मिट्टी के कुल्हड़ चार छोटे चमचों सहित, एक थाली क्षीरान्न, मिष्टान्न, मोहनभोग आदि रखने के लिये, एक लोटा जल से भरा जलप्रसेचन के लिये, इतने पात्र सब संस्कारों के लिये प्रयोग में आते हैं।

सामान्य यज्ञार्थ अन्य आवश्यक पदार्थ

१. अग्न्याधान से पूर्व 'अग्नि प्रज्वालन' के लिये एक नयी दियासलाई, कपूर या सूखे नारियल के पतले लम्बे टुकड़े। अभाव में रुई की बत्ती घृत में भिगो या पतली-पतली समिधाओं में घृत-लगा, अग्नि प्रज्वलित करें। उत्तम यही है कि यज्ञसंस्कार जैसे मंगलकार्य के लिये किसी नित्याग्निहोत्री वेदवित् द्विज के गृह से आग लायी जावे (सं० वि० ३५)। एक पङ्खा, एक चिमटा।

२. कम-से-कम तीन शुभासन, दो पति-पत्नी के लिये और एक ब्रह्मा वा पुरोहित के लिये। ब्रह्मा का आसन ऊंचा होना

---

१. यहां भी पृष्ठ ११ की टि० २ के समान उचित देवता पद का चतुर्थ्यन्त प्रयोग करना चाहिये।

२. यजुः १।१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिये, सो नीचे एक चौकी रक्खें। वधू वर के लिये भी दो पीठासन हो सके, तो बनाकर रक्खे। यह लौकिकाचार के अनुसार है। प्राचीन पद्धत्यनुसार जिस स्तर पर अग्नि का आधान किया है, उससे ऊंचा आसन नहीं होना चाहिये।[1] अतः सामान्यतया कुशासन अथवा ऊर्णासन अधिक युक्त है।

३. यदि सम्भव हो, तो यज्ञमण्डप पर चारों ओर चार कलश या एक कलश, जिस पर घृत का दीप जला रक्खें। मिट्टी के घड़े भी रंगे हुए काम में आ सकते हैं। इन पर आम के पत्ते नीचे, उन पर अन्न भरे प्याले, ऊपर दीपक रक्खें। यह लोकाचार उत्तरीय भारत का है। दक्षिण देश में कलश के ऊपर आम्रपत्र उस पर हरा नारियल और पृथक् घृत का प्रज्वलित दीप रखते हैं।[2]

४. बीच-बीच में हस्तप्रोञ्छनार्थ उपवस्त्र दो।

५. यज्ञोपवीत एक जोड़ा।

६. स्विष्टकृत् आहुति के लिये [मीठा] भात अथवा जहां जिस द्रव्य का विधान है।

ऋत्विक्-सत्कार दान-दक्षिणा

१. ऋत्विग्वरण के निमित्त अर्थात् यज्ञारम्भ में वरण करते समय ऋत्विक्-पुरोहित को देने के लिये पुष्पमाला, नारियल, वस्त्र, द्रव्य (सं० वि० २८ द्रष्टव्य)।

२. यज्ञ समाप्ति पर ऋत्विजादि को दक्षिणा देने के लिये पुष्पमाला, नारियल, फल, मिष्टान्न, वस्त्र, द्रव्य।[3]

३. त्यागी पक्षपात रहित [कल्याणार्थ वर्त्तने वाले] संन्यासी के यथायोग्य सत्कार के लिये वस्त्र द्रव्य आदि।

४. आचार्य के लिये सुन्दर पुष्पमाला, नारियल, वस्त्र, गोदान, [पात्र] धन आदि की दक्षिणा (सं० वि० १६१)।

यह सब सामान पहले ही यज्ञवेदी के पास सिद्ध कर रक्खें।

---

१. ब्राह्मणो होतुरवरो नि षीदन्। ऋक् १०।८८।१९ ॥ ब्राह्मणो होताऽस्याग्नेर्होतुरवरो निषीदन्। निरुक्त ७।३१॥

२. यह केवल अलंकार के निमित्त है, धार्मिक कृत्य नहीं।

३. सं० वि० सामा० प्र०, पृ० ४६ के अनुसार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येक गृहस्थ यजमान का कर्त्तव्य है कि वह एक पुरोहित को नियत रक्खे। संस्कार के आदि और अन्त में यजमान गृहस्थ स्त्री-पुरुष का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह पुरोहित को पुष्पमाला, उचित द्रव्य वस्त्रदानादि से श्रद्धापूर्वक सत्कृत करे। दक्षिणा के विना कोई यज्ञ सफल नहीं होता।

आशीर्वादार्थ—संस्कार्य को आशीर्वाद देने के निमित्त सुगन्धित खिले फूल व हल्दी कुंकुम मिश्रित चावल।

प्रत्येक संस्कार से सम्बद्ध विशेष द्रव्य

गर्भाधान संस्कार के लिये—

१. चांदी वा कांसे के पात्र में घृत, दूध, शक्कर, भात में एक-रस करके रक्खें (सं० वि० ५७); उदक पात्र में एकत्रित घृत को आहुत्यर्थ व वधू-स्नानार्थ (सं० वि० ६१)।

२. सर्वौषधि घृत, होम करने वा खीर वा भात में मिलाकर दोनों के खाने के निमित्त (सं० वि० ६३)।

३. केशर कस्तूरी इलायची आदि मिश्रित दूध [या उसके साथ च्यवनप्राश, शिलाजतु आदि बलवर्धक औषधि] सहशयन के पश्चात् यथेष्टपान के लिये (सं० वि० ६४)।

४. दो ऋतुकाल व्यर्थ जाने पर; (क) दो मासा दही और यव के दाणे, वधू द्वारा प्राशन के लिये, (ख) सङ्खाहूली व भटकटाई औषधि का रस पत्नी की दाहिनें नाक में सिंचन के लिये (सं० वि० ६६-६७)।

पुंसवन के लिये—

वट वृक्ष की जटा वा उसकी कोमल कोंपल, स्त्री की दक्षिण-नासापुट में सुंघाने के निमित्त (सं० वि० ६९, ७१)।

सीमन्तोन्नयन के लिये—

चावल, तिल मूंग की खिचड़ी[1], पुष्कल घृतमिश्रित, आहुति, वधू द्वारा स्वमुखदर्शन व प्राशनार्थ (सं० वि० ७३, ७८)।

---

१. यह नमक रहित होनी चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातकर्म के लिये—

१. घृत, मधु व सुवर्णशलाका, शिशु को चटाने के लिये।

२. चावल और जव का रस (सं० वि० ८२)।

अन्नप्राशन के लिये—

१. विशेष आहुति के लिये घृतयुक्त भात।

२. प्राशन के लिये : (क) आहुति से वचे भात में मिलाने के लिये दही व शहद (सं० वि० ९८, १०१)। (ख) अथवा गाय का दूध, शहद और भात अथवा (ग) यव चावल तिल गेहूं के रस का मधुयुक्त सार वा (घ) फलों का रस।

लवण, क्षार, अम्ल, तिक्त, कषाय रस से मिश्रित कोई 'अन्न' नहीं प्राशन कराना चाहिये। प्रथम अन्न प्राशन के समय कोई लघु सुपाच्य मिष्ठ खाद्यान्न ही प्रयोग में लाना चाहिये।

चूड़ाकर्म के लिये—

१. चावल, यव, माष अर्थात् उर्द, तिल, चारों को रखने के लिये शरावें अर्थात् मिट्टी के प्याले नापित के लिये (सं० वि० १०२, १०८)। सम्पन्न व्यक्ति द्वारा चार लिफाफों में इन्हें भर कर एक पात्र के साथ देनें में शोभा वा गौरव है। साम्प्रतिक नागरिक नापित इन वस्तुओं को नहीं लेते हैं। ऐसी अवस्था में इन्हें छोड़ा भी जा सकता है।

२. किंचित् उष्ण वा किञ्चित् ठण्डा जल, और रखने-मिलाने के लिये दो तीन पात्र (सं० वि० १०३)।

३. मक्खन अथवा दही की मलाई, अभाव में दही एक प्याले या पात्र में (सं० वि० १०३)।

४. कंघा, कैंची, उस्तरा नाई लावे। सबको पहले गरम पानी में शुद्ध करें। उस्तरा तेज हो (सं० वि० १०३)।

५. कुश [=दर्भ] अर्थात् मुलायम दूब, शमी वृक्ष के पत्र [देशाचारानुसार मौली] केश बन्धन के लिये (सं० वि० १०५-१०६)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६. गोबर [देशाचारानुसार आटे का पेड़ा या मोटी कच्ची रोटी], कटे केश उठाने तथा एक शरावा इसको रखने के लिये (सं० वि० १०६)। आजकल नीचे एक चादर बिछा लेते हैं। वह नापित को दे दी जाती है।

७. शिशु-स्नानार्थ ऋत्वनुकूल शीतल या उष्ण जल (सं० वि० १०८)।

८. शिशु के उत्तम [नवीन या साफ] वस्त्र।

९. बच्चे के लिये मोदक आदि मिष्ठान्न वा खिलौना (सं० वि० १०९) के अनुसार।

कर्णवेध के लिये—

१. शिशु के लिये नवीन वस्त्रालंकार अर्थात् नवीन वस्त्र (सं० वि० १०९)।

२. खाने का पदार्थ वा खिलौना (सं० वि० १०९)।

३. तेज नोक वाली ताम्बे या चांदी की बाली सुनार अपने साथ लावे।

४. कान के छिद्र पर लगाने की औषधि (सं० वि० ११०)।

उपनयन के लिये—

१. तीन दिन या एक दिन व्रत रखने के लिये सब वर्णस्थों के लिये दुग्ध वा फल—

(क) यदि अपनी सन्तान को ब्राह्मण बनाना अभीष्ट हो, तो उसके लिये एक या अनेकबार दुग्धपान।

(ख) क्षत्रिय बनाना अभीष्ट हो, तो गुड़ मिला यव का दलिया।

(ग) वैश्य बनाना अभीष्ट हो, तो श्रीखण्ड* अर्थात् दही चौगुना, दूध एक गुना मिला, उसमें यथा योग्य खाण्ड केशर आदि डाल कपड़े में छान कर बनाया पदार्थ।

'व्रती' को एकबार या अनेकबार, भूख लगे तो खावें। व्रत के दिनों इन तीन वर्गों के बनने के इच्छुक वटु अर्थात् लड़के-लड़कियां

*बम्बई, गुजरात, सौराष्ट्र में प्रसिद्ध खाद्य मिष्ठान्न।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन तीनों पदार्थों का ही सेवन करें; अन्य पदार्थ कुछ भी न खावें-पीवें (सं० वि० ११३ के आधार पर)।

२. व्रती के लिए उत्तम वस्त्र, पीला अंगवस्त्र, अर्थात् अंगोछा अथवा पीत रेशमी उपवस्त्र (सं० वि० ११३)। वेदारम्भ में भी ऐसे ही वस्त्र काम आते हैं (सं० वि० १२३)।

३. आचार्य व्रती के भोजनार्थ मिष्ठान्न (सं० वि० ११४)।

४. एक जोड़ा यज्ञोपवीत, [गृहपत्नी या किसी विद्वान् गृहस्थ ब्राह्मण द्वारा कते सूत्र का स्वनिर्मित यथाविधि बना उत्तम होता है]।

५. एक जलभरा लोटा, परात या थाली (द्र० सं० वि० ११७-११८)।

वेदारम्भ के लिये—

उपनयन संस्कार की वस्तुओं के अतिरिक्त,—

१. प्रधान आहुति के लिये विशेष भात (सं० वि० १२३)।

२. विशेष समिधायें [पलाश या चन्दन की, आठ अंगुल लम्बी] छै त्रिसमिदाधान के लिये (सं० वि० १२४)।

३. एक विशेष वस्त्र, आचार्य तथा ब्रह्मचारी दोनों के स्कन्धों पर रखने के निमित्त (सं० वि० १२६)।

४. चिकना सीधा शरीर परिमाण जितना लम्बा दण्ड।*

५. सुन्दर त्रिकी मेखला।†

६. ब्रह्मचारी के लिये दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे, एक उत्तरीय [ऊपर लेने का वस्त्र], दो कटि वस्त्र [नीचे बांधने की धोती] (सं० वि० १२७)।

समावर्त्तन के लिये—

१. मीठा भात, खीर, मोदक, खिचड़ी में से कोई एक बनाकर रक्खे (सं० वि० १५५)।

---

*वर्णानुकूल दण्ड के लिये विशेषतया द्र० सं० वि० १२८।

† वर्णानुकूल मेखला के लिये विशेषतया द्र० सं० वि० १२८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२ स्नानार्थ, (क) सुगन्धादि औषध युक्त जलपूर्ण आठ कुम्भ वेदी के उत्तर भाग में रक्खे (सं० वि० १५६)। (ख) स्नान से पूर्व मलने के लिये सुगन्धि द्रव्य उबटनादि तथा (ग) स्नानान्तर अनुलेपनार्थ सुगन्धयुक्त चन्दनादि का लेप (सं० वि० १५८)।

३. क्षौरकर्म व स्नान से पूर्व प्राशन के निमित्त दही वा तिल (सं० वि० १५८)।

४. सुगन्धित पुष्पमाला, धोती वा पीताम्बर, [शरीर पर धारण के लिये] अति श्रेष्ठ वस्त्र, [ओढ़ने को] उत्तम उपवस्त्र शिरोवेष्टन अर्थात् उष्णीष=पगड़ी टोपी आदि अथवा मुकुट, अंजन दर्पण, उपानह=पादवेष्टन=पगरखा=जूता जोड़ी, हाथ में पकड़ने के लिये सुन्दर लकड़ी [सं० वि० १५९-१६०)। स्नानानन्तर स्नातक की वेशभूषा है।

५. आचार्य के सत्कार व दक्षिणा के लिये, मधुपर्क का सामान सुन्दर पुष्पमाला, नारियल उत्तम वस्त्र, गौ, पात्र, धन, मिष्ठान्नादि।

विवाह-संस्कार के लिये—

सामान्य विधि में होम के लिये निर्दिष्ट सामान से अतिरिक्त सामान की सूची।

१. संस्कार से पूर्व 'मंगल स्नान' के लिये—

(क) स्नान प्रसाधन सामग्री, उबटन, सुगन्धियुक्त जलपूर्ण आठ कुम्भ (सं० वि० १५६ तथा १७७ में निर्दिष्ट), उत्तम वस्त्रालंकार।

२. मधुपर्क के लिये—

(क) दो चौकी या पीठासन, उत्तम आसन, एक सुन्दर पात्र में पूर्ण शुद्ध जल, शुद्ध जल भरा लोटा, जल से पूर्ण सुन्दर उपपात्र आचमनी सहित मधुपर्क के लिये बारह तोले [=एक सौ पचास ग्राम] दही, इससे चतुर्थांश शहद=अथवा घृत, (सं० वि० १७८-१८२), हाथ, पैर, मुख, पोंछने के लिये एक तौलिया, पगप्रक्षालनार्थ नीचे रखने के लिये एक परात।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ख) द्वार पर स्वागत करने के लिये सुन्दर पुष्पमाला वधू गृह में एक। वर पक्ष वाले भी वर द्वारा वधू कण्ठ में डलवाने के लिये बड़ी सुन्दर पुष्पमाला लावें।

(ग) आचमन-पात्र।

(घ) यथा शक्ति वर को देने के लिये गोदानादि द्रव्य (सं० वि० १८४), वस्त्र, सुवर्ण मुद्रिका आदि।

३. **पाणिग्रहण विधि के लिये—**

विवाह-वेदी पर आने से पूर्व, वर द्वारा वधू को तथा वधू की ओर से वर को उपहारस्वरूप दिये जाने वाले वस्त्र (सं० वि० १८५), दुपट्टा, शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश, एक दण्ड, लाजा अर्थात् ज्वार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्र, सूप अर्थात् छाज, सुन्दर चिकनी सपाट शिला, (सं० वि० १८६) घृत दीप, स्थाली-पाक विधि द्वारा सिद्ध अर्थात् पका हुआ भात, [या मीठा भात आदि], आहुति व सहभक्षण के लिये (सं० वि० २१५-२१७)। आशीर्वाद के लिये खुले पुष्प व हल्दी कुंकुम मिले चावल=अक्षत।

४. **पितृ-कुल से कन्या प्रस्थान के लिये—**

रथ अर्थात् कोई सवारी (सं० वि० २१८), मोटरकार, घोड़ा-गाड़ी, बैलगाड़ी, पालकी आदि।

५. **पतिकुल में वधू के प्रथम स्वागत के लिये—**

सामान्य होम के लिये आवश्यक सामग्री के अतिरिक्त, सुन्दर पुष्पमाला, वधूवर के प्राशन=खाने के लिये दधि।

आशीर्वाद के लिये—खुले पुष्प तथा हल्दी कुंकुम मिले चावल =अक्षत।

शालाकर्म=शिलान्यास या गृहप्रवेश के लिये—

१. किसी भवन या गृह का निर्माण प्रारम्भ करते समय, सामान्य होम को निमित्त सब पदार्थों के अतिरिक्त, जहां पर पत्थर रखना हो, वहां पहले ही सीमेण्ट रोड़ी मिश्रित माल, नारियल चार पानी छिड़कने के लिये, अभाव में सुन्दर पात्र में शुद्ध जल, [गृहनिर्माण के उपकरण सहित मिस्त्री, लगाने का पत्थर और यदि नींव रखनी हो तो परिचय पेटिका आदि सब तैयार रक्खें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२. गृह-प्रवेश के लिये; निम्न प्रकार से विशेष वस्तुयें सिद्ध करके रक्खें—

(क) 'ओम्' ध्वज सहित ध्वजा का स्तम्भ तथा कोणों के लिये चार छोटी ध्वजा (सं० वि० २८२)।

(ख) द्वारालंकार के लिये, नाना कोटि के पुष्प, पल्लव, कदलीस्तम्भ वा कदली के पत्ते (सं० वि० २८३)।

(ग) एक छोटा ताम्बे या लोहे का होम कुण्ड।

(घ) [मिष्ठ] भात वा सुगन्धित घृत सिंचित भात (सं० वि० २८६)।

(ङ) उदुम्बर अर्थात् गूलर और पलाश के पत्ते, शाद्वल अर्थात् दूर्वा या दूब, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव तथा इनके मिश्रण को रखने के लिये कांस्यपात्र (सं० वि० २८७)।

(च) गृह-प्रवेश के समय यजमान दम्पती नवीन उत्तम वस्त्र धारण करें। यदि सन्तान हों, तो वे भी नवीन शुद्ध स्वदेशी वस्त्र धारण करें।

वानप्रस्थ के लिये—

सादे स्वदेशी वस्त्रों का जोड़ा, दण्ड, पीले रंग का उत्तरीय, सादा जूता।

संन्यास के लिये—

कमण्डलु या धातु का भिक्षापात्र, दण्ड, कुसुंभ [अर्थात् ढाक के फूलों के रस] से या गेरु से रंगे काषाय वस्त्र की (सं० वि० ३३२) कोपीन, कटिवस्त्र, उपवस्त्र, अंगोछा (सं० वि० ३४५), कुर्त्ता कमीज बनियान आदि।

आचार्य सम्मानार्थ, मधुपर्क के लिये दधि व मधु।

अन्त्येष्टि संस्कार के लिये--

१. (क) शव अर्थात् मृतदेह क स्नानान्तर प्रयोग के लिये, चन्दनादि सुगन्धलेप, नवीन वस्त्र (सं० वि० ३६३)। अथवा साबुन से नहला दें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ख) जितना लम्बा शरीर हो उससे ढाई गुना अर्थात् लगभग साढ़े चार मीटर सफेद नया कपड़ा, शव को नीचे ऊपर लपेटने के लिये।

२. श्रीमान् [अर्थात् सम्पन्न] हो, तो उसके शरीर के भार के बराबर शुद्ध घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक, महा-दरिद्र भिक्षुक हों तो 'पञ्च' आधमन [का प्रबन्ध करें], (सं० वि० ३६३)।

३. एक मन [=लगभग ३७ किलो] घृत में मिलाने के लिये आधा तोला कस्तूरी [=आधा ग्राम], एक छटांक केसर [=६ ग्राम], साथ सेर-सेर [=एक किलो लगभग] अगर तगर, पर्याप्त चन्दन चूर्ण, (सं० वि० ३६३-३६४), तथा कुछ कपूर।

४. हवन सामग्री शरीर के भार से दूनी और निर्धन हो, तो एक मन।

५. कम-से-कम चार क्विण्टल अर्थात् दश मन पलाश आदि के काण्ठ (सं० वि० ३६४)।

६. वेदी लेपन के लिये गोमय, यदि उपस्थित हो (सं० वि० ३६५)।

७. दाहकर्म के लिये पर्याप्त कपूर, तथा घृत का दीपक (सं० वि० ३६५)।

८. मृत स्त्री सधवा स्त्री हो, तो सिन्दूर।

९. सम्पन्न श्रीमान् गृहस्थ हो, तो एक रेशमी या ऊनी शाल, ऊपर ओढ़ाने को। मध्यम परिवार हो, तो सूती चादर।

भारत देश में जनता की बदली आर्थिक दशा व जीवन सम्बन्धी परिवर्त्तित दृष्टि को ध्यान में रख, दाहकर्म क लिये ऋषि दयानन्द द्वारा संस्कार-विधि में उल्लिखित सामान उतना लाना सम्भव नहीं। सो देशकालानुसार उसमें निम्न प्रकार से संशोधन किया जा सकता है:

शुद्ध घृत कम-से-कम दो किलो, हवन सामग्री दस किलो, चन्दन की समिधा कम-से-कम एक किलो [सामग्री में मिला लें,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या शव के ऊपर समिधा चिनने पर ऊपर बिखेर दें], कम-से-कम पाव किलो अगर पाव किलो तगर, कपूर सौ ग्राम। मृतक भोज आदि के व्यर्थ खर्चे न किये जायें, तो ऊपर का सामान एकत्रित किया जा सकता है।

जितना अधिक सामर्थ्य हो, उतना घृत वा सामग्री आदि अधिक निम्न ढंग से लेवें।

पांच किलो घृत	बीस किलो सामग्री
दस ,,	चालीस ,,
बीस, पच्चीस किलो घृत	एक क्विण्टल सामग्री

कम-से-कम सादा सफेद आठ हाथ (चार मीटर) लम्बा एक वस्त्र, शरीर लपेटने के लिए।

———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे यज्ञाय ब्रह्मणे

मंगलाचरणम्

●

ओं सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः। तै० आर० प्रपा० ८, अनु० १॥

(ओम्) वह सर्वरक्षक सर्वशक्तिमान् ईश्वर! अपनी कृपा और सहाय से (सह नौ अवतु) हम पति-पत्नी व गुरु-शिष्य व यजमान-ऋत्विग् की सर्वदा सर्वथा रक्षा करे, (सह नौ भुनक्तु) और हमें, परम प्रीति से मिलकर सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य आदि के आनन्द को, अपने असीम अनुग्रह से भुगावे। हे कृपानिधे! आपकी असीम अनुकम्पा से (सह वीर्यं करवावहै) हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें अथवा सदा मिलकर सब काम करें; हे प्रकाशमय उत्तम कर्मों के करने के लिये सब विद्या के देने वाले परमेश्वर! (तेजस्विनौ अधीतम् अस्तु) आपके उत्तम सामर्थ्य से हम लोगों का पढ़ा-पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे; हे प्रीति के उत्पादक! सर्वमित्र सर्वात्मन्! (मा विद्विषावहै) आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें, किन्तु 'उत्तम-संस्कारवान् बन' एक दूसरे के मित्र होके सदा वर्त्तें। (ओम्) हे सर्वरक्षक सर्वव्यापक अखिल ब्रह्माण्ड में शान्ति की वर्षा करने वाले भगवान्! आपकी करुणा से (शान्तिः शान्तिः शान्तिः) हमारे यज्ञ-संस्कार व्यवहार रूप उत्तम कर्मों के संकल्प शान्तिदायक हों; उनका क्रिया-कलाप अर्थात् यज्ञों का कर्मकाण्ड शान्तिदायक और उनका फल शान्तिदायक हो। जिससे हम लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रितापों से छूट, शरीर इन्द्रिय मन से होने वाली आध्यात्मिक, सूर्य चन्द्र भूमि वायु जल आदि देवों से होने वाली आधिदैविक तथा अन्य प्राणियों से होने वाली आधिभौतिक शान्ति और तीनों लोकों के सुख को प्राप्त कर पारस्परिक-हित में जीवन लगावें। हमारे सब कार्य निर्विघ्न पूरे हों।

अथ सामान्यप्रकरणम्

मनुष्यों अर्थात् स्त्री-पुरुषों के शरीर और आत्मा उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेकर श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टिकर्म=मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह-संस्कार करने पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं[मनु० २।१६। सं० वि० ४७]।

नीचे लिखी हुई क्रियायें सब संस्कार [एवं यज्ञों] में करनी चाहिये। जहां कहीं कुछ विशेष करना होगा, वहां [उस संस्कार में] सूचना कर दी जावेगी कि यहां पूर्वोक्त [सामान्य प्रकरण में निर्दिष्ट] अमुक कर्म न करना और [इस संस्कार के निमित्त] इतना अधिक करना [सं० वि० १२८]।

सबसे पूर्व यजमान को चाहिये कि वह यज्ञ सम्बन्धी सब पदार्थों अर्थात् यज्ञकुण्ड, यज्ञसमिधा, यज्ञपात्र, स्थालीपाक के निमित्त मोहनभोग मीठाभात खीर खिचड़ी मोदक आदि, घृतादि को उष्णकर छानकर सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर और विधि से बनाया होम का शाकल्य=हवन सामग्री आदि को आज्यस्थाली व शाकल्य स्थाली में निकाल कर वेदी के पास यथास्थान रक्खे और ऋत्विग्वरण तथा यज्ञदक्षिणा के निमित्त सत्कारार्थ माला, शुद्ध उत्तम देशी वस्त्र, फल-मिष्ठान्न और द्रव्य आदि भी वेदी के पास ही सुरक्षित रक्खें।

तत्पश्चात् यजमान प्रसन्न चित्त हो संस्कारादि कराने के निमित्त "शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जानने हारे, कर्म करने में कुशल, अच्छे विद्वान् सद्धर्मी जितेन्द्रिय, निर्लोभ, निर्व्यसनी सुशील कुलीन वैदिक मत वाले, वेदवित् सर्वोपकारी ब्राह्मण-वर्णस्थ गृहस्थ [सं० वि० ३४ तथा ८० पृ० मिलाकर द्रष्टव्य]' एक दो तीन अथवा चार याजकों [जितनों की आवश्यकता हो, उतनों] का वरण करे [सं० वि० ३४ तथा ८० पृ० मिलाकर पढ़े]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो एक [याजक] हो, तो उसको पुरोहित; जो दो हों, तो ऋत्विग् तथा पुरोहित; तीन हों तो ऋत्विग् पुरोहित तथा अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा [द्र० सं० वि० ३४] अथवा ऋत्विग्, होता, अध्वर्यु तथा ब्रह्मा कहते हैं [सं० वि० २८१]।

[वृत होने से पूर्व] वे सब वेदी से पश्चिम दिशा में बैठें [सं० वि० २८१]। जब यज्ञ संस्कार का प्रारम्भ करने लगें, तब वेदी के चारों ओर बिछाये उत्तमासनों पर क्रमशः 'होता को वेदी से पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख, अध्वर्यु को उत्तर में दक्षिणाभिमुख, उद्गाता को पूर्व में पश्चिमाभिमुख और ब्रह्मा [अथवा यज्ञ के मुख्य अध्यक्ष] को दक्षिणदिशा में उत्तराभिमुख [सं० वि० ३४ तथा २८१]। इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक बैठावे; वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें [सं० वि० ३८]।

जब तक यजमान विधिवत् ऋत्विग् या पुरोहित का सत्कार-पूर्वक वरण न करें, तब तक नियत पीठासन पर स्वयं ऋत्विग् न विराजे। विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान के लिये 'वरण क्रिया' अवश्यमेव पुरोहित यजमान द्वारा करावे।

और यजमान वा गृहपतिः···हाथ-पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में···उपवस्त्र ओढ़ पूर्वाभिमुख बैठे [सं० वि० ३४ तथा ८०]। तथा संस्कार्य व्यक्ति को अपने दक्षिण वाजू बैठावे† और पत्नी को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे* [सं० वि० १८९ व २२१ के अनुसार]।

---

†संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतः सदा।
संस्कारकर्त्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥ लघ्वाश्व० स्मृ० १६।१ ॥

* १. श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ अत्रि स्मृ० ॥
२. सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतो भवेत् ॥
रत्नमाला पृ० २११ व २३५ ॥

३. दम्पती तु व्रजेयातां होमार्थं चैव वेदिकाम्।
वरस्य दक्षिणे भागे तां वधूमुपवेशयेत् ॥ लघ्वाश्व० स्मृ० १५।१६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसे ही घर के मध्य, वेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे। [सं० वि० २८१] उन पर अन्य बन्धु बान्धव, इष्ट मित्र, लोकप्रिय सज्जन गृहस्थ विद्वान् वा त्यागी पक्षपात रहित साधु-संन्यासियों को भी यथायोग्य सत्कारपूर्वक बैठावे। ···'संस्कार-क्रिया' के समय 'वे पृथक्-पृथक् मौन करके बैठे रहें; कोई बात-चीत हल्ला-गुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें। विशेषतः कर्मकर्त्ता अर्थात् यजमान और कर्म कराने वाले ऋत्विक् शान्ति धीरज और विचारपूर्वक क्रम से सब कर्म करें और करावें। [सं० वि० ४६]।

सब संस्कारों[वा यज्ञों]में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण **यजमान ही करे**; न शीघ्र, न विलम्ब से। किन्तु मध्यगति जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है [और ऋत्विग् निर्देश करे, वैसे] उच्चारण करे। यदि यजमान [संस्कृत-भाषा] न पढ़ा हो, तो भी **इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे** और यदि कोई कार्यकर्त्ता **यजमान जड़ मन्दमति** [अनपढ़ होने से] **मन्त्रोच्चारण में असमर्थ** हो, तो **पुरोहित** और **ऋत्विग् मन्त्रोच्चारण करें**, और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे [सं० वि० ४३]।

[प्रथमविधि—संकल्प पाठ तथा ऋत्विग्वरण]

संकल्पः

*** ओ३म्, तत्सत्परमात्मने सच्चिदानन्दाय नमो नमः। अद्य तस्य सामर्थ्येन प्रवर्त्तमानस्य ब्रह्मणो [सृष्टेः सचराचरस्य जगतः] द्वितीये प्रहरार्धे,**

रथन्तरादिद्वात्रिंशत् कल्पानां मध्येऽष्टमे श्वेतवराहकल्पे, स्वायम्भुवादिमन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे, 'सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि'संज्ञकानां चतुर्युगीनामष्टाविंशतितमे कलियुगे, कलिप्रथमचरणे,

---

*यह संकल्प का सामान्य स्वरूप है प्रत्येक यज्ञ वा संस्कार के समय उपरि मुद्रित संकल्पपाठ में बारीक टाइप में छपे पद, पदसमूह वा वाक्य एवं ··· खाली छोड़े गये स्थान में देश, काल, पात्र, प्रयोजन, यज्ञ वा संस्कार नाम के अनुरूप पाठ की ऊहा=कल्पना करके संकल्प का उच्चारण करना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकवृन्द-सप्तनवतिकोटि-एकोनत्रिंशल्लक्ष-एकोनपंचाशत्सहस्र-नवषष्टि [१, ९७, २९, ४९, ०६९] मिते सर्गाब्दे, ……षड्-विंशत्युत्तर-द्विसहस्रपरिमिते [२०२६] वैक्रमाब्दे, एकनवत्युत्तराष्टादशशततमे [१८९१] शकाब्दे, षड्चत्वारिंशदुत्तरैकशततमे [१४६] दयानन्दाब्दे, प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां मध्ये [उत्तरे-भारते] दुंदुभि / [दक्षिणे] सौम्यनामसंवत्सरे, ……अयने, ……मासे, ……पक्षे, ……नक्षत्रे, ……लग्ने, ……तिथौ, ……दिनाङ्के,

भूरादि सप्तलोकानामन्यतमे भूलोके, …… खण्डे, ……भारते वर्षे,

…… पर्वतस्य ……भागे, ……देवनद्योर् मध्यवर्त्तिनि…… तटान्तर्वर्त्तिनि ……प्रदेशे, ……नद्युभयाञ्चलविस्तृते, ……नाम्नि नगरे, ……संज्ञिते मार्गे / स्थाने, ……

……पुण्यावसरे, ……गोत्रोत्पन्नः, सपत्नीकः, ……नाम्नः पुत्रः, ……नाम्नः पौत्रः, ……नामाऽहं,

……आख्यसंस्कारं / यज्ञं,

श्री……ऋत्विग्मण्डलीपरिवृतस्य…… नाम्नः धर्मात्मन आप्त-विदुषः ब्रह्मत्वे यथाशास्त्रं यथाविधि,

सुगन्धि-पौष्टिक-मधुर-रोगनाशकैः केसरकस्तूरीचन्दनगव्यपयोदधिघृतकन्दमूलफलमधुगुडशर्करा-सोमलतादियज्ञसामग्र्या आम्र पलाशादिसमिद्भिः,

आहुति-भोजन-दक्षिणा-दानसहितं……संस्कारं / यज्ञं करिष्ये।

प्रीयताम् अनेनाऽग्निर्देवः सविता परमात्मा प्रीतिभावनः ॥

यह जो संकल्प का सामान्य स्वरूप ऊपर दिया है तदनुसार भाग्य-नगर स्थित (हैदराबाद) केशवार्यमहाविद्यालय की रजतजयन्ती के अवसर पर आयोजित यज्ञ के समय पढ़े गये संकल्प का परिशोधितरूप 'समयानुसार संकल्प बनाने के लिये निर्देशनार्थ नीचे दिया जाता है—

ओ३म्, तत्सत्……द्वि० प्रहरार्धे, रथन्तरा०……कलि प्रथम-चरणे,

एकवृन्द-सप्तनवतिकोटि-एकोनत्रिंशल्लक्ष- एकोनपंचाशत्सहस्र-सप्तषष्टि [१, ९७, २९, ४९, ०६७,] मिते सर्गाब्दे, चतुर्विंशत्युत्तर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विसहस्र [२०२४] परिमिते वैक्रमाब्दे, अष्टादशशतोत्तरैकोननवतितमे [१८८९] शकाब्दे, चतुश्चत्वारिंशदुत्तरैकशततमे [१४४] दयानन्दाब्दे प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां मध्ये रौद्रनामसंवत्सरे, दक्षिणायने, हेमन्तर्तौ, पौषमासे, कृष्णपक्षे, पूर्वाषाढानक्षत्रे,·····लग्ने, सप्तम्यां तिथौ, त्रयोविंशतिदिसम्बरदिनाङ्के,

भूरादिसप्तलोकानामन्यतमे भूलोके, एशियाखण्डे,

ब्रह्ममन्वादि-व्यासजैमिनि-दयानन्दपर्यन्तर्षिमुनिजन-सेविते भारते वर्षे,

हिमवतो दक्षिणभागे, विन्ध्याचलान्तःक्षेत्रे कृष्णागोदावर्योर्देवनद्योर् मध्यवर्तिनि आन्ध्र-प्रदेशे मूसानद्युभयाञ्चलविस्तृते तन्मुख्यपट्टने भाग्यनगरे [हैदराबादे],

महर्षिदयानन्दसंज्ञिते मार्गे [नारायणगुडा] वर्तमाने श्रीसार्वदेशिकसभान्तर्गताऽऽर्यप्रतिनिधिसभास्थापितस्य 'अमरजीविकेशवराव' पुण्यस्मृतौ प्रवर्त्तमानस्य 'केशव-स्मारकाऽऽर्यमहाविद्यालस्य रजतजयन्तीपुण्यावसरे, तदधिकारिणां मध्ये·····गोत्रोत्पन्नः, सपत्नीकः, ·····नाम्नः पुत्रः, ·····नाम्नः पौत्रः, खण्डेराव कुलकर्णी नामाऽहम्, आचार्यः,

परब्रह्मप्रीत्यर्थं, सत्यधर्मविद्याप्रसारार्थं, संसारस्याऽऽत्मिक-शारीरिक-सामाजिकोपकारार्थं, सर्वप्राणिहितार्थं, विश्वशान्त्यर्थं, सर्वोदयनिमित्तं, समारम्भनिर्विघ्नसमाप्त्यर्थं,

वेदचतुष्टयान्तर्गत- विविधज्ञानविज्ञानप्रतिपादकसूक्ताध्यायसमूहैः,

श्री·····पण्डितमण्डलीपरिवृतस्य-श्रीमदनमोहनविद्यासागर-महाविदुषो ब्रह्मत्वे यथाशास्त्रं यथाविधि,

सुगन्धि० ·····समिद्भिः, ·····आहुति·····त्र्यहं यज्ञं करिष्ये। प्रीय० ·····भावनः।

ऋत्विग्वरण

निम्न सौत्र मन्त्र का उच्चारण करके यजमान ऋत्विक् को कर्म कराने की इच्छा स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यजमानोक्तिः—'ओमावसोः सदने सीद ।'

ऋत्विगुक्तिः—'ओं सीदामि' ऐसा कह के उसके लिये जो आसन बिछाया हो, उस पर बैठे ।

यजमानोक्तिः—'अहमद्य[1] ...कर्मकरणाय भवन्तं वृणे ।'

ऋत्विगुक्तिः— 'वृतोऽस्मि ।'

मन्त्रार्थ

यजमान—ओंकार का स्मरण कर, आपसे प्रार्थना करता हूं कि हे ब्रह्मन् ! हे ऋत्विग्-पुरोहित ! आप (वसोः) यज्ञ के (सदने) शुभासन पर (आ) कर्म की समाप्तिपर्यन्त (सीद) विराजमान हूजिये ।

ऋत्विक्—ओंकार का स्मरण कर, (सीदामि) बैठता हूं ।

यजमान—आज मैं.....[1] .....कर्म-सम्पादनार्थ आपका वरण करता हूं ।

ऋत्विक्—मुझे स्वीकार है ।

सब मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गल कार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपसना करें, इसलिये [आगे लिखे प्रकारे घृत स्थालीपाक और] सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञ कुण्ड में देवें [सं० वि० २२] ।

[द्वितीय विधि—आचमन तथा अङ्गस्पर्श]

अपने-अपने जलपात्र से सब जनें जो कि यज्ञ करने को बैठे हों, वे इन मन्त्रों से तीन-तीन आचमन करें अर्थात् एक-एक से एक-एक बार आचमन करें (सं० वि० ६३ एवं २६१) । आचमन उतने जल को दाहिनी हथेली [ब्राह्मतीर्थ] में लेकर उसके मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगाकर करें कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे; न उससे अधिक न न्यून ।

---

१. यहां यज्ञ वा संस्कार का नाम उच्चारण करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचमन-मन्त्र

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा[1] ॥१॥ इससे एक,
ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा,
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ इससे तीसरा।

परमात्मपरक अर्थ—

(ओ३म्) यह सर्वरक्षक सर्वव्यापक परमात्मा का सर्वोत्तम निज नाम है। (अमृत) स्वरूप से नाश रहित, सदामुक्त, जलवत् शान्तस्वभाव परमात्मन्! (उपस्तरणम् असि) तू सब प्राणियों का आश्रय, जीवन का आधार अन्तिम शरण है अर्थात् 'नीचे का बिछौना' है।'१॥ हे अमृतात्मक ब्रह्म! तू (अपिधानम् असि) सब प्राणियों का पालक-पोषक है अर्थात् 'ऊपर का ओढ़ना' ढक्कन है ॥२॥ हे ओम् (श्रीः) तुझ, जिसका आश्रय सेवन सब जगत् विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस आपकी कृपा सामर्थ्य व सहाय से (सत्यं यशः श्रीः) सत्यश्रद्धा भाव, यश-कीर्त्ति और धन सम्पत्ति चक्रवर्त्तिराज्य सुख ये तीनों (मयि) मुझ में (श्रयताम्) रहें ॥३॥

अनुष्ठानपरक अर्थ—

(ओ३म्) सर्वरक्षक परमात्मा के सामर्थ्य से (अमृत) हे रोग-मृत्यु-दुःख निवारक अमृतरूप जल! तू प्राणिमात्र के जीवन का आधारभूत 'बिछौना' है ॥१॥ ·····तू ही प्राणिमात्र का पालक-पोषक, 'ढक्कन के समान' रोगों का रोकने वाला है ॥२॥ मुझ में सत्यकर्म श्रद्धा भाव, कीर्ति-प्रतिष्ठा और (श्रीः) भोगशक्ति, धनादि ये तीनों (श्रयताम्) शोभायुक्त अथवा आश्रित होकर स्थित हों अर्थात् 'सत्य-यश-सम्पदा' से मैं 'श्रीमान्' बनूं ॥३॥ (स्वाहा) आचमनपूर्वक परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि मैं १. सत्य समझकर आचमन की सुष्ठुक्रिया करता हूं, २. मेरा यह कथन शुभ हो कि मैं सत्य-यश-श्री द्वारा शोभा को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा।

---

१. यहां पर जड़ जल से प्रार्थना वार्त्ता या उसकी उपासना अभिप्रेत नहीं। यहां परमेश्वर की जल रूप शक्ति के उपयोग विशेष या सद्विनियोग से अभिप्राय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् पात्र में से [बायीं हथेली के ब्राह्मतीर्थ में थोड़ा जल डाल उसमें मे] दाहिने हाथ की मध्यमा अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करके, प्रथम दक्षिण और पश्चात् वामपार्श्व, निम्नलिखित मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक सब अंगों का स्पर्श करे।

अङ्गस्पर्श-मन्त्र[1]

१. ओम् वाङ् म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख,

२. ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

३. ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें,

४. ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

५. ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

६. ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा, और

७. ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ इस मन्त्र से सारे शरीर पर मार्जन करे।

मन्त्रार्थ

१. (मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाग्) वागिन्द्रिय या बोलने की शक्ति (अस्तु) सुस्थित होवे।

२. मेरे (नसोः) दोनों नास-छिद्रों नथुनों में (प्राणः) जीवन-स्रोत प्राणवायु व श्वास शक्ति स्थिर होवे।

३. मेरी (अक्ष्णोः) दोनों आंखों—नेत्रगोलकों में (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रिय=दृष्टि शक्ति स्थिर रहे।

४. मेरे (कर्णयोः) कर्ण गोलकों=कानों में (श्रोत्रं) श्रवणेन्द्रिय=श्रवण शक्ति सदा बनी रहे।

५. मेरी (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल शक्ति होवे।

६. मेरी (ऊर्वोः) दोनों जंघाओं में (ओजः) वेग सामर्थ्य, सत्त्व अर्थात् भार सहन करने की शक्ति सदा बनी रहे।

---

१. इन अङ्गस्पर्श मन्त्रों का मूल अथर्व १९।७।६०, ६१ में है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

७. हे परमेश्वर ! (मे) मेरा (तनूः) सम्पूर्ण शरीर और (सह) साथ ही (मे तन्वाः) मेरे इस शरीर के (अङ्गानि) सम्पूर्ण अवयव सब कर्मेन्द्रियां-ज्ञानेन्द्रियां, (अरिष्टानि) अनुपहत—अबाधित=रोगरहित और स्वस्थ हृष्टपुष्ट (सन्तु) होवें ।

[तृतीयविधि—ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण]

सब संस्कारों व अन्य यज्ञों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों के पाठ और अर्थ द्वारा एक धर्मात्मा वेदर्वित् गृहस्थ विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर कर सुनें और विचारें—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना-मन्त्राः

ओ३म्[1], विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।

यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥ यजु० अ० ३० । मं० ४ ॥

हे (देव) शुद्धस्वरूप उत्तम गुणकर्म स्वभावयुक्त सब सुखों के दाता, विद्या के प्रकाशक (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, जीवों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले सर्व शक्तिमान् ! आप हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण अथवा न चाहते हुए भी मन-इन्द्रिय में प्रविष्ट हो जाने वाले (दुरितानि) दुःखकारक गुण-कर्म-स्वभाव अर्थात् दुर्व्यसन, दुष्ट-आचरण वा दुःखों को (परा सुव) दूर कर परे फेंक दीजिए अर्थात् हम से उनको और हमको उन से सदा दूर रखिए और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव अर्थात् धर्मयुक्त आचरण तथा पदार्थ, सब सुखों से युक्त भोग अथवा परम-सुख है[2], (तत्) उसको (नः) हमारे लिए

---

१. 'ओ३म्' यह मन्त्र का पद नहीं है, प्रारम्भ में प्लुत उच्चारण का शास्त्रों में विधान होने से जोड़ा गया है । आगे भी सर्वत्र ऐसा ही समझें ।

२. वह सुख दो प्रकार का है, एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति से अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य, इष्ट मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(आ सुव) अच्छे व सब प्रकार से अथवा चारों ओर से सब दिनों में उत्पन्न कीजिए, प्राप्त कराइये ॥१॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यजु० अ० १३ मं० ४ ॥

जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप, सूर्य चन्द्रमा, तारे, तेजोमय लोकों=पदार्थों को गर्भ में रख उत्पन्न करके धारण करने वाला अर्थात् उत्पादक-आधार है, वह (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने अथवा रचने से पूर्व अर्थात् जब सृष्टि नहीं हुई थी, तब (समवर्त्तत) अच्छे प्रकार अपनी स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया से युक्त वर्त्तमान था।[1] (भूतस्य) वह जो उत्पन्न हुआ था, है और होगा अर्थात् उत्पन्न हुए सम्पूर्ण कार्य जगत् का (जातः) प्रसिद्ध अथवा रचनेहारा (पतिः) पालन करने हारा अथवा स्वामी (एकः) एक ही चेतन-स्वरूप अथवा सहाय की अपेक्षा से रहित एक केवल (आसीत्) था, है और होगा। (सः) वही (पृथिवीम्) प्रकाश रहित लोक समूह को (द्याम्) प्रकाश सहित सूर्यादि लोकों को (उत इमाम्) और संसार को अर्थात् भूमण्डल को रच कर (दाधार) तीनों काल में धारण कर रहा है। अर्थात् वही पृथिवी से लेकर सूर्य लोक-पर्यन्त जगत्=सृष्टि को बना के धारण कर रहा है। हम लोग (कस्मै) सुखस्वरूप प्रजा पालने वाले (देवाय) प्रकाशमान सर्वोपरि विराजमान परमात्म देव की (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास अथवा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से अथवा सर्वस्वदान से (विधेम)

उत्तम सुख का होना और दूसरा निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष। जिसमें ये दोनों सुख होते हैं, उसी को भद्र कहते हैं (ऋ० भा० भू० ४)।

१. ·····जीव गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में [मूर्छित से] लीन और जगत् का [उपादान] कारण [प्रकृति] अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एक रस स्थिर था·····(य. भा.। द्वि. भा. पृ. १८८)। ·····परमात्मा कल्प के अन्त में·····सृष्टि का विधान=धारण [करके] और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिए सब पदार्थों का विधान करता है (यजुः भाष्य। तृ. भा.। पृ. ११२)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष भक्ति या यथावत् पूजा परिचर्या सेवा किया करें। कस्मै अर्थात् प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा सेवा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् [सब जनें] करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें। जो परमात्मा को छोड़कर वा उसके स्थान पर दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है। ···चेतो! मनुष्यो! जो तुमको सुख की इच्छा हो, तो एक निराकार परमात्मा की [ही] यथावत् भक्ति सेवन [किया] करो; [अन्य की नहीं]; अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा ॥२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

यजु० अ० २५। मं० १३॥

(यः) जो (आत्मदा) अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला अथवा आत्मज्ञानादिका दाता तथा आत्मा का देने वाला, आत्मा के लिए सब सत्य-विद्या और सत्य-सुखों की प्राप्ति करने वाला है, (बलदाः)[1] शरीर आत्मा और समाज के बल अर्थात् सामाजिक जीवन के संघर्ष में स्थिर रहने की क्षमता-सामर्थ्य का देने हारा, अथवा जो सब शरीर, इन्द्रिय, प्राण, आत्मा, मन को पुष्टि उत्साह पराक्रम दृढ़ता देने वाला है, (यस्य प्रशिषम्) जिसके प्रत्यक्ष सत्य-स्वरूप शासन और न्याय को तथा अनुशासन अर्थात् वेदोक्त शिक्षा-मर्यादा=व्यवस्था को (विश्वे देवा उपासते) सब विद्वान् शिष्ट लोग अत्यन्त मान से यथावत् स्वीकार करते=मानते हैं[2] अथवा जिसकी (प्रशिषम्) उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं·····

---

१. त्रिविधबल—एक : मानस-विज्ञानबल; द्वितीय : इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता, तेजोवृद्धि; तृतीय : शरीर-बल, नाम अर्थात् नैरोग्य, महापुष्टि, दृढांगता और वीर्यादि वृद्धि, इन तीन प्रकार के बलों का जो दाता है (आर्याभि विनय. २।४८)।

२. ·····मानते हैं, अर्थात् सब प्राणी-अप्राणी जड़-चेतन विद्वान्-मूर्ख उस परमात्मा के नियमों का कोई कभी उल्लंघन नहीं कर सकता (आ. वि. २।४८)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेवते हैं,[1] (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय करना (अमृतम्) विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है अथवा मोक्ष सुख का कारण है तथा (यस्य छाया) जिसकी अकृपा अर्थात् कृपारूपी प्रकाश की अभाव रूप 'छाया' आज्ञा का भंग, 'प्रशिष' न मानना अथवा भक्ति सेवन न करना (मृत्युः) दुष्टजनों के लिए बारम्बार जन्म-मरण रूप महाक्लेशदायक है, मृत्यु आदि दुःख का हेतु है[1] अथवा मरण के तुल्य है, हम लोग उस सुखस्वरूप सुखदायक प्रजापति स्तुति के योग्य सकल ज्ञान के दाता परमात्मदेव की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से अथवा प्रेम भक्तिरूप सामग्री से (विधेम) उसका विशेष भजन-सेवा सतत करें अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में निरन्तर तत्पर रहें। अथवा 'परमात्मा के लिए होमने के पदार्थ से सेवा का विधान करें'; जिससे हम लोगों को किसी

अथवा (यस्य प्रशिषम्) जिसके समीप [अर्थात् नियमन] से (विश्वेदेवाः) सब [सृष्टि के] व्यवहार (उप+आसते) [अपने-अपने गुण कर्म-स्वभाव में स्थित अर्थात्] उत्पन्न होते हैं (यजुः भाष्य। भा. ३ पृ. २२८)।

१. (क) इस मन्त्र में 'छाया' पद विशेषार्थक है। इसके दो भाव हैं: एक तो आश्रय, जैसे वृक्ष की छाया अथवा छत्रछाया में, भाव है। वृक्ष सूर्य के आतप और प्रकाश से तथा छत्र वर्षादि से बचाने के लिए प्राणी का 'आश्रय' बनता है। दूसरा अर्थ, छाया पद में अभावात्मक या निषेध परक है। मध्याह्न की धूप में चलते यात्री के साथ उसकी काली छाया चलती है। यह 'प्रकाश का अभाव' है। यह यात्री का आश्रय नहीं। मन्त्र में अमृत पद के साथ 'छाया' का प्रयोग पहले भाव से और मृत्यु पद के साथ दूसरे भाव से ग्रहण करना योग्य है। ऋषि दयानन्द ने 'अछाया' पद का प्रयोग नहीं किया, परन्तु 'अकृपा' तथा 'आज्ञा न मानना, भक्ति न करना' इस प्रकार का प्रयोग किया है। 'अकृपा' अर्थात् प्रभु की कृपा ज्योति (स्नेह प्रकाश) का अभाव। इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'छाया' को 'अछाया' पद मान अर्थ करने की जरूरत नहीं।

(ख) इसका अर्थ दूसरे प्रकार से भी कर सकते हैं। 'छाया' का अर्थ है, आश्रय अर्थात् आधार, संरक्षण। अमृत अर्थात् जीवन; मृत्यु अर्थात् मरण। जीव के जीवन-मरण का आधार परमात्मदेव की व्यवस्था ही है। पतंग (जीव) के चढ़ाव-उतार (जन्म-मृत्यु) की डोर जगन्नियन्ता परमेश्वर के हाथ (छाया) में ही है (इस अर्थ का उत्तरदायित्व ग्रन्थकर्त्ता पर है)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार का दुःख कभी न हो। हे सज्जन मित्रो ! आओ ! उस सुख-दायक पिता की·····सब जनें मिल के प्रेम विश्वासपूर्ण भक्ति करें। कभी उसको छोड़ अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥

यजु० अ० २३। मं० ३॥

(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान, अधिष्ठाता=शासक, संचालक (बभूव) हुआ है अथवा होता है और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो पग वाले मनुष्य [पक्षी] आदि का और (चतुष्पदः) चार पग वाले गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) व्यवस्था, रचना करता है अथवा जो अकेला किसी के सहाय की अपेक्षा रहित ही अपनी महिमा से (निमिषतः प्राणतः) नेत्र आदि से चेष्टा करते हुए प्राणीरूप (द्विपदः चतुष्पदः) दो पग वाले मनुष्यादि और चार पग वाले गौ आदि पशु सम्बन्धी (अस्य जगतः) इस संसार का अधिष्ठाता होता है और जो इसका (ईशे) सर्वोपरि स्वामी है उस आनन्दस्वरूप (देवाय) अति मनोहर दिव्यरूप परमेश्वर की, अपनी सकल उत्तम सामग्री से, विशेष भक्ति करें। "हे मनुष्यो ! जो एक ही अपनी महिमा-सामर्थ्य से सब चराचर—जगत् का महाराजाधिराज है, और समस्त जगत् का उत्पन्न करने हारा, सकल ऐश्वर्य-युक्त महात्मा=परम+आत्मा न्यायाधीश है, उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर सन्तुष्ट होवो ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

यजु० अ० ३२। मं० ६॥

(येन) जिस परमात्मा ने (द्यौः) प्रकाश युक्त सूर्यादि पदार्थ लोक (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् तीव्र तेज वाले बनाये हैं;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पृथिवी च) और भूमि (दृढ़ा) दृढ़ अर्थात् तरलावस्था से कठोर की है; (येन) जिसने (स्वः) संसार में होने वाले अभ्युदय सुख को और (येन) जिसने (नाकः) सब दुखों से रहित मोक्ष=निःश्रेयस सुख को (स्तभितम्) धारण किया है; (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्ती आकाश में वर्तमान (रजसः) अपनी-अपनी राशि मार्गों में गति करने वाले सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विविध रूप में विशेष मानयुक्त अर्थात् नपी-तुली गति वाला निर्माण करता है और जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे-ही सब लोक समूह को' अपनी-अपनी राशि में भ्रमण कराता है; उस सुख स्वरूप सुखदायक (देवाय) स्वयं प्रकाशमान, कामना करने योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से अथवा प्रेम-भक्ति से (विधेम) उसके सेवाकारी होवें; उसकी विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

हे (प्रजापते !) सब प्रजा के स्वामी पालक परमात्मन् ! (त्वत् अन्यः) आप से भिन्न दूसरा कोई (एतानि, ता=तानि) इन उन पास और दूर के, वर्त्तमान अतीत और भविष्य के (विश्वा जातानि) सब उत्पन्न जड़ चेतन पदार्थों को (न परि बभूव) नहीं तिरस्कार=पराभूत करता अथवा नहीं व्याप रहा अर्थात् उन पर 'त्वद्भिन्न' दूसरा कोई अध्यक्ष नहीं·····आप ही सर्वोपरि विराजमान हैं। (यत् कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम (ते जुहुमः) यज्ञ आदि द्वारा तेरी उपासना करे, आपका आश्रय लेवें; (तत्) उस उसकी कामना (नः अस्तु) हमारी सिद्ध होवे अर्थात् हमारी वह कामना पूर्ण होवे; जिससे (वयं) हम लोग (रयीणाम्[1]) धनैश्वर्यों समस्त मूर्त्त पदार्थों व शरीरों के, 'अथवा द्रव्य समूहों, विद्यासुवर्णादि उत्तम धनों, चक्रवर्त्तिराज्य सिद्ध धनों के' (पतयः) स्वामी और पालक (स्याम) होवें ॥६॥

---

१. द्र. ऋ. भा. १।६६।१; १।१।३; १।३४।१२; तथा १।६०।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

यजु० अ० ३२ । मं० १० ॥

(सः) वही परमेश्वर (नः) हमारा (बन्धुः) भ्राता के समान मान्य सहायक सुखदायक और सब दुःखों का नाश करने वाला, (जनिता) सब सुखों का तथा सकल जगत् का उत्पादक, हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता, (स विधाता) वही हम लोगों के सब कामों की पूर्ण सिद्धि करने वाला अथवा सब पदार्थों और कर्म फलों का अर्थात् जीवों के जाति-आयु-भोग का विधान करने वाला अथवा सृष्टि नियमों का विधाता रचने और धारण करने वाला, वही (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकलोकान्तरों और (धामानि) उनके नाम-स्थान-जन्मों को (वेद) जानता है अर्थात् अनेक लोकलोकान्तरों तथा उनके नाम. विश्व में स्थिति और उत्पत्ति को रच कर अपनी अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है, (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त अथवा जीव और प्रकृति से विलक्षण (धामन्)[1] आधार रूप जगदीश्वर में (अमृतं) मोक्षसुख को अथवा मरणादि दुःख रहित मोक्ष पद को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (देवाः) आप्त धार्मिक विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक[2] विचरते हैं, वर्तते हैं; यह निश्चय जानो ।

हे मनुष्यों ! जिस शुद्धरूप परमात्मा में योगीराज विद्वान् लोग मुक्ति सुख को प्राप्त हो के·····शुद्ध सत्वरहित सर्वोत्तम सुख में सर्वत्र स्वच्छन्दता से रमण करते हैं, उसी को अपना सर्वदा सहायकारी, बन्धु, गुरु आचार्य, सर्वज्ञ सर्वोत्पादक, कर्म फलदाता, न्यायाधीश, विधाता मानना चाहिए । "वही सृष्टि का विधान धारण

---

१. तृतीये धामन् [=धाम्नि] : एक स्थूल जगत् पृथिव्यादि, दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण), तीसरा जो सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में (आ. वि. २।५) । अर्थात् मोक्ष, अपवर्ग; 'तद्विष्णोः परमं पदम् ।'

२. सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् व. शुद्ध होके देश-कालवस्तु के परिच्छेद से रहित, सर्वगत·····आधार स्वरूप परमात्मा में सदा [अर्थात् मोक्ष की अवधि तक] रहते हैं । उससे [अर्थात् समाप्ति से पूर्व] जन्म-मरणादि दुःख सागर में कभी नहीं गिरते (आ. वि. २।५) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिए सब पदार्थों का विधान करता है; वही सब को उपासना करने योग्य देव है, यह जानना चाहिए ॥७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥८॥

यजु० अ० ४० । मं० १६ ॥

हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सब जगत् के प्रकाशक सब को जानने हारे ! (देव) दिव्य स्वरूप, सकल सुखदाता परमात्मन् ! (विद्वान्) आप सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं, चराचर जगत् के और सब जीवों के व्यवहारों को जानने वाले हैं। कृपा करके (अस्मान्) हम जीवों अथवा मुमुक्षु जनों को (राये) विज्ञान धन वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) आप्त लोगों के धर्मानुकूल सरल मार्ग से (विश्वानि वायुनानि) सम्पूर्ण प्रज्ञानों अर्थात् प्रशस्त ज्ञानों और उत्तम कर्मों को (नय) प्राप्त कराइये। और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त अर्थात् खोटी चाल से उत्पन्न (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये अर्थात् हमें कुटिल पापाचरणरूप मार्ग से पृथक् कीजिये। जिससे शुद्ध होकर (ते) आपके लिए (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की अथवा अधिकतर (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा अथवा विनय भावपूर्ण स्तुति (विधेम) सदा विधिपूर्वक किया करें।

इसका अन्वय निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है। हे अग्ने ! हम जीवों को विज्ञान व धन प्राप्ति के लिए धर्मयुक्त सरलमार्ग से ले चल। हे देव ! तू हमारे सकल प्रज्ञानों व कर्मों को जानने हारा है। हम से दुरित को परासुव=दूर अलग कर। हम तेरी भर-भर कर स्तुति गान से विशेष भक्ति करें।

मनुष्यों को धर्म तथा विज्ञान मार्ग की प्राप्ति और अधर्म की निवृत्ति के लिए परमेश्वर की अच्छे प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए तथा सदा सुमार्ग से चलना चाहिए; दुःखरूपी अधर्म मार्ग से अलग रहना चाहिए।

इस प्रकार जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते, यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योग्य उस परमात्मा को ही मानते हैं, उनको दयालु ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' को सिद्ध करने के लिए समर्थ करता है ॥८॥

अथ स्वस्ति वाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

'स्वस्ति' अर्थात् सर्वभूतहित के लिये—

भावार्थ—स्वयंप्रकाश सर्वप्रकाशक सब को आगे ले चलने वाले; (पुरोहितम्) हितकारी सब पदार्थों से 'पूर्व जीवमात्र का हित करने वाले'; (यज्ञस्य देवम्) सृष्टि प्रलय रूपी यज्ञ के सम्पादक =प्रकाशक संचालक देव को; (ऋत्विजम्) ऋतुओं के अनुसार कालक्रम से सब के सुखदाता; (होतारम्) कर्म और भोग के लिये जीव को 'शरीर इन्द्रिय बुद्धि मन' के देने-लेने वाले और (रत्नधातमम्) जीवों के निमित्त रमणीय भोग्य पदार्थों के धारण करने वाले परमेश्वर की मैं (इडे) स्तुति करता [करती]=महिमा गाता [गाती] हूं ॥

उपासक को निम्न प्रकार से सर्वस्वस्ति के लिये ओम् प्रभु का गुणगान करना चाहिये—

१. मैं स्तुति करता=करती हूं उस ओम् की जो चर-अचर सृष्टि को आगे ले जाने वाला है, ज्ञानमय है;

२. सृष्टि से पूर्व विद्यमान् है व सब हित करने वालों से पूर्व हमारा हित करता है;

३. उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय रूप यज्ञ का सम्पादक=पूर्ण करने वाला है;

४. कपने सब कार्यकलाप सब ऋतुओं के अनुसार कालक्रम से चलाता है;

५. कर्मों के फलों का दाता है और

६. सब रत्न=भोग्य रमणीय पदार्थों का धारक है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब मनुष्यों को योग्य है कि सर्वस्वस्ति के लिये इस प्रकार कुण कर्म स्वभाव वाले अग्नि रूप परमात्मा को ही अपना पुरोहित एवं यज्ञदेव मानें और उसी की उपासना करें। अन्य किसी जड़ पदार्थ की उपासना न करें ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥

ऋग्वेद मं० १। सू० १। मं० १, ९॥

भावार्थ—हे स्वयं प्रकाश सर्वप्रकाशक सबको आगे ले चलने वाले परमात्मन्! जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र को (सूपायनः) सदा सुलभ होता है, उन्नति के लिये उत्तम उपाय करने वाला है, वैसे ही तू हम जीवों के लिये सदा सुलभ व उत्तम पदार्थदाता हो। (स्वस्तये) कल्याण अर्थात् उत्तम स्थिति व श्रेष्ठ गति प्राप्त कराने के लिये (नः सचस्व आ) हमारे मार्ग को प्रशस्त कर अथवा हमें सब ओर से मिला लें अथवा हम पुत्रों का मेल कराइये।

उपासक को चाहिये कि वह सर्वस्वस्ति के लिए नित्य प्रभु का चिन्तन करें। हे अग्निस्वरूप प्रभो! तू हमारा पिता है; हम तेरी सन्तान हैं। जैसे दयालु पिता अपने सन्तान को सदा सुलभ रहता है व उनकी उन्नति के उत्तम उपाय करता है, वैसे ही तू भी हमारे लिये सदा सुलभ व अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त करने वाला हो। सुरक्षा के लिये जैसे पिता सन्तान को गोद में चारों से चिपटा लेता है, वैसे ही हे दयालु पिता! तू मुझे भी चिपटा ले ॥२॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥

भावार्थ—१. परमेश्वर के अनुग्रह से (अश्विनौ) समाज में, व्यापक बुद्धि वाले अध्यापक और उपदेशक हमारे लिये (स्वस्ति भगः) कल्याणकारी ऐश्वर्य की (मिमीताम्) व्यवस्था करें। (भगः) 'सांसारिक हमारा ऐश्वर्य' अर्थात् अभ्युदय (स्वस्ति) कल्याण का साधक हो, किसी के अकल्याण का नहीं (देवी अदितिः) सत्यज्ञान का प्रकाश करने वाली वेदमाता, (अनर्वणः) निश्चेष्ट निष्क्रिय कभी न बैठने वाले पुरुष का कल्याण करे। (पूषा) अन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यवस्था द्वारा पोषण और (असुरः) जीवन रक्षा करने वाला शासक हमारे लिये कल्याण को धारण करावे। (सुचेतुना) चेतन जीवों से युक्त (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक हमारी स्वस्ति करें।

२. सृष्टि में; (अश्विनौ) सदा घूमने वाले सूर्य चन्द्रमा हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी (भगः) ऐश्वर्य का निर्माण करें। (देवी अदितिः) दिव्य अखण्डभाव से अनन्त अन्नों को उपजाने वाली भूमिमाता, (अनर्वणः) ऐश्वर्य रहित पुरुष का (स्वस्ति) सुस्थित करे। पुष्टिकारक प्राणदाता मेघ हमें कल्याण देवे अर्थात् आनन्दघन चहुं ओर सुख की वर्षा करे जिससे सब जीवों को प्राणधारण एवं अन्न से भरणपोषण होता रहे। द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों [में स्थित भूतजाल] वैज्ञानिक दृष्टि से परिचित [=ज्ञात, व्यक्त] हों कल्याणकारी हों। अर्थात् इनके सम्यग् ज्ञान से हमारा कल्याण हो।

३. शरीर में, (अश्विनौ) प्राण और अपान तथा जननेन्द्रिय सुस्थिति अर्थात् समावस्था करें। दिव्यगुण वाली बुद्धि अज्ञान आलस्यरहित पुरुष का कल्याण करे। पोषकपाचककेन्द्र तथा प्राण-संस्थान हृदय हमें स्वस्थ रक्खे। ज्ञानकेन्द्र मस्तिष्क और प्राणरक्त-धारक केन्द्र सुचेत रह कल्याणकारी हों ॥३॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

भावार्थ—१. (स्वस्तये) सुस्थिति और उत्तमगति के लिये हम (वायुं) चराचर जगत् के सब पदार्थों में गतिदाता और (स्तोमं) जीवों के सुख के लिये सब पदार्थों के उत्पादक अर्थात् चेतनता एवं शान्ति के स्रोत परमात्मा की, उसके गुण कर्म स्वभाव सहित (उपब्रवामहै) कीर्त्ति गाते रहें। (यः भुवनस्य पतिः) जो इस चराचर जगत् का पति है, वह हम पर (स्वस्ति) अनुग्रह करे। कल्याण के लिये (बृहस्पतिं) सब सत्यविद्या और जो सूर्य चन्द्र वनस्पति आदि पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबके आदिमूल' अर्थात् पति परमेश्वर को, (सर्वगणं) उसके बनाये सब भूतों सहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्मरण करें। उस प्रभु की (आदित्यासः) अखण्ड शक्तियां अथवा बारह मास हमारे लिये सुखद हुआ करें। अथवा व्रतविद्याभ्यासपूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने वाले आप्त धार्मिक ज्ञानी जन सद्धर्म और सत्यज्ञान का प्रवचन उपदेश करते हुए (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

२. उत्तम जीवनयापन के लिये हम, शरीरस्थ प्राण वायु और वीर्यशक्ति की महिमा का उपदेश करें। शरीररूपी भुवन का पति जो आत्मा है, वह उत्तम 'इच्छा ज्ञान प्रयत्न में स्थिर' रहे। इस शरीरस्थ इन्द्रिय मन बुद्धि प्राणों के गणों के आधार ज्ञाता आत्मा को स्वस्ति के लिये स्मरण करें। शरीरस्थ प्रकाशक चित्त वृत्तियां हमारे कल्याण के लिये [ही विषयों से युक्त] हों ॥४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

भावार्थ—१. (विश्वेदेवाः) प्रपञ्च में व्याप्त सब दिव्य अलौकिक शक्तियां (नः) हमारे (अद्य) वर्त्तमान जीवन में कल्याण के लिये हों। (वैश्वानरः) सबका नेता, सबका हितकारी, (वसुः) सबको बसाने वाला, (अग्निः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर प्राणिमात्र के कल्याण के लिये [इस सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता] है। (ऋभवः देवाः) ज्ञानपूर्वक गति करने वाले [अग्नि वायु सूर्य आदि] देव (अवन्तु) कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें। (रुद्रः) अपने न्यायनियमानुसार दण्ड देकर दुष्टों को रुलाने वाला परमात्मा हमें पापवासनाओं एवं दुष्प्रवृत्तियों से बचावे। हमें ऐसी प्रेरणा दे कि हम पापकर्मों से सदा बचे रहें, ताकि हमारा (स्वस्ति) अभ्युदयनिः-श्रेयस् सिद्ध हो।

२. सब आप्त विद्वान् आज हमारे स्वस्ति के लिये हों। सबका हितकारी सबका नेता संयमी गृहस्थी ज्ञानदाता आचार्य सर्वमंगल के लिये [सत्य-धर्म सत्य-ज्ञान का प्रवचन उपदेश करें] (ऋभवः) उच्च कोटि के वैज्ञानिक, अस्त्र-शस्त्र के कुशल निर्माता शिल्पकार एवं कलाकार अध्यापक विद्वान् कल्याण के लिये हों। (ऋभवः) मनुष्य-पशु-पक्षी-कृमि-कीटादि-स्थावर' इन सबका कायाकल्प करने वाले सद्वैद्य अपने उपचारों से हमारा कल्याण करें और हमें विनाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से बचावें। कठिन अनुशासन में रख जीवन तपाने वाला आचार्य सबका कल्याणकारी हो, तथा पापकर्मों व दुष्ट प्रवृत्तियों से हमारी रक्षा करे।

इस मन्त्र में ज्ञानोपासक विश्वदेवों के साथ 'वैश्वानर वसु अग्नि' का तथा कर्मोपासक ऋभुदेवों के साथ 'रुद्र' का सम्बन्ध बताया है ॥५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

भावार्थ--[परमात्मा के अनुग्रह से] (मित्रावरुणा) शरीरस्थ प्राण और अपान वायु (स्वस्ति) परस्पर-सम होकर कल्याण करें। हे (पथ्ये) सुषुम्ने! तुम सुखदात्री बनो। हे (रेवति) धनधान्य से भरपूर परमात्मदेव! कल्याणमय होवो। (इन्द्र) वायु और (अग्निः) अग्नि कल्याणकारी होवें। हे (अदिते) अखण्ड! अभेद्य! नाथ! हमारी (स्वस्ति) उत्तमगति-स्थिति करो।

इसमें तीन प्रकार की स्वस्ति का वर्णन है, प्रथम : प्राण और उदान द्वारा आध्यात्मिक-स्वस्ति अर्थात् दोनों के यथावस्थित वर्त्तने से जन्म व मृत्यु दोनों समयों की स्वस्थता; द्वितीय : जीवनपथ में हितकारी धनधान्य द्वारा आधिभौतिक स्वस्ति अर्थात् सुस्थिति= उत्तम जीवन की प्राप्ति और तृतीय : [विद्युद्वाहिनी] वायु तथा अग्नि द्वारा आधिदैविक-स्वस्ति अर्थात् वायु अग्नि के प्रमाद से होने वाले विनाश से बचने के लिये प्रार्थना है। अन्त में, प्राण-उदान, जीवन पाथेय धनधान्य वा वायु-अग्नि की माता (अदिति) अखण्डनीय प्रकृति देवी से विनाश से बचाये रखने की प्रार्थना है।

इसका निम्न अर्थ भी हो सकता है --

(मित्रावरुणा) सूर्य और विद्युत् या जल स्वस्ति हों; (रेवति पथ्ये) धनधान्यादि व गवादिधनयुक्त मार्ग में अर्थात् भूमाता की गोदी में स्वस्ति हो; (इन्द्रश्चाग्निश्च) वायु और अग्नि स्वस्तिदायक हों। हे अदिते! हमारा स्वस्ति कर ॥६॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता सं गमेमहि ॥७॥

ऋ० मण्ड० ५। सू० ५। मं०। ११-१५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हम, (सूर्याचन्द्रमसौ इव) जैसे सूर्य और चन्द्रमा नित्य, नियमित और निरन्तर रूप में अपने कर्मों में लगे रह, प्राकृत नियमों का अनुसरण करते हैं व निरुपद्रव विचरते हैं, वैसे ही हम भी जीवनक्रम के नित्य, नियमित और निरन्तर के नियमों को समझ (स्वस्ति पन्थामनुचरेम) [धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधक] कल्याण मार्ग पर ज्ञानपूर्वक आचरण करें। (पुनः) फिर साथ ही, हम (ददता) दानी (अघ्नता) यज्ञकर्त्ता व (जानता) ज्ञानवान् की (संगमेमहि) संगति करें। अर्थात् 'यज्ञ दान तप' करने वालों से ही सत्संग करें, मेल-मिलाप रक्खें।

भाव यह है : सूर्य और चन्द्रमा के समान, हम स्वस्तिकारी मार्ग का अनुसरण करें और बार-बार हम दानी, अहिंसक तथा ज्ञानी पुरुषों से मेल करते=उनकी सेवा सत्संग में रहें। अर्थात् दानियों का संग कर हम परहित के लिये स्वहित का त्याग करना सीखें; अहिंसकों का संग कर स्वहित के लिये अन्यों का स्वार्थ या जनहित का हनन न करना सीखें और जातियों का संग कर सर्वदा असत्य का त्याग कर सत्य के ग्रहण करने में तत्पर रहना तथा अविद्या का नाश कर विद्या की वृद्धि करना सीखें ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

ऋ० म० ७। सू० ३५। मं० १५॥

भावार्थ—(देवानां) विद्वानों में जो मनुष्य (यज्ञियाः) यज्ञशील आचरण के कारण पूज्य हैं अथवा यज्ञ के प्रेमी हैं अर्थात् पढ़े-लिखों में जो परोपकार वृत्ति वाले सेवाभावी हैं और इन (यज्ञियानां) 'यज्ञमय जीवन वाले त्यागशील जनों' में भी जो (मनोः यजत्राः) मननशील विचारक के अर्थात् मनस्वी=मनीषी जन के साथ संगति करने वाले हैं अथवा मनुष्यमात्र के पूज्य हैं; (अमृताः) जीवन्मुक्त हैं; (ऋतज्ञाः) यथार्थ धर्म के वेत्ता अर्थात् सत्यार्थ के प्रकाशक हैं, वे ऐसे प्रशंसनीय मनुष्य हमें (अद्य) आज (उरुगायं रासन्ताम्) व्यापक श्रेष्ठ ज्ञान=विस्तृतयश को प्रदान करें अथवा हमें (उरुगायं रासन्ताम्) महाप्राण बनावें, हमारे लिये विस्तृत जीवन-मार्ग प्रशस्त करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे यज्ञशील अमर यथार्थ वक्ता मनुष्य समाज में पूज्य प्रशंसनीय विद्वानों ! (स्वस्तिभिः) मंगलदायिनी श्रेयस्कारिणी परम्पराओं से (यूयं) आप सदा हमारी (पात) रक्षा करें, यही हमारी कामना है ॥८॥

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥

भावार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! (येभ्यः) जिनके लिये (माता) जननी (मधुमत् पयः) मधुर दूध और (अदितिः) व्रत में अखण्ड, (अद्रिबर्हाः) ऊंचे आदर्शों वाला या उत्तम लक्षण वाला (द्यौः) पिता (पीयूषं) ज्ञानामृत का (पिन्वते) सिंचन करते हैं, उन (उक्थशुष्मान्) माने हुए बलशाली (वृषभरान्) धर्मजीवी, कर्मकाण्डी, (स्वप्नसः) शुभ कर्म करने वाले (आदित्यान्) आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत विद्याभ्यासी सत्यधर्मोपदेशकों का ही स्वस्ति के लिये (अनुमद) अनुसरण करो, उनके उपदेश के अनुसार चलो। जिससे कि उनके ब्रह्मविद्या के उपदेशों द्वारा हम अपने जीवनों को उच्च बना सकें।

हे स्त्री-पुरुषो ! जिनके लिये जन्मभूमि या पृथिवीमाता मधुर अन्न ओषधि का रस [पयः ओषधीनां] और गड़गड़ाते मेघों से भरा द्युलोक=सूर्य (पीयूषम्) अमृत जल की वर्षा करता है, उन प्रशंसनीय बल वाले रसभरी वर्षा लानेवाले संसार का कल्याण करने वाले [द्वादश] आदित्यों का अपने कल्याण के लिये अनुसरण करो।

जिनकी सहायता से (माता) मातृरूप पृथिवी (अदितिः अद्रिबर्हाः) अखण्ड विद्युत् तथा मेघों से आच्छन्न (द्यौः) आकाश (मधुमत् पीयूषं पयः) मधुर अमृत के समान जीवनदाता पानी को (पिन्वते) बरसाते हैं, सींचते हैं; (तान्) उन (उक्थशुष्मान्) कथनीय बलवाले (वृषभरान्) वृष्टिकारी (स्वप्नसः) संसार का उपकार करने वाले (आदित्यान्) आदित्यों=सूर्य किरण जालों को (स्वस्तये) स्वस्ति के लिये (आ अनुमद) हमें प्राप्त कराइये।

इसका स्पष्ट भाव यह है कि वास्तविक कल्याण की प्राप्ति के लिये—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१. आदर्श माता-पिता वाले कुलीन

२. धर्म जीवी सदाचरण अखण्डव्रती सत्योपदेशकों का ही अनुसरण करना चाहिये। तथा—

३. शाकाहारी, प्राकृतिक सादा जीवन बिताना चाहिये।

वेद में स्त्री-पुरुष को द्यावापृथिवी अर्थात् भूमि और सूर्य से उपमा दी है। भूमि से अन्न ओषधि रस ग्रहण करना चाहिये; भूमि पर विचरने वाले प्राणियों को उदर पोषण के निमित्त प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥९॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥

भावार्थ—(नृचक्षसः) मनुष्य मात्र की देखभाल अर्थात् उनके योगक्षेम पर दृष्टि रखने वाले (अनिमिषन्तः) सदा सावधान-सतर्क-सजग रहने वाले (अर्हणाः) आदर के पात्र, (बृहद्देवासः) बड़े लोक-सेवक विद्वान् (अमृतत्वमानशुः) अमरजीवी बन जाते हैं। और—

(ज्योतीरथाः) ज्ञान मार्ग के पथिक, (अहिमायाः) अहिंसक बुद्धिवाले या व्यापक दृष्टिकोण वाले, (अनागसः) निष्पाप मनुष्य प्रकाश वाले (दिवः वर्ष्माणं वसते) ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित होते हैं, स्वस्ति=लोक सेवा के लिये।

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति 'लोक कल्याण' में जीवन लगाते हैं। प्रथम प्रकार के 'कर्मशील' व्यक्ति होते हैं, 'नृचक्षा', 'अनिमिष' तथा 'बृहद्देव'। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता से 'अमरपन' को प्राप्त करते हैं। द्वितीय प्रकार के 'ज्ञानशील' व्यक्ति होते हैं; 'ज्योतीरथ', 'अहिमायिक' तथा 'अनागस्'। ऐसे व्यक्ति उच्च स्थिति को प्राप्त करते हैं।

इसका एक और भाव भी है। 'नृचक्षस्', 'अनिमिष' 'बृहद्देव' व्यक्ति अपने (अर्हणा) योग्य व्यवहार से (अमृतत्वमानशुः) जन्म-मरणराहित्य दशा को प्राप्त करते हैं और—

'ज्योतीरथः', 'अहिमायिक' तथा 'अनागस्' व्यक्ति (अर्हणा दिवः वर्ष्माणम् आनशुः) अपने योग्य व्यवहार से प्रकाश की उच्च-स्थिति को प्राप्त करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ज्योतीरथाः' का विशेष भाव है। वे शिल्पी विश्वकर्मा विद्वान्, जो ज्योति [=अग्नि, विद्युत्, सूर्य किरण अर्थात् त्रीणि ज्योतींषि] द्वारा त्रिलोक में नौ-विमानादि रथों को चलाने की विद्या में निपुण हैं। तथा—

वे ज्ञानी योगेश्वर जिनका शरीररूपी 'रथ' [=शरीरं रथमेव वा दैवीं नावम्……] मुक्तदशा में 'परमेश्वर के सुख में स्वतन्त्रता से विचरता है।

इस मन्त्र में 'स्वस्ति के लिये' अपनी (अर्हता=) योग्यता से संलग्न कर्मयोगी दो वर्गों के (बृहद्देवों के स्वरूप और उनकी 'अमृतप्राशन' एवं 'द्यौ वर्ष्म वास*' रूप स्थिति=प्रतिष्ठा का वर्णन है।

अथवा—(स्वस्तये) संसार का उपकार करने के लिये ही= जनमङ्गल के निमित्त, ही (नृचक्षसः) सब मनुष्यों के कर्मों का निरीक्षण करने वाले (अनिमिषन्तः) [काम में निमग्न] पलक भी न मारने वाले अर्थात् पूर्णतः जागृत (अर्हणाः) पूजा के पात्र (बृहद्देवासः) उच्चकोटि के विद्वान् (अमृतत्वम् आनशुः) मोक्ष को प्राप्त करते हैं तथा (ज्योतीरथाः) ज्ञान ज्योति से आलोकित [शरीर=] रथ पर चढ़े (अहिमायाः) व्यापक बुद्धि युक्त (अनागसः) निष्पाप जन (दिवो वर्ष्माणं) प्रकाश की उच्चस्थिति में अथवा द्युलोक के उच्च स्थान में (वसते) निवास करते हैं। अर्थात् साधक महात्माओं का जीवन 'सर्वजन स्वस्ति' के लिये ही होता है।

इसका एक गम्भीर भाव निम्न है—

(नृचक्षसः) विषयों में, 'न रमने वाले मनुष्यों' की दृष्टि रखने वाले (अनिमिषन्तः) सदा विषयरिपुओं से चौकन्ने, नित्य जागृत (अर्हणाः) यथायोग्य धर्मानुसार प्रीतिपूर्वक वर्त्तने वाले (बृहद्देवासः) अग्रगामी विद्वान् (अमृतत्वमानशुः) सर्वोपरि मुक्तिपद को प्राप्त करते हैं अर्थात् ऐसे आप्त धार्मिक सदा सावधान पुरुष ही मुक्ति के अधिकारी बनते हैं और फिर (ज्योतीरथाः) सात्विक देह-रूपी रथ वाले (अहिमायाः) व्यापक बुद्धि वाले अर्थात् निर्मल चित्त वाले (अनागसः) निष्पाप अर्थात् मलविक्षेपादि से रहित

*देवः =द्युस्थानो भवतीति निरुक्त ७।१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तःकरण वाले हुए हुए (स्वस्तये) सब जीवमात्र के कल्याण के लिये (दिवो वर्ष्माणं वसते) विषयप्रकाशक इन्द्रिय युक्त गृह अर्थात् देह में बसते=पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं।

प्रथम पंक्ति में मुक्ति पद के अधिकारी पुरुषों का वर्णन है और दूसरी पंक्ति में मुक्ति की अवधि पूरी कर 'स्वस्ति के लिये' पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में आकर जन्म ग्रहण करने का वर्णन है ॥१०॥

स॒म्राजो॒ ये सु॒वृधो॑ य॒ज्ञमा॑य॒युरप॑रिह्वृता दधि॒रे दि॒वि क्षय॑म् ।
ताँ आ वि॑वास॒ नम॑सा सुवृ॒क्तिभि॑र्म॒हो आ॑दि॒त्याँ अदि॑तिं स्व॒स्तये॑ ॥

भावार्थ—सब स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि (सम्राजः) जो समान रूप से जीवन की सब दिशाओं में प्रकाशित तेजस्वी, (सुवृधः) अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रह सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने वाले अर्थात् अपनी वृद्धि करते हुए दूसरों को भी समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर करने वाले जन तुम्हारे (यज्ञमाययुः) उत्तम परोपकारी योजनाओं की पूर्ति के लिये तुम्हारे पास आवें या आते हैं, तथा जो सब प्रकार की कुटिलता से रहित होते हुए (दिवि-क्षयं दधिरे) उच्च सम्मान के पद पर प्रतिष्ठित हैं या उच्च स्थिति में बसना पसन्द करते हैं, उन (महः आदित्यान्) महान् पूज्य आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) अपनी उन्नति-वृद्धि-उत्कर्ष के लिये (नमसा) नमस्कार व अन्नपानादि तथा (सुवृक्तिभिः) सुन्दर प्रशंसा के वचनों से (आविवास) यथाविधि सेवा करें। तथा (अदितिम्) अखण्डनीय वेदविद्या एवं भूमाता का भी यथा-योग्य सत्कार करें।

दूसरा भाव यह है—जो (सम्राजः) शरीर मन आत्मा के समन्वित विकास करने वाले (सुवृधः) जो निरन्तर [सुपथा या या स्वस्तिपन्था पर] उन्नतिशील पुरुष (अपरिह्वृता) सब विघ्न बाधाओं को जीतते हुए (यज्ञं) यज्ञादि सत्कार्यों में (आययुः), आकर योग देते हैं, वे [मुक्त होकर] (दिवि क्षयं दधिरे) द्युस्थान में निवास करते हैं अथवा उच्च प्रतिष्ठा व ख्याति को प्राप्त करते हैं। (तान्) उन (महः आदित्यान्) आदित्य के समान महातेजस्वी वा शुद्ध=मलविक्षेपादि रहित धार्मिक विद्वान् सत्योपदेशक [=विदेह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्तों] को तथा (आदिति) उनके मोक्ष की हेतु अखण्डनीय वेद-विद्या या आत्मविद्या या सम्भूति को (नमसा) हम नमस्कार और (सुवृक्तिभिः) स्तुति द्वारा (स्वस्तये) स्वस्ति के लिये (आविवास) हृदय में बसाते हैं=आह्वान=स्मरण करते हैं ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति स्थन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥

भावार्थ—हे (मनुषः विश्वे देवासः) मननशील मनस्वी समस्त विद्वानों! तुम (यति स्थ न) जितने भी क्यों न हो, (वः स्तोत्रं) तुम सब लोगों की प्रार्थनाओं को, (यं जुजोषथ) जिसकी तुम प्रेम-पूर्वक भक्ति करते हो, वह (कः) प्रजामात्र का पालन करने वाला परमेश्वर ही (राधति) सम्यग् सिद्ध करता है अर्थात् वह परमेश्वर ही सबकी सुनता है।

हे (तुविजाताः) अनेक जन्म धारण करने वाले स्त्री पुरुषो! (यः) जो (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अंहः अति पर्षत्) जीवों को पाप से हटाता है, (कः) वह परमात्मा (वः अध्वरं) अहिंसक परोपकार के कर्मों को (अरं करत्) पूरा करता है अर्थात् तुम्हारे लिये 'अध्वरं अरं करत्'=त्यागमय पुण्य का मार्ग प्रशस्त करता है।

अथवा हे जन्मचक्र में घूमने वाले पुरुषो! (यः) जो यज्ञ (नः अंहः अति पर्षत्) हमारी स्वस्ति के लिये पापों से पार कराता है, (तम् अध्वरं) उस अहिंसामय यज्ञ को, वह सुखस्वरूप परमात्मा ही पूरा सफल बनाता है।

द्वितीय भाव यह है—'कः' शब्द का अर्थ 'कौन' तथा 'सुख-स्वरूप' भी होता है। कौन है वह, जो तुम्हारी पुकारों को पूरा करता है, जिसकी तुम प्रेमपूर्वक भक्ति करते हो, हे [साधारण] मनुष्यों! हे [विशेष] विद्वानो! तुम जितने भी क्यों न हो?

वही सुखस्वरूप सबका पालन करने वाला परमात्मा।

हे जन्मजन्मान्तर को धारण करने वालो! कौन है वह, जो तुम्हें कल्याण के लिये पाप मार्ग से या दुःखसागर से पार करा, तुम्हारे लिये पुण्य का मार्ग अलंकृत करता है?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वही सुखस्वरूप सबका पालन करने वाला परमात्मा।

उसी एक सुख स्वरूप परमात्मा की अनुकम्पा अनुग्रह से, जितने भी अनन्त जीव है, उन सब की प्रार्थनायें=मांगें सिद्ध और पूर्ण होती हैं। वही हमारे श्रेष्ठतम कर्मों को शोभा [अर्थात् हमें उत्साह शाबाशी] देता है; हमें पाप से बचाता [अर्थात् पाप करने पर भय लज्जा संकोच दिलाता] है।

जिस सच्चिदानन्दस्वरूप अजर अमर नित्य शुद्धबुद्धमुक्त-स्वभाव परमात्मा की ज्ञानी लोग भक्ति करते हैं, वही हमारी प्रार्थनायें पूरी करता है, जड़ नहीं। जो हमें पापों से बचाने की क्षमता रखता है, उसी से हमारा यज्ञ अलंकृत=शोभायमान हो सकता है। पाप स्वार्थ में पड़े विद्वान् हमारे यज्ञ को शोभायुक्त नहीं कर सकते ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥

भावार्थ—(समिद्धाग्निः) विद्युत् सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (मनुः) सर्वज्ञ परमेश्वर ने (येभ्यः) जिनके लिये, (मनसा सप्तहोतृभिः) मन सहित सात होताओं से किये जाने वाले (होत्रां) मुख्य [शरीर] यज्ञ का (आयेजे) आयोजन किया है [अर्थात् ज्ञान और कर्म के साधन रूप, मन एवं मुख-जिह्वा-नासिका-कर्ण-चक्षु-त्वचा सात होता वाले इस मानवदेह का निर्माण किया है], वे तुम नैष्ठिक ब्रह्मचर्य विद्याव्रतधारी अमृतपुत्रो! संसार को (अभयं शर्म यच्छत) भयरहित सुख-शान्ति प्रदान कराओ [भयग्रस्त सुखशान्ति वाञ्छनीय नहीं, अभय सुख की व्यवस्था करो।] और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि के लिये सुगम सुपथ से चलाओ अथवा हमारे लिये (सुपथा) सन्मार्ग अर्थात् धर्म का मार्ग (सुगाः कर्त्त) सुगम, आसानी से पालन योग्य बनाओ।

सुपथ अर्थात् सुख प्राप्ति का मार्ग सुग=सरलता से पालन योग्य होना चाहिये; बहुत जंजाल युक्त नहीं होना चाहिये।

भाव यह है कि·····आदित्य ब्रह्मचारी हमें (अभयं) अभय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और (शर्म) सुख का (यच्छत) दान करें और हमारी स्वस्ति के लिये (सुपथा सुगाः कर्त्त) हमारे धर्म मार्ग को सुगम बनावें।

एक अन्य अर्थ—जिन आदित्य ब्रह्मचारियों=अखण्डव्रती साधकों के लिये अग्निहोत्री या ज्ञान प्रदीप्त मननशील विद्वान् मन से सात होताओं वाले मुख्य यज्ञ का आयोजन करता है, वे आदित्य ब्रह्मचारी हमारे लिये भय रहित सुख को देवें और हमारी स्वस्ति के लिये शोभन मार्ग से चला (सुगाः कर्त्त) सुगम जीवन वाला बनावें अर्थात् हमें ऐसे सुपथ से ले चलें जिससे हम 'सुग' =सुख सुविधा सम्पन्न हो जावें।

इसका यह भाव भी है—सूर्यादि के प्रकाशक सर्वज्ञ परमात्मा, (मनसा) अन्तः करण के द्वारा तथा (सप्त होतृभिः) इन्द्रियों के द्वारा (येभ्यः) जिनके लिये (प्रथमां) सृष्टि के आदि में होने वाली (होत्रां) वेदवाणी को (आयेजे) प्रदान करता है; (ते आदित्याः) वे शुद्ध वृत्ति वाले पुरुष हमें निर्भयता तथा कल्याण प्रदान करें और (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (सुपथानि, सुगाः=सुगानि) सुखदायक मार्गों को सुगम करें ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

भावार्थ—(विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च) सम्पूर्ण संसार के स्थावर और जंगम जगत् [के गुण कर्म स्वभाव रुचि] का (मन्तवः) मनन-विचार करने वाले (ये) जो (प्रचेतसः) इस लोक के प्रचेता उच्च-कोटि के विचारक जन (भुवनस्य) संसार के (ईशिरे) शासन सूत्र का संचालन करते हैं, (ते) वे ही (देवासः) तुम विद्वत्सेवी पुरुषो! (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हमें हमारे (कृतात्), 'कृत' अथवा कायिक एवं (अकृतात्) अकृत अथवा मानसिक (एनसः) पापों से (अद्य) आज (आ पिपृत) पूरी तरह से पार करो अर्थात् सब प्रकार के पापों से दूर रख हमें निष्पाप बनने में भरपूर सहायता प्रदान करो।

स्थावर जंगम प्रपंच के अधिकृत ज्ञाता विद्वान् ही आज स्वस्ति के लिये कृत और अकृत दोनों प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करें ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भरे॒ष्विन्द्रं॑ सुहवं हवामहेंऽहो॒मुचं॑ सुकृतं॒ दैव्यं॒ जन॑म् ।
अ॒ग्निं मि॒त्रं वरु॑णं सा॒तये॒ भगं॒ द्यावा॑पृथि॒वी म॒रुतः॑ स्व॒स्तये॑ ॥१५॥

भावार्थ—(भरेषु) जीवन के विविध संघर्षों अर्थात् योगक्षेम के निमित्त की जाने वाली दौड़धूप एव संकट के अवसरों पर (स्वस्तये) कल्याण के लिये, अपनी सुस्थिति=जीवनरक्षा के लिये और (सातये) अनादि लाभ के लिये अथवा योग्य साथी के लिये हम,

(इन्द्रम्) १. तेजस्वी पवित्र आत्मा को २. परमैश्वर्यशाली परमात्मा को,

(सुहवम्) आसानी से पुकार सुनने वाले को

(अंहोमुचम्) पाप कर्मों से मुक्ति दिलाने वाले को

(सुकृतम्) १. शुभ कर्मों के अनुष्ठान करने वाले, सुकर्मी को २. जिसके सब काम जीवों के सुखार्थ होते हैं, ऐसे परमात्मा को

(दैव्यम्) १. दिव्य प्रतिभा वाले आत्मिक पुरुष को २. दिव्य सामर्थ्य वाले सर्व शक्तिमान् परमात्मा को

(जनम्) १. उत्पादक शक्ति सम्पन्न को २. सबको उत्पन्न करने वाले को [जनी प्रादुर्भावे]

(अग्निम्) अग्रणी अर्थात् आगे ले जाने वाले को

(मित्रम्) प्राणीमात्र पर स्नेह रखने वाले को अथवा १. सब को मिलाये रखने वाले महाजन को २. जीवों के पारस्परिक सम्बन्ध करने वाले तथा परमाणुओं को मिलाने वाले सृष्टिकर्ता परमात्मा को

(वरुणम्) वरणीय भजनीय को (भगम्) ऐश्वर्यशाली को (द्यावापृथिवी) आकाशीय और पार्थिव तत्त्वों के ज्ञान से युक्त को (मरुतः) सूक्ष्म प्राणों को (हवामहे)* आह्वान, स्मरण करते हैं।

'द्यावापृथिवी तथा मरुतः' दो पदों का अर्थ स्पष्ट नहीं है। ऐसा भाव भी हो सकता है कि (भरेषु) हम जीवन भरण-पोषण के प्रयत्नों में वा विचार सभाओं में सुकृतम् अंहोमुचम् इन्द्रं हवामहे,

---

*भौतिक वस्तुओं के 'आह्वान' का अभिप्राय उनका अपने से सम्बन्ध स्थापित करना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और (सातये) अन्न प्राप्ति के लिये अग्नि, सूर्य, जल, की स्तुति= गुणधर्म वर्णन कर प्रयोग करते हैं और भगं* [=एक वचन है], द्यावापृथिवी [=दो हैं] तथा मरुतः[=बहुवचन है]द्वारा संभावित (स्वस्तये) कल्याण के लिये इन सब भौतिक शक्तियों की स्तुति= करते हैं; पास एकत्रित करते हैं।

ये सब नाम परमेश्वर के भी हो सकते हैं। सब स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे जीवन संघर्षों में परमात्मा को कभी न भूलें और उसके दिये हुए अग्नि सूर्य वायु आदि पदार्थों से विज्ञान द्वारा सुलाभ गुणधर्मस्मरण करें ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥

भावार्थ—[आओ भाई सब मनुष्य लोगों ! परमात्मा के अनुग्रह से] हम सब, (सुत्रामाणम्) सुरक्षा के सब साधनों से युक्त, (पृथिवीं) फैलने वाली, (द्यां) वायु वा प्रकाश युक्त, (अनेहसम्) न डगमगाने वाली अथवा बाह्य दोषशून्य, (सुशर्माणम्) आरामदेह (अदितिं) सुबद्ध=न टूटने वाली अर्थात् सुनिर्मित्त (सुप्रणीतिं) सत्प्रवर्त्तिनी (स्वरित्रां) संकटों से बचाने वाली अथवा [इन्द्रिय-रूपी] सुन्दर साधनों वाली, (अनागसम्) आभ्यन्तरदोष शून्य, (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली, (दैवीं) [कर्मों के अनुसार भोग एवं कर्म के लिये नियत] दैवी मानव शरीररूपी नौका पर (स्वस्तये) श्रेय और प्रेय की सिद्धि के लिये अर्थात् मोक्ष सुख एवं चक्रवर्त्ती साम्राज्य आदि सुख के लिये (आ-रुहेम) चारों ओर से चढ़ें मर्यादापूर्वक अथवा सुखपूर्वक भवसागर से पार होने के लिये सवार हों।

द्वितीय भाव--संसार में सब प्रकार के योगक्षेम की सिद्धि के लिये हम सब स्त्री-पुरुष, सुत्रामाण अर्थात् रक्षा के सुन्दर प्रबन्ध वाले, [अवसर आने पर] फैल जाने वाले, प्रकाशयुक्त, बाह्य त्रुटि रहित, सुख के साधनों से युक्त अर्थात् हिचकोले न खाने वाले अथवा

*'भगम्' का अर्थ 'चन्द्रमा', 'द्यावापृथिवी' का अर्थ आकाश और पृथिवी तथा 'मरुतः' का अर्थ वायु कर सकते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न टूटने वाले, दूर-दूर तक ले जाने वाले अथवा बहुत तीव्र गति वाले शत्रु अर्थात् विरोधी से होने वाले संकट से बचाने में समर्थ वा सुन्दर साधनयुक्त आन्तरिक त्रुटि शून्य, न चूने वाले [जिसकी यन्त्री से कुछ पदार्थ बहता न हो], दैवी विमान पर (आ-रुहेम) चारों ओर से चढ़ें विना किसी बाधा के।

इस मन्त्र में ऐसी 'दैवी नौका' का वर्णन है, जिसमें रक्षा का सुन्दर प्रबन्ध हो; जो समय आने पर बड़ी की जा सकती हो; जो [पानी पर चलने के साथ] आकाश में भी उड़ सकती हो; अच्छी निर्दोष सामग्री से बनी एवं सुख के साधनों से सुसज्जित हो; न टूटने वाली हो; दूर-दूर तक ले जा सकने वाली हो; आकस्मिक दुर्घटना वा शत्रुकृत संकट से बचाने में समर्थ हो; आन्तरिक दोष-रहित एवं अच्छिद्र अर्थात् जिसमें पानी के प्रवेश का डर न हो अथवा जो चूती न हो ॥१६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

भावार्थ—हे (विश्वे) सब स्थानों में प्रविष्ट (यजत्राः) यज्ञशील अर्थात् कर्मयोगी विद्वान् लोगों! आप (ऊतये) रक्षा का उत्तम उपाय हमें (अधिवोचत) अधिकारपूर्वक बताइये। (दुरेवायाः) दुराचार से तथा (अभिह्रुतः) बाहर की चारों ओर की कुटिल प्रवृत्तियों से (त्रायध्वम्) आप हमें बचावें। अथवा दुःख देने वाली दुर्गति से हमारा त्राण कीजिये। हे विद्वानो! रक्षा एवं उन्नति के लिये और कुशलक्षेम के लिये हम (देवहूत्या) देवों की प्रतिष्ठा के अनुरूप प्रशंसा सूचक (सत्यया) सच्चे वचनों से (शृण्वतः वः) टेर सुनने वाले आपका (हुवेम) आह्वान करें। अर्थात् आप जैसे यज्ञ-मय जीवन बिताने वाले विद्वान् ही हमें दोषों तथा बाह्य वातावरण की कुटिल प्रवृत्तियों से बचा सकते हैं और आप सदृश 'हम भक्तों की पुकार सुनने वाले विद्वान् ही हमारी रक्षा और कुशलता के लिये दौड़कर आने वाले हैं ॥१७॥

अपाभीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—हे विद्वानो ! (अप) दूर करो (अमीवां) विकारोत्पादक अर्थात् [देह या समाज के] बिगाड़ पैदा करने वाले तत्वों को; (अप) दूर करो (विश्वाम्) फैल जाने वाली, (अनाहुतिम्) सर्वोदय में अपना भाग पूरा न करने की प्रवृत्ति को; (अप) दूर करो (अरातिं) अदान अर्थात् स्वार्थ वृत्ति को और (अघायतः= अघशंसमानां) पाप चहाने वालों की (दुर्विदत्राम्) दुष्ट चेष्टाओं एवं दुष्ट योजनाओं को। हे विद्वानो ! (आरे) बहुत दूर, (अस्मत् युयोतन) हम से पृथक् करके फैंक दो (द्वेषः) द्वेष बुद्धि को अर्थात् पारस्परिक विरोधभाव को। हमको (उरु) पर्याप्त एवं विशाल (शर्म) सुख के साधन (आ) पूर्णतः (यच्छत) प्रदान करो, (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये।

मनुष्य को पूर्ण स्वस्ति के लिये पर्याप्त सुख के साधन तभी मिल सकते हैं, जब कि वह देवों-विद्वानों की सहायता से 'अमीवा', 'विश्वा अनाहुति', 'अराति', 'पाप प्रशंसक की दुर्विदत्रा' तथा 'द्वेष', को अपने से बहुत दूर पृथक् रक्खे। मनुष्यों को ऐसी भावना करनी चाहिये। हे देवों ! आप अपने उपदेशों द्वारा, हमें शारीरिक उन्नति का प्रकार बतावें, जिससे हम रोगादिकों से रहित हो स्वस्थ रह सकें; हमें लोक विज्ञान समझावें; जिससे हम सेवादिक कार्यों में अपना भाग अदा न करने की प्रवृत्ति को छोड़ प्रसन्न रह सकें; हमें सामाजिक विद्या बतावें, जिससे हम 'अदान-लोभ-प्रवृत्ति से हट सन्तुष्ट रह सकें; हमें नीतिशास्त्र को बोध करे, जिससे कि हम पाप-शंसकों की कुटिल चालों से बच सुरक्षित रह सकें; और हममें से द्वेषबुद्धि लड़ाके झगड़ालू जनों को पृथक् करो, और इस प्रकार हमारी स्वस्ति के लिये (उरु शर्म) बहुत सुख प्रदान कराओ ॥१८॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥

भावार्थ—(स मर्तः) वह मर्त्य ही (विश्वे) संसार (अरिष्टः एधते) में निर्विघ्न निर्बाध अभ्युदय को प्राप्त करता है और (प्र प्रजाभिः जायते) प्रकृष्ट रूप से पुत्रपौत्रादिकों से प्रसिद्ध होता है (धर्मणस्परि) धर्म अर्थात् नियत कर्म पूरा करने के बाद, जिसको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसके (विश्वानि दुरिता अति) सब दुराचारों को [अपने क्षमाशील स्वभाव के कारण] भुलाकर, हे आदित्य ब्रह्मचारियों की संगति में बैठने वाले परोपकारी धार्मिक सज्जनों ! आप (सुनीतिभिः) सुगम न्याय मार्गों से (नयथ) चलाते हो (स्वस्तये) उसकी स्वस्ति के लिये।

भाव यह है कि 'अपने परम अनुग्रह से, सब दुराचारों को ध्यान में न रखकर व दुरितों से छुड़ाकर, जिस पुरुष को, हे आदित्यासः=शुद्ध चरित्र पुरुषो ! आप न्याय के सुगम पथ का पथिक बनाते हो, वही मनुष्य धर्मानुष्ठान से चारों ओर अपनी प्रजा अर्थात् सम्बन्धी जन से खूब प्रसिद्ध होता है और इस प्रकार विघ्न-बाधाओं से मार न खाता हुआ इस संसार में बढ़ता है। जिस मनुष्य को आदित्य ब्रह्मचारियों के सत्संगी पुरुष उसकी सब दुष्ट प्रवृत्तियों को दूर करके सुनीति युक्त मार्ग पर ले जाते हैं, वह किसी से पीड़ित न होता हुआ संसार में उन्नति करता है और धर्मपूर्वक (प्रजाभिः) बाल-बच्चों बन्धुबान्धवों इष्टमित्रों सहित (प्रजायते) खूब फलता-फूलता है। अथवा (अति विश्वानि दुरिता) सब दुरितों से छुड़ाकर जिसको हे विद्वानो ! तुम सुनीतियों के द्वारा= अपने उत्तम आचरणों से सुमार्ग दिखाते हो, वह मनुष्य समूह (अरिष्टः) हार न मानता हुआ (विश्वे एधते) संसार में आगे बढ़ता है और धर्म के सामूहिक अनुष्ठान के कारण प्रजा अर्थात् मनुष्य पशु आदि की वृद्धि से प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि को प्राप्त करता है।

भावार्थ यह है कि वही मनुष्य रोगादि से अपीड़ित अथवा विघ्न-बाधाओं से अबाधित होकर, धर्म से चारों ओर बढ़ता हुआ, सब प्रकार से अपनी सन्तानों को आर्य बनाता हुआ विश्व में बढ़ता है, जिसकी त्रुटियों=दोषों=पापों को कल्याण के लिये छुड़ाकर 'आदित्यासः' जिसे सुनीतियों से आगे ले जाते हैं। अर्थात् सब को आदित्य ब्रह्मचारियों की संगति में बैठने वाले विद्वानों के बताये मार्ग पर चल कर ही जीवन बिताना चाहिये ॥१९॥

यं दे॑वासोऽव॑थ॒ वाज॑सातौ॒ यं शूर॑साता मरुतो हि॒ते धने॑।
प्रा॒त॒र्यावा॑णं॒ रथ॑मिन्द्र सान॒सिमरि॑ष्यन्त॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑ ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—हे (देवासः) विद्वत्सेवी ज्ञानियों ! तुम (यं) जिस [शरीर] रथ की (वाजसातौ) ज्ञान-बल-अन्न लाभादि के सम्पादन में (अवथ) रक्षा करते हो; और (शूरसाता मरुतः) हे ! शूरों के साथ वाले मरने-मारने में तैयार वीर जनों ! तुम जिस [शरीर—] रथ की (हिते धने) जन हितकारी संघर्षों के समय रक्षा करते हो उस, (अरिष्यन्तम्) अटूट-अखण्ड, (इन्द्रसानसिम्) आत्मा [रूपी रथी] को सुख देने वाले, सूर्योदय के साथ ही जीवन-संघर्ष में प्रवृत्त हो जाने वाले, [भोगायतन शरीर—] रथ पर (स्वस्तये आरुहेम) कल्याण के लिये आरोहण करे।

अभिप्राय यह है कि "परमेश्वर ने (इन्द्रसानसि) आत्मा को सारथि बना, उसके 'चेष्टेन्द्रियार्थ' तथा 'भोगायतन' के साधक अटूट देह रथ को उसको इसलिये दिया है कि वह देवास—ज्ञानीजनों की रक्षा में इससे वाज प्राप्ति करे, 'शूरसात मरुत् वीर जनों की रक्षा में इसका जनहित के संघर्षों में प्रयोग करे और ब्राह्ममुहूर्त्त से ही अपने कार्य में प्रवृत्त हो जावे। इसी में उसका कल्याण है।" इस शरीर की रक्षा केवल खाने के साधन जुटाने, सबसे संघर्ष करने तथा अधिक समय सोने या व्यर्थ के कर्मों में गुजारने के लिये नहीं होनी चाहिये।

इसका एक अन्य भाव भी है—"हम अपने कल्याण के लिये कैसे रथ=यान==वाहन का प्रयोग करें ? जिसकी विद्वानों की सेवा में बैठे ज्ञानी-जन ज्ञान-बल-अन्न अथवा "इष्*+ऊर्ज्ज्" की प्राप्ति के अवसर पर रक्षा करते हैं; जिसकी शूरों से घिरे वीर जन जन-हितार्थ किये गये संग्रामों के अवसर पर प्रयोग करते हैं; जो कि [प्रातर्यावाणम्] प्रारम्भ से ही गति पकड़ लेता है अर्थात् चलाते ही काम में आने लगता है, किसी की [निरर्थक] हिंसा में प्रयुक्त नहीं होता और इन्द्र अर्थात् विद्युत् से सुसज्जित रहता है, यहां किसी ऐसे स्वतः चाली विद्युत् से चलने वाले रथ का वर्णन मालूम पड़ता है, जो कि इन्द्र (=आकाशीय विद्युत्) से चलने वाला है ॥२०॥

---

*द्र० यजुः १।१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

भावार्थ--स्वस्ति हो, (नः पथ्यासु) हमारे जलसम्पन्न प्रदेशों में; स्वस्ति हो, (धन्वसु) जलशून्य मरुस्थलों में, स्वस्ति हो (अप्सु) नदी समुद्रादि में (वृजने) अन्तरिक्ष में [या एकान्त स्थलों में], (स्वर्वति) सुखदायी भ्रमणस्थलों में कल्याण हो, हमारा (पुत्रकृथेषु) सन्तानोत्पादक अथवा पुत्रों के कर्मों से युक्त (योनिषु)† स्थानों अर्थात् गृहों में। हे वायु के समान बलशाली वीर पुरुषों! धन ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये कल्याणकारी उपाय को धारण=स्वीकार करो।

इसका एक सुन्दर भाव निम्न है—"स्वस्ति हो, (पथ्यासु) सजल नाभि से नीचे रमने वाले चक्रों में, (धन्वसु) जलरहित हृदय से ऊपर मस्तिष्क तक रमने वाले चक्रों में; (अप्सु) उपस्थ देश-स्थित रजो-वीर्यप्रवाहों में; (वृजने) शरीर के अन्तरिक्ष अर्थात् हृदयाकाश में [जहां आत्मा का साक्षात्कार होता है]* और (स्वर्वति) प्रकाश वाले ज्ञान के केन्द्र मस्तिष्कस्थली में; (पुत्र-कृथेषु योनिषु)† सन्तानोत्पादक कारणों=स्थानों अवयवों में अर्थात् स्त्री-पुरुष के अङ्गों में। शरीर में बहने वाले हे प्राणो! तुम (राये) भोगैश्वर्य के लिये कल्याणकारी अवस्था की धारण=स्वीकार करो ॥२१॥

---

*द्र० स्व. सु. पृ० १३। वृजने तक का अर्थ श्रद्धेय मेधारथी जी कृत है। तदनुसार शेष पदों का अर्थ करके शरीरपरक अर्थ हमने पूरा कर दिया है। इससे एकार्थ में सारे मन्त्र की संगति लग गई हैं।

† पुत्रकृथेषु योनिषु का निम्न भाव है—सन्तानोत्पादन में दो अवयव निमित्त होते हैं, पुरुष का 'लिंग' और स्त्री की 'योनि'। ऋषियों के विचारों के अनुसार जीव पहले 'पुरुषलिंग' में जाता है; वहां से वीर्य के साथ 'स्त्री-योनि' में प्रवेश करता है। ये 'पुत्रकृथयोनियां' हैं। अभिप्राय होगा हे [आत्मा के साथ रहने वाले] प्राणो! [द्र० प्रश्नोपनिषद्] पुत्रोत्पादक अवयवों के अन्दर जीव को स्वस्ति हो और उसे तुम (राये दधातन) उत्तम भोग के लिये धारण करो। जीव और इन अवयवों की सुरक्षा होनी चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वामेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥

भावार्थ—१. (प्रपथे) प्रकृष्ट जीवन यात्रा में, निश्चय रूप से (स्वस्तिः इत् हि) सुस्थिति को बनाने वाली गृहलक्ष्मी आर्यगृहिणी ही होती है। कैसी ? जो कि, (श्रेष्ठा) उत्तम गुण कर्म स्वभाव रुचि तथा कुल वाली (रेक्णस्वती) वीर्यवती=प्रसवयित्री एवं सु+वर्ण वाली रूपवती और (या) जो (वामं) उत्तम सन्तान या सुन्दर पुरुष को (अभि+एति) सब ओर से प्राप्त होती है। (सा) वही 'स्वस्तिः'=गृहदेवी वास्तव में (नः अमा) हमारा गृह=आश्रय-स्थल है [गृहिणी गृहमुच्यते] । (सो=सा+उ] निश्चय से वह सुमंगली स्त्री (अरणे निपातु) नहीं [गृह—] कलह में डाले अर्थात् घर को रणक्षेत्र न बनावे, पूर्ण शान्तिपूर्वक जीवन बितावे, गृहशान्ति कायम रक्खे। (स्वावेशा) सुमंगल प्रवेश वाली (देवगोपा) उत्तम इन्द्रियों से सुरक्षित (भवतु) होवे। अथवा (देव+गो+पा) विद्वान् आप्त धार्मिक सज्जनों तथा गवादि पशुओं को पालने वाली होवे।

२. पूर्ण निश्चय से; प्रकृष्ट जीवनयात्रा में (स्वस्तिः) अच्छी स्थिति बनाने वाली, उत्तमकोटि का, सुवर्ण रत्न आदि धन और नाना यव आदि धान्य से परिपूर्ण वसुन्धरा [भूस्थली] श्रेष्ठतम कर्म यज्ञादि करने वाले अथवा उत्तम कृषि कर्म करने वाले जन को स्वीकारती है; एवं धनधान्यदात्री और (वामम्+अभि+एति) लाभ के लिये हमें प्राप्त है, ऐसी वह भूमि ही हमारा वास्तविक गृह=जन्मभूमि है, अर्थात् स्वस्ति, श्रेष्ठा, वसुन्धरा, [समय आने पर] लाभ के काम आती है। वह भूमि [हमारे देश को] गृहकलह या अन्तः कलह में न डाले और (देवगोपा) विद्वान् धार्मिक सत्य-प्रिय परोपकारी सज्जनों द्वारा पालित=शासित=रक्षित होकर (स्वावेशा भवतु) सब प्राणी मात्र के=पञ्चजनों के निवास के योग्य बने। अथवा (देवगोपा) मेघपर आश्रित भूमि भी सबके निवास योग्य होवे।

जीवन मार्ग के विस्तार के लिये श्रेष्ठ धनधान्य वाली (स्वस्तिः) समृद्धि निश्चय से जो, (वामम्) सुन्दर गुण कर्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव पुरुष को प्राप्त होती है, (सा नो) वही हमारे घरों में अथवा वनादि प्रदेशों में हमारी निरन्तर रक्षा करे और वही (देवगोपा) विद्वानों के बताये मार्ग द्वारा सुरक्षित हमारे उत्तम निवास के लिये हो ॥२२॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशꣳसो[1] ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

यजु० अ० १ । मं० १ ॥

भावार्थ—इसका अन्वय निम्न प्रकार से हो सकता है—

१. हे सर्वसुखप्रदातः परमात्मन् ! (इषे* त्वा, ऊर्जे* त्वा) इष् और ऊर्ज के लिये तुझे (वायवः) ये सब जीव, प्राणी [भजते हुए] (स्थ) हैं। अर्थात् सब प्रकार के अन्नादि खाद्य पदार्थ और जीवनीय शक्ति के लिये तुझे आश्रय मान सब प्राणी ठहरे हुए हैं। अथवा हे जीव ! (त्वा) तुझे जीवन [यापन के लिये] योग्य (इषे) इष्ट पदार्थ=सब भोग सामग्री तथा [इसके भोग के लिये] (ऊर्जे) जीवनीयशक्ति प्राप्त कराने के लिये (वायवः) भौतिक प्राणवायुवें तथा शरीरस्थ प्राणवायु (स्थ) स्वस्थ होवें।

२. (देवः सविता वः) सर्वप्रकाशक सृष्टिकर्त्ता सर्वसंचालक प्रभुदेव तुम जीवों को [ये प्राण एवं इन्द्रियां] (प्रार्पयतु) पूर्णरूप से प्रदान करे। अर्थात् सब को (प्र+अर्पयतु) आगे बढ़ावें।

३. (श्रेष्ठतमाय कर्मणे आप्यायध्वम्) [तुम भी] अति उत्तम संसार की शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने रूप यज्ञादि कर्म करने के लिये [इन प्राणों को] बढ़ाओ अर्थात् श्रेष्ठतम

---

१. ह्रस्व स्वर से परे दीर्घ ऋ कार और दीर्घ से परे ह्रस्व ॐ कार लिखने की प्राचीन परिपाटी है। यहां तदनुसार ही निर्देश किया है।

*'इष्' वे इष्ट खाद्य अन्न होते हैं, जो कि ओषधि वनस्पति वृक्षादि से प्राप्त होते हैं। 'ऊर्ज्' वह शारीरिक व आत्मिक 'बल' होता है, जो 'इष्' से प्राप्त होता है। दस गुण्डों या पार्टी से प्राप्त शक्ति या बल अथवा 'मांसादि' से प्राप्त बल 'ऊर्ज्' न कहाकर 'पाशविक बल' कहाता है। इस सूक्ष्मभेद को समझना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्म करने के लिये ही प्राणों को उन्नत करो। केवल 'शिश्नोदर परायणता' के लिये ही जीवन धारण-पोषण न करके परोपकार के लिये तुम्हें सन्तों की प्राणविभूतियां होनी चाहिये।[1] अथवा श्रेष्ठतम कर्मों के प्रसार-प्रचार के लिये (आप्यायध्वम्) बढ़ो, सर्वत्र 'सब को आर्य बनाने के लिये'[2] फैलो।

४. (प्रजावतीः) उत्पादक शक्ति सम्पन्न, सूनेवाली अथवा सन्तान वाली (अनमीवाः) नीरोग (अयक्ष्माः) यक्ष्मा आदि राज रोगों से रहित (अघ्न्याः) ये 'गौवें' जो कि अहन्तव्या=न मारने योग्य होती हैं अथवा 'इन्द्रियां' जो कि न मारने=पीड़ित करने=बिगाड़ने के योग्य होती हैं अथवा 'प्राण' जो कि यों ही समाप्त करने योग्य नहीं होते[3], (इन्द्राय भागम्)[4] इन्द्रियाधिष्ठाता जीव के लिये भाग है अर्थात् सेवनीय हैं। जीव के भोग के लिये ही प्रजावती, अनमीवा, अयक्ष्मा गौवें, प्राण तथा इन्द्रियां नियत भाग हैं अथवा ये गौवें, प्राण या इन्द्रियां (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (भागम्) सेवनीय हैं, अत्यन्त आवश्यक हैं। [भज्=सेवायाम्]।

५. (वः स्तेनः मा ईशत) तुम्हारे ऊपर कोई चोर अर्थात् अनुचित व अनधिकृत रूप से दूसरे का हक मारने वाले पुरुष शासन न करे; (मा अघशंसः) और न ही कोई 'पाप कर्मों को प्रोत्साहन देने वाला' या 'पाप कर्मों की प्रशंसा चाहना चिन्तना करने वाला' तुम्हारा शासक [=राष्ट्रपति-या प्रधान मन्त्री या सेनापति] हो। क्योंकि यदि स्तेन और अघशंस गुणकर्म-स्वभाव वाले पुरुष किसी देश के शासक या संघ समाज के शासक-अधिकारी बनेगें, तो सब प्रकार के दोष पाप प्रजा में फैल जावेगें और इनका जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा।

४. उपरिनिर्दिष्ट 'अघ्न्याः' (अस्मिन् गोपतौ) इस गायों और इन्द्रियों के स्वामी के संरक्षण में (ध्रुवाः) चिरकाल तक रहने

---

१. परोपकाराय सतां विभूतयः।

२. कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।

३. अधिक विषयभोग से 'प्राण' शक्ति का ह्रास होता है; प्राणों की प्राणायाम द्वारा रक्षा करनी चाहिये; अत्यन्तविषय सेवन से ह्रास नहीं।

४. उत्तिष्ठतावपश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्। ऋक् १०।१८०।३ ॥ उठो, एकाग्रचित्त से देखो प्रत्येक ऋतु=काल में हितकारी 'इन्द्रस्य भागम्'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या स्थिररूप में सुख देने वाली (बह्वीः) बहुत सी (स्यात) हों। अर्थात प्रत्येक मनुष्य को 'गोपति'=गो पालक तथा इन्द्रियों को संयम रखने वाला बनना चाहिये और उसके पास 'इष्' के मुख्य साधक गवादि पशु सदा बहुतायत में होने चाहियें तथा 'ऊर्ज्' की साधक अचंचल बहुकर्मकारिणी इन्द्रियां होनी चाहियें।

७. इस जगत् में=विश्वयज्ञमण्डप में स्थित हम सब पञ्चजन [=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं दासदस्युगण] मानवमात्र प्रार्थना करते हैं, हे सर्वरक्षक! कर्माध्यक्ष! न्यायकारिन्! सुख-प्रदातः! परमकारुणिक! (यजमानस्य) सर्वोपकारी धर्मात्मा विद्वान् यजमान के (पशून् पाहि) पशुओं को बचा अथवा देखने की साधन इन्द्रियों की [विषयों की मार से] रक्षा कर।

अन्नोपयोग व सामर्थ्य के लिये, जो (वायव स्थ) हमारी इन्द्रियां और अन्तःकरण या प्राणशक्तियां हैं, सवितादेव तुम को वा उनको (प्रार्पयतु) प्रपथ अर्थात् प्रकृष्ट कर्मों में लगावे। श्रेष्ठतम कर्मों के प्रचार के लिये तुम सब चारों तरफ फैल जाओ। (इन्द्राय) आत्मा के निमित्त जो उत्तम भाग है, ऐसी [अघ्न्याः प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः] गौएं तुम्हारे पास हों। चोर-लुटेरा-डाकू व पापी तुम पर कभी शासन न करे। इस गोपति के अधिकार-संरक्षण में बहुत-सी गौएं ध्रुवसम्पत्ति बनी हों। हे सर्वरक्षक प्रभो! आप इस यजमान के पशुओं की रक्षा कीजिये ॥२३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

भावार्थ— १. भद्र अर्थात् मोक्ष सुख के देने वाले (क्रतवः) कर्म और विचार (विश्वतः नः आ यन्तु) सब ओर से हमारे [मनों में] आवें। अर्थात् भद्रकर्म और विचार ही बार-बार हमारे मन में उत्पन्न हुआ करें। ये 'क्रतु' कैसे हों? (अदब्धासः) छल रहित बेचूक या हिंसाशून्य निर्विघ्न हों; (अपरीतासः) कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व गुप्त अथवा बेरोक या अप्रभावित या नियत क्रम में आने वाले हों; (उद्भिदः) जिन से अन्य [क्रतु] कर्म और संकल्प पैदा होते हों या उच्चता महत्ता की ओर उठने वाले, हों। (यथा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिससे कि (देवाः) विद्वान् लोग (सदम् नः वृधे) सदा हमारी उन्नति के निमित्त (अप्रायुवः) 'अवृद्ध' अथवा बेभूल, अर्थात् अप्रमादी और (रक्षितारः) रक्षक अर्थात् संकटमोचक (असन्) बने रहें।

२. भद्र अर्थात् मोक्ष सुख के देने वाले कर्म एवं विचार सब ओर से हमारे मनों में आवें। (अदब्धासः) [कर्म एवं विचार में] किसी से न दबने वाले अथवा अविकलांग (अपरीतासः) न इधर-उधर चल कर बैठने वाले=अर्थात् नियमित जीवन बिताने वाले, 'कायदे से आकर मर्यादापूर्वक अपने स्थान पर बैठने वाले' उन्नत करने-कराने वाले अर्थात् सब की उन्नति में सन्तुष्ट रहने वाले (देवाः) विद्वान्, हमारी वृद्धि में प्रतिदिन 'अप्रायुवः' एवं 'रक्षितारः' जैसे हों, वैसे सदा ही बने रहें।

३. (भद्राः) भद्रशील (क्रतवः) यज्ञशील जन (विश्वतः नः आ यन्तु) सब ओर से घरों में आवें। कैसे विद्वान् (अदब्धासः) अविकलांग (अपरीतासः) मर्यादा में रहने वाले (उद्भिदः)* मूर्धन्य विद्वान् जैसे भी हो सदा हमारी उन्नति में तत्पर व सहायक बने रहें; वे कभी थकने वाले न हों और प्रतिदिन सावधानी से हमारी रख वाली करने अर्थात् हमारा ध्यान रखने वाले हों।

४. (नः) हमारे (क्रतवः) यज्ञ आदि सत्कर्म (विश्वतः) सदा सर्वत्र (अदब्धासः) हिंसाशून्य (अपरीतासः) नियम-विधि पूर्वक होने वाले (उद्भिदः) निर्विघ्न व अन्य संकल्प उत्पन्न करते हुए उत्तम रीति से (—आयन्तु) सम्पन्न होते रहें और हे सुक्रतो! परमात्मन्! हम पर ऐसा अनुग्रह करो, कि (देवाः) [यज्ञ से तृप्त होने वाले] देव (वृधे) वृद्धि के लिये (नः सदम् इत्) हमारे साथ सदा रहें [हमारी सुधि लेने वाले हों] और (अप्रायुवः) अप्रमादी होकर (दिवेदिवे रक्षितारः) प्रतिदिन हमारी रक्षा करने वाले हों ॥२४॥

---

*उद्भिदः का अर्थ है 'आगे उत्तरोत्तर पैदा करने वाले'। ये गृहस्थी हो सकते हैं, संन्यासी नहीं। यज्ञों में संन्यासी का अधिकार नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

भावार्थ - (देवानां) देवों=आप्त धार्मिक परोपकारी विद्वानों की, (भद्रा सुमतिः) अभ्युदय निःश्रेयस्कारिणी सुमति हमें (ऋजूयताम्) सरलता से प्राप्त हो। देवों की (सख्यम्) मित्रता, (उपसेदिम) हम उनकी सेवा में जाकर प्राप्त करें। अर्थात् हम उनके सख्य= उनके समान स्थिति [=उनके जैसे अपने गुणकर्म स्वभाव] को, उनकी संगति से बनावें। अथवा हम (देवाः) देव विद्वानों की मित्रता प्राप्त करें। देव लोग, (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्रतिरन्तु) हमारी आयु को बढ़ावें। अर्थात् उनके सख्य में आये हुए हमारे लिये आयु वृद्धि के आसन प्राणायामादि जितने उपाय हैं, उनका वे देव निर्देश करें; ताकि हमारा जीवन दीर्घ और अच्छा व्यतीत हो।

यदि मनुष्य देवों की 'सुमति', 'राति' और 'सख्य' प्राप्त करेगा, तो निश्चय ही उसको दीर्घायुष्य की प्राप्ति होगी।* यही 'यज्ञ' की भावना की पूर्त्ति है। 'देवानां भद्रा सुमतिः' का सम्बन्ध देवपूजा से है; 'देवानां रातिः' का दान से और 'देवानां सख्यम्' का संगतिकरण से ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

भावार्थ—हम सब स्त्री-पुरुष (तम् ईशानम्) उस चराचर जगत् के शासक या सब ऐश्वर्यों के स्वामी (जगतः तस्थुषः पतिम्) जंगम [जैसे मनुष्य व गवादि प्राणी] व स्थावर [जैसे वृक्ष गृह राज्य आदि] प्रपंच के पालन करने हारे (धियं जिन्वम्) ज्ञान एवं कर्म दोनों के तृप्त करने वाले अथवा प्रकाशक परमात्मा को (अवसे) सर्वविध रक्षा के लिये (हूमहे) पुकारते=याद करते हैं। वह परमात्मा (यथा नः) जैसे हमारे (वेदसाम् वृधे) धनों व ज्ञानों

*भद्र कर्णेभिः शृणुयाम देवाः·····व्यशेमहि देवहितं यदायुः। स्वस्ति वाचन २८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की वृद्धि हो, वैसे के लिये (पूषा असत्) योगक्षेमकारी होवे और (स्वस्तये) विनाश से बचने के लिये (रक्षिता) बाह्य आपत्तियों से बचाने वाला तथा (पायुः) अन्तर्मलों का निवारण कर आयु की रक्षा करने वाला अर्थात् विघ्नविनाशक (अदब्धः) अहिंसित अर्थात् करुणामय [असत्=होवे]।

सब मनुष्यों को मानना योग्य है कि वह 'ईशान' परमात्मा ही चराचर जगत् का पालन करने हारा है; बुद्धियों और कर्मों में सत्प्रेरणा देने वाला एक मात्र परमेश्वर ही है। वही जीव मात्र के धनों व ज्ञानों की वृद्धि कर जीवों का पोषण करता है और करुणा-मय विघ्नविनाशक बाह्य आभ्यन्तर दोषों से रक्षा करके जीवों को विनाश से बचाने वाला है। उसी की उपासना सब को करनी योग्य है। उसी के अनुग्रह से सब काम सिद्ध होते हैं।

इस मन्त्र में पूषा, रक्षिता और पायु ये तीन विशेषण ईशान परमात्मा के हैं। पूषा का भाव है, शरीरों का पोषण करने वाला रक्षिता का भाव है, भोगों की रक्षा करने वाला और पायु का भाव है, आयु=जीवनावधि का पालक। शरीर का अर्थ है, जीव को कर्म करने के निमित्त मिली 'जाति', उसके पोषण के लिये आवश्यक है कि 'भोग' का रक्षण हो। 'भोग' पूरा करने के लिये 'आयु-वृद्धि' आवश्यक है। इस प्रकार इस मन्त्र में जीव के उसकी स्वस्ति के लिये 'जाति आयु भोग' के रक्षण की व्यवस्था करने की चराचर के ईशान से प्रार्थना की गई है ॥२६॥

स्व॒स्ति न॒ इन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः ।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ अरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥२७॥

भावार्थ—(वृद्धश्रवाः इन्द्रः) विस्तृत यशस्वी परमैश्वर्यवान् परमात्मा (नः स्वस्ति) हमें [दरिद्रता, अभाव के] विनाश से बचावे। (विश्ववेदाः पूषा) सब धनों का मालिक व सर्वज्ञ पोषक परमात्मा, हमें [अज्ञान के] विनाश से बचावे। (अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः) अप्रतिहत गति वाला व सब सुखों का केन्द्र अतिवेगवान् 'सुपर्ण' व तारने वाला परमात्मा, हमें [निष्कर्मता, विकर्मता] के विनाश से बचावे और (बृहस्पतिः) बृहतां=सब सत्य विद्या और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका पतिः=आदिमूल परमात्मा हमारे लिये (स्वस्ति दधातु) योगक्षेम की व्यवस्था करे।

इस मन्त्र का एक अन्य भाव भी है। श्रवस्=अन्न। अन्न है, तो 'वेदस्'=सब प्रकार की उपलब्धियां हैं। वेदस् है, तो 'अरिष्टनेमिः'=सर्वसुखस्थिति, विघ्नराहित्यदशा है। 'अरिष्टनेमित्व' है, तो ज्ञान का अधिकार भी है।

ओम् जिसका निज और प्रधान नाम है, वह सर्वरक्षक सर्वव्यापक परमात्मा सृष्टि में भरपूर अन्न बढ़ाकर, 'इन्द्र' बन हमारी स्वस्ति करे; सब उपलब्धियों को देने वाला, 'पूषा' बन हमारी स्वस्ति करे; सब सुखों का केन्द्र=आदिस्रोत, 'तार्क्ष्य' बनकर हमारी स्वस्ति करे और 'बृहस्पति' बन हमारे लिये योगक्षेम को धारण करावे।

एक अन्य भाव भी है—

१. अन्न-धान्य से भरपूर 'इन्द्र'=परमैश्वर्यवान् वैश्य वर्ग हमारे समाज में स्वस्ति=सुस्थिति करे।

२. सब उत्तमस्थितियों वाला 'पूषा'=नामक, जानमाल का रक्षक क्षत्रियवर्ग हमारे समाज में स्वस्ति=सुव्यवस्था करे।

३. सुख-सुविधाओं का दाता 'तार्क्ष्य'=अत्यन्त परिश्रमी शिल्पकार शूद्रवर्ग हमारे समाज में स्वस्ति=स्वस्थता करे।

४. विद्या का धनी 'बृहस्पति'=ब्राह्मणवर्ग हमारे समाज में स्वस्ति=सद्भाव बनाये रक्खे। न बुद्धिभेदं जनयेद् प्राज्ञः ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥
यजु० अ० २५। मं० १४, १५, १८, १९, २१॥

भावार्थ—हे (देवाः) आप्त धार्मिक ज्ञानी देव जनों! हम (कर्णेभिः) कानों से सदा (भद्रम्) 'अभ्युदय निःश्रयस् के सुख के' विषय की चर्चा ही (शृणुयाम) सुनें; [अभद्र अर्थात् अभ्युदयनिःश्रेयस् से हटा दुःख सागर में डालने वाले वचन न सुनें]। हे (यजत्राः) संगति कराने वालों तथा संगति के योग्य यज्ञशील

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सज्जनों ! हम अपनी (अक्षभिः) आंखों से सदा (भद्रं पश्येम) भद्र-दृश्य का ही दर्शन करें; [अभद्र अश्लील मन इन्द्रियों पर कुप्रभाव डालने वाले दृश्य, घटनायें न देखें]। आप देवों [=ज्ञानयोगियों] और यजत्रों [कर्मयोगियों] की कृपा से [भद्र श्रवण भद्र दर्शन करते हुए] (स्थिरैः अंगैः) स्वस्थ सबल सुडौल अंगों तथा शरीरों से युक्त होकर (तुष्टुवांसः) ईश्वर की 'स्तुति-प्रार्थना-उपासना' करते हुए (देवहितम्) देवों से समन्वित होने=मेल रखने वाली आयु को अर्थात् उच्चकोटि के जीवन वाली आयु को (व्यशेमहि) विशेष रूप से प्राप्त करें। हमें ऐसी बड़ी आयु मिले, जिसमें हम प्रभु का ध्यान करते रहें और विद्वानों जैसा आचरण करें।

मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर का ध्यान-स्मरण करते हुए ही, जितनी आयु है, उसका पूर्ण स्वस्थ व बलवान् रहते हुए भोग करें ॥२८॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१र २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥

भावार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप महाप्रभो ! तू (वीतये) ज्ञान और मुक्ति देने के लिये (आयाहि) हमारे पास आ जा। हमें दर्शन दो। (गृणानः) स्तुति किया हुआ तू जीवों को इच्छित फलों के दान के लिये (होता) सृष्टि के सब पदार्थों का दाता बनकर निश्चय से (बर्हिषि) अन्तः और बहिः आकाश में सर्वत्र तथा भक्त के हृदयासन पर विराजता है। अथवा जीवनयज्ञ के होता बनकर मेरे समीप उपस्थित हूजिये ॥२९॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः[1] । देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

साम० पूर्वा० प्रपा० १। द० १ मं० १, २ ॥

---

*तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः। यजुः अ. ४० ॥

१. सामवेद के कुछ संस्करणों और हस्तलेखों में यजुर्वेद के समान ७ देखा जाता है, कुछ में अनुस्वार ही मिलता है। (यु० मी०) ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—हे अग्रणि ! सर्वप्रकाशक देव ! तू (यज्ञानां) जीवों के तथा जीवों के सुख के निमित्त चलने वाले जीवन यज्ञ का (होता) पूरा करने वाला है। तेरी कृपा से ही सब श्रेष्ठ कर्म सफल होते हैं। तू सर्वदा (विश्वेषां हितः) सब का हित ही करता है और सब के समीप विद्यमान है। (मानुषे जने) मनुष्यरूप से उत्पन्न प्राणी में (देवेभिः) दिव्य गुणों के साथ [तू विराजमान है]। अर्थात् दिव्य जनों में तेरी झांकी मिलती है; उनकी सुमति, राति, सख्य के व्यवहार को देख उस प्रभु की सत्ता का अनुभव होता है ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

अथर्व कां० १। सू० १। मं० १॥

भावार्थ—१. (ये) [इस दृश्यमान जगत् में प्रधान-पदार्थ] [जो (त्रिषप्ताः) त्रिगुणितसप्त अर्थात् इक्कीस पदार्थ, [पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश] पंचमहाभूत, [प्राण अपान व्यान समान उदान] पंच महाप्राण, [चक्षु श्रोत्र नासिका जिह्वा त्वचा] पंच ज्ञानेन्द्रियां, [हस्त पाद गुदा उपस्थ वाक्] पंच कर्मेन्द्रियां तथा एक अन्तःकरण या मन [बुद्धि चित्त अहंकार] अथवा—पंच महाभूत, पंचतन्मात्रायें, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और एक जीव। अथवा—बारह मास, पांच [ग्रीष्म वर्षा शरद् शिशिर वसन्त] ऋतुयें, तीन [पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ] लोक और सूर्य अथवा—

२. त्र्यावर्त्तित सप्त अर्थात् तीन और उनके सत्ते पदार्थ [भूत वर्त्तमान भविष्य] त्रिकाल में होने वाले [भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्] सप्त लोक सम्बन्धी समस्त पदार्थजाल अथवा—'सत्त्व रजः तमस्' तीन गुणों वाली 'रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र' देह का आधार सप्त धातुयें, अथवा वात-पित्त-कफमूलक धातुओं के अन्दर वर्त्तमान सप्तधातु। अथवा तीन गुण और सप्त ग्रह।

३. तीनों पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक में सात-सात भेद से वर्त्तमान हो प्रगति करने वाले 'आपः'=अप्तत्त्व; स्थूलरूप से द्युलोक में सात रश्मियां [=सूर्य के सप्तांश्व,], अन्तरिक्ष में सात

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वायु के स्तर-परत [=सप्त मरुद्गण] और पृथिवी में सप्तजल प्रवाह [वैदिकाः सप्त नद्यः]।

४. त्रियोग सप्त=दश। दश इन्द्रिय गण। (विश्वारूपाणि बिभ्रतः परियन्ति) सब प्रकार के विविध रूपों को धारण करते हुए या परिवर्त्तित होते रहते हैं या सब ओर व्याप्त हैं अर्थात् चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं अथवा (विश्वारूपाणि) सब स्वरूपवान् या निरूपण करने योग्य उत्पन्न वस्तुओं को धारण-पोषण करते हुए चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं, (तेषां बला) उनके सामर्थ्य तेज-को (वाचस्पतिः) जन कल्याणी वाक् उपदेष्टा प्रजापति परमेश्वर (मे तन्वः) मेरे शरीर के अन्दर (अद्य) आज-अब-निरन्तर (दधातु) धारण-स्थापित करे।

मन्त्र में वाचस्पति ज्ञानदाता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह हमारे शरीरों में उन 'त्रिषप्त'—पदार्थों के बल को धारण करावे, जो कि अनेक विविध रूपों में बदलते हैं और जिनका बदलता हुआ आकार ही वस्तुतः संसार या दृश्यमान-प्रपंच है। इन परिवर्त्तनों में चेतन भी हैं और अचेतन पदार्थ भी।

इस मन्त्र में 'त्रिषप्ताः' विशेष पद है। निम्न प्रकार से इसका अर्थ कर सकते हैं—

१. त्रि सप्त, त्रिगुणितसप्त=एकविंशति=इक्कीस पदार्थ। पंचमहाभूत+पंच-मुख्य प्राण+पंच ज्ञानेन्द्रिय+पंचकर्मेन्द्रिय+एक अन्तःकरण [—चतुष्टय=मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार] प्रायः सभी विद्वानों ने ऐसा अर्थ स्वीकारा है। अथवा पंचमहाभूत, पंच तन्मात्रा पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और एक जीव।

२. त्रि+सप्त=तीन और सात=दश। पंच ज्ञानेन्द्रिय गोलक पंच कर्मेन्द्रिय अवयव।

३. (क) त्र्यावर्त्तित सप्त—तीन सत्ते अर्थात् तीन और उनके सत्ते। भूत-वर्त्तमान-भविष्य इन 'त्रि कालों' में रहने वाले 'सप्त-लोकों' [भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्] सम्बन्धी पदार्थ जाल अथवा—

(ख) १. आध्यात्मिक सप्तलोक।

२. आधिभौतिक सप्तलोक।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. आधिदैविक सप्तलोक।

इस प्रकार 'त्रि सप्त' बनता है—

(ग) सब पदार्थ 'धातु' से धारण किये जाते हैं। ये धातुयें सात हैं; जो कि अन्न के परिणाम हैं और 'शरीर' को धारण करती हैं=बेस बनती हैं। वे हैं, रस-रक्त-मांस-मेदस्-अस्थि-मज्जा-वीर्य। त्रि+सप्त=सत्त्व, रजस्, तमस् व्यावर्त्तित सप्त धातु।

४. ... ..'त्रिषप्ताः' शब्द का अर्थ है, तीन आवृत्ति में आने वाले सात, तीन स्थानों में होने वाले सात। जैसे 'द्विदशा' (महाभाष्य २।२।२)=दो आवृत्ति में आने वाले, दो स्थानों में विद्यमान दश=कुल बीस परन्तु दो वर्गों में दस-दस करके। इसी प्रकार 'त्रिषप्त', तीन आकृति में आने वाले सात=कुल इक्कीस; परन्तु तीन वर्गों में सात-सात करके चलने वाले.....। इस लक्षण के अनुसार 'त्रिषप्ताः' हैं 'आपः' .....".....आपो.....प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः" [ऋक् १०।७५।१] इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से 'आपः' [जलों] की 'तीन जगह में सात सात होकर प्रगति करते हैं' ऐसा कहा है। सायण ने भी उक्त मन्त्र के भाष्य में कहा है कि "त्रेधा पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च", पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन स्थानों में प्रगति करते हैं।.....तीनों लोकों में प्रगति करने वाले 'आपः'=अप् तत्त्वों का स्थूल रूप द्युलोक में सप्तरंग वाली रश्मियां, अन्तरिक्ष में.....सप्त मरुद्गण (वायुस्तर-हवा की परतें) और पृथिवी पर भिन्न-भिन्न रूप गुण वाले सप्त जल प्रवाह हैं।[1] इन त्रिस्थानी अप् तत्त्वों से क्रमशः द्युलोक में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत् या विद्युन्मय वायु और पृथिवी पर अग्नि, ये तीनों अग्नियां[2] प्रकट होती हैं, तथा बल पाती हैं। इन ऐसे आपः से, समस्त जगत् आप्त=व्याप्त है—"अद्भिर्वा इदं सर्वमाप्तम्" (शतपथ १।१।१।१४) ये ऐसे 'आपः' 'त्रिषप्ताः' नाम से यहां कहे गये हैं।[3]

---

१. वेद में सात नदियां प्रसिद्ध हैं।

२. अग्नियाँ अर्थात् 'प्राणाग्नयः'। सूर्य, वायु, अग्नि तीनों प्राण के वाहक हैं; इन से यह सर्वत्र व्याप्त=आप्त होने से (अप्) कहाता है। जलों में भी विद्युत्=प्राण बहता है।

३. द्र. श्री ब्रह्ममुनि स्वामीकृत "वेदाध्ययन प्रवेशिका" पृ. १-२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५. शतपथ में कहीं एक भिन्न प्रकार से इक्कीस का लेखा पूरा किया है। "द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य, पंचर्त्तवः, त्रयो लोकाः, तद्विंशतिः। एषैवैकविंशो य एष सूर्यस्तपति" ·····वर्ष के बारह मास ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, (=पतझड़) बसन्त पाँच ऋतुवें+ पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक। कुल मिलाकर हुए बीस और इक्कीसवां हुआ यह सूर्य ॥३१॥

इति स्वस्तिवाचनम्

———

अथ शान्तिकरणम्[1]

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥

भावार्थ—(इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि हमारे लिये (अवोभिः) रक्षा की साधन सामग्री से शान्तिदायक हों; (रातहव्या) जीवन-यज्ञोपयोगी खाद्य द्रव्यों के देने वाले अर्थात् उपलब्धि में सहायक (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल हमारे लिये शान्तिदायक हों; (शयोः) सुखशान्ति के इच्छुक जन के (सुविताय) ऐश्वर्य या अच्छे जीवन के लिये (इन्द्रासोमा) विद्युत् और सोमलतादि औषधिरस (शम्) शान्तिदायक हों [उत्तेजक, उद्दीपक नहीं] अथवा (शयोः इन्द्रासोमा) रोगशामक एवं भय निवर्त्तक विद्युत् और ओषधिरस, ऐश्वर्य या अच्छे जीवन के लिये, शान्तिदायक हों अर्थात् रोगनिवृत्ति में उपयोगी हों; (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (वाजसातौ) बलवीर्य बढ़ाने वाले अन्नादि के उत्पादन संरक्षण [की योजनाओं] में शान्तिदायक हों अर्थात् सहायक हों।

---

१. ऋषि दयानन्द कृत सस्कार-विधि के द्वितीय सं० में 'शान्तिकरण' पाठ ही है और तदनुसार ही आगे सर्वत्र 'शान्तिकरण' शब्द का ही उल्लेख है। सं. वि. के हस्तलेखों में भी 'शान्तिकरण' पाठ ही सर्वत्र है। कर्म काण्ड के प्राचीन ग्रन्थों में भी 'स्वस्ति वाचन' के साथ 'शान्तिकरण' का ही निर्देश मिलता है। अतः हमने 'शान्तिकरण' मूल पाठ ही रखा है (यु० मी०)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव यह है—इन्द्र सहित अग्नि, इन्द्र सहित जल, इन्द्र सहित सोम और इन्द्र सहित वायु, इनसे हमें शान्ति मिले; ये रोग या उपद्रवकारी न हों ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥

भावार्थ—(भगः) ऐश्वर्य एवं ऐश्वर्यशाली पुरुष (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक हों; (शंसः) [देव पितर ऋषिगणों के] उपदेश-आदेश निश्चय से हमारे लिये मंगलदायक हों; (पुरन्धिः) शरीरस्थ बुद्धि अथवा विशाल संस्कारों को धारण करने वाली बुद्धि (शं नः) शान्त रहने वाली हो [उसमें धैर्य हो]; (रायः) सुवर्णादि धनराशियां व सम्पदायें निश्चय से शान्ति पैदा करने वाली हों [अशान्ति पैदा करने वाले न हों]; (सत्यस्य सुयमस्य शंसः) नियमानुवर्ती सत्य का उपदेश शान्ति [का संदेश] देने वाला हो; (पुरुजातः अर्यमा) बहुमत द्वारा प्रसिद्ध=समर्थित प्रशंसित न्यायाधिकारी हमारे शान्ति [की व्यवस्था] करने वाला होवे।

भाव यह है कि—'जननशक्ति' हमें शान्ति देने वाली हो [गिराने वाली नहीं]; 'प्रशंसा' हमें शान्ति देने वाली हो [फूल कर कुप्पा बनाने वाली नहीं]; 'बुद्धि' हमें शान्ति देने वाली हो [अभिमान गर्व पैदा करने वाली नहीं]; 'धन ऐश्वर्य' शान्ति पैदा करने वाले हों [दिमाग चढ़ाने वाले नहीं]; मर्यादोचित सत्य का उपदेश शान्ति दे; बहुमत प्रशंसित न्याय कर्त्ता पुरुष हमें शान्ति दे।

इस मन्त्र का निम्न भाव भी हो सकता है—

(भगः) जननशक्ति·····(शंसः) ज्ञान-विद्या·····(पुरन्धिः) प्राण [पुरं=शरीर का विधायक] और (रायः) सप्तधातुयें अर्थात् रस-रक्त-शुक्र रूप शरीरस्थ जो जीव की सम्पदा हैं, वे; [समाज के बड़े] सुयम अर्थात् अनुशास्ता पुरुषप्रोक्त सत्य का आदेश या संयम सिखाने वाले सत्य के उपदेश तथा [पुरुजातः] विस्तृत अधिकार वाला (अर्यमा) सब के लिए न्यायकारी पुरुष अर्थात् शासनाधिकारी भी शान्ति की स्थापना करने वाले हों अथवा न्यायाधिकारी (पुरुजातः) प्रशंसा का पात्र हो ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥

भावार्थ—प्रपंच-जीवन को (धाता) अन्दर से धारणपोषण करने वाली शक्ति अथवा पोषकवर्ग शान्तिदाता हो; और शान्तिदायक हो (धर्ता) बाहर से धारण करने वाला तत्त्व, (उरूची) बहुत उत्पादन करने वाली विस्तृत वसुन्धरा (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों के दान से हमें शान्ति दे। (बृहती रोदसी) विशाल द्युलोक एवं पृथिवीलोक शान्तिदायक हों] (अद्रिः) मेघ [जल की वर्षा कर] अथवा पर्वत हमें शान्ति दें। (देवानां सुहवानि) इन प्राकृत देवों के सुन्दरकर्म अथवा विद्वानों के मधुर उपदेश या उनके सुखकारी आवाहन= निमन्त्रण हमें शान्ति पहुंचावें ॥३॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥

भावार्थ--(ज्योतिरनीकः, अग्निः) प्रकाशसामर्थ्य वाला अग्नि, ज्ञानप्रकाश बल वाला विद्वान् अथवा, तेजस्वी सेना वाला [राष्ट्र को] आगे ले जाने वाला सभापति-राजा* (नः शम्) हमें शान्ति दें; (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायुवें (नः शम्) हमारे लिये शान्तिकारक हों; (अश्विनौ) उपदेशक और अध्यापक हमें (शं) शान्ति [—दायक सन्देश] देवें; (सुकृतां) सुकर्मियों के (सुकृतानि) सत्कर्म हमें शान्ति पहुंचावें; (इषिरः) स्वयंगतिशील तथा अन्यों को गति देने वाला (वातः अभिवातु) वायु हमारे चारों ओर बहता रहे। भाव यह है कि सृष्टि के समाज में चतुर्दिक् वातावरण सुखकारी हो ॥४॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥

---

*अग्नि का अर्थ है 'आगे ले चाने वाला' राजा। राजा का अर्थ किंग या बादशाह नहीं, अपितु राष्ट्र का सर्वोच्च अधिकारी, प्रधान या सभापति होता है। द्र. सत्यार्थ प्रकाश ६ समु.।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—(पूर्वहूतौ) पूर्वकल्प के समान इस कल्प में भी प्रशंसनीय गुण-कर्म वाले (द्यावापृथिवी) सूर्य [अपनी किरणों से] तथा भूमि [अपने उत्पादनों] से हमारे लिये शान्तिदायक हों; (दृशये) [दर्शन के योग्य पदार्थों के] देखने के लिये (अन्तरिक्षम्) खुला आकाशमण्डल शान्त [अर्थात् विषयोपद्रवों से रहित] हो जिससे हम 'दृश्य' से सुख पा सकें; (ओषधीः वनिनः) ओषधियां तथा वनस्पतियां अथवा वनवाली ओषधियां अर्थात् ओषधियों के वृक्षादि [की सुरक्षा व वृद्धि से, वे] रोगशामक हों; जिससे हमें शान्ति उपलब्ध हो; (जिष्णुः) जयशील (रजसस्पतिः) राष्ट्र का नायक अन्तः बहिः शत्रुओं से रक्षा करता हुआ] हमारे लिये शान्ति [की व्यवस्था] करे। अथवा लोकलोकान्तरों का पालक सदा जयशील परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो ॥५॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

भावार्थ—१. (क) (देवः इन्द्रः वसुभिः नः शम्) ज्ञान का प्रकाशदाता सदाचार का शिक्षक आचार्य, वसु ब्रह्मचारियों के साथ हमें शान्ति का पाठ पढ़ाने वाला होवे।

(ख) दिव्यगुणयुक्त 'इन्द्रियाधिष्ठाता' आत्मा वासक पंचतत्त्वों के साथ शान्तियुक्त रहे।

(ग) चराचर जगत् का प्रकाशक सूर्य, पृथिवी अथवा धन विद्युत् आदि पदार्थों के साथ शान्ति का ताप फैलाने वाला हो।

२. (सुशंसः) सुनाम व प्रशंसनीय (वरुणः आदित्येभिः शम्) (क) चुनिन्दा विद्वान् या वृत कुलपति आदित्य ब्रह्मचारियों के साथ शान्ति का पाठ पढ़ाने वाला होवे। (ख) जल समुदाय, सूर्य किरणों के या संवत्सरीय द्वादश मासों के साथ हमें शीतल करें। (ग) 'अपः=वीर्य प्रवाहों का देवता' आत्मा ज्ञानेन्द्रियों के साथ शान्तियुक्त रहे।

३. (जलाषः) दुःखनिवारक व त्रितापनाशक, (रुद्रः रुद्रेभिः शं नः) (क) कठोर अनुशासन में रखने के लिये दण्ड देकर रुलाने वाला विद्याधिकारी, रुद्र ब्रह्मचारियों के साथ शान्ति देने वाला हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ख) (जलाषः) इन्द्रियों की अभिलाषा पूरी करने वाला, मृत्यु दुःख के कारण बन्धुओं को रुलाने वाला जीव, पंच प्राणों के साथ शान्ति-स्थापक हो।

४. (इह) यहीं पर, इस जीवन में (त्वष्टा ग्नाभिः नः श शृणोतु) विश्वकर्मा-शिल्पी के समान कांट-छांट करने वाला अर्थात् सदसद्विवेकी पुरुष अपनी वाणियों से हमें शान्ति का सन्देश ही सुनावे अथवा हमारी वाणियों के द्वारा शान्ति की बात सुने ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः॥

भावार्थ—यज्ञपरक अर्थ—

१. (शं नः भवतु) शान्तिदायक हो हमारे लिये (सोमः) सोमलतादि औषधिवर्ग; (शं नः) शान्तिदायक हो हमारे लिये (ब्रह्म) वर्धक अन्य अन्नादि पदार्थ; (शं नः) शान्तिदायक हों, (ग्रावाणः) मेघसमूह या पत्थरसम दृढ़ कन्दमूलादि फल या यज्ञ-पात्रादि; और इस प्रकार (नः) हमारे सब (यज्ञाः) यज्ञकर्म (शम् उ सन्तु) शान्ति देने वाले हों। (शं नः भवन्तु) शान्तिदायक हों (स्वरूणां मितयः) [यज्ञकर्मों की] आधारभूत नियमों की मर्यादायें और (शं नः) शान्तिदायक हों (प्रस्वः) उनके परिणामफल। अर्थात् कर्मों की गतियों [=चालों, मर्यादाओं, आधारों] के (मितयः) परिमाण, इयत्तायें, किस सीमा तक कौन सा कर्म करना चाहिये, वह सीमा और फिर उनके (प्रस्व) नतीजे दोनों शान्ति-पूर्ण चाहिये और (शम् उ अस्तु) शान्तिदायक हो हमारा (वेदिः) कार्यक्षेत्र, या यज्ञमण्डप, प्लैटफार्म।

२. शान्ति का सन्देश दे (सोमः) यज्ञ का ब्रह्मा, आचार्य; (ब्रह्म) वेद ज्ञान, मन्त्र; (ग्रावाणः) ज्ञानी अर्थात् ऋत्विज् आदि इस प्रकार यज्ञ शान्ति के स्वर का वाहक हो। (स्वरूणां मितयः) उस यज्ञ [—स्थल] के साझों के नाप-तौल अर्थात् रूप-आकार आदि तथा (प्रस्वः) इसमें प्रयुक्त विविध शाकल्य विविध प्रकार की ओषधियां और [यज्ञशाला के खम्भों को नापकर तथा स्थान को नापकर बनी] उसकी (वेदिः) वेदि, यज्ञमण्डप सब शान्ति वातावरण को पैदा करने वाले हों।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. (सोमः) सोमरस=ज्ञानामृत (ब्रह्म) सोमरस=ज्ञानामृत पिलाने वाला ब्रह्मज्ञानी (ग्रावाणः) सोमरस निकालने का 'प्रस्तर' [=पत्थर]=ज्ञानामृत बनाने वाले दृढ़व्रती ज्ञानी और (यज्ञः) नानाविध यज्ञ=शुभकर्म, (स्वरूणां मितयः) यज्ञस्तम्भों के परिमाण==शुभकर्मों की मर्यादायें, (प्रस्वः) अन्य पदार्थ उपस्थित औषधियां==शुभकर्मों के परिणाम या अन्य सामग्री (वेदिः) यज्ञस्थली=ज्ञानगोष्ठ ये सब शान्तिदायक हों। यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री निर्दोष हो, ताकि शान्ति की वासना, शान्ति का वातावरण पैदा हो ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥

भावार्थ—(उरुचक्षाः) [जीवमात्र के लिये] सृष्टि के पदार्थों के स्पष्ट दर्शाने वाला दूर-दूर तक उजाला करने वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम् उदेतु) शान्ति [बिखेरता हुआ] उदित हो; अर्थात् वर्षाभाव कभी न हो। शान्तिदायिनी हों (चतस्रः प्रदिशः) चारों विस्तृत दिशायें अर्थात् झंझावत आदि कष्ट न हो; शान्तिदायिनी हों, (पर्वताः ध्रुवयः) दृढ़-अचल वन-पर्वतमालायें; [अर्थात् भूकम्पादि उपद्रव न हों और ये स्थिर पहाड़ हम मनुष्यों की सुखशान्ति का साधन बनें] शान्तिदायिनी हों हमारे लिये (सिन्धवः) नदी समुद्रों की धारायें [अर्थात् बाढ़ आदि दैवी प्रकोप न हों] और सुखकारक हों निश्चय से (आपः) वापी-कूप-तड़ाग आदि के जल [अर्थात् सूखा न पड़े।] भाव यह है कि अतिवृष्टि अवृष्टि आदि जल सम्बन्धी कष्ट हमें कभी न हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥

भावार्थ—१. शान्तिदायक हो हमारा (अदितिः) अखण्ड प्रकृतिमाता, (व्रतेभिः) अपने भौतिक नियमों से; शान्तिदायक हों हमारे लिये (स्वर्काः) प्रशंसनीय (मरुतः) सब को जीवन देने वाले प्राण; शान्ति का प्रकाश करें हमारे लिये (विष्णुः) [विश्व के कोने-कोने में किरणों को प्रविष्ट कराने वाला दिन में दृश्यमान]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्य और शान्ति [की सौम्य उष्णता] दे हमें (पूषा) [रात्रि में अस्त हुआ, पोषक] सूर्य या चन्द्रमा; शान्ति दे हमें (भवित्रम्) अन्तरिक्ष या अन्तरिक्षस्थ जल की नमी; और शान्ति की सांस दे हमारे लिये चराचर को गति देने व धारण करने वाला वायु।

२. शान्ति [का सन्देश] दे हमें अखण्ड रूप से सब कल्पों में याथातथ्यतः अर्थों का विधान करने वाली वेदमाता अपने सत्यविद्या के नियमों से; विधानों से; शान्ति [का प्रवचन] करें हमारे लिये (स्वर्काः) सब पदार्थों के गुणधर्म का सुस्पष्ट स्तवन=विवेचन करने वाले (मरुतः) तत्त्वदर्शी ज्ञानी जन; शान्ति [की व्यवस्था] करें जन-मानस में प्रविष्ट राजा और निश्चय से शान्ति करे जन-शरीर का पोषक राजा; इस प्रकार (शं) सुरक्षित एवं सुखमय होवे, हमारा (भवित्रम्) भविष्य और शान्तिदायक ही होवे (वायुः) जीवन का सारा गतिमय वातावरण।

३. (अदितिः) विदुषी माता या विद्वानों की माता (व्रतेभिः) अपने सत्य, संयमपूर्ण जीवन के सत्कर्मों से हमें शान्तिदायिनी हो; प्रशंसा के पात्र प्राण के धनी विद्वान् जन या प्रिय सम्बन्धी जन (विष्णुः) सब के ऊपर व्यापक, घर का सबसे वृद्ध पुरुष (पूषा) सब परिवार का पालन-पोषण करने वाला व्यक्ति शान्ति [की व्यवस्था] करे ताकि (भवित्रम्) भवितव्यता हमारा भविष्य अर्थात् जो अवश्यं भावी है, अथवा गृह का वर्तमान, शान्ति [का परिणाम] दे और इस प्रकार सुख-शान्तिमय हो जावे हमारा वातावरण [परिवार, समाज, का]।"

भाव यह है कि जिस घर में सेवा में अनथक अखण्ड भाव से लगी सत्याचारिणी विदुषी माता, अच्छे सम्बन्धी, घर का बुजुर्ग और सबका पोषण करने वाला=कमाने वाला व्यक्ति होगा, उस गृह-परिवार का भविष्य उज्ज्वल और वातावरण सुखमय होगा ॥९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥

भावार्थ—१. शान्तिदायक हो हमारे लिये (त्रायमाणः) रक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता हुआ (देवः) प्रकाशमय सूर्य। शान्तिदायिनी=सुहावनी हों हमारे लिये (विभातीः उषसः) जगमगाती हुई प्रभात वेलायें। शान्ति =ठण्ढक पहुंचाने वाला हो—हम सब (प्रजाभ्यः) प्राणियों के लिये (पर्जन्यः) खेतों को सींचने शाला मेघ। शान्तिकारक हो हमारे लिये (शम्भुः) शान्ति-सुख=समावस्था लाने वाले पदार्थों का उत्पादक (क्षेत्रस्य पतिः) जमीन का मालिक किसान अर्थात् खेत का स्वामी कृषक सुखदायक पदार्थों को उत्पन्न कर सर्व जन मंगलकारी हो [वह तमाखु भांग आदि नशीली वस्तुओं का उत्पादन न करें।

२. (देवः) सम्पूर्ण सुखों के दाता (सविता) उत्तमकर्म व प्रज्ञान में प्रेरक परमात्मा हमारे लिये शान्तिदायक हो और हों शान्तिदायिनी उस देवसविता का (विभाती उषसः) चमकती जीवनदायिनी जागृति की शक्तियां। (पर्जन्यः) अपने सृष्टिकर्त्तृ-त्वादि गुणों को जीवों के सुख के लिये प्रकट करने वाला परमात्मा (प्रजाभ्यः) प्राणिमात्र के लिये शान्ति देवे। (शम्भुः) मंगलमय (क्षेत्रस्य पतिः) इस जगत्-क्षेत्र का स्वामी परमात्मा हमारे लिये शान्ति [की व्यवस्था] करे ॥१०॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॒वाः शं नो॒ अप्याः॑॥

भावार्थ—(विश्वदेवाः) सब विद्या सत्यधर्म आदि शुभगुणों के दाता (देवाः) विद्वान् पुरुष हमें शान्ति दे। (सरस्वती) सरस्वती-माता (सह धीभिः) ज्ञान-कर्म सन्ततियों के साथ अर्थात् अनेक प्रकार की बुद्धि देकर एवं नानाविध शिल्प कर्म सिखाकर हमारी [दुःख—] शान्त करे। (अभिषाचः) चारों ओर से ज्ञान का सेचन एवं सेवन करने वाले अथवा अपने बल सामर्थ्य से जीने वाले तपस्वीजन और (रातिशाचः) विद्या-अन्न-धन का सेचन सेवन करने वाले त्यागी पुरुष अथवा 'दान-दक्षिणा-वेतन' से जीने वाले पुरुष हमारे लिये शान्ति [का मार्ग प्रशस्त] करें। (दिव्याः) आकाश के पदार्थ [वायु, विमान आदि], (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ [अन्न, सुवर्ण, अग्निरथ, चक्रवर्त्ती साम्राज्य, राज्य आदि] और (अप्याः) जल सम्बन्धी पदार्थ [नौका, मोती मूंगा आदि] अर्थात् तीनों प्रकार के पदार्थ हमारे लिये शान्ति दें ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

2613

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥

भावार्थ—शान्ति प्रदान करें हमें (सत्यस्य पतयः) सत्य मानने, सत्य कहने एवं सत्य करने वाले न्यायव्यवस्था अथवा रक्षक अथवा 'धर्मानुसार यथा योग्य प्रीतिपूर्वक' वर्तने वाले। शान्ति [स्थापित] करें हमारे (अर्वन्तः) चरित्र सदाचरण वाले व्याख्यातागण; हमारे (गावः) दार्शनिक, विचारकगण, शान्तिदायक गौ आदि पशुओं के रक्षक। (ऋभवः) उत्तम कोटि के वैज्ञानिक, कलाकार, मनुष्यों पशुओं के कायाकल्प करने वाले चिकित्सक अथवा 'आर्किटेक्ट' —मण्डली (सुकृतः) सुकर्मी अथवा [योजनाओं को] सुविधानुसार क्रियान्वित करने वाले 'इन्जीनियर'-गण तथा मैन्युफैक्चरर्स और (सुहस्ताः) हस्तक्रिया में चतुर कारीगर [मालन्स, मिस्त्री, लुहार सुनार आदि]। शान्ति बनाये रक्खें [अर्थात् आशीष देने व मंगल कहने वाले हों] (हवेषु) आयोजनों के अवसर पर, सम्मेलनों= संगतों पर हमें (पितरः) रक्षा करने वाले बड़े वृद्ध अनुभवी पुरुष [ताकि उनके आशीर्वादों से यज्ञादि उत्तम कर्म सफल हों, शान्ति-दायक हों]।

भाव यह है कि सत्य के पालक, व्याख्याता, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सुकृत्, कारीगर सबका उद्देश्य प्राणीमात्र की शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करते हुए शान्ति स्थापन करना होना चाहिये। तभी विश्व में शान्ति [पीस] और व्यवस्था [आर्डर] स्थापित हो सकती। तभी आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य भूमण्डल पर स्थापित हो सकेगा ॥१२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥

ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १-१३ ॥

भावार्थ—१. शान्तिकारक हों हमारे लिये (एकपात् अजः देवः) अपने एक भाग में सम्पूर्ण जगत् को रखने वाले अजन्मा= अकारणकारण सर्वसुखदाता परमात्म देव; (अहिः) अमरणधर्मा (बुध्न्यः) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन सबका आदिमूल परमेश्वर; (समुद्रः) जीवों को सम्यग् प्रकार से उन्नत करने वाला तथा प्रलय के बाद सृष्टि बनाते समय परमाणुओं को सम्यग् प्रकार से आगे गति देने वाला जगदीश्वर; (अपां* नपात्) चराचर में व्याप्त प्रजाओं को न गिरने देने वाला अर्थात् सब प्राणिमात्र का आश्रय (पेरुः) दुःखों से पार कर मुक्ति दशा तक पहुंचाने वाला परमात्मा; (पृश्निः) सबको छूने वाला (देवगोपा) चराचर के सब देव=दिव्य पदार्थ और गो=उनकी शक्तियों का रक्षक परमेश्वर।

२. शान्तिदाता हो (अजः) सदा गतिमय हो प्रकाश फैलाने वाला (देवः एकपाद्) स्वयं प्रकाश एक गति अर्थात् अनादि काल से अपरिवर्त्तित गति वाला 'सूर्य'; शान्तिदायक हो (अहिर्बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में संचार करने वाले 'मेघ' या 'विद्युत्'; शान्तिदाता हो 'जलपूर्ण सागर' या 'मेघाच्छन्न आकाश'; शान्तिदायक हो (अपां नपात् पेरुः) जलों को न गिरने देने वाला अर्थात् थामने वाला एवं विना पांव वाला, सबका जीवन पूर्ण करने वाला 'वायु'; और शान्तिमय हो (देव+गो+पा) प्रकाशमय एवं गतिशील सूर्यचन्द्रादि को अपने-अपने नियम में रखने वाला (पृश्निः) हिरण्यगर्भ 'परमात्मा' अथवा सब चराचर जगत् का स्पर्श=सम्बन्ध रखने वाला परमात्मा। भाव यह है कि सब प्रकार से परमात्मा की सृष्टि हमारे लिये शान्तिदायिनी सुखकारिणी हो।

सूर्यपरक अर्थ—

३. शान्तिदाता हो हमारे लिये (अजः) गतिशील सर्वप्रकाशक (एकपाद्) अनादिकाल से नियमित एक ही चाल वाला (देवः) स्वप्रकाश जीवनदाता (अहिः) न हिंसा करने वाला (बुध्न्यः) सबके बोध=व्यक्तता=दृष्टिगोचर होने का कारण (समुद्रः) सम्यग् प्रकार से अपनी किरणों द्वारा जलों की ऊर्ध्व गति करने वाला अर्थात् जलों को बाष्प बनाने वाला (अपां न पात् पेरुः) जल-तत्वों को विद्युत् रूप में विना पाँव पार करने वाला (पृश्निः) सबको स्पर्श करने वाला और (देवगोपा) भौतिक दिव्य पदार्थों तथा उनके गुणों की रक्षा करने वाला सूर्य। अर्थात् प्रत्येक सौर मण्डल का आधार सूर्य होता है, वह हमें शान्ति देवे ॥१३॥

---

*ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। यजुः ४०।१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥१४॥

भावार्थ—(इन्द्र) परमैश्वर्यशाली भगवान् (विश्वस्य=विश्वस्य मध्ये) सब संसार के मध्य में अर्थात् अन्दर बाहर राज करता है अर्थात् परमेश्वर अन्तर्यामी होकर सर्वोपरि विराजमान है [सब विश्व ईश्वर का राज्य है। उस सकलैश्वर्य युक्त प्रभु के राज्य में] हम सब (द्विपदे) दो पांव वाले मनुष्यादि एवं (चतुष्पदे) चार पांव वाले गो अश्वादि पशु के लिये शान्ति हो [हम सब प्राणियों के लिये वह त्रितापों से शान्ति करने वाला हो] ॥१४॥

शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः ।

शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥

भावार्थ—भूमण्डल पर, हमारे देश में—

वायु हमारे लिये (शं पवताम्) शान्ति बहावे अथवा हमें अपने शीतलगुण से पवित्र करे, शीतल मन्द समीर बहता रहे; झंझावात=झंकझोरने वाली हवायें न चलें। सूर्य (शं=शं यथा स्यात्तथा) शान्ति देता हुआ, तपे अर्थात् सूर्य का ताप हमारे अनुकूल हो। सूर्यताप से रोगनिवारण कर शान्ति लाभ करें। सूर्य की उष्णता का प्रकोप न हो। शान्ति के लिये हमारी, (देवः[1]) ऊपर से गुजरता (कनिक्रदत्) गरजता (पर्जन्यः[2]) फसलों को हराभरा या भूमि को उपजाऊ करने वाला बादल (अभिवर्षतु) सब ओर से बरसे। अर्थात् ऊपर आकाश पर गरजते मेघ विना बरसे, उड़ न जावें; प्रत्युत गरजने वाले मेघ भी खेतों की लहलहाने के लिये धिर-धिर बरसें; [ताकि कहीं भी सूखा न पड़े और इतना भी न बरसें कि भीषण वर्षा से बाढ़ आकर जीवन में अशान्ति आवे]। ये सब हमारी शान्ति के लिये कर्म करें ॥१५॥

---

१. देवः कस्मात् दानाद्वा·····द्युस्थानो भवतीति वा ।

२. पर्जन्यः । परि+जन्यः; पृ=पूर्ति के लिये+जन्यः=पैदा हुआ, पर=दूसरे के लिये+जन्यः=पैदा हुआ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहा॑नि॒ शम्भ॑वन्तु नः॒ शं रात्री॒ः प्रति॑ धीयताम् ।
शन्न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शन्न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शन्न॑ इन्द्रा॒पूष॑णा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शँय्योः ॥

भावार्थ—(अहानि) दिन हमारे हों शान्ति से कटने वाले और (रात्रीः) रातें (प्रतिधीयताम् शं) हुआ करें शान्तिदायिनी। दिन में शान्ति का प्रकाश मिले और रात्रि में शान्ति की स्तब्धता। दिन ओढ़ाये हमें शान्ति की भीनी चदरिया और रात्रि लपेटे हमें शान्ति के अङ्क में। हमारे 'कर्म' शान्तिमय हों और 'भोग' शान्तिधारण किये [सीमा में, मर्यादित] हों। (इन्द्राग्नी) 'सूर्य और अग्नि' हमारे लिये (अवोभिः) अपनी रक्षा की साधन सामग्री से शान्ति-दायक हों; (रातहव्या) उपयोगी खाद्यद्रव्यों=भोगों के देने वाले एवं अपने लिये स्वयं प्राप्त कर लेने वाले (इन्द्रावरुणा) 'सूर्य और जल' हमारे लिये शान्तिदायक हों; (वाजसातौ) बल वीर्य के बढ़ाने वाले अन्नादिलाभ की योजना में (इन्द्रापूषणा) 'सूर्य और वायु' शान्ति-दायक अर्थात् सुविधाजनक हों; (शंयोः) सुख शान्ति के इच्छुक जन के (सुविताय) सु+इताय=सत् प्रवर्त्तन अथवा सु+वित्ताय= उत्तम फल लाभ के लिये (इन्द्रसोमा), 'सूर्य और चन्द्र' शान्ति-दायक हों।

इस मन्त्र में 'दिवस' और 'रात्रि' का समय शान्ति से [क्रमशः 'कर्म' और 'भोग' में] गुजरे ऐसी प्रार्थना है। दिन का सम्बन्ध सूर्य के उदय से है; उसी से हमें प्रकाश, अन्नादि लाभ, बलवीर्य की वृद्धि एवं सत् प्रवर्त्तन की दिशा मिलती है; ताकि हम उत्तम कर्म कर सकें। सूर्य के अस्त हो जाने का नाम रात्रि है। उस समय हमें अग्नि, जल, वायु एवं चन्द्र शान्ति पहुंचाते हैं। दिन में सूर्य के साथ, रात्रि में अकेले। इस प्रकार (नः अहानि शं भवन्तु) हमारे दिन हमें शान्ति पहुंचाते हैं और (रात्रीः शं प्रतिधीयताम्) रात्रियां शान्ति धारण कराती हैं ॥१६॥

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शँय्योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥

भावार्थ—(शं भवन्तु) शान्तिदायक हों हमारी (अभीष्टये) अभीष्ट सुख की सिद्धि के लिये (देवीः=देव्यः) सूर्य आदि प्रकाश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मय [आकाशीय] शक्तियां और (भवन्तु) होवें हमारे (पीतये) पीने =उपयोग एवं पालन-सुरक्षा के लिये (आपः) शान्त प्रसरणशील विद्युत् आदि शक्तियां। इनको (शं योः[1]) शामक और निरोधक गुण प्रभावों की (नः अभिस्रवन्तु) हमारे ऊपर चारों ओर से वर्षा होवे अर्थात् देवी एवं अप् शक्ति के प्रभाव हमें घेरे रक्खें।

२. (शं भवन्तु) शान्तिदायक होवें (अभीष्टये पीतये) हमारी अभिलषित=इच्छित कार्यों की सिद्धि एवं पीने और पालने के लिये (देवीः आपः) दिव्यगुणों से युक्त जल[2]। और (शंयोः) शान्ति=विश्रान्ति=निद्रादि सुख की अथवा रोगादि नाश के लिये (नः अभिस्रवन्तु) हमारे लिये चारों ओर वर्षा करें।

३. शान्तिसुखदाता हों (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त (आपः) अपने ज्ञान-बल-क्रिया गुणों से सब चराचर जगत् में 'व्यापक' परमात्मा हमारे (अभीष्टये) अभ्युदय सिद्धि[3] के लिये तथा (पीतये) पूर्णानन्दतृप्ति अर्थात् निःश्रेयस सिद्धि के लिये। और सर्वव्यापक परमात्मदेव (शं) सुख शान्ति एवं (योः) भय दुःख निरोध=अभय की (नः अभिस्रवन्तु) हमारे ऊपर वर्षा करें। हे आनन्दघन जगदीश्वर चहुं ओर सुख की वर्षा करो ॥१७॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १८

भावार्थ—(द्यौः) प्रकाशमान आदित्यलोक शान्ति [का प्रकाश] दे; (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष शान्ति [की वर्षा] करे; (पृथिवी) पृथिवीलोक शान्त [वातावरण वाला] हों; (आपः) [वापी-कूप-तड़ाग एवं नदी समुद्रादि की] जलधारायें शान्तिदायिनी हों; (ओषधयः) [नाना अन्न, शाक तथा जीवन्ती, शतावरी,

---

१. शंयुः=सुख की कामना करने वाला। या यह 'शंयु' (अष्टा० ५।२।१३८) शब्द की षष्ठी है।

२. अथर्व का. १। सू. ६। मं. ४ के अनुसार 'धन्वन्याः, अनूप्याः, खनित्रिमाः, कुम्भाभृताः और वार्षिकी' ये ५ प्रकार के जल होते हैं।

३. अर्थात् शारीरिक मानसिक आत्मिक सिद्धि के लिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गिलोय आदि] ओषधियां [शरीर में त्रिदोष दूरकर] शान्ति [समावस्था पैदा] करें; (वनस्पतयः) [वट गूलर आदि] वृक्ष-वनस्पतियां शान्तिदायक हों; (विश्वेदेवाः) सब सूर्य चन्द्रादि देवता शान्ति दें और (ब्रह्म) प्रकृति शान्त रहे अथवा (विश्वेदेवाः ब्रह्म) शरीरस्थ प्राण मन इन्द्रिय देव तथा वीर्य [विषयभोगेच्छा की उष्णता व उत्तेजना उत्पन्न न कर] शान्त [=संयमित रहें] इस प्रकार (सर्वं] सम्पूर्ण पदार्थ हमें शान्ति देने वाले हों; यह (शान्ति-रेव) शान्ति भी वस्तुतः [सुखवर्धक-अभ्युदय-निःश्रेयस की प्राप्ति में सहायक पुरुषार्थ की] शान्ति हो [हम आलस्य या प्रमाद की अवस्था को भ्रान्ति से शान्ति न समझ बैठें]।

(सा शान्तिः) वह तू हे शान्ति देवी ! (मा एधि) मेरे लिये [दिनदूनी रात चौगुनी] बढ़ती जा अथवा मुझ को उत्तरोत्तर बढ़ा। तू मेरे जीवन के लिये बढ़े, न कि मरण के लिये। हे शिव-शंकर ! तेरी कृपा से मेरे लिये सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो जावे।

मनुष्य का देह जब 'शान्त' हो, तो उसको अगला जन्म वर्त्त-मान से भी अच्छा मिले ॥१८॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

यजुः अ० ३६। मं० ८, १०, ११, १२, १७, २४॥

भावार्थ—(चक्षुः) सर्वद्रष्टा एवं सब का नेत्र (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी एवं सूर्य चन्द्रादि देवताओं को शक्ति देने वाला, अर्थात् शक्तिस्रोत (तत्) वह (शुक्रम्) सर्वसामर्थ्य युक्त अर्थात् आदिकरण एवं शुद्धस्वरूप [=क्लेश-कर्म-विपाक-आशयों से अपरामृष्ट'=निर्मल ज्योति] परमात्मा (पुरस्तात्) सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व से ही (उच्चरत्)* क्रियाशील रूप से वर्त्तमान है। [अर्थात् वह परब्रह्म अनादिकाल से एकरस अपरिवर्त्तनशील रूप में सक्रिय सर्वोपरि विद्यमान है, वह प्रकृति से 'उत्' पृथक् रहता हुआ सदा

*उच्चरति=उच्चारण करता है, बोलता है। परमात्मा के साथ सम्बन्ध होने पर इसका अर्थ जानता है, 'सुपरवाइज करता' है होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'चरत्'=क्रिया करता रहता है। वह सदा कर्म करता है, कभी विश्राम नहीं करता]। अथवा अच्छी तरह से सर्व [परमाणुवों व जीवों के कर्मों] का ज्ञाता है। आओ भाई लोगों! उसके अनुग्रह से हम (तत्) उस ब्रह्म को [और उसके बनाई सृष्टि के सौन्दर्य को] (पश्येम शरदः शतम्) सौ वर्ष तक देखते रहें; (जीवेम शरदः शतम्) सौ वर्ष तक [उसकी और उसके बनाये प्राणियों की सेवा करते हुए] जीवें; (शृणुयाम शरदः शतम्) सौ वर्ष तक [उसकी कल्याणी वाक् को] सुनते रहें; (प्रब्रवाम शरदः शतम्) सौ वर्ष तक सत्य विद्या का प्रवचन व सत्य धर्म का उपदेश करें; (अदीनाः स्याम शरदः शतम्) इस सौ वर्ष की अवधि में हम अदीन अर्थात् स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी रहें; [किसी के आगे झुके नहीं। इतना ही नहीं] (शरदः शतम्) शरद् ऋतुओं की एकशती से भी (भूयः च) और अधिक हम संसार में 'अदीन होकर, देखें, जीवें, सुनें, बोलें अर्थात् सौ वर्ष से भी अधिक दीर्घ जीवन का आनन्द अदीन होकर उपयोग करते रहें।

सृष्टि के पूर्व से ही, वह सबका साक्षी और आदि मूल एवं शुद्धस्वरूप परब्रह्म चराचर के देवों=विद्वानों व दिव्य पदार्थों का हित करता है और अच्छी तरह से सब का ज्ञाता है। उसके अनुग्रह से हम नर देहधारी जीव,

सौ वर्षों तक अपनी आंखों से देखते रहें; आंखों में कोई भौतिक व मानसिक विकार उत्पन्न न हो।

सौ वर्षों तक जीवन दीप जलता रहे; उसमें किसी प्रकार से कोई न्यूनता न आवे।

सौ वर्षों तक कानों में मधुर हितकारी राग आते रहें; श्रवण शक्ति में किसी प्रकार का ह्रास न हो।

सौ वर्ष तक हमारी वाणी माधुर्य उड़ेलती रहे; सत्य प्रवचन में कोई बाधा उपस्थित न हों।

सौ वर्ष तक हम अदीन अर्थात् 'शरीर मन आत्मा' से पूर्ण स्वस्थ रहें; किसी के मुहताज न बनें; किसी के आगे हम हाथ न फैलावें।

इतना ही क्यों? सौ वर्षों से और भी अधिक समय तक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वाङ्ग स्वस्थ रहते हुए अपनी इस जीवन यात्रा को पूरी करें। हे प्रभो ! यही हमारी कामना है ॥१९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

भावार्थ—(दैवम्) दिव्य गुण-शक्तियों से युक्त अथवा 'देव'= आत्मा के ज्ञान का साधन अथवा 'देव'=इन्द्रियां जिसके अधीन रहती हैं; ऐसा जो मन (जाग्रतः दूरम् उदैति) जागते हुए पुरुष का दूर-दूर तक बाहर की उड़ान लेता है और (सुप्तस्य तथा एव एति) सोते हुए पुरुष का भी वैसा ही अन्दर चलता=क्रिया करता रहता है अर्थात् स्वप्नादि व्यवहार में प्रवृत्त रहता है; इस प्रकार (दूरं-गमम्) दूर-दूर तक स्वयं जाने वाला एवं इन्द्रियों को ले जाने वाला है; (ज्योतिषां ज्योतिः) सब इन्द्रियों का प्रकाशक है; (एकम्) एक अकेला है; (तन्मे मनः) वह मेरा मन, हे विश्व के एक पति ! तेरे अनुग्रह से सदा (शिव संकल्पमस्तु) शिव संकल्प वाला= शुद्ध उत्तम विचारों वाला होवे।

भाव यह है—मन अत्यन्त वेगवान् और शक्तिसम्पन्न है, सर्वथा 'संकल्प-विकल्प' 'उधेड़-बुन' में लगा रहता है। वह,

१. जागते हुए पुरुष को दूर-दूर की सुझाता है,

२. सोते हुए पुरुष को भी (तथैव) वैसे ही चलाता=स्वप्नादि दिखाता है,

३. (दैवम्) आत्मा को ज्ञान एकमात्र उसी के कारण होता है और उसके विना आत्मज्ञान भी सम्भव नहीं,

४. (दूरं गमम्) इस प्रकार 'देश काल' की सीमाओं से दूर आत्मा को ले जाता है. भूत-भविष्य का दर्शक है [=भूत या भविष्य का कईयों को स्वप्न में दर्शन होता है, कई लोग भूतकाल के पूर्व-जन्म के किस्से स्मरण करते हैं, कईयों को भविष्य का ज्ञान भी होता है]।

५. (ज्योतिषां ज्योतिः) आंख आदि विषयप्रकाशक इन्द्रियों की शक्ति का मूल स्रोत है, जिसके विना इन्द्रियां कुछ नहीं कर सकती। ऐसा मन शान्त संकल्प वाला होवे; अशान्त चञ्चल न रहे ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानान्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

भावार्थ—(येन) जिस [नाना सामर्थ्ययुक्त] मन से (अपसः) कर्म योगी पुरुष (यज्ञे मनीषिणः [सन्तः]) विद्वत्पूजन, सज्जन संगतिकरण एव सब सत्यविद्या-धर्मादि के दान रूप श्रेष्ठ कर्मों के अवसर पर मनस्वी अर्थात् मन को आत्मा की इच्छानुसार चलाने वाले होकर तथा (विदथेषु धीराः [सन्तः]) [यज्ञों द्वारा प्राप्त] ज्ञान-अनुभव के अनुसार कार्य करने के संघर्ष में* अथवा योगक्षेम के वहन के निमित्त किये जाने वाले संघर्ष के अवसरों पर धीर=धैर्यवान् स्थितप्रज्ञ होकर अर्थात् 'युद्धों में मनीषी' एवं 'युद्धों में धीर' होकर (कर्माणि) कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं; जो मन (अपूर्वम्) इन्द्रियों में अद्वितीय अथवा अनुपम गुण कर्म स्वभाव वाला है (यक्षम्) पूजनीय, महिमामय है (प्रजानां अन्तः) प्राणियों के अन्दर स्थित है, 'अन्तःकरण' है; (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) हे अन्तर्यामिन्! वह मेरा मन शान्त विचारों वाला अथवा धर्म को चाहने वाला होवे।

भाव यह है—(अपसः) व्यापकता व स्वतन्त्रता से कर्म करने के अधिकारी नर; (यज्ञे) शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने के समय (मनीषिणः) मननशील होकर=सदसद्विवेकी होकर जिस मन से (कर्माणि कृण्वन्ति) काम लेते हैं और (विदथेषु) विविध प्रकार की ज्ञान-गोष्ठियों में या अन्य प्रकार के संघर्षों में (धीराः) धीर=शान्त चित्त=क्षोभरहित होकर जिस मन की सहायता से (कर्माणि कृण्वन्ति) सब व्यवहारों को साधते हैं; (अपूर्वम्) यज्ञ व विदथ के समय कर्म करने पर, जिससे 'पूर्व' कोई नर का सहायक नहीं है अर्थात् जो ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियों के अपने-अपने कर्म करने से पूर्व ही जाग्रत=सक्रिय रहता है और जिसके सम्बन्ध के विना इन्द्रियां स्वकर्म करने में समर्थ एवं प्रवृत्त नहीं होतीं; (यक्षम्) जो पूजनीय 'परदेव' है अथवा प्रत्येक कार्य करने में पूर्ण समर्थ होता है और

---

*विद्=जानना+अथ=पश्चात् तदनुसार कार्य करना। द्र० स्व. सु. ३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(प्रजानाम् अन्तः) प्राणी मात्र का अन्तःकरण अन्दर से बोध कराने वाला है; ऐसा मेरा मन, हे सर्वान्तर्यामिन् ! सर्वद्रष्टा प्रभो ! सदा शुभ संकल्प वाला होवे। कभी अशुभ संकल्प वाला न होवे, ताकि मेरे 'यज्ञ' एव 'विदथ' पूर्ण सफल होवें ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु ।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

भावार्थ—जो मन (प्रज्ञानम्) प्रज्ञा=विशेष ज्ञान [=अन्तः स्फुरण] का हेतु (चेतः) चिन्त=अर्थात् सामान्य-ज्ञान [=सामान्य पदार्थ बोधक] का हेतु और (धृतिः) धारणा-शक्ति [ज्ञानधारक] का हेतु है और जो मन (प्रजासु अन्तः) प्रजाओं के [हृदय के][1] अन्दर (अमृतं ज्योतिः) अविनाशी सब इन्द्रियों का प्रकाशक अर्थात् विषयों से सम्पर्क कराने वाला है, अर्थात् प्राणियों में नित्य प्रकाशमान है= जागृत है जिस मन की प्रेरणा के विना (किंचन कर्म) कोई भी कर्म अर्थात् इन्द्रिय विचेष्टित (न क्रियते) किया नहीं जाता, हे कर्माध्यक्ष शिवस्वरूप प्रभो। वह मेरा मन तेरे अनुग्रह से सदा पवित्र भावों वाला होवे।

भाव यह है कि--मन ही, विशेष बोध, सामान्य बोध और धारणावती बुद्धि अथवा ज्ञान, चेतना, धैर्य का कारण है इनका प्रयोजन सिद्ध करता है। उसके विना जीव को किसी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं होता। वह मन ही उस जीव की धृति अर्थात् धैर्य का भी कारण होता है।

[आत्मा के पास ज्ञान कर्म की साधन दशेन्द्रियों 'बाह्य-करण' कहाती है।] प्रजाओं का मन अविनाशी 'अन्तःकरण' है, जो अन्दर से सब इन्द्रियों को उनके विषयों के प्रति समर्पित करता है। मन की शक्ति के विना कोई भी इन्द्रिय अपने किसी भी विषय का बोध नहीं कर सकती। यह चिरस्थायी है अर्थात् जब इन्द्रियां थक कर कर्म करना छोड़ देती हैं, तब भी वह कर्म करता है।[2]

---

१. यह 'हृत्प्रतिष्ठम्' है। द्र. यजुः ३४।६ ॥

२. प्रश्नोपनिषद्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन के सत्ता व सामर्थ्य के विना कोई भी कैसा भी कर्म कभी भी किया नहीं जा सकता। क्योंकि यह जिस इन्द्रिय के साथ रहता है, वही इन्द्रिय अपना विषय ग्रहण करती है, अन्य नहीं। यही जाग्रत् अवस्था है। जब इससे सम्बन्ध छूट जाता है, तब मनुष्य 'जाग्रत्' से निकल 'स्वप्नावस्था' में चला जाता है। इस समय सब इन्द्रियां इस 'अविनाशी पर देव' मन में एकत्रित हो जाती हैं।

ऐसा [नाना शक्तियों से सम्पन्न] मेरा मन, हे अमृत! सुप्रजातः! प्रभो! शान्त संकल्प वाला होवे ॥२२॥

येनेदम्भूतम्भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्व्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

भावार्थ—(येन अमृतेन) जिस अविनाशी मन के द्वारा (इदं सर्वं) यह सम्पूर्ण (भूत भुवनं भविष्यत्) भूत-वर्त्तमान-भविष्य [त्रिकालावस्थित प्रपंच] (परिगृहीतम्) सर्वतः गृहीत=सर्वथा, जाना जाता है अर्थात् योगाभ्यास विधि से जिस मन के द्वारा जीव तीनों का सम्यग् ज्ञान प्राप्त कर लेता है और (येन) जिसके द्वारा (सप्तहोता यज्ञः) सात आहुतिदाताओं [=दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुख] से चलाया जाने वाला जीवन-यज्ञ (तायते) विस्तार के साथ [विधिपूर्वक] किया जाता है अर्थात् जो मन इन सात साधनों के कर्मों की आहुति से व्यावहारिक एव पारमार्थिक जीवन-यज्ञ का सम्पादन करता है, हे शिव शम्भो! वह मेरा मन मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला होवे। [जिससे कि मनुष्य जन्म के उत्तम फल धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि में मैं समर्थ हो सकूं] ॥२३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतम्प्रजानान्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥

भावार्थ—(रथनाभौ आराः इव) रथ चक्र की धुरी में, जिस प्रकार आरे के दण्ड [=लकड़ियां] चारों ओर स्थित होते हैं, (इव) उसी प्रकार जिस मन में (ऋचः यजूंषि साम=सामानि) छन्दो बद्ध रचना पद्य काव्य, गद्य काव्य, स्वर युक्त रचना गीति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्य=साहित्य की त्रिविध रचना शैलियां जिसमें विशेष रूप से स्थित हैं अर्थात् सब प्रकार का शब्दजाल जिसमें टिका है, जो मन सब प्रकार के शब्द=काव्य-रचना का मूलस्रोत है; और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) सब प्राणियों के (सर्वं चितम्) सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार (ओतम्) ओतप्रोत है [अर्थात् सूत्र में मणियों के समान सम्बद्ध है अथवा वस्त्र में सूत के समान ओतप्रोत है], (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) ऐसा मेरा मन भलाई का विचार करने वाला हो; सत्य धर्म की मर्यादानुसार चलने वाला हो ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठन्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

यजुः अ० ३४ । मं० १-६ ॥

भावार्थ – (सुसारथिः अश्वान् इव) जैसे चतुर रथवान् घोड़ों को, वैसे (यत्) जो मन (मनुष्यान् नेनीयते) मनुष्यों को [इन्द्रियों के घोड़ों द्वारा] इधर-उधर घुमाता-फिराता है और (वाजिनः अभीशुभिः इव) बलवान् तेज गति वाले उन घोड़ों को लगामों द्वारा जैसे [वश में कर अभीष्ट गम्यस्थान पर सुसारथि ले जाता है, वैसे ही इन्द्रिय संयम होने पर, मनुष्यों को अभीष्ट लक्ष्य पर ले जाता है]; जो [रक्त के संस्थान] हृदय में प्रधानतया स्थित है; विषयों में प्रेरणा करने वाला एवं कभी न बूढ़ा होने वाला है और अत्यन्त वेगवान् है, वह मेरा मन शान्त-व्यापार वाला=मंगल विचार युक्त होवे ।

भाव यह है कि—एक चतुर सारथि जैसे ['चंचल गति' व सदा घास में मुख देने वाले] घोड़ों को जिधर चाहता है, उधर घुमाता है, [और रथ को चलाता है], वैसे ही मन मनुष्यों को [इन्द्रियों के द्वारा] जिधर चाहता है, उधर घुमा कर ले जाता है । और फिर जिस प्रकार लगामों को कस कर [अत्यन्त बल-वेगवान् घोड़ों को नियन्त्रण में कर अभीष्ट स्थल पर, रथ को पहुंचा देता है; उसी प्रकार वृत्तियों को खींच इन्द्रिय-दमन कर आत्मा को अपने अभ्युदय निःश्रेयस के लक्ष्य पर पहुंच देता है । यह मन हृदय में रहता है; सो हृदय को स्वस्थ रखना आवश्यक है । यह मन इन्द्रियों को विषयों में प्रेरणा देने वाला एवं कभी जीर्ण होने वाला नहीं;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सो इसे 'धारणा-ध्यान' में लगाये रखना चाहिये और सद्विचारों से ताजा रखना चाहिये। बाल्य-तारुण्य-वार्धक्य ये शरीर की दशायें हैं, मन की नहीं। यह मन अत्यन्त वेगवान् है; सो चित्त की एकाग्रता से इसके वेग का नियन्त्रण करना अभ्यास वैराग्य से इसको साधना सब मनुष्यों के योग्य है। ऐसा मेरा मन, हे एकोवशीसर्वभूतान्तरात्मन् ! जगन्नियन्तः ! आपके अनुग्रह और मेरे पुरुषार्थ से सदा उत्तम धर्मयुक्त निश्चय वाला होवे ॥२५॥

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
१ २ ३ १ २
शं ५ राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥

साम० उत्तरार्च्चिक प्रपा० १ । मं० ३ ॥

भावार्थ—(राजन्) हे सर्वोपरि देदीप्यमान विराजमान परमात्मन् ! (स) वह तू हमें (पवस्व) पवित्र बना और (नः) हमारे (गवे) गवादि के लिये (शं पवस्व) शान्ति प्रदान कर। इनकी हिंसा न होवे; क्योंकि ये दूध आदि के द्वारा संसार को सुख पहुंचा रहे हैं। (स जनाय शं पवस्व) मनुष्यमात्र के लिये शान्ति प्रदान कर। सब के जीवन की सुरक्षा होवे। (अर्वते शं पवस्व) अश्व आदि के लिये शान्ति प्रदान कर। इनकी भी हिंसा न होवे; क्योंकि ये भी सवारी द्वारा संसार में सुख वृद्धि के साधन हैं। (ओषधीभ्यः शं पवस्व) ओषधियों के लिये भी शान्ति प्रदान कर अर्थात् वन उपवन आदि की रक्षा होवे; क्योंकि इनके सेवन से मनुष्य नीरोग बलवान् बनता है। ये आरोग्यता द्वारा संसार को सुख पहुंचा रही हैं।

भाव यह है कि हे प्रभो ! गो, अश्व, मनुष्य और औषधियों से हमें शान्ति हो।

विशेष विचार—

१. हे (राजन्) सभापति राजा (स) वह तू (नः) हमारे (गवे) गवादि पशुधन (जनाय) साधारण जनता के लिये (अर्वते) व्याख्यान देने वाले विशेष-व्यक्तियों के लिये, (ओषधीभ्यः) ओषधी रूप अन्नादि के लिये (शं पवस्व) शान्ति को प्रदान कर। राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का काम है कि वह गवादि की रक्षा से पशुधन की वृद्धि करे; सामान्य जन एवं विशेष व्यक्तियों की रक्षा कर प्रजा में सुख की वृद्धि करे और ओषधि रूप वृक्ष वनस्पति की रक्षा कर अन्नादि की वृद्धि करे।

२. 'गो' पद का अर्थ होता है 'ज्ञानी, तत्त्वदर्शी, आप्त धार्मिक विद्वान्' अर्थात् ब्राह्मण, 'जन' का अर्थ सामान्य प्रजा अर्थात् वैश्य और शूद्र और 'अर्वन्' का अर्थ गति करने वाले शक्तिशाली अर्थात् क्षत्रिय। 'ओषधि' पद से ग्रहण होगा अन्नादि स्थावर पदार्थ। भाव यह है कि हे (राजन्) शासक रूप से सर्वोपरि विराजमान सभापते! तू समाज के चारों वर्ण और उनके जीवन साधक अन्न की उचित व्यवस्था कर सर्वत्र शान्ति का वातावरण पैदा कर ॥२६॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

भावार्थ—अन्तरिक्ष लोक अर्थात् वायु-विद्युत्-मेघ से भरा मध्यलोक हमारे लिये निर्भयता [की स्थिति] करे*; (इमे उभे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य लोक अर्थात् आदित्य के तेज व प्रकाश का मण्डल और भूलोक अर्थात् भौतिक प्रत्यक्ष अग्नि का प्रभाव मण्डल हमें निर्भय रक्खें अर्थात् अग्नि अर्थात् पृथिवी लोक, वायु अर्थात् अन्तरिक्ष लोक और आदित्य अर्थात् द्युलोक तीनों लोकों से हमें भय न हो। त्रिलोकी में हम निर्भय हो विचरें। (पश्चात्) पीछे से हम निर्भय रहें और रहें निर्भय (पुरस्तात्) आगे से। अभय हो हमें (उत्तरात्) ऊपर से और (अधरात्) नीचे से।

हमको कहीं से भी किसी प्रकार का भय न हों; सब ओर से निर्भय रहें। यह आधिदैविक निर्भयता की प्रार्थना हैं ॥२७॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्[1]।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८

अथर्व कां० १९। सू० १५। मं० ५, ६॥

---

*लिङ् लकार के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग है।

१. यह पाठ राथ-ह्विटनी के संस्करण के अनुसार है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—(अभयं मित्रात्) अभयदान मिले 'मित्र' से; (अभयं अमित्रात्) रहें 'शत्रु' से हम निर्भय। (ज्ञातात्) 'ज्ञात' अर्थात् परिचित बन्धुत्व एवं इन्द्रियगोचर पदार्थ से अभय मिले और मिले अभय हमें (परोक्षात्) अर्थात् अप्रत्यक्ष जाने पहिचाने जन एवं अतीन्द्रिय पदार्थों से। (नक्तम्) हम रात्रि में [सुखनिद्रामग्न] रहें, निर्भयता से और [चैन की बंसी बजावें] निर्भयता से (दिवा) दिन में अथवा रात्रि में निर्भयता से हों 'भोग', और हमारे 'कर्म' हों पूरे निर्भयता से दिन में। इस प्रकार (सर्वाः आशाः) सब दिशायें मेरी मित्र=अनुकूल हितकारी हों; ताकि सर्वत्र निर्भय होकर विचरण किया करूं ।।२८।।

इति शान्तिकरणम् ।।

इस प्रकार शान्तिकरण किये पश्चात् कण्ठ शुद्धयर्थ पुनः पृष्ठ ३० लिखे प्रमाणे पूर्वोक्त विधि से तीन आचमन कर होम का प्रारम्भ करें।

[चतुर्थ विधि—अग्न्याधान]

तत्पश्चात् समिधाचयन वेदि में करें (स. वि. ३५)। पुनः निम्न मन्त्र का उच्चारण करके किसी नित्याग्निहोत्री के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे किसी पात्र में [या चौड़े-गहरे चमचे में] रक्खे कपूर में [या सूखे नारियल के टुकड़े में] अग्नि लगा, उस पर छोटी-छोटी लकड़ी लगा के यजमान-गृहपति वा पुरोहित उस पात्र [या चमचे] को उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से [वेदी या यज्ञकुण्ड के मध्य में] अग्न्याधान करे। वेदी के बीच अग्नि को धर, उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और कपूर धरे (स. वि. ३५, ३६)।

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ० प्र० १। खं० १। सू० ११।

भावार्थ—हे भगवन्! (भूः भुवः स्वः) १. शारीरिक वाचिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और मानसिक त्रिविध सुख से युक्त होने के लिए; २. भूमि, अन्तरिक्ष आकाश तीनों लोकों में स्थित पदार्थों का प्राणियों के उपकार की कामना अर्थात् संकल्प से; ३. जो यह ईश्वर ने सूर्य [स्वः], विद्युत् [=भुवः] और प्रत्यक्ष रूप [भूः] तीन प्रकार का अग्नि रचा है, इनकी प्रसन्नता के लिए, यज्ञ का मुख्य साधन जो [प्रत्यक्ष पार्थिव] अग्नि है·····उस 'अग्नि' को [यज्ञ के निमित्त] दीप्त करता हूं।*

ओं भूर्भुवः स्वुर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥
यजु० अ० ३। मं० ४॥

भावार्थ—१. सर्वरक्षक सच्चिदानन्द स्वरूप तीनों लोकों के रचने वाले परमात्मा की कृपा से, भूमि अन्तरिक्ष और आकाश में स्थित त्रिविधअग्नि, यज्ञ द्वारा प्रदीप्त हो कर हम सबको तीनों लोकों का सुख पहुंचावे[1] (आ. वि २।३५। पृ. ८४)। (द्यौरिव) आकाश में [प्रकाशमान] सूर्य के समान (भूम्ना) बहुत ऐश्वर्य से युक्त और (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (वरिम्णा, आश्रय, दातृत्व आदि] अच्छे-अच्छे गुणों से युक्त मैं, (देवयजनि!) देव विद्वान्

---

*यज्ञों के करने में जो अशुद्धियां यज्ञकर्त्ता कर देता है, उनको दूर करने के निमित्त इन व्याहृतियों का प्रथम उच्चारण किया जाता है। दूसरा कारण इन व्याहृतियों के उच्चारण करने में यह है कि ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। ऐश्वर्य तीन वस्तुओं का संयोग है; सुभाग, सुयश और सौन्दर्य। ये ही 'भूर्भुवः स्वः' से अभिप्रेत हैं। इनका उच्चारण कर हम इनकी प्राप्ति का संकल्प करते हैं। (अग्निहोत्र-व्याख्या, वि. सं. १९७०, बालकृष्ण एम. ए.)।

१. ईश्वर का आदेश है कि—'हे मनुष्यो! तुम ईश्वर से रचे हुए, तीनों लोकों की उपकार करने वाली·····अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिए यत्न के साथ उपयोग करो' (यजुः भाष्य ३।५ भावार्थ)। ·····(त्रीणि ज्योतींषि) तीन ज्योति अग्नि-वायु-सूर्य इनको 'ईश्वर ने' रचा है। सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ विद्या की उत्पत्ति के लिए इन तीनों को मुख्य समझना 'चाहिए' (यजुः ८।३६। आ. वि. ६७)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस पर यज्ञ [=उत्तम परोपकार के कर्म] करते हैं [अथवा जहां देवों का पूजन=सेवन सत्कार, संगतिकरण=समागम और दान द्वारा धारण पोषण होता है] ऐसी हे (पृथिवी !) भूमि ! [अथवा वेदि] (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाश युक्त लोक में स्थित (ते पृष्ठे) तुझ प्रत्यक्ष भूमि के पृष्ठ के ऊपर (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लाभ के लिए, 'भूमि, अन्तरिक्ष, सूर्य लोक' के अन्तर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण [अर्थात् पाक] करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापित करता हूं।[1]

[पञ्चम विधि--अग्नि-उद्बोधन (अग्निप्रदीपन)]

निम्न मन्त्र पढ़ के अग्नि को प्रदीप्त करें (सं. वि. ३६)।

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

भावार्थ—अनुष्ठानपरक अर्थ—

(अग्ने) वेदी में स्थापित प्रसिद्ध अग्नि ! (उद्बुध्यस्व) तू अच्छे प्रकार से प्रदीप्त हो; (प्रतिजागृहि) प्रत्येक समाधि में प्रज्वलित हो अर्थात् पर्याप्त जलने लगे; (त्वं अयं च) तू 'अग्नि' और यह 'मैं यजमान' गृहस्थ दोनों (इष्टापूर्त्ते) इष्ट सुखों की पूर्त्ति करने अथवा इष्ट और पूर्त्त के लिए (संसृजेथाम्) परस्पर संगत हो जावें, मिलकर सम्पादन करें; सिद्ध करें। (अस्मिन् सधस्थे) इस यज्ञ देश में, 'देवयजनी-पृथिवी की पीठ पर', (अधि उत्तरस्मिन्) और इससे भी अधिक अच्छे स्थान में या उत्तम समाज में (विश्वे-देवाः) सब विद्वान् आप्त धार्मिक सज्जन इष्टमित्रादि (यजमानश्च) और यजमान (अधि+सीदत) अधिकारपूर्वक बैठें; अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार स्थित हों।

परमात्मपरक अर्थ—

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय परमेश्वर ! मेरे हृदय में प्रकाशित

१. यहां अग्नि का पूजना उद्देश्य नहीं; परन्तु उसके गुण धर्मों को अपने जीवन में घटाना योग्य है। और उसको परमात्मा का स्वरूप जान व उसकी बनायी हुई वस्तु मान के कला आदि से लाभ लेना प्रयोजन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूजिये; अविद्यान्धकार रूप निद्रा से अलग कर, विद्या सूर्य के प्रकाश से मुझे जगाइये [अथवा अविद्या रूप जड़ता को पृथक् कर अपनी वेद विद्या से मुझे चेतन कीजिए]। (त्वं अयं च) हे भगवन्! आप कर्त्ता, भर्त्ता, द्रष्टा 'पुरुष विशेष' और मनुष्य देह धारण करने वाला जो यह मैं कर्त्ता भोक्ता जीव हूं, दोनों (इष्टापूर्त्ते) 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप इष्टा पूर्त्त* के लिए (संसृजेथाम्) परस्पर संगत हों जावें। जैसे 'वह' मैं, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सामग्री की पूर्त्ति कर सकूं, वैसे आप इष्ट सिद्ध कीजिए। आपकी कृपा से और मुझ जीव के पुरुषार्थ से इष्टापूर्त्त परस्पर संगत हों। अर्थात् मेरे इष्ट=संकल्प आपके अनुग्रह से पूर्त्ति को प्राप्त हों, पूर्ण सिद्ध हों। हे जगन्नियामक परमेश्वर! ऐसी कृपा करो कि (अस्मिन् सधस्थे) वर्त्तमान में प्रत्यक्ष इस लोक और इस शरीर में (अध्युत्तरस्मिन्) तथा परलोक और दूसरे जन्म में (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (यजमानश्च) और यजमान अर्थात् विद्या के उपदेश के ग्रहण और सेवन करने वाले मनुष्य (सीदत) सुख से स्थित रहें।

आत्मपरक अर्थ—

(अग्ने) हे आत्मन्! अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष! (उद्बुध्यस्व) तू अच्छी प्रकार 'सत्य' ज्ञान को प्राप्त कर (प्रति जागृहि) सब के प्रति अविद्यारूपनिद्रा को छोड़ विद्या से चेतन हो। (त्वं च अयं च) तू 'स्त्री' और यह पुरुष दोनों (इष्टा-पूर्त्ते) इष्ट सुख अर्थात् विद्वत्सत्कार ईश्वराराधन, सत्संगतिकरण तथा सत्य विद्यादि दान और पूर्त्त अर्थात् पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, ज्ञान की शोभा, पूर्ण युवावस्था तथा [जीवन व्यवहार को चलाने के लिए] साधन-उपसाधन [की पूर्त्ति] इन दोनों को[1] (संसृजेथाम्) सिद्ध

*द्र। यजुः १५।५४। इष्टापूर्त्ति पद के लिये द्र. 'पंचमहायज्ञप्रदीपः' पृ. १८५-१८७।

१. ·····स्त्री और पुरुष दोनों (अस्मिन् सधस्थे) इस वर्त्तमान एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में सदा इष्ट·····और····· पूर्त्त दोनों की सिद्ध किया करो। ·····जैसे अग्नि, सुगन्धादि के होम से इष्टसुख देता है और यज्ञकर्त्ता यज्ञ की सामग्री पूर्त्त पूरी करता है, वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री-पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें (यजुः भाष्य १५।५४)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया करो। [अथवा इष्ट अर्थात् यज्ञ वा धर्म अर्थ-मोक्ष प्राप्ति की कामना और पूर्त्त अर्थात् उसकी सिद्धि के लिए, तत्साधन रूप सामग्री की पूर्त्ति करना, इन दोनों के साथ तू और यह, दोनों संगत होवें। (अस्मिन्) वर्त्तमान में प्रत्यक्ष (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में उपलभ्यमान (सधस्थे) गृह अर्थात् स्थिति=लोक में, उन्नत जन्म में सदा सब विद्वान् और यज्ञ करने वाला दोनों अधिकार के अनुसार स्थित हों। अर्थात् आप्त धार्मिक विद्वान् पुरुष और यज्ञ करने वाला दोनों एकत्र स्थित हों; गृह में निवास करें। अथवा इस शरीर में तथा वे श्रेष्ठ या उन्नत-शरीर में (विश्वेदेवाः) सब इन्द्रियां और (यजमानः) यह 'आत्मा' दोनों उचित रूप से [समुन्नत] वास करें।

[षष्ठ विधि—त्रिसमिदाधान]

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब चन्दन की अथवा पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबो, उनमें से एक-एक निकाल नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें (सं. वि. ३६)।[1]

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥१॥ इससे एक

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्न मम॥२॥ इस से और

---

१. (क) प्रचलित विधि में 'त्रिसमिदाधान' चार मन्त्रों से किया जाता है; जिसके प्रथम [सौत्र—] मन्त्र 'अयं त इध्म·····' का अनुपद ही पंचाहुति में विनियोग है। निस्सन्देह एक मन्त्र का दो प्रकार से विनियोग हो सकता है। परन्तु विनियोग के लिये उपयुक्त वेद मन्त्र होने पर उनके साथ मिलाकर विनियोग करना, जरा विचारने को बाध्य करता है। उस मन्त्र के विना भी उस 'त्रिसमिदाधान' क्रिया के भाव या संगति में भेद नहीं पडता। हमने यहां त्रिसमिदाधान में संस्कार-विधि के अनुरूप ही चार मन्त्र रखे हैं। जिन्हें चार मन्त्रों से त्रिसमिदाधान अभीष्ट न हो, वे प्रथम मन्त्र 'ओम् अयन्त इध्म ·····' को छोड़ कर 'ओम् समिधाग्नि·····' से प्रथम,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥३॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी और

ओं तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम[1] ॥४॥

(यजुः ३।१, २, ३)

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।

भावार्थ—अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे (जातवेदः) ब्रह्माण्ड में उत्पन्न सब पदार्थों में स्थल-सूक्ष्म रूप से विद्यमान अग्नि! (अयं इध्मः) यह, स्वयं जल कर प्रकाश करने वाला इन्धन रूप समिधा घृतादि पदार्थ (ते आत्मा)[2] तेरा

'ओम् सुसमिद्धाय……' मन्त्र से दूसरी, और ओम् तन्त्वा समिद्भिः…… इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

(ख) ऋग् ३।१८।३ में लिखा है कि (इध्मेनं घृतेन) अग्नि संदीपक घृत से……(हव्यं जुहोमि) हवन सामग्री का होम करता हूं। ……इससे स्पष्ट है कि 'इध्म-पद-युक्त किसी भी मन्त्र का आज्याहुति के लिये विनियोग अधिक संगत प्रतीत होता है। ऋषि ने 'समिध से तथा संस्कार युक्त घृत' से ऐसा अर्थ लिखा है। वह आश्वलायन गृह्य के अनुसार ठीक है।

(ग) अथर्व ११।५।२ (स. वि. १३४, १३५) के अनुसार पृथिवी (=भूः) अन्तरिक्ष (=भुवः), द्यौ (=स्वः) तीन समिधायें हैं। यजुः ३।१ के 'समिधाग्नि'—इन मन्त्रों में भी क्रमशः अग्नि, जातवेदा व अङ्गिरा त्रिविध अग्नियों का वर्णन है। सो तीन समिधावों द्वारा, त्रिविध अग्नि के लिये, तीन मन्त्रों से तीन आहुतियों का देना अधिक संगत प्रतीत होता है।

१. 'इदं……न मम' इतना अंश सर्वत्र मन्त्रों से बहिर्भूत होता है। यह यज्ञ में 'स्वस्वत्व-निवृत्तिपूर्वक देवता स्वत्व आपादन' के लिये यजमान द्वारा बोला जाता है। यहां इसका प्रतिपदार्थ लिखा है; शेष स्थलों पर भावार्थ लिखा है।

२. आत्मा अर्थात् अपनापन, जिससे किसी पदार्थ की अन्य पदार्थों से विशेषता [=पृथक् धर्म] प्रगट होती है। मन्त्र आश्व. १।, १०, १२ में है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मा या आधार है। अर्थात् ज्वलनशीलता तेरा अपना स्वभाव है; तेरी सत्ता, विशेषता का परिचायक है।

(तेन) इस इध्म अर्थात् अपने इस विशेष प्रदीपक गुण से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो, (वर्धस्व च) और उद्दीप्त हो, और (इद्ध वर्धय च) अन्यों को चमका और बढ़ा[1] अर्थात् सब पदार्थों को शोभित कर और उनकी वृद्धि=परिपाक करो। (अस्मान्) हम सब मनुष्यों को (प्रजया) पुत्रपौत्रादिक सन्तान व बन्धु-बान्धव इष्ट मित्रादि से (पशुभिः) गो-अश्व-वृषभ-कुत्ता आदि पशुओं [व पक्षी आदियों] से (ब्रह्मवर्चसेन) ज्ञानाग्नि से, सत्य विद्या द्वारा बढे आत्मप्रकाश से (अन्नाद्येन) भोगयोग्य खाद्य पदार्थों अथवा पाचन शक्ति से (सम् एधय) समृद्ध-सम्पन्न-समुन्नत करो अर्थात् इन से अच्छी प्रकार से बढ़ा; ताकि हमारी पारिवारिक सुख-समृद्धि और विस्तार हो। (स्वाहा) मन-वचन-कर्म से हमने यह ठीक कहा है अथवा इन प्रयोजनों के लिए करते हैं।[2]

मेरी यह हवि='समिधा की आहुति' (इदं जातेवेदसे अग्नये) तीनों लोकों अर्थात् सब चराचर-जगत् के पदार्थों में विद्यमान सबकी उन्नति करने वाले भौतिक अग्नि के निमित्त है; यह मेरी नहीं है अर्थात् इस आहुति का फल प्राप्त कराना, तेरा काम है ॥१॥

हे विद्वान् यज्ञ प्रेमियों! तुम (समिधा, घृतैः) अच्छी प्रकार प्रकाश करने वाले इन्धनों से तथा घृतादि अर्थात् घृत में भिगोई समिधा से (अग्निम् अतिथिम्) सूक्ष्म रूप से सब वस्तुओं में गतिशील इस भौतिक अग्नि को (दुवस्यत) सेवन करो तथा (बोधयत) प्रदीप्त अर्थात् प्रकाशित करो। (अस्मिन्) इसमें (हव्या) सुगन्धित मिष्ट पुष्टिकारक तथा रोगनाशक चार प्रकार की औषधियों से निर्मित शाकल्य से (आ जुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो।

---

१. इद्ध (इत् ह) निश्चय करके या अवश्य ही (वर्धय) अन्यों को बढ़ा।

२. 'स्वाहा' पद के विशेष अर्थ के लिये द्र. 'पंच-महायज्ञ-प्रदीप' पृ. १५७–१५९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(इदमग्नये इदं न मम) यह आहुति 'सब वस्तुओं में गतिशील' अग्नि देवता के लिए है; यह मेरे लिए नहीं है ॥२॥

हे मनुष्यो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार से प्रज्वलित उद्दीप्त या प्रकाशरूप (शोचिषे) शुद्ध किये हुए और दोषों के संशोधक तथा (जातवेदसे) इस सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण कर्म स्वभाव वाले अग्नि के लिए (तीव्रं घृतं) दोषों-रोगों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले घृतादि पदार्थों को (जुहोतन) अच्छी प्रकार हवन-कुण्ड में डालो यह आहुति 'त्रिलोकी के सब चराचर पदार्थों में विद्यमान' अग्नि देवता के लिए है; यह मेरे लिये नहीं है ॥३॥

(अङ्गिरः) हे सुखदायक पदार्थों के प्राप्त कराने वाले ! (यविष्ठ्य) पदार्थों के परमाणु को छिन्न-भिन्न (=संयोग-वियोग) करने में अति बलवान् ! (बृहत्) बड़े तेज में युक्त अग्ने ! (आ शोच) तू खूब प्रकाश करता है। हम लोग (त्वा) ऐसे उस तुझ अग्नि को (समिद्भिः घृतेन) काष्ठ तथा घृतादि अर्थात् घृत में भिगोई समिधा से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं। (इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम)। यह 'ब्रह्माण्ड के अङ्ग-अङ्ग=अणु-अणु में हव्यों को व्याप्त करके गतिशील करने वाले' अग्नि के लिए है; यह मेरे लिए नहीं है ॥४॥

यह यज्ञ, भूलोक-अन्तरिक्ष लोक-सूर्यलोक तीनों में स्थित अग्नि से सम्बद्ध कर्म है। इसलिए प्रदीपन के समय तीनों के निमित्त से तीन बार समिदाधान किया जाता है। प्रथम आहुति अग्नये=[भूः] अग्नि केन्द्र पृथिवीलोक, द्वितीय जातवेदसे=[भुवः] विद्युत्-केन्द्र अन्तरिक्ष लोक और तृतीय अङ्गिरसे=[स्वः] प्राण-केन्द्र आदित्य लोक के निमित्त समझनी चाहिए।

भावार्थ--परमार्थपरक अर्थ--

हे (जातवेदः) उत्पन्नमात्र सब चराचर जगत् को जानने वाले, सर्वत्र प्राप्त अर्थात् सब प्राकृत उत्पन्न भूतों में व्याप्त, सर्व ज्ञानप्रद ऋग्वेदादि चार वेदों के प्रसिद्ध करने वाले, अनन्त ज्ञानवान् पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मन् ! (इध्मः)[1] यह प्राणाग्नि प्रदीपन तथा ज्ञानाग्नि प्रदीपन (ते आत्मा) तेरा अपना स्वरूप है। तू (तेन) इस प्राण-ज्ञान प्रदीपक से (इध्यस्व वर्धस्व) चराचर जगत में प्रगट होता है और बढ़ता अर्थात् महिमा को प्राप्त होता है। (च इद्ध वर्धय) और जीव के हृदय में ज्ञान दीप प्रदीप्त कर तथा शरीर में प्राण शक्ति बढ़ा। सुखदातः प्रजापते ! अच्छी प्रजा-पुत्रादि से, हस्ति-अश्वगवादि उत्तम पशुओं से, सर्वोत्कृष्ट विद्या से, और खाद्यान्न प्राप्त कराने वाले चक्रवर्ति राज्यादि परमैश्वर्य से अथवा उत्तम भक्षण करने योग्य अन्न से (समेधय) भली-भांति बढ़ा, अर्थात् आप कृपा करके हमारी सर्वविध उन्नति कीजिए। (स्वाहा) जैसे शुभ कहा है, वैसा हवि=पुरुषार्थ करूंगा।

यह सब कर्म तुझ जातवेदाः अग्नि संज्ञक ओम् परमात्मा के समर्पण हैं, तू इनका फल देने वाला है। इन पर मेरा अधिकार नहीं ॥१॥

हे मनुष्यो ! तुम सब (अतिथिम्) सर्वव्यापक, सत्योपदेशक अग्नि नाम से प्रसिद्ध ज्योतिःस्वरूप परमात्मा की प्रसन्नता के लिये उसके रचे भौतिक अग्नि में समिधा और घृत का होम करो। इस प्रकार, (समिधा) अपने प्रकाशमान सामर्थ्य तथा (घृतैः) प्रदीप्त विज्ञान से (दुवस्यत) उसका सेवन करो; (बोधयत) हृदय में उसकी ज्योति प्रदीप्त करो और उसमें अपने भक्ति प्रेम के हवि की आहुति दो ॥२॥

उस हृदय कुण्ड में अत्यन्त प्रकाशमान जातवेदा अग्नि नाम वाले परमात्मा के लिए अपने तीव्र (घृतं) संदीप्त तेज[2] अथवा प्रदीप्त आनन्दप्रद विज्ञान=प्रकाशित बोध की आहुति दो अर्थात्

---

१. ·····इध्मः प्रथमगामी भवति। इध्मः समिन्धनात्।····· निरु. ८।५ ॥ आत्मा वा इध्मः। तैत्ति. आर. २।३।१०।३ ॥ ऋषि दयानन्द ने यजुः ३१।१४ में 'इध्मः प्रदीपकः' प्रकाशक ऐसा अर्थ किया है। इस आधार पर हमने इध्म का अर्थ 'प्राण-ज्ञानाग्नि प्रदीपक' किया है। जातवेदा परमात्मा ही जीवों के प्राणों का धारण कराने वाला तथा ज्ञानदाता है। यह उसका 'आत्मा' अर्थात् विशेष गुण है।

२. घृतं संदीप्तं तेजः ऋ. भा. २।३।११; द्र. ऋ. भा. १।१३५।७; ४।४८।४; ४।५८।१०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने घृत=ज्ञान व सामर्थ्य का उसकी वेद-विद्या के प्रचार के लिए समर्पण करो ॥३॥

हे (अङ्गिरः) चराचर जगत् के अणु-अणु में व्याप्त हो उनमें गति देने वाले, (यविष्ठ्य) प्रकृति-परमाणुओं में परस्पर संयोग कराने वाले, महान् अग्ने ! तू मेरी हृदय-वेदी में खूब प्रकाशित हो। हम (समिद्भिः) सम्यक्तया पदार्थों के गुणों का प्रकाश करने वाली विद्याओं[1] तथा संदीप्त तेज से तेरे यश को बढ़ाते हैं ॥४॥

[सप्तम विधि–पंच आज्याहुति]

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से घृत की पांच आहुति देनी। (सं. वि. ३७)।

ओम् अयं त इध्मं आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे–इदं न मम ॥१॥[2]

---

१. सम्यगिध्यते दीप्यतेऽनया सा विद्या यजुः २।१४ ॥

२. सामान्यतः 'एक मन्त्र से एक आहुति' देने का नियम होते हुए, इस मन्त्र को 'पांच बार पढ़ कर पांच आहुतियाँ' देने के विधान का निम्न कारण मन्त्र के अर्थ पर ध्यान करने से ज्ञात होता है कि इसमें पांचों पदार्थों की प्रार्थना है कि हे जातवेदा अग्ने ! तू मुझे प्रजया वर्धय=उत्तम पुत्र पौत्रादिक सन्तानादि से, पशुभिः वर्धय=उत्तम गो अश्व वृषभ कुत्ता आदि से, ब्रह्मवर्चसेन वर्धय=सत्य विद्या द्वारा बढ़े आत्मप्रकाश से, अन्नाद्येन वर्धय =और भोगयोग्य खाद्य पदार्थों से बढ़ा। इससे सांसारिक सुख प्राप्त हो, मेरा अभ्युदय हो। इसके साथ-साथ समेधय=हे सर्वनेतः अग्ने ! 'अपने समान बढ़ा' अर्थात् जैसे तू जन्म-मरण से रहित है, वैसे ही मुझे भी जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ा अपने नित्य सुख का भागी बना, ताकि मेरा निःश्रेयस सिद्ध हो।

परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से ही जीव को 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' की सिद्धि अर्थात् 'पूर्णभद्र' की प्राप्ति होती है। यह भद्र अभ्युदय-निःश्रेयस दो प्रकार का होता है। 'प्रजा-पशु-ब्रह्मवर्चस-अन्नाद्य' इन चार की वृद्धि से जीव का 'अभ्युदय' होता है और पांचवें 'समेधन' अर्थात् परमात्मा जैसे अपने गुण-कर्म-स्वभाव बनाने से 'निःश्रेयस' मिलता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टम विधि—जलप्रसेचन]

तत्पश्चात् दाहिनी अञ्जलि में जल ले के निम्न मन्त्रों से यथा विधि यज्ञ-वेदी के पूर्व दिशा आदि में चारों ओर छिड़कावे।

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इससे [दक्षिण से] पूर्व,
ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इससे [उत्तर से] पश्चिम,
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे [पूर्व से] उत्तर, और—
गोभिलगृ० १।३। सू० १-३॥

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

इस मन्त्र से वेदि के चारों ओर [दक्षिण से पूर्व की ओर] जल छिड़कावे।

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

१. (अदिते) हे अखण्ड एक रस निर्विकार नित्य अविनाशी ओम्!

२. (अनुमते) हे जीवों को अनुकूलमति के दाता तथा परमाणुओं में अनुकूल संगति रखने वाले! सृष्टिक्रम के अनुकूल जीवों को अपनी आज्ञा में चलाने वाले ओम्!

३. (सरस्वति) हे नित्य ज्ञानमय प्रशस्त ज्ञानशालिन्! ओम्! (अनुमन्यस्व) हमें अनुकूलमति दे; हमें आज्ञा दे; हमारे पर अनुग्रह कर।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

१. (अदिते) हे अहिंसनीय बुद्धि! हमें तेरी अनुकूलता,

२. (अनुमते) हे आत्मानुकूल चलने वाली बुद्धि! हमें तेरा साथ व सहाय,

३. (सरस्वति) हे देव पितरों द्वारा अजस्र बहती आने वाली बुद्धि! हमें तेरा लाभ, प्राप्त हो; जीवनभर हमारे पास रहो।

इनका अर्थ भूमि, [प्राण—] वायु और जल भी होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे सर्वरक्षक सर्वव्यापक ओम् परमात्मन् मैं अपने व सब संसार के सुख उपकार के लिए प्रदीप्त अग्नि को जल से आवृत=मर्यादित करता हूं; ताकि इसके ताप और प्रकाश अपने गुण कर्म स्वभाव-प्रभाव की सीमा का अतिक्रमण कर किसी को हानि न पहुंचावें। हे अदिते ! तेरी अखण्ड कृपा से मेरा यह यज्ञ निर्विघ्न-अखण्ड चले; हे अनुमते ! तेरे अनुग्रह से मेरा यह यज्ञ सब के अन्दर सहयोग-सहकार भाव जागृत करे; हे सरस्वति ! तेरे दिये ज्ञान से मेरा यह यज्ञ ज्ञानज्योति को जगावे ॥१-३॥

परमात्मापरक अर्थ—

४. हे (देव) सत्य योग विद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने वाले ! या सूर्य चन्द्रादि दृश्य लोकों से लेकर अदृश्य जीवों पर्यन्त चराचर जगत् में अपनी महिमा से विराजमान दिव्यस्वरूप ! (सवितः) सर्व सिद्धियों के उत्पादक या चराचर जगत् के सृजन करने हारे ! सब को कर्मों में प्रवृत्त करने वाले सकलैश्वर्यदाता ओम् भगवन् ! (नः यज्ञं) हमारे इस यज्ञ को (प्र+सुव) भली प्रकार सम्पन्न कराइये व समृद्ध कीजिए। (भगाय) सौभाग्य, सर्वैश्वर्य, सुकीर्ति अथवा एश्वर्य युक्त धन के लिये (यज्ञपतिं) मुझ यज्ञ-कर्त्ता को (प्रसुव) सत्कर्म में प्रेरित कीजिए। (दिव्यः) दिव्य शुद्ध गुण-कर्म-स्वभावों से युक्त (गन्धर्वः) वेदवाणी का धारण कर्त्ता (केतपूः) प्रज्ञान-धन या विज्ञान से सब जीवों को पवित्र करने हारा, परम दयालु न्यायकारी परमात्मा (नः केतं पुनातु) हमारे विज्ञान या बुद्धि को पवित्र करे; सुसंस्कृत बनावे। तथा (वाचस्पतिः) सत्य विद्यामय कल्याणी वेदवाणी का आदिजनक एवं उसके प्रचार से सब की रक्षा करने वाला परमेश्वर (न वाचं स्वदतु) हमारी वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर हितकारी बनावे।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

यह सृष्टि 'अग्निषोमात्मकम्'=आग-पानी का खेल है। इस हवन-यज्ञ में अग्नि को प्रदीप्त कर जल से आवृत=मर्यादित किया गया है। जो वाष्प बनेगी, वह ऊपर सूर्य लोक की ओर उठेगी। ऐसी दशा में प्रार्थना है—"हे (सवितः देव) सृष्टि के सब घटकों में प्रेरणा=हरकत पैदा कर सब को जागृत करने वाले सूर्य ! हमारे इस यज्ञ को समृद्ध=सफल बना। ऐश्वर्य वृद्धि के लिये यजमान को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रियाशील बना। ·····दिव्य ·····प्रभु वाचस्पति हमारी वाणी अर्थात् ज्ञान को हितकारी बनावे ॥४॥

[नवम विधि—आघारावाज्य-भागाहुति]

इसके पश्चात् यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उनको आघारावाहुती[1] और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियां दी जाती हैं, उनको आज्यभागाहुती कहते हैं। सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के (सं. वि. ३८),

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

इससे वेदि के उत्तर भाग अग्नि में,

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १ ।खं० ८। सू० २४ ॥

इससे वेदि के दक्षिण भाग में प्रज्वलित अग्नि में आहुति देवें। तत्पश्चात् निम्न दो मन्त्रों से वेदि के मध्य में दो आहुति देनी (सं. वि. ३९)।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम[2] ॥४॥

ओम् निज नाम वाले, १. (अग्नये) ज्ञानस्वरूप सब प्राणियों के जीवन हेतु सब दुःखों के दाहक स्वप्रकाशक ज्योतिः स्वरूप और उसके रचे 'आरोग्य बुद्धि बढ़ाने के हेतु भौतिक अग्नि के लिए,

२. (सोमाय) शान्त्यादि गुणों से आनन्द देने वाले, दुःख-विनाश हेतु सब पदार्थों को उत्पन्न, पुष्ट करने सुख देने वाले [रस, माधुर्य, आह्लाद शान्ति को सींचने वाले] और उसके रचे 'सर्वानन्दप्रद' चन्द्रमा के लिए,

---

१. गोभि. गृ. सू.। प्र. १। सं. ८। सू. २४ ॥

२. ओम् अग्नये स्वाहा। ओम् सोमाय स्वाहा। ओम् इन्द्राय स्वाहा। इन तीनों के लिए द्र. यजुः २२।६, २८ मन्त्र का ऋषि दया. भाष्य तथा ओम् प्रजापतये स्वाहा के लिए द्र. यजुः ऋ. भा. १२।२८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. (प्रजापतये) सब जगत् व प्रजा के पालक स्वामी जगदीश्वर के लिए और उसके रचे प्राण देने वाले वायु के लिए,

४. (इन्द्राय) सर्वैश्वर्य युक्त, परमैश्वर्यदाता तथा उसके रचे सूर्य व विद्युत् के लिए (स्वाहा) शुभ संकल्पपूर्वक, आत्मज्ञानानुकूल स्वेच्छा से, सुसंस्कृत शोधित द्रव्यों की आहुति देता हूं। मेरी यह वाणी सत्य हो।

मेरी यह आहुति अग्नि सोम प्रजापति तथा इन्द्र के निमित्त है; मेरे लिये नहीं अर्थात् मेरा इसमें कोई स्वार्थ [फल की कामना] नहीं ॥

[संस्कार विषयक प्रधान होम]

आघारावाज्यभागाहुति चार दे के, संस्कार सम्बन्धी प्रधान होम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-जितना विशेष मन्त्रों होम करना हो, करना चाहिये। (सं. वि. ३९)। उन सब, मन्त्रपूर्वक-क्रियाओं का उल्लेख उन-उन संस्कारों में किया जावेगा। ऐसा ही करना योग्य है अर्थात् यहां तक सामान्य प्रकरण का विधि करके, संस्कार का कर्त्तव्य कर्म करे (सं. वि. २)। पश्चात् [संस्कार की] पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति से देवें (सं. वि. ३९)[1]।

पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में रक्खे घृत में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें (सं. वि. ४०)।

[दशम विधि—चार व्याहृति आहुतियां]

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये— इदं न मम ॥१॥

---

१. इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द को 'संस्कारों' की पूर्णाहुति अर्थात् समाप्ति "दैनिक-अग्निहोत्र विधि" से करना अभीष्ट नहीं। ऋषि दयानन्द का मत ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य प्रकरण में निर्दिष्ट विधि 'आघारावाज्यभागाहुति' तक करके संस्कार सम्बन्धी मन्त्रों से विशेष प्रधान होम पूरा-पूरा करें; पश्चात् पुनः आघारावाज्यभागाहुति दे, स्विष्टकृताहुति; अष्टाज्याहुति, पूर्णाहुति देकर वामदेव्यगान कर संस्कार समाप्त करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे— इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदं न मम ॥३

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

१. ओम् निज नाम वाले (भूः) अन्तिम सत् अथवा प्राण-दाता, सब की उत्पत्ति तथा सत्ता के आदि कारण परमात्मा का स्मरण करके (अग्नये) इस भौतिक 'अग्नि' के लिये।[1]

२. ओम् सर्वरक्षक (भुवः) ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञता के आदि बीज अथवा दुःखहर्त्ता विघ्नविनाशक सब प्राणियों के कर्म के शक्ति-स्रोत परमेश्वर का मन में संकल्प करके (वायवे) अन्तरिक्षस्थ 'वायु' के लिये।[1]

३. ओम् सर्वव्यापक (स्वः), मोक्ष सुख के मूल स्रोत, सुख-दाता, सब के चेष्टा आदि व्यवहार के वा उत्कर्ष के कारण, जगदी-श्वर का स्मरण करके आत्मा में ध्यान करके (आदित्याय) द्युलोक में स्थित 'सूर्य' के लिये।[1]

४. (स्वाहा) उनकी शक्ति प्रभाव प्राप्ति के निमित्त मेरा यह 'सम्यग् प्रयत्न' है। मेरी यह आहुति 'अग्नि, वायु, आदित्य' [के द्वारा जलवायु शुद्धि द्वारा सब जगत् के उपकार] के लिये है; केवल अपनी उन्नति या स्वहित के लिये नहीं।

[एकादश विधि–स्विष्टकृताहुति]

तत्पश्चात् घृत की अथवा [मीठी] भात की एक 'स्विष्टकृत् होमाहुति' निम्न मन्त्र से देवें (सं. वि. २४, ४०)।[2]

---

१. अर्थ के लिये द्र.। पंचमहायज्ञप्रदीप पृ. १०४, १७८-१७९, २०८-२०९।

२. (क) यहां सं. वि. पृष्ठ ४०, १२५ आदि कई स्थलों पर 'यदस्य.....' मन्त्र ये स्विष्टकृताहुति 'घृत अथवा भात' से तथा पृष्ठ ६१, १२३, २१० पर केवल 'घृत' से देना लिखा है। हमारी सम्मति यहां प्रयुक्त 'भात' शब्द 'फीके पक्वान्न' का वाची न हो 'मीठे भात' का वाचक है। पृष्ठ ५७ में लिखा है कि "भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥ आश्व० गृह्य०

भावार्थ—परमात्मापरक अर्थ—

(अस्य कर्मणः) इस कर्म के अनुष्ठान में (यत् अतिरीरिचम्) मैंने जो कुछ विधि से अधिक कर दिया है (यद्वा इह न्यूनम् अकरम्) अथवा जो कुछ इसमें न्यून कर दिया है, (तत्) उसको (स्विष्टकृत् अग्निः) भली-भांति मेरे इष्ट को सिद्ध करने अर्थात् मत्कृत अधिकता-न्यूनता के दोषों को मिटा यज्ञ को सम्पन्न, प्रभावी बनाने वाला सर्वज्ञ परमात्मा (विद्यात्) जाने या जानता है। (सर्वं मे स्विष्टं) परमात्मा मेरे इस सम्पूर्ण 'स्विष्ट' को=श्रेष्ठतम कर्म को (सुहुतं करोतु) भली-भांति पूर्ण करे अर्थात् सुफलदायक बनाए। (स्विष्टकृते) शोभन यज्ञ सम्पादक या इष्ट कर्मों के उत्तम साधक (सुहुतहुते) 'सुकृत' के फल देने वाले (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां) पाप निवरणार्थ किये सब प्रायश्चित के प्रयत्नों एवं सब इच्छाओं के

अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एकरस हो जायं पश्चात्.....", सं. त्रि. पृष्ठ २४ पर स्थालीपाक विधि में लिखा है--"मीठा भात, खीर, खिचड़ी मोदक आदि होम के लिये बनावे।" 'मीठा भात' इस पद से कहीं विशेष आहुति का विधान नहीं हैं। जब होम के लिये पृष्ठ २४ व ५७ में 'मीठा भात' बनाने का उल्लेख है, तो उसकी आहुति भी होनी चाहिये।

(ख) स्विष्टकृत् आहुति केवल घृत से या सुगन्धित घृतयुक्त भात से अकेले मीठाभात से देने की व्यवस्था मालूम पड़ती है।

(ग) इसे घर पर ही पृष्ठ ११ में लिखे प्रकारे सिद्ध करना चाहिये। यज्ञ संस्कार के निमित्त कृत्रिम घृत से न घर में बनाना चाहिये और बाजार से खरीदी मिठाई से भी कभी होमाहुति नहीं करनी चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(समर्द्धयित्रे) समृद्ध=पूर्ण करने वाले (अग्नये) परमेश्वर [की आज्ञा पालन] के लिये यह आहुति है। हे इष्ट देव ! (नः सर्वान् (कामान् समर्द्धय) तू हमारी सब कामनाओं को पूर्ण कर; इष्ट सिद्ध कर। (स्वाहा) यह मैं सत्य कहता हूं, यह मेरी वाणी सत्य हो।

(इदं अग्नये स्विष्टकृते) यह आहुति=मेरा समर्पण स्विष्टकृत् अग्नि परमात्मदेव के लिये है; (इदं न मम) ममत्व का त्याग करता हूं।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

जो कर्म, मैंने नियत-विधि से अधिक या न्यून इस यज्ञानुष्ठान में कर लिया है, उसको अच्छे प्रकार से इष्ट कर्मों का साधक भौतिक अग्नि (विद्यात्)* अपना लेवे और मेरे लिये (स्विष्टं सुहुतं करोतु) इष्ट अनुकूल तथा (सुहुतं) सुफलदायक (करोतु) बनाए। मैं यह आहुति, भली प्रकार से इष्ट कर्मों के साधक, अच्छे प्रकार होमे गये पदार्थों के भस्म करने वाले, सब यजमानों के प्रायश्चित्त=पाप-विशोधन के निमित्त दी गई आहुतियों एवं इष्यमाण कामनाओं के पूरक अग्नि के लिये देता हूं। हे अग्ने ! तू हमारी सब कामनाओं= अभिलषितों को पूरा कर। (स्वाहा) यह मेरा कर्म सुष्ठु कृत= विधिपूर्वक कृत है। यह मेरी आहुति अग्नि के लिये है, मेरे लिये नहीं।

[द्वादश विधि—मौन प्राजापत्याहुति]

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल कर एक प्राजापत्याहुति करें (सं. वि. ४०)।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥

[त्रयोदश विधि—चार पावमानी आज्याहुतियां]

तत्पश्चात् 'चौल समावर्त्तन और विवाह-संस्कार में मुख्यतः दी जाने वाली घृत की चार आज्याहुति निम्न चार मन्त्रों से देवें (सं. वि. ४१)।[1]

---

*यजुः अ. ३२। म० २२। अर्थ द्र. पृ. १०९ पर।

१. अगले मन्त्रों के आरम्भ में पठित 'भूर्भुवः स्वः' अंश और अन्त में पठित 'स्वाहा ॥ इदं·····इद न मम' अंश मूल मन्त्र से बहिर्भूत है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूर्भुव स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः॥ आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥१॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

१ हे सर्वदोषनिवारक, अन्न बलदाता अग्नि देव परमात्मन्! तू हम चराचर-जीवों के (आयूंषि पवसे) जीवनों की रक्षा करता है अथवा पवित्र करता है निर्दोष बनाता है [जिससे हमारा जीवन पवित्र व्यतीत होता है]। (नः ऊर्जं इषं च आ सुव) तू हमारे लिये बल-सामर्थ्य और अन्न रसादि जीवनोपयोगी पदार्थों को प्रदान कर; [ताकि कभी रोगों के चंगुल में न फंसे]। (दुच्छुनां) रोग-कीटाणु जो जीवन को दुर्भर कर देते हैं अथवा बुरे विचार जो मन को अशान्त-क्षुब्ध कर देते हैं, उनको (आरे बाधस्व) हम से बहुत दूर कर दे परे हटा। (स्वाहा) इस भावना से कि 'परमात्मा आयु का रक्षक, अन्न बलदाता एवं सब दोषों विपत्तियों का निवारक है। यह सूक्ति=स्तुति वचन हैं।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे अग्नि! तू सब जीवों की आयुओं का रक्षक व उनके जीवनों को शुद्ध पवित्र निर्मल बनाता है; अन्न बल की उत्पत्ति का हेतु है, सब दोषों रोग जन्तु आदि शत्रुओं को दूर कर। इस भावना से (स्वाहा) हम तेरा 'अच्छा उपयोग' लेते हैं और आहुति देते हैं॥१॥

ओं भूर्भुव स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥२॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

(अग्निः ऋषिः)[1] परमेश्वर ही 'मन्त्रद्रष्टा' है, ज्ञानदाता है; (पवमानः) पवित्र करने वाला व बुरे विचारों से बचाने वाला है;

---

१. ऋषिः (क) दर्शनात्, ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। निरुक्त। (ख) ऋ गतिप्रापणयोः, गतिः=ज्ञानम्, ज्ञान को प्राप्त कराने वाला। (ग) ऋतं सिनोतीति वा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पांचजन्यः)[२] सब भूतमात्र के हितों का ध्यान रखने वाला है अर्थात् नीचे से ऊपर तक सब के लिये समान रूप से हितकारी व सब 'पंच महाभूत'—'पंच तन्मात्रा'—'पंच प्राण'—'पंच ज्ञानेन्द्रियां'—'पंच कर्मेन्द्रिय' सब पंचकों का अभीष्ट साधन है, (पुरोहितः) और उन्नति के शुभ मार्ग में ले जाने वाला है, सदा जीव के साथ रहने वाला है; (तं महागयम् ईमहे) ऐसे 'महाप्राण' तेजस्वी परमात्मा को हम हृदय से चाहते हैं, उसको प्राप्त होने का प्रयत्न करते हैं, उससे 'आयु, अन्न, बल' की याचना करते हैं।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

वह भौतिक अग्नि देखने का साधन है; शोधक व रक्षक है; सब के लिये समान रूप से हितकारी है; सब कर्मों में मुख्य उपयोगी तत्व अर्थात् सबका अग्रणी=दूत है; (तं महागयं)[३] इस मुख्य जीवनसाधक, महागुणवान् व प्रशस्तकीर्त्ति वाले अग्नि को (ईमहे)[४] यज्ञार्थ, पाचनार्थ तथा वीर्य स्तम्भनार्थ[५] प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, प्रयोग में लाते हैं ॥२॥

ओं भूर्भुव स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥३॥

ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९—२१

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

हे अग्नि परमात्मदेव! तू (स्वपाः) स्वयं रक्षित और विना किसी के सहाय के सब जगत् का पालक है अथवा जो जीवों को सुख देने के निमित्त सृष्टि कर्म करता है। (अस्मे) हम में (वर्चः) तेज व आनन्द (सुवीर्यम्) तथा सुखदायी सामर्थ्य को अथवा (सुवीर्यं वर्चः) उत्तम बलशाली तेज को (पवस्व) बाढ़ और (मयि) मुझ में (रयिं) धन (पोषं) और पुष्टि को अथवा (पोषं रयिं) पुष्टिकारक सम्पदा को (दधत्) प्राप्त करा।

---

२. पंचजनेभ्यः हितः।

३. यह जीवन का मुख्यसाधक है। जब यह नहीं रहता, तब प्राणी मृत=ठण्डा समझा जाता है। 'अग्नि'=उष्णता जीवन का चिह्न है।

४. ईङ् गतौ—गति करते हैं, प्रयत्न या उपयोग लेते हैं।

५. द्र. स्व. सु. पृ. ३८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे अग्ने ! तू (स्वपाः) सु+अपः=सुखकारी गुण धर्म वाला है। हमारे में तेज=अर्थात् आनन्द का विकास कर और सुखकारी बल का आविर्भाव कर। मुझ में धनैश्वर्य तथा पुष्टि का आधान कर। संसार में आयु अन्न और बल की रक्षा अग्नि से होती है। इसलिये गृहाग्नि, जठराग्नि दोनों की सुरक्षा करनी चाहिये।

इसी निमित्त यह 'सुहुत' है। यह अग्नि के लिये है; इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं ॥३॥

ओं भूर्भुव स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

हे प्रजापति परमेश्वर ! (एतानि ता विश्वा भूतानि) इन उन सब उत्पन्न हुए प्राणियों को (त्वत् अन्यः) तुझ से भिन्न दूसरा कोई (न परि बभूव) अधिकार में रक्खे हुए नहीं है, अर्थात् तुम्हारे विना अन्य कोई इन सब उत्पन्न पदार्थों पर शासन नहीं कर रहा है, इन सब प्राणियों पर तुझ से अधिक किसी का अधिकार नहीं है। (यत् कामाः ते जुहुमः) हम जिस कामना से तुझे आहुति देते हैं (तत् नः अस्तु) वह हमारी कामना पूर्ण हो अर्थात् जिन-जिन कामनाओं को मन में रख हम तुझे पुकारते हैं व तेरा आश्रय चाहते हैं, वह कामनायें तेरे अनुग्रह और कृपा से सिद्ध हों (वयं स्याम पतयः रयीणाम्) हम सब धन-सम्पत्ति के स्वामी हो जावें।

हे प्रजाओं की पालना करने वाले अग्नि देव ! तुझ से भिन्न कोई दूसरा नहीं, जो इन उन सब उत्पन्न पदार्थों पर अपना प्रभाव रखता हो, सब प्रकार से अधिक सब पर तेरा ही प्रभाव है। जिस कामना से तुझ में होम करते हैं अर्थात् तेरा प्रयोग करते हैं, वे पूरी हों और हम मानव विविध सम्पदाओं के स्वामी हो जावें।..... यह आहुति प्रजापति परमात्मा व प्राणियों को जीवन दे पालन करने वाले 'अग्नि के लिये है; स्वलाभ के लिये नहीं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्दश विधि—मङ्गल अष्टाज्याहुतियां]

तत्पश्चात् 'अष्टाज्याहुति' निम्न मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में आठ घृत की आहुति देवें। किस-किस संस्कार में कहां-कहां ये आठ आहुति देनी चाहिये, यह विशेष बात उस-उस संस्कार में लिखी जावेगी (सं. वि. ४१)।

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥१॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

हे अग्ने! सर्व दोष निवारक उन्नायक परमेश्वर! (त्वं) तू (नः विद्वान्) हमको=चराचर जगत् के सब भूतों को—जानता है अर्थात् हमारे 'शारीरिक-मानसिक'—कर्मों को, कृत व अकृत को जानता है। (वरुणस्य देवस्य) शान्ति व्यवस्थापक देव रूप अपने (हेळः) निरादर से, उपेक्षा से, क्रोध से हमें (अवयासिसीष्ठाः) दूर रख। भाव यह है कि हमारे बहुत से ऐसे कर्मों को भी हे प्रभो! तू जानता है. जिनके कारण हम तेरे 'सामीप्य'—कृपा अनुग्रह के अधिकारी न रह, तेरे दण्ड के योग्य बनते हैं। पर तू तो 'सर्वदोष निवारक' व 'प्रकाशक' है। इसलिये अपने ही 'वरुणदेव'—रूप में होने वाले 'हेल'=अवहेलना से पृथक् कर; हमारे दुर्गुणों को दूर कर तेरा अनुग्रह हम पर नित्य बना रहे। तू तो (यजिष्ठः) अत्यन्त पूजनीय व संगति करण किये जाने वालों में सर्व-श्रेष्ठ है; (वह्नितमः) विश्व-यज्ञ का भार वहन करने वाला है; ब्रह्माण्ड में सारा व्यापार तेरा ही किया हुआ है, तू ही सब के जीवन का=योग-क्षेम का भार वहन करने वाला है; (शोशुचानः) शुद्धातिशुद्ध है। इसलिये (विश्वा द्वेषांसि) हमारे सारे द्वेष भावों को (अस्मत्) हमारे [बाहर-भीतर] से (प्र मुमुग्धि) पूर्णतः मुक्त कर दे, दूर कर दे। (स्वाहा) वरुण देव के 'हेल'=क्रोध से बचने एवं विश्वानि द्वेषांसि से मुक्त होने के लिये यह यज्ञ करता हूं। (इदमग्नीवरुणाभ्याम्) यह मेरी आहुति उसे=अग्नि और वरुण के प्रति समर्पित है; अब मेरे लिये कुछ शेष नहीं। अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे अग्नि देव ! तुम सब कुछ जानते हो। हे वरुण देव ! अर्थात् शान्तिदाता तू जल के दुष्प्रभाव से हमें बचा। अग्नि (यजिष्ठः) यज्ञ सामग्री में सबसे मुख्य=श्रेष्ठ है; (वह्नितमः) सुगन्धादि को वहन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ या यह देवों का दूत है, वायु, सूर्य तक हवि को यही पहुंचता है, (शोशुचानः) सर्वथा शुद्ध है। हमें 'द्वेषांसि' रोग कीटाणुओं से पूर्णतः मुक्त कर दे ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥
इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

भावार्थ—(सः) वह [सर्वरक्षक सर्वज्ञाता सृष्टिकर्त्ता] हे (अग्ने) ज्ञान ज्योतिर्मय प्रभो ! (त्वं) तू (अस्या उषसः व्युष्टौ) इस उषा काल के प्रकाश में अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त्त से ही (ऊती) रक्षा [के वरद हस्त] से (नः) हमारा (अवमः) समीपवर्त्ती रक्षक=आत्मीय तथा (नेदिष्ठः) अत्यन्त प्रिय व समीपतम (भव) हो अर्थात् उषा के फूटने के साथ ही तू अपनी सहायता के द्वारा हमारा अन्तरंग साथी बन जा। हे परमेश्वर ! प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त्त में हम तेरी उपासना करते हैं; तेरा सहारा चाहते हैं। (नः) हमारी (वरुणं) शीतलता=मन्दता=जीवनाग्निराहित्यभाव को (अव-यक्ष्व)[1] हम से दूर कर, परास्त कर और (रराणः) अपनी कृपा का दान करता हुआ (सुमृळीकम् वीहि) सुखदायक ऐश्वर्य को अर्थात् सुख के सुन्दर साधनों को प्रदान कर। (सुहवः) अच्छे प्रकार हमारी पुकार सुनने वाला तू (नः एधि)[2] हमारे लिये हो, हृदय में बढ़।

(स्वाहा) हमारा यह कार्य इस लक्ष्य का पूरक हो। (इद-मग्नीवरुणाभ्यां) यह अग्नि और वरुण के लिये समर्पण है; मेरा इसमें कोई अधिकार नहीं ॥२॥

---

१. यजन=सगतिकरण। अवयजन=निसंगतिकरण, पृथक्करण।

२. नि होता सत्सि बर्हिषि। साम. १।१।१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

भावार्थ—हे वरणीय उपास्य इष्टदेव ! (इमं मे हवं) मेरी इस पुकार को (अद्य) आज-अब-निरन्तर (श्रुधी) सुन (च) और (आ मृळय) मुझे भली-भांति सुखी कर । (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहता हुआ मैं (त्वम्) हे सर्वरक्षक प्रभो ! तुम्हें (आचके) निहारता हूं; तुम से याचना करता हूं ।

हे जलदेव ! मेरे इस 'हव' का ख्याल कर और [सुमित्र हो] मुझे भली-भांति सुखी-स्वस्थ कर । अपना रक्षण चाहता हुआ मैं यजमान तेरी कामना करता हूं । रक्षा के निमित्त मेरी यह सुष्ठु हवि है । यह वरुणदेव के नाम पर है, इस पर मेरा अधिकार नहीं ॥३॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—हे उपासना के योग्य परमपिता ओम् (ब्रह्मणा वन्दमानः) ज्ञानपूर्वक तेरी वन्दना करता हुआ मैं अथवा वेद मन्त्रों से स्तुति करता हुआ मैं (त्वा) तुझ से (तत्) उसी [पूर्ण सुखप्रद आयु] की (यामि=याचामि) याचना करता हूं; (तत्) जिस जिसको निष्काम कर्म रूप हवियों से (यजमानः) यज्ञ करने वाला उपासक मनुष्य [तुझ से] (आशास्ते) आशा करता है अथवा प्राप्त करना चाहता है । हे (उरुशंस वरुण) महान् कीर्ति वाले वरणीय इष्टदेव ! (अहेळमानः) मेरी 'अवहेलना' न करता हुआ अर्थात् मेरी पुकार की उपेक्षा=को अनसुना न करता हुआ तू (इह बोधि) इसी जन्म में [सत्य धर्म का] बोध मुझे करा दे । (नः आयुः) हमारी आयु को (मा प्रमोषीः) मत काट अर्थात् कम मत करे, हमारे में से किसी की अकाल मृत्यु न हो । सब पूर्ण आयुष्य का भोग करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा ज्ञानपूर्वक स्तुतिं करता हुआ 'तद्' पद वाची तुझ परमात्मा की (यामि) शरण पड़ता हूं। जिस उस ब्रह्म की यजमान त्यागमय कर्मों द्वारा प्राप्त करने की आशा करता है। हे महान् कीर्ति वाले वरणीय इष्टदेव! मेरी पुकार को अनसुना न करता हुआ तू मुझे इसी जन्म में सत्य का बोध करा और हमारी आयु को नष्ट न कर; ताकि हम यजमान दीर्घ काल तक 'ब्रह्मणा' तथा 'हविर्भिः' तेरी वन्दना करते रहें।

अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे वरुण देव! ज्ञानपूर्वक तेरा विनियोग करता हुआ मैं, तुझ से उस लाभ की इच्छा करता हूं, जिसकी यजमान उत्तम कर्मों से आशा करता है। हे उरुशंस वरुण! मेरी उपेक्षा न करता हुआ तू इसी समय मुझे चेतन=उत्साह युक्त कर। हमारी आयु को कम न कर ॥४॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः
—इदन्न मम ॥५॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

हे वरणीय उपास्य प्रभो! (ये ते शतं सहस्रं) जो तेरे सैकड़ों व हजारों (महान्तः यज्ञियाः पाशाः) बड़े-बड़े जीवन यज्ञ सम्बन्धी [कर्मचन्द्र के] बन्धन (विततः) सृष्टि में फैले हुए हैं अर्थात् जीव के सामने इस सृष्टि में जीवनयज्ञ चलाते समय जो कि सैकड़ों-हजारों पाश [इन्द्रियों के विषयजाल में फंसने रूप तथा मन के नाना वृत्तियों के फांस रूप] पड़े हैं, जिनमें फंसा वह विकल है अथवा जीवन-यज्ञ करते समय विघ्न डालने व दोष करने पर सैकड़ों हजारों दण्ड रूप पाश हैं, (तेभिः) उन से (अद्य) आज व इस वर्तमान जन्म में (नः) हम लोगों को (सविता) जगत् के सब प्राणियों के अपने-अपने कर्मों में प्रेरणा करने वाला (उत) और (विष्णुः) चराचर जगत् में व्यापक तू प्रभु और (विश्वे) सब अथवा सर्वत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रविष्ट (स्वर्काः मरुतः) भली-भांति तेज प्रभाव रखने वाली आपकी आकाशीय सूक्ष्म शक्तियां अथवा भली-भांति पूजनीय मितभाषी आप्त धार्मिक विद्वान् (मुञ्चन्तु) छुड़ावें।

भाव यह है कि हे मुक्तिप्रदातः इष्टदेव ! हमारे द्वारा जीवन-यज्ञ करते समय दोष करने के कारण जिन बहुत से दण्ड रूप पाशों में हम फंस जाते हैं और यज्ञ आदि परोपकार परमार्थ के कर्मों में जो सैकड़ों-हजारों विघ्नबाधा रूप रुकावटें आती हैं, उन सबसे (सविता) सत्कर्म में प्रेरक और (विष्णुः) सर्वव्यापक तू तथा अत्यन्त प्रभावशाली तेरी (मरुतः) प्राणतरंगे, हम लोगों को मुक्त कर दें। अर्थात् हम जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जावें। क्योंकि उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय रूप सृष्टि-यज्ञ का तू ही नियामक है; इसलिये हम तेरी शरण में आये हैं; 'ऐसी कृपा करो कि हम सब बन्धनों से दूर हों।'

अनुष्ठानपरक अर्थ—

हे जल के देवता वरुण ! इस जीवन-यात्रा में हम अपने दोषों= गल्तियों के कारण दुःख पाश में फंस जाते हैं और इस प्रकार जीवन-यज्ञ में जो सहस्रों विघ्न आ जाते हैं, उन सबसे (सविता) प्रातः कालीन सूर्य और (विष्णुः) किरणों से सर्वत्र-व्याप्त मध्याह्न कालीन सूर्य और प्राण-तरंगे हमें बचावें। इसलिए तेरा सद्विनियोग करते हैं ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५-१।११ ॥

भावार्थ—परमात्मपरक अर्थ—

हे अग्निदेव परमात्मन् ! (अयाः च असि) और तू चराचर जगत् के 'अन्तः बहिः' व्यापक है अथवा तुम [सुवर्णधातु की तरह] तीक्ष्ण तेजः पूर्ण हो; (अनभिशस्तिपाः च) और निरपराध निर्दोष जनों के रक्षक हो अथवा [अप्रगट रह] बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं और निन्दकों से हमारी रक्षा करने वाले हो; (सत्यं इत् त्वं अयासि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सच ही तू हमें छोड़ कभी कहीं जाता नहीं, तुम ही वस्तुतः सर्वव्यापक हो [हमारी रक्षा करते हो] और (अयाः नः यज्ञं वहासि) सर्वव्यापक तेजस्वी तू ही वस्तुतः हमारे यज्ञिय पदार्थों को वायु के द्वारा सूर्यलोक तक वहन करता=पहुंचाता है अथवा हमारे यज्ञ को अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाने वाले तुम्हीं हो। अथवा तू ही हमारे जीवन-यज्ञ का भार वहन करता=योगक्षेम देखता है। (अयाः नः भेषजं धेहि) सर्वव्यापक तीक्ष्ण तेजस्वी आप हमारे लिये भेषज दीजिए अर्थात् दोष दुःख रोष पाप निवारक उपाय कीजिये।

अनुष्ठानपरक मन्त्र—

हे अग्नि ! तू सब पदार्थों के अन्दर बाहर गया हुआ है, अभिशस्ति=चारों ओर आक्रमणकारी रोगकीटाणु, तद्विपरीत पोषकतत्व 'अनभिशस्ति', इनका पालक-पोषक, सच ही तू हमें छोड़ कभी कहीं जाता नहीं; तेजस्वी सर्वत्र संचारी तू ही हमारे यज्ञिय पदार्थों को सूर्यलोक तक वहन करता=पहुंचाता है। सर्वत्रगति तीक्ष्ण तू हमारे लिये रोग निवारक भेषज बन।

यह हवि तेजस्वी सामर्थ्य सर्वत्र परमात्मा व सर्वदोषदाहक अग्नि के लिये है, ……॥६॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५॥

भावार्थ—हे वरणीय प्रभो ! तू (अस्मत्) हम से (उत्तमं पाशं) ऊपर के बन्धन को (उत्) उतार दे; (अधमं) नीचे के पाश को (अव) दूर कर दे और (मध्यमम्) मध्य=बीच के पाश को (वि श्रथाय) विशृङ्खल कर दे, ढीला कर दे। (अथ) और अब इन बन्धनों से युक्त हुए (वयं) हम लोग, (आदित्य) हे अविनाशी अखण्ड व्रतों के स्वामी नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव परमात्मन् ! (तव व्रते आ) तेरे व्रत=उपदेश=नियमों की (आ) मर्यादा में भली-भांति चलें। (अनागसः) निष्पाप=शुद्धान्तःकरण होते हुए अर्थात् चित्त की वासना का क्षय करके (अदितये) तेरे अखण्ड आनन्द के लिये (स्याम) योग्य होवें अर्थात् मोक्षाधिकारी बनें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा हे स्वयं प्रकाश तेजस्वी परमात्मन् ! तेरे बनाये सृष्टि नियमों पर चलते हुए, पाप दुःख रहित हो, सदा अदीन [स्वाधीन] रहें।

ये 'त्रिपाश' क्या हैं, जिन्हें उत्तम मध्यम अधम कहा गया है ? पुरुष पंचकोषों से आवृत जीव का नाम है। अन्नमय तथा प्राणमय कोष अर्थात् स्थूल बहिः शरीर में होने वाली इन्द्रियों की वृत्तियों का एवं प्राणों के मोह का बन्धन। पंचजन इसमें बन्धे हैं। इसे 'व्याधि-रूप बन्धन' भी कह सकते हैं। यह अधम प्रकार का पाश है। इसे 'पुत्रैषणा' का बन्धन भी कह सकते हैं। फिर 'मनोमय' कोष अर्थात् सूक्ष्म शरीर का बन्धन। 'इसे आधिरूप बन्धन' नाम दे सकते हैं। यह मध्यम प्रकार का पाश है। इसे 'वित्तैषणा' अर्थात् परिग्रहवृत्ति का बन्धन कह सकते हैं। फिर 'विज्ञानमय' कोष का बन्धन। इसे 'उपाधि रूप बन्धन' कह सकते हैं। यह उत्तम प्रकार का पाश है। इसे 'लोकैषणा का बन्धन' कह सकते हैं। यह 'झीनी चदरिया' की तरह होता है, जिसे उतार फैंकना बहुत कठिन होता है।

इन्हें कायिक=अधम, मानसिक=मध्यम और आत्मिक=उत्तम बन्धन भी कह सकते हैं। जब तक ये हैं, तब तक मनुष्य को दुःख मिश्रित सुख का भोग मिलता है। यह ईश्वरोपासना द्वारा इन से छूटने पर 'सुख-ही-सुख में स्वतन्त्र अखण्ड विचरण' का समर्थ्य प्राप्त होता है ॥७॥

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

यजु० अ० ५। मं० ३।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! तेरे अनुग्रह से—

(जातवेदसौ) आदित्य अग्नि तथा पार्थिव अग्नि अथवा एक दूसरे में 'शरीर मन बुद्धि' से विद्यमान पति-पत्नी अथवा अध्यापक वा उपदेशक। ये दोनों आज—

१. (नः) हमारे लिये (समनसौ) एक मनन=गति वाले (सचेतसौ) एक चेतना=प्रभाव वाले (अरेपसौ) परस्पर विरोध न करने वाले (भवतम्) हों। (मा यज्ञं मा यज्ञपतिम् हिंसिष्टम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन-यज्ञ तथा उसके पति जीव को [उन्नति में] हानि बांधा न पहुचावें [और इस प्रकार] (नः अद्य शिवौ भवतम्] हमारे लिये आज सुखकारी हों।

२. हमारे [संघ समाज राष्ट्र के] लिये, एक मन, एक चित्त और (अरेपसौ)[1] पापरहित [=संशयरहित भाव वाले] व परस्पर विरोध न करने वाले हों। यज्ञ=किसी भी श्रेष्ठ कर्म अर्थात् उत्तम सङ्गत तथा उसके आयोजक यजमान को कभी हानि न पहुंचावें और इस प्रकार (जातवेदसौ)[2] समझदार होते हुए हमारे लिये आज-अब-निरन्तर सुखकारी हों।

भाव यह है कि समाज में स्त्री-पुरुषों का जोड़ा सदा सज्ञान हो मिलकर रहे। इनके ज्ञान विचार तथा व्यवहार समान हों। ये पापी न हों। नित्य और नैमित्तिक यज्ञों का लोप=उल्लंघन कभी न होने दे अर्थात् प्रतिदिन नियम से इनका अनुष्ठान करते रहें। उत्तम कार्यकर्त्ता का विरोध न करें और सदा मनुष्यों के कल्याण का ही आचरण करें। इस होम से यही भावना जागे।

३. हमारे लिये एक मन एकत्रित और (अरेपसौ) परस्पर विरोध न करने वाले व शुद्धाचरणी हों। ये सङ्गतिकरण के सामाजिक हितकारी कर्म तथा उनके संयोजकों से कभी वैरविरोध, कलह, विवाद न करें। सदा ससान बन हमारे लिये मङ्गलकारी हों।

[पञ्चदश विधि--पूर्णाहुति]

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ॥

पुनः इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति* अर्थात् एक-एक बार पढ़ के

---

१. 'अरेपस्' शब्द में 'रेप' पद विचारणीय है। अङ्गरेजी में 'टु रेप' का अर्थ 'क्रिमिनल असाल्ट' अर्थात् शीलभंग करना है। पतिपत्नी दोनों पारस्परिक शील की रक्षा करने वाले होने चाहियें। समय-असमय हर समय दूसरे की मान-मर्यादा-शील भङ्ग करने वाले नहीं होने चाहियें।

२. 'जातवेदस्' जातमात्र में विद्यमान 'अग्नि'। 'द्यावापृथिवी' अर्थात् द्युलोक='सूर्य' व पृथिवीलोक की 'अग्नि' जैसे परस्पर सङ्गत रहते हैं, एक दूसरे से मिले=अनुकूल रहते हैं, वैसे ही दम्पती होने चाहिये। वेद में द्यावापृथिवी से पुरुष और स्त्री को उपमा दी है।

*पूर्णाहुति में निम्न भाव है।

क. ओम् निज नामवाले अग्नि परमात्मा की कृपा से (सर्वं) यज्ञ की सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक-एक करके आज्य और होमशाकल्य की तीन आहुति देवें। (सं. वि. ४३; २६९)।

हे ओम् परमात्मन्! आपकी कृपा से पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यु तीनों लोकों की अग्नि में, संसार के शारीरिक-आत्मिक-सामाजिक त्रिविध उपकार के निमित्त अथवा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीन आश्रमों से सम्बद्ध (सर्वम्) यह सब होमकर्म=यज्ञ (वै) निश्चितरूप में (पूर्णम्) पूरा हो। यज्ञ के सब प्रयोजन पूर्ण सिद्ध हों। (स्वाहा) तीन पूर्णाहुतियों का प्रयोजन यह है कि आधि-भौतिक-आधिदैविक-आध्यात्मिक तीन सुखों की प्राप्ति के निमित्त मेरा संकल्प, मेरा प्रयत्न हे जगदीश्वर! सत्य है। इसलिए यह कर्म हम आपको समर्पित करते हैं।

[षोडश विधि—मङ्गलकार्य मङ्गलगान]

गर्भाधानादि संन्यास-संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त कार्य और निम्न-लिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें।[1] वे मन्त्र ये हैं—

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ ३ २ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

क्रियाएं (वै) निश्चय से (पूर्णं) पूरी हुई हैं; कुछ 'अतिरिक्त या न्यून' नहीं हुआ। (स्वाहा) यह सब प्रसन्नता से कहता हूं।

ख. (सर्वं) परमात्मा का रचा यह समस्त संसार (वै) निश्चय रूप से (पूर्णं) पूर्ण है, इसमें कोई 'त्रुटि' व दोष नहीं है। (स्वाहा) यह सृष्टियज्ञ 'सुकृत' है।

ग. (सर्वं) 'प्रजा-पशु-ब्रह्मवर्चस-अन्नाद्य' तथा 'समेधन' रूप जो यज्ञ का फल है, वह सब (वै) निश्चय रूप से (पूर्णं) पूरा-पूरा प्राप्त हुआ है; 'न न्यून न अधिक'। (स्वाहा) वह ओम् निज नामवाले अग्नि परमात्मा के समर्पण है।

१. द्रष्टव्य—अपवृक्ते कर्मणि वामदेव्यगानं शान्त्यर्थं शान्त्यर्थम्। गोभिल गृह्य० १।९।२५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१२उ ३ २र १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

१ २उ ३क ३र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ओं भूर्भुवः स्वः । अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
३ १ २ ३ १ २
शतं भवास्यूतये ॥३॥

महावामदेव्यम्—

३ र ४ २ ४र ५ १ र ३ १र
काऽ५या । नश्चा३ यित्रा३ आभुवात् । ऊ । ती सदा-
२ १ २ र २ १ २ र २
वृधः,स । खा । औ३ होहायि । कया२ ३ शचायि । ष्ठ यौहो३ ।
१ २
हुं मा२ । वाऽ२र्तो३ऽ५हायि ॥ (१) ॥

१ र ४ २ ४र ५ १ २र १ २
काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठोमात्सादन्ध ।
२ र २ १ २^ ३र २ १
सा । औ३होहायि । दृढा२३ चिदा । रुजौहो३ । हुं मा२ ।
१ २
वाऽ२सो३ऽ५हायि ॥(२)॥

३ र ४ २ ४ ५ १ २र १ २र
आऽ५भी । षुणा३ः सा३खीनाम् । आ । विता जरायि तॄ ।
१ र २ १ • २^ ३ र २ १
णाम् । औ२ ३ हो हायि । शता२ ३ भवा । सियोहो३ हुं मा२ ।
१ २
ताऽ२ यो३ ऽ५हायि ॥(३)॥

साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ४ । मं० १, २, ३ ॥

[सप्तदश विधि—दक्षिणा, दान, अभ्यागतसत्कार]

वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ यजमान स्त्री-पुरुष, यज्ञ-संस्कार के कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृहस्थ ऋत्विग् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तने वाले हों तथा जो विद्या देने वाले आचार्य हों, उनको नमस्कार, सुन्दर पुष्पमाला, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, गौ, धन आदि के दक्षिणा-दान, भेंट से उत्तम प्रकार से यथायोग्य यथासामर्थ्य सत्कार करें। पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उनको भी सत्कार पूर्वक विदा कर दें (सं. वि. ४६; १६१)।

जिसको दक्षिणा देनी हो उन्हें दक्षिणा देवें, जिनको जिमाना हो जिमा के (सं. वि. ४४)। [इस प्रकार] संस्कार में आये हुए मनुष्यों को यथायोग्य आदर-सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को प्रीति-प्रसन्नतापूर्वक विदा करें (सं. वि. ७८, १०१, १२१, १३३, २१७)।

पश्चात् यजमान स्त्री-पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को [यज्ञशेष रूप में] प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें (सं. वि. ४४)।

यह सामान्यविधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्तव्य है।

भावार्थ—(क) वह (भूर्भुवः स्वः) सच्चिदानन्दस्वरूप (चित्तः) सदा चित्त में रमण करने वाला व सृष्टि का चितेरा (कया) कल्याणमय (ऊती) रक्षा-साधनों व रक्षा-नियमों से तथा (कया) कल्याणमय (शचिष्ठया) उत्तम वाक्-प्रज्ञा-कर्मयुक्त (वृता) वर्त्तन=व्यवहार से (नः) हमारा (सदावृधः आ सखा भुवत्) सदा उपकार करने वाला पक्का मित्र बने या हम से पक्के मित्र का व्यवहार करता है।

(ख) वह सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा (कया ऊती) किस प्रकार के [ईश्वर प्रदत्त 'शरीर मन प्राणादि' के] उत्तम-रक्षण से तथा (कया) किस प्रकार के उत्तमज्ञान कर्म के आचरण से (नः) हमारा चित्र, सदावृध, सखा (आ भुवत्) पूरी तरह से हो सकता है?

(ग) (कया ऊती) सुखवर्धक=संसार का शारीरिक आत्मिक सामाजिक उपकार करने वाले 'रक्षा के साधन' उत्पन्न करने से तथा (कया शचिष्ठया वृता) सुखवर्धक उत्तम-ज्ञान-कर्म के समन्वित आचरण से यह परमेश्वर हमारा 'चित्रः' सदावृधः' (आ) पक्का (सखा) मित्र बन सकता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(क) (कः) कमनीय सुखस्वरूप (सत्यः) सत्यस्वरूप (मदानां मंहिष्ठः) आनन्ददायक पदार्थों में सबसे ज्यादा हर्ष उत्पन्न करने वाला या सब आनन्दों में श्रेष्ठ आनन्दरूप भगवान् (त्वा) तुझको (अन्धसः) अन्नादि पदार्थों से (मत्सत्) आनन्दित-सुखी-तृप्त करता है और (आरुजे चित्) भली-भांति रोग-पापग्रस्त के लिये भी (वसु) वासनयोग्य साधन सामग्री की (आ दृढ़) भली-भांति दृढ़=प्रदान करता है; नियत करता है। परमात्मा 'स्वस्थ' स्वतन्त्र जीव को इतनी ऊर्जाः=शक्ति देता है कि वे अन्न से तृप्त होते हैं, आनन्द-पूर्वक अन्नादि भोग प्राप्त कर सुखी होते हैं। परन्तु जो अन्य रोगी अर्थात् भोग में अशक्त हैं, उनके लिये भी 'वसु=' ऐसी सामग्री, जो जीव को नियत अवधि तक शरीर में वासयोग्य बनाती है, प्रभु दृढ़ करता है अर्थात् उनके शरीरवास का भी पक्का प्रबन्ध करता है।

(ख) कौन है, वह जो (सत्यः) सचमुच मुझको अन्न से सुखी करता है, आनन्दों में सबसे बढ़ कर हर्ष का कारण है और रोगादि दुःखों के नाश के लिये भी 'वसु' अर्थात् धनैश्वर्य व वासक-साधन सामग्री की (आ दृढ़) पूरी व्यवस्था करता है ?

(ग) सुखस्वरूप, आनन्दों में श्रेष्ठतम आनन्द, परमात्मा ही (सत्यः) सचमुच मुझे अन्न द्वारा सुखी करता है, रोगादि दुःखों के नाश के लिये सब वासक-साधन सामग्री जुटाता है ॥२॥

(क) हे सच्चिदानन्दस्वरूप ! परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (नः) हमारी (सखीनाम्) सब मित्रों अर्थात् जीवों की और (जरितॄणाम्) उपासकों की (ऊतये) रक्षा के लिए (शतं=शतं यथा स्यात्तथा) सैकड़ों प्रकार से (अविता अभि भवासि) रक्षक बन उनके अभिमुख होता है अर्थात् तू सैकड़ों प्रकार के रक्षा साधनों के रूप में उनके (अभि) सब ओर विद्यमान रहता है।

(ख) परमेश्वर (नः) हमारी (सु ऊतये) सुरक्षा के लिये सदा (अविता) रक्षक बन कर (अभि भवासि) सब के सम्मुख=साथ रहता है ? कैसे ? (शतं) सहस्राक्ष सहस्रपात् रूप में। (सखीनाम् जरितॄणाम्) उपासक मित्रों की, एक सदृश गुण-धर्म रखने वाले भूतों की। कैसी सुन्दर सार्वभौम प्रार्थना है ? ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गर्भाधानसंस्कार-विधिः

शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के जो उत्तम संस्कार करने होते हैं, उनमें से प्रथम गर्भाधान संस्कार है (सं. वि. पृ. ४७)।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम बलवान् स्त्री-पुरुषों [के सम्मिलन] से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इस [कारण] से यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके [ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा करनी चाहिये]। अर्थात् इस समय न्यून-से-न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होना चाहिये और इससे अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है। क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिए अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का [पूर्ण] सामर्थ्य नहीं होता, और पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम [अर्थात् सन्तानोत्पादन में समर्थ] नहीं होता।

अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून-से-न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, ऐसा [सु. । शारी. स्था. । अ. १०] लिखते हैं। [क्योंकि] जितना सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है, उतना ही सामर्थ्य सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है। इसलिये इस अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें। सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है, तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है। और जो उत्पन्न भी हो, तो अधिक नहीं जीवे; अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों। इसलिए अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[प्रथम विधि—सामान्य यज्ञ]

स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित हो, उस दिन रात्रि में गर्भस्थापन करना चाहिये। उससे पूर्व, दिन में सुगन्धादि युक्त घृत, होमद्रव्य, मोहन-भोग पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के पृष्ठ २४-१०६ पर लिखे प्रमाणे वरवधू आघारावाज्यभागाहुति तक हवन करें। सामान्य यज्ञ के समय पत्नी पति के दक्षिणभाग में बैठें।

[द्वितीय विधि—बीस आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बीस आहुति देनी।* यहां पत्नी पति के वाम-भाग[1] में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख पूर्व, दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथामुख बैठें।

---

*इन बीस आहुतियों के देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे। सं. वि. ५७॥

१. सामान्यतः शास्त्रविध्यनुसार यज्ञ कर्म में पत्नी का स्थान पति के दक्षिण भाग में नियत है। यहां बीस आहुति देते ससय पति के वाम भाग में बैठने का विशेष विधान किया है। साथ ही वधू को, अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध का स्पर्श करने का भी विधान किया है (सं. वि. ५७)। यह स्कन्ध-स्पर्श क्रिया तभी सुचारु रूप से सम्भव है, यदि पत्नी-पति के दक्षिण बाजू में बैठी हो।

ठीक ऐसा ही एक प्रसंग प्रधान होम के समय विवाह-संस्कार में है। परन्तु वहां वर के दक्षिण भाग में बैठी वधू को अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध का स्पर्श करने का विधान है (सं. वि. १८९, १९०)।

इन दोनों स्थलों का सामञ्जस्य कैसे हो? या तो कन्या द्वारा स्कन्ध स्पर्श कराया ही न जावे; या तब कराया जावे जब सामान्य यज्ञ के समय पति के दक्षिण बाजू में 'विवाह-संस्कार' में बैठने के समान बैठी हो। तत्पश्चात् गर्भाधान सम्बन्धी विशेष होम के समय वह पति के वाम भाग में चली जावे। हमें यह समीचीन प्रतीत होता है।

आयुर्वेदज्ञों और गृह्य सूत्रकारों के अनुसार, एकान्त सेवन से पूर्व, पति को चाहिये कि वह पत्नी को अपने वामपार्श्व में लावे और 'सम्बन्ध' से पूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम ॥२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम यास्याः उपधावमि पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥४।

पहले मन्त्र-पञ्चक का अर्थ [१—५]

हे (प्रायश्चित्ते) दोषनाशक (अग्ने) अग्ने! (त्वं) तू (देवानां) सब देवों अर्थात् दिव्यगुणयुक्त भौतिक शक्तियों में (प्रायश्चित्तिः) दोषों का नाशक (असि) है।

हे दोषनाशक (वायो) वायो! तू०…

हे दोषनाशक (चन्द्र) चन्द्रमा! तू०…

हे दोषनाशक (सूर्य) सूर्य! तू०…

हे (प्रायश्चित्तयः) सर्वदोषनिवारक (अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः) अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य देवो! (यूयं) तुम [सृष्टि की नाना] भौतिक शक्तियों के बीच में (प्रायश्चित्तयः) [विशेष करके] दोषों के निवारक अर्थात् क्रमशः शोधक, प्रवाहक, शामक और शोषक (स्थः) हो।

स्नेह-व्यवहार उसे वाम भाग में रख कर ही करे। अभिगमनानन्तर यथा पूर्व पत्नी को अपने दक्षिण पार्श्व में लाकर उसके दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले जाकर उसका हृदय स्पर्श करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः-इदन्न मम ॥५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चिते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥८॥

(ब्राह्मणः) ब्रह्मचर्य-व्रत विद्याभ्यासपूर्वक ब्रह्म अर्थात् शरीर आत्मा व ज्ञान की वृद्धि वाला मैं (नाथकामः) ऐश्वर्य व स्वामित्व ='गृहपतित्व' की इच्छा वाला (वः) तुम सबके (उपधावामि) समीप अर्थात् साथ चलता हूं अर्थात् तुम्हारे अनुकूल सेवन करता हूं। (या) जो (अस्याः) इसी स्त्री को (पापी लक्ष्मीः) दोषों से अङ्कित या बुरे लक्षणों वाली (तनूः) शरीर है, (ताम्) उस [दोषयुक्त-भाग] को (अस्याः) इसके शरीर से (अपजहि) दूर करो।

पापी लक्ष्मीः तनूः=गर्भाशय के अन्दर का 'योनि' पर पड़ा पर्दा।

दूसरे मन्त्र-पञ्चक का अर्थ [६—१०]

हे दोषनाशक अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य देवों!.....जो इस स्त्री की (पतिघ्नी तनूः) पति की आयु-मन-शरीर की घातक देह है, उसको.....

पतिघ्नी तनूः=पति को हानि पहुंचाने वाले जो दोषादि हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा। इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥१०॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥११॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा। इदं वायवे—इदन्न मम ॥१२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा। इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥१३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा। इदं सूर्याय —इदन्न मम ॥१४॥

तीसरे मन्त्र-पञ्चक का अर्थ [११—१५]

हे दोषनाशक अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य देवों! जो इस स्त्री की (अपुत्र्याः तनूः) बन्ध्यात्व को दोषयुक्त या सन्तान के लिये हानि-कारक जो द्रव्य हैं……

अपुत्र्यास्तनूः=बन्ध्यात्व दोषवाला शरीर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्र-सूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥१५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अप-जहि स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ! १६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायो—इदन्न मम ॥१७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥१८॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण-स्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय —इदन्न मम ॥१९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रा-यश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपस-

---

चौथे मन्त्र-पञ्चक का अर्थः [१६—२०]

हे दोषनाशक अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य देवों ! जो इस स्त्री की (अपसव्या तनूः) प्रतिकूल ले जाने वाला शारीरिक दोष है……तुम उसको इस स्त्री के शरीर से दूर करो ।

आप सब देवों के निमित्त यह आहुति शुभ हो ।

'अग्नि-वायु-चन्द्र-सूर्य' के प्रतिनिधि शरीर में 'प्राण-अपान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः-- इदन्न मम ॥२०॥

[तृतीय विधि—घृत व भात की छै आहुतियां]

बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवें। इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब ये घृत आदि भात में एक रस हो जायं, पश्चात् नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक आहुति भात और घृत की अग्नि में देवें और स्रुवा में का शेष घृत आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे।

ओम् अग्नये पवमानाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम[1] ॥१॥

ओम् अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पावकाय—इदन्न मम[2] ॥२॥

समान-व्यान' चार प्राण हैं। उनके विकृत हो जाने से शरीर=क्षेत्र विकृत होता है। बीज वपन से पूर्व क्षेत्र शुद्धि आवश्यक है। इसीलिये ये प्रार्थनायें हैं।

१. सब दोषों को गुणों से पृथक् करने वाली पृथिवी स्थानीय भौतिक अग्नि के लिये मेरी यह (स्वाहा) सुष्ठुक्रिया है।

२ सब दोषों को बहा ले जाने वाली अन्तरिक्षस्थ विद्युत् के वाहक वायु के लिये मेरी यह सुष्ठुक्रिया है।

---

*द्र. गोभिल गृह्य २।५।२-४ तथा मन्त्र ब्रा. १।४।१-५। यहां इनका निर्देशमात्र है। इनकी ऊहा करके पांच मन्त्रों के बीस मन्त्र किए जाते हैं। दोनों ग्रन्थों की टीकाओं में इसका स्पष्ट निर्देश किया गया है।

१. द्र. आप. श्रौत ५।२१।५ ॥ भाष्य भी देखें।

२. द्र. यजु. २२।२० ॥ पार. गृह्य० १।२ की हरिहर टीकाऽन्तर्गत पद्धति में उक्त चारों मन्त्र पठित हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये—इदन्न मम ॥३॥

ओम् अदित्यै स्वाहा ॥ इदमदित्यै—इदन्न मम[1] ॥४॥

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥५॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥६॥

[चतुर्थ विधि—अष्टाज्याहुतियां]

तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त निम्नलिखित आठ मन्त्रों से मङ्गल अष्टाज्याहुति देनी—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

---

३. सब दोषों=मलों की शुचिकारक द्युलोकस्थ आदित्याग्नि के लिये मेरी यह सुष्ठु क्रिया है ।

४. अखण्डरूप से आश्रयदात्री भूदेवी के लिये मेरी यह सुष्ठु क्रिया है ।

५. सब प्रजाओं के पालक-पोषक परमात्मा के लिये मेरी यह (स्वाहा) शुभ प्रार्थना है ।

हम 'अग्नि, वायु, आदित्य' तीन प्रकार की अग्नियों का सदुपयोग करें, इनके लिये (स्वाहा) शुभवचन कहने का भाव इनके 'सदुपयोग' करने से है । अशुभकथन करने का अभिप्राय दुरुपयोग करने से होता है ।

---

१. द्र. पार. गृह्य. १।११।३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५-१।११॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिष्टुं गा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

यजु० अ० ५। मं० ३।

[पंचम विधि—आज्य और मोहनभोग की आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्य और मोहनभोग की आहुति देनी—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥२॥

---

१. हे वधू! (विष्णुः) सब के अन्दर व्यापक परमात्मा की और उसकी 'गर्भाशय को व्यापक करने वाली शक्ति (ते) तेरे (योनिम्) गर्भाशय को (कल्पयतु) गर्भधारण के योग्य बनावे; (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमात्मा की 'निर्मात्री शक्ति' (रूपाणि) गर्भ के 'रूप-रंग लिंगयोनि' को (पिंशतु) निश्चय करे, 'डिजाइन करे; (प्रजापतिः) प्रजापति की उत्पादन शक्ति (आ सिञ्चतु) गर्भ को सप्तधातुओं के रस से सिञ्चित करे और (धाता) गर्भ को धारण कराने वाली शक्ति (ते गर्भं दधातु) तेरे गर्भ की स्थिति करे। जिससे गर्भपात व दुर्बल सन्तान न हो।

२. हे (सिनीवालि) अन्नपूर्णे! प्रतिपदाचन्द्रमुखि! प्रसन्न-वदने! (गर्भं धेहि) गर्भ को धारण कर। (सरस्वति) हे ज्ञान-मयि! गर्भ को धारण कर। (पुष्करस्रजौ) पुष्टिकारक वीर्य वा रज को पैदा करने वाले (अश्विनौ देवौ) परस्पर व्याप्त=मिलकर सन्तान को देने वाले दोनों अङ्ग, उपस्थ और योनि तेरे गर्भ का पोषण करें। अथवा "पुंस्त्व पैदा करने वाले प्राण और अपान वायु तेरे गर्भ को स्थिर करें।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥
ऋ० मं० १० । सू० १८४ । १-३ ॥

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्बं जहाति जन्मना ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसः
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥

यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम

---

३. (यं) जिस तेरे गर्भ को (हिरण्ययी) परस्पर हितैषी और (अरणी) परस्पर सुखाभिलाषी=रति सुख चहाने वाले (अश्विनौ) परस्पर संगत पति-पत्नी (निर्मन्थतः) शोधन करते हैं या मन्थन करके उत्पन्न करते हैं, (तं ते गर्भं) उस तेरे गर्भ [—स्थ सन्तान] को (दशमे मासि) दसवें महीने (स्वाहा) सुखपूर्वक (सूतवे) उत्पन्न होने के लिये (हवामहे) आशा करते हैं ।

४. (इन्द्रियं) गर्भोत्पत्ति में 'हेतुभूत पुरुषेन्द्रिय' (योनिं प्रविशत्) गर्भधारण योग्य 'स्त्री-योनि' में प्रविष्ट होता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि+जहाति) मूत्र से पृथक् छोड़ता है । (जरायुणा) जरायु=जेर से (आवृतः गर्भः) ढका हुआ गर्भ (जन्मना) जन्म होने से अर्थात् जन्म के समय (उल्बम्) गर्भ के ढकने वाले चर्म-च्छदको (जहाति) छोड़ता है ।*

५. हे (सुसीमे) सुन्दर वेणी बन्धन वाली या शोभन केश विन्यास वाली स्त्री (यत् ते) जो तेरा (दिवि चन्द्रमसि श्रितं) आकाशस्थ चन्द्रमा में स्थित अर्थात् चन्द्रमा के समान प्रसन्न आह्लादकारक (हृदयं) चित्त है, (तत् अहं वेद) उसको मैं जानता या प्राप्त करता हूं (तत् मां विद्यात्) वह चित मुझे जाने या प्राप्त

---

*आगे अर्थ अस्पष्ट होने से नहीं लिखा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥५॥*

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥६॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥७॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥

करे अर्थात् तेरा मेरा मन एक दूसरे को मन के समझें। मैं तू और हमारी सन्तान, सब सौ वर्ष तक परस्पर देखते रहें, मिलकर जीवें सुनें—मीठी बातें करें, दीनता रहित रहें और इससे भी अधिककाल तक सुखपूर्वक जीवें।

६. हे वधू (यथा) जिस प्रकार (इयं) यह (मही पृथिवी) महत्तत्त्व से विस्तार को प्राप्त हुई पृथिवी (भूतानां) समस्त उत्पन्न प्राणियों के अथवा पंचमहाभूतों के गर्भ को धारण करती है अर्थात् जैसे पृथिवी ने अपने गर्भ में पंचभूतों को धारण किया हुआ है, (एव) वैसे ही (ते गर्भः) यह तेरा गर्भ (सूतुं) गर्भस्थ शिशु को (अनुसवितवे) अनुकूल प्रसवके लिये (आ ध्रियतां) पूर्णता से सुरक्षित धारण रक्खे अर्थात् बिगड़े नहीं, गर्भपात न हो।

७. जिस प्रकार यह पृथिवी०……इन वनस्पतियों को अपने गर्भ में रखती है, वैसे तेरे द्वारा यह गर्भ यथा समय सन्तान प्रसव के लिये धारण किया जावे।

८. जिस प्रकार०……छोटे-बड़े पर्वतों को……वैसे ही तू भी०……।

---

*द्र. पार. गृह्य १।११।९ में 'यत्ते सुसीमे' से लेकर 'शृणुयाम शरदः शतम्' तक पाठ है। शेष यजु. ३६।२४ में है। यहां 'स्वाहा' पद मन्त्र में नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥९॥
अथर्व० कां० ६ । सू० १७ । मं० १-४ ॥

[षष्ठ विधि—छै घृताहुतयां]

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे—

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय—इदन्नमम ॥३॥

ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ॥४॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की दो आहुति देनी—

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा । इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः—इदन्न मम ॥१॥
पार गृ. १।२।११॥*

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये— इदन्न मम ॥२॥

[सप्तम विधि—घृत की स्विष्टकृताहुति]

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात्—

---

९. जिस प्रकार०·····विशेष रचना अर्थात् रंग-रूप-आकार में स्थित जगत् को०····· ।

---

१. मन्त्र ६-९ में 'स्वाहा' पद मन्त्र बहिर्भूत है ।

*हमारी विनम्र सम्मति में 'ओम् अयास्यग्ने' इस प्रतीकात्मक मन्त्र से आहुति अप्रसंग है और 'प्रजापतये०' तथा 'यदस्य०' दोनों से पीछे ही आहुति का विधान होने से इस की भी आहुति अनावश्यक है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे ।

[अष्टम विधि—वधू का घृत-स्नान]

जो 'ओम् अग्नये पवमानाय' से लेकर इस पृष्ठ के 'ओं प्रजापतये स्वाहा' तक के मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुये कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों, जब आहुतीं हो चुकें, तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान-घर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन करके स्नान करे । तत्पश्चात् वधू शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ, शुद्ध नवीन वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे ।

[नवम विधि—प्रदक्षिणा, सूर्यदर्शन, परमेश्वरोपस्थान]

तब दोनों वधू-वर [उस समय वधू वर के वामभाग में रहे] कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करें । उस समय निम्न मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करें—

ओम्, आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि,
सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।

---

१. हे जगद्रचयिता परमेश्वर (सहस्रस्य प्रतिमाम्) असंख्य जीवकणों के प्रतिनिधि (विश्वरूपं) इस विश्व ब्रह्माण्ड के छोटे से रूप (आदित्यं) अखण्डित व तेजस्वी (गर्भं) गर्भ को (पयसा) दुग्ध फलादि के रसों से (समङ्ग्धि) पुष्ट करो, कान्तियुक्त करो। (हरसा) जीवनी शक्ति को हरण करने वाले अर्थात् हानिकारक प्रभावों से (परिवृङ्ग्धि) बचाओ ! (मा, अभिमंस्थाः) इसकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः,
शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥१॥
यजु० १३।४१ ॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् ।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥२॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति ।
पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ।३॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४॥

उपेक्षा मत करो और (चीयमानः) इसे प्रतिदिन फलते-फूलते (शतायुषं कृणुहि) सौ वर्ष की आयु वाला बनाओ ।

शतपथ में लिखा है कि—"आदित्यो वा एष गर्भः सत्पुरुषः ।"

२. हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! आपके अनुग्रह व सामर्थ्य से (सूर्यः) सूर्य (दिवः) द्युलोकस्थ=मस्तिष्क सम्बन्धी दोषों से (नः) हमारे इस गर्भ की रक्षा करे; (वातः) वायु (अन्तरिक्षात्) मध्य-लोकस्थ बाधाओं=हृदय सम्बन्धी दोषों से और (अग्निः) भौतिक अग्नि (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी लोकस्थ=उदर सम्बन्धी रोगों से (नः) हमारे इस गर्भ की (पातु) रक्षा करे । अथवा "सूर्य द्युलोक की शक्तियों से, वायु मध्य लोक की शक्तियों से अग्नि पृथिवीलोकस्थ शक्तियों से, हमारे इस गर्भ की पालना-पोषणा करे । अर्थात् आदित्य-वायु-अग्नि इन तीनों का दिव्यतेजस् इस हमारे गर्भ को बढ़ावे ।

३. हे (सवितः) सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (जोष) तू हमारी प्रीतिपूर्वक सेवा=रक्षा कर । (यस्य ते) जो तेरा (हरः) प्रभाव वा तेज है, वह (शतं सवान् अर्हति) सौ यज्ञों के योग्य है अर्थात् अकेला तेरा तेज सौ यज्ञों के प्रभाव के समान है । तू (पतन्त्याः) गिरती हुई (दिद्युतः) बिजली से (नः) हमारे इस गर्भ की रक्षा कर ।

४. (पर्वतः) पूर्ण और (धाता देवः) विधाता देव (न)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।
सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षस ॥६॥
ऋ० १०।१५८।१-५ ॥

[दशम विधि—गोत्रपरिवर्त्तन, पतिनमस्कार]

परमेश्वर का उपस्थान करके वधू—

ओम् अमुक[1] गोत्रा शुभदा, अमुक[2] नाम्नी अहं भो भवन्तमभिवादयामि ।[3]

ऐसा वाक्य बोल के अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे। तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और वहां अन्य मान-

---

हमारा (चक्षुः चक्षुः चक्षुः) मार्ग प्रदर्शक हो, या हमारे गर्भ का प्रकाशक हो।

५. हे प्रभो ! (नः चक्षुषे) हमारे नेत्रों के लिये (चक्षुः धेहि) प्रकाश दीजिये; (नः तनूभ्यः) हमारे शरीरावयवों को भी (विख्यै) अपने-अपने विशेष कर्मों के लिये (चक्षुः) शक्ति दीजिये, ताकि हम (वि इदं च च सम् पश्येम) सब विश्वरूप इस जगत् को भली प्रकार देखें।"

६. "हे सूर्य ! (वयं) हम सब, (सुसंदृशं) सबको अच्छी प्रकार देखने वाले (त्वा प्रतिपश्येम) तुझे ज्ञानपूर्वक देखें; जानें। (नृचक्षसः) प्राणियों को (मनुष्य है आंख जिनकी अर्थात् मनुष्य जिनमें प्रधान है) अथवा मनुष्यादि को विशेष प्रकार से देखें। अथवा (नृचक्षसः) नरों की हितकारी दृष्टि रखने वाले हम (वि, पश्येम) तेरी सृष्टि के विविध रूपों को देखें।

---

१. इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे। द. स.। [अपने पिता के कुल गोत्र का उच्चारण किये विना]।

२. इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे। द. स.॥

३. गोभिल गृह्य २।४।११ में अभिवादन का निर्देश है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की जो वृद्ध स्त्रियां हों उनको भी इसी प्रकार वन्दन करे।

तत्पश्चात् सब जने वधू को निम्न मन्त्र से आशीर्वाद दें।

ओम् अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥[1]

ऋ० १०।८५।४४॥

इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुई अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति-पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के पृ. १२२ लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करें।

तत्पश्चात् यथोक्त* भोजन दोनों जने, पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन कराके आदर सत्कारपूर्वक [यथायोग्य दक्षिणा दें] सब को विदा कर, [प्रसन्नतापूर्वक] करें।

---

१. मन्त्र का अर्थ विवाह-संस्कार के 'पतिकुल में वधू-स्वागत' की चतुर्थ विधि के नीचे द्रष्टव्य है।

*उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है, इसलिए पति पत्नी अपने शरीर आत्मा को पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें॥ सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आंवाहलदी, दूसरी खाने की हलदी, चन्दन, मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), कुष्ठ, जटामांसी, मोरवेल (यह नाम भी दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ सब सम भाग लेके, इन सब ओषधियों का चूर्ण करके छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि उदुम्बर के काष्ठपात्र में एक सेर गाय के दूध के साथ मिला, उनका दही जमा और उदुम्बर ही की लकड़ी की मन्थनी से मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल, उसको ताय अर्थात् तपा घृत करके, उस घी में सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के ऐसे एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक-एक मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उसमें से १०६ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति चार और पृष्ठ १३५ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके, जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो, उसके दिन में होम करके, उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला यथारुचि भोजन करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी। गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है। [दिन में कभी भी संभोग नहीं करना चाहिये]। तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे, यदि शीतकाल हो, तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री छोटी इलायची डाल, गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक्-पृथक् शयन करें।

यदि स्त्री-पुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया, तो उसके दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय, स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है, अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें*।

इस प्रकार गर्भ स्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र-उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो, तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के एक पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे। क्योंकि—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥

छा० उप० ७।२६।२॥

अर्थात् शुद्ध आहार, जो कि मद्यमांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। [सर्वोत्तम व्यवहार यह है कि] जब रजस्वला होने समय मे १२—१३ दिन शेष रहें, तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी क्षीरान्न का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें, और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें, तो अत्युत्तम सन्तान होवें। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है॥ द० स०॥

*यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायें अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय, गर्भस्थिति न होवे, तो तीसरे महीनों में ऋतुकाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥१॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥२॥

---

१. हे वधू ! (यथा वातः सर्वतः) जैसे वायु सब ओर से (पुष्करिणी) पुष्करिणी=सरोवर को (समिङ्गयति) चलाता है; (एव) वैसे ही (ते गर्भः) तेरा यह गर्भ (पुष्करिणी)=उदर (गर्भाशय, जहां बच्चा पुंस्त्व=प्राणीत्व को प्राप्त होता है) में (एजतु) गति करे=चेष्टा करे स्पन्दन करे और (दशमास्यः) दश मास का पूर्ण होकर ही (निर् एतु) बाहर आवे=उत्पन्न हो ।"

२. (यथा वातः) जैसे वायु चलता है, (यथा वनं) वन ध्वनित या (वायु के झोकों से) हिलता है, (यथा समुद्रः) समुद्र (एजति) तरंगित होता है अर्थात् जैसे ये तीनों स्वाभाविक रूप में ही चलते हैं; (एव) वैसे ही, (दशमास्यः) दशमास में परिपक्व होने वाले गर्भ ! (त्वं) तू (जरायुणा सह) जरायु के साथ सहजभाव से (अव +इहि) नीचे आ जा ।"

समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल के अवसर पर प्रथम वार प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा ले के इन दोनों को एकत्र करके, पत्नी के हाथ में देके, उससे पति पूछे 'किं पिबसि" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन वार बोल के उत्तर देवे, और उसका प्राशन करे। इसी रीति से पुनः-पुनः तीन वार विधि करना । तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीस के उसका रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति—

ओ३म् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे, यह पारस्कर [१।१३।१] सूत्रकार का मत है। द० स०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशु मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥३॥
ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ७, ८, ९ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति ।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥१॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमम् स्वाहा ॥२॥
यजु० अ० ८ । मं० २८, २९ ॥

---

३. (अधि मातरि) माता के उदर में (दशमासान् शशयानः) दस मास तक प्रसुप्त जीव, (जीवः) जीता-जागता, (अक्षतः) सर्वांग सुन्दर=किसी प्रकार की चोट, आघात व अङ्ग-भङ्ग को प्राप्त न होकर, (जीवन्त्या अधि) जीती हुई माता में से बाहर आ जावें। अर्थात् प्रसव सुख पूर्वक हो; विकलांग पैदा न हों; बच्चा मृत न निकले और जच्चा जीवित रहे।

१. (दशमास्यो गर्भः) दस मास का गर्भ (जरायुणा सह एजतु) जरायुसहित (उत्पत्तिस्थल से) चले, हिले, जैसे कि (अयं वायुः एजति) यह वायु चलता=बहता है, (यथा समुद्रः) समुद्र चलता=बहता है और (एवायं) उसी प्रकार से यह (दशमास्यः) दशमास का हिलता गर्भ (जरायुणा सह) जरायु सहित (अस्रत्) बाहर सरक आवे अर्थात् सुख प्रसव हो।

२. (यस्यै ते) हे स्त्री! जिस तेरा (गर्भः) गर्भ (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य अर्थात् बड़ा हो गया है; जिसकी (योनिः) योनि=गर्भाशय (हिरण्ययी) हितकारी या रमण करने योग्य है—शुद्ध हो चुकी है—सुवर्ण के समान स्वच्छ निर्दोष है, उसी (मात्रा) मातृरूप भार्या से (तं) उस पुरुष को (यस्य अङ्गानि) जिसके अङ्ग (अह्रुता) कुटिल न हों (सम्+अजीगमम्) हम सङ्ग करावें। (स्वाहा) यही उत्तम प्रजननाहुति=गर्भाधान है। अर्थात् दूसरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥३॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताꣳस्वाहा ॥४॥

साम मन्त्र ब्रा० १।४।८, ९ ॥*

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व पृ. ७२-९४ पर लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति† दे के पुनः १२१ पृ. में लिखे प्रमाणे पूर्णा-

---

बार गर्भाधान तभी हो जब कि बालक बड़ा हो चुका हो, माता-पिता दोनों के अङ्ग ठीक हों।"

३. (मित्रावरुणौ) सूर्य और चन्द्र; (अश्विनौ) प्राण और अपान दोनों (पुमांसौ) शक्ति सम्पन्न है, पुंस्त्वयुक्त हैं। (अग्निः) अग्नि और (वायुश्च) वायु भी (पुमान्) शक्तिशाली, उत्पादक हों। इसी प्रकार से हे देवी! (तव) तेरा (उदरे) गर्भ में भी (पुमान्) उत्पादक शक्ति सम्पन्न शिशु ही स्थित हो। अर्थात् नपुंसक सन्तान तेरे गर्भ में न आवे।

४. (अग्निः) अग्नि, (इन्द्रः) सूर्य या वायु, (देवो बृहस्पतिः) दिव्यगुणयुक्त बृहस्पति आचार्य ये सब उत्पादक सामर्थ्य सम्पन्न हैं। तू भी (पुंमासं) उत्पादन शक्ति युक्त (पुत्रं) पुत्र को प्राप्त कर और उसको भी शक्तिशाली पुत्र (अनुसरण करे) प्राप्त होवे। अर्थात् आगे उन्नति चलाने वाली सन्तान हो।

---

*गर्भाधान-संस्कार में इन दोनों श्लोकों से आहुति देने की क्यों व्यवस्था की गई है, पता नहीं। ये दोनों श्लोक 'पुंसवन-संस्कार' से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। वहीं पर आहुति देनी ज्यादा संगत है।

† हमारी सम्मति में 'शान्त्याहुति' मन्त्रों से अभिप्राय पृ. १०७ पर निर्दिष्ट, चार व्याहृत्याहुतियों से लेकर पृ. ११४ पर निर्दिष्ट ओम् त्वन्नो…' की आहुतियों तक है। तत्पश्चात् पूर्णाहुति कर पृ. १२२ लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त वामदेव्य गान कर संस्कार समाप्त करना चाहिये। क्योंकि "व्याहृतियों का उच्चारण या अनुष्ठानों में प्रयोग प्रशस्य माना गया है।…और अशुद्धियों के दूर करने निमित्त इन व्याहृतियों का प्रथम उच्चारण किया जाता है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुति देवे पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे। कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे; किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें उसमें ऋतु ऋतु के मसाले गर्मी में ठण्ढे सफेद इलायची आदि और शरदी में केशर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करें। युक्ताहारविहार सदा किया करें। दूध में सुंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिससे सन्तान अतिबुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वाभाव वाला होवे। (सं. वि. ६७)।

इति गर्भाधानसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

सो यहां से प्रारम्भ कर 'शान्त्यर्थं' ही (द्र. पृ. १२२ टिप्पणी १) वामदेव्यगान पर्यन्त क्रिया करके यज्ञ पूर्ण करने से सोलह संस्कारों में एक रूपता भी बनी रहती है।

जो विद्वान् 'शान्त्याहुति' से 'शान्तिकरण के मन्त्रों द्वारा आहुति', ऐसा समझते हैं, वे वैसा कर सकते हैं। परन्तु हमें इस संस्कार में 'शान्तिकरण' मन्त्रों का 'शान्त्याहुति' में विनियोग प्रसन्नता और उत्साह के इस कर्म में अधिक सङ्गत नहीं दीखता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पुंसवनसंस्कार-विधिः

पुंसवन संस्कार का समय ऋतुदान के पश्चात् गर्भस्थिति का ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने (सं. वि.) अथवा चौथे महीने (स. प्र. ४।११५) है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये; जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे।

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वटवृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती ले के स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुड़च जो गिलोय वा ब्राह्मी औषधी खिलावे।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञारम्भ]

तत्पश्चात् पृ. १३ से पृ. ९४ तक लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण करके, ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने स्त्री-पुरुष वहां उपस्थित हों, वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें।

तत्पश्चात् सामान्य-प्रकरणोक्त यज्ञ की सब विधि स्विष्टकृता-हुति-प्राजापत्याहुति (पृष्ठ ९४-१०९) पर्यन्त करनी। यहां पत्नी पति के दक्षिण बाजू में बैठे।

[द्वितीय विधि- विशेष होम की दो घृताहुतियां]

तत्पश्चात् नीचे लिखे हुए दोनों मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवे—

ओम् आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिम्।
आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा॥ १॥

हे वधू! (ते योनिं) तेरी योनि में (पुमान् गर्भः) वीर्य युक्त गर्भ (इषुधिं इव आ एतु) ऐसे प्राप्त होवे जैसे बाण तरकस को प्राप्त होता है अर्थात् तेरे गर्भाशय में गर्भ ऐसे सुरक्षित रहे जैसे तरकस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥२॥ आश्व. गृ. सू. १।१३।६॥

[तृतीय विधि—हृदयस्पर्श]

तत्पश्चात् एकान्त में जाकर पत्नी के हृदय पर हाथ धर के यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले—

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितवन्तः प्रजापतौ।
मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं नियाम् ॥३॥

आश्व. गृ. सू. १।२३।७॥

[चतुर्थ विधि—यज्ञ समाप्ति]

तत्पश्चात् वधू-वर यज्ञ-कुण्ड के समीप पूर्ववत् पूर्वाभिमुख बैठें

में बाण (दशमास्यः पुत्रः) दशमासों तक पुष्टि को प्राप्त होकर ही पूर्ण वीर्यवान् पुत्र (ते) तुझे (आ जायताम्) उत्पन्न हो। अर्थात् 'तू वीर प्रसू बन' ॥१॥

(देवतानां) सूर्य, वायु आदि सब भौतिक दिव्य शक्तियों में (प्रथमः) मुख्य अग्नि (एतु) आवे अर्थात् सदा इसमें रहे। (सो अस्यै) वह इसकी (प्रजां) सन्तति की (मृत्युपाशात् मुञ्चतु) मृत्यु से रक्षा करे, मौत से छुड़ावे। (अयं राजा वरुणः) वह राजा वरुण भी (अनुमन्यताम्) ऐसी अनुकूल बुद्धि के (यथेयं) कि यह स्त्री (पौत्रं अघं न रोदात्) पुत्र जनित दुःख अर्थात् (पुत्रमृत्यु आदि) से कभी न रोवे। स्त्री शरीर में इतनी गरमी=बल रहे कि उसका 'पुत्र' जीवित ही बाहर आवे। गर्भपात न होवे ॥२॥

"हे (सुसीमे) सुन्दरवेणी प्रिये! (प्रजापतौ) सन्तान की पालना करने वाले (ते हृदय) तेरे हृदय के (अन्तः) भीतर (—हितम्) जो हित=प्रेम=बच्चे की मंगलकामना विद्यमान है, (तत् विद्वांसं) उनको जानने वाला (मां) अपने आपको (अहं मन्ये) मैं मानता हूं अर्थात् उनको मैं भी जानता हूं। (मा अहं पौत्रं अघं नियाम्) मुझे पुत्र जनित अर्थात् सन्तान विषयक दुःख प्राप्त न हो ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और पृष्ठ १०७ लिखे प्रकारे चार व्याहृति आहुतियों से लेकर पृष्ठ १२१ तक लिखे प्रमाणे 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' से पूर्णाहुति करके पृष्ठ १२३ में लिखे प्रमाणे सामवेद का महावामदेव्यगान गावें। तत्पश्चात् जो-जो पुरुष वा स्त्री संस्कार-समय पर आये हों, उनका यथायोग्य सत्कार करें। जिसको दक्षिणा देनी हो, उसे दक्षिणा देवे, जिसको जिमाना हो, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक जिमावे। इस प्रकार पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर-सत्कार करके उन्हें विदा करें। पुनः वट के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट, कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे। तत्पश्चात्—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य० अ० १३। मं० ४॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥२॥

य० अ० ३१। मं० १७॥

अहं पौत्रं अघं मा नियाम्=मुझे पुत्रहत्या का पाप प्राप्त न हो। अर्थात् तेरी असावधानी से बच्चा न मरे। 'मैं पुत्र हत्यारा न बनूं।' गर्भस्थ शिशु की पालना जहां माता पर आश्रित है, वहां पिता पर भी। गर्भवती से सम्भोग करने पर गर्भनाश का भय होता है ॥३॥

यह गर्भ (पृथिव्यै) पार्थिव रूप=स्थूलरूप धारण करने के लिये (अग्रे) पहले-पहल गर्भाशय में (अद्भ्यः) जलीय अवस्थायुक्त पदार्थों से (च) तथा (विश्वकर्मणः रसात् च) सब रूपों को धारण करने योग्य रसों से (सम्भृतः) सम्यक् पुष्ट हुआ (समवर्त्तत) वर्त्तमान होता है। (त्वष्टा तस्य) शिल्पकार ईश्वर उस 'घोल रूप पदार्थ' के (रूपं विदधत्) 'रंग रूप आकार' का विधान करता है और (तन्मर्त्यस्य) उस मूर्त्त रूप धारण किये स्त्री या पुरुष शिशु के (अग्रे) बाहर आने से पहले उसके (आजानम्) अच्छे प्रकार से कर्त्तव्य कर्मों और (देवत्वम्) उसके विद्वत्ता अर्थात् ज्ञान को (एति) प्राप्त करा देता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकान्त में जाकर, इन दो मन्त्रों को बोल के पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धर के यह मन्त्र बोले—

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ
स्तोमऽ आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम ।
साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः ।
सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥१॥

य० अ० १२ । मं० ४ ॥

हे गर्भस्थ जीव ! परमेश्वर के अनुग्रह नियम व सामर्थ्य से तू (गरुत्मान्) गम्भीर आत्म शक्ति वाला (सुपर्णः) उत्तम 'ज्ञान-कर्म' के पञ्जों से पूर्ण (असि) है। (ते शिरः) 'दुःखों को शीर्ण==नाश करने वाला तेरा शिर (त्रिवृत्) ज्ञान कर्म उपासना से युक्त हो; (चक्षुः) ज्ञानसाधन तेरी दृष्टि (गायत्रम्) प्राण-विद्या या गायत्री छन्द युक्त विज्ञान रूप अर्थ वाली हो; (पक्षौ) तेरे दोनों पार्श्व (बृहत्रथन्तरे) बड़े और वेग से ले जाने वाले हों; (आत्मा) तेरा 'आत्मा' (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद की तरह हो; (अङ्गानि) तेरे कान हस्तपादादि अवयव (यजूंषि नाम छन्दांसि) प्रसिद्ध यजुर्वेद के मन्त्र हों; (ते तनूः) तेरा शरीर (वामदेव्यं साम) सुन्दर दिव्य गुणों=संगीतों से भरा वाम अर्थात् सुन्दर सन्तान, उसके प्रकाश से युक्त सामवेद हो; (पुच्छम्) बड़ी पूंछ के समान उच्च अवयव (यज्ञायज्ञियं) यज्ञ अर्थात् संगन्तव्य=ग्रहण करने योग्य व्यवहार और अयज्ञ=त्याज्य कर्म हों; (शफाः) खुर अथवा शरीर को शान्तिपूर्वक थामने के साधन पैर (धिष्ण्याः) शब्द करने अर्थात् सत्प्रवर्त्तन की चेतावनी हों अर्थात् बुद्धि तेरे जीवन में खड़े=स्थिर होने का हेतु हो जैसे खुर पशु का; हे गर्भस्थ जीव ! तू (गरुत्मान्) सुन्दर शब्दोच्चारण युक्त अर्थात् शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को जानने वाले जीवन में (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाले पक्षी की तरह (असि) है। इसलिये (दिवं गच्छ) जीवन में आ, सुन्दर विज्ञान को प्राप्त और (स्वः पत) जीवन में सुख का भोग कर।

इस मन्त्र में गर्भस्थ जीव को पक्षी का रूप देकर विविध ज्ञान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहारविहार करे। विशेष कर गिलोय, ब्राह्मी औषधी और सुंठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़ें, आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे।

इति पुंसवनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

मय-शास्त्रों अर्थात् विषयों को उसके अनेक अङ्गों के स्थान पर रखा गया है। जिसका आशय यह है कि पिता चाहता है कि मेरे बालक के ये-ये अङ्ग इन-इन शास्त्रों या विद्याओं के समान प्रतिष्ठित बलवान् हों और वह उक्त पक्षी के समान जीवनकाल में ज्ञानी और शब्द का अर्थ समझने वाला होकर सुखपूर्वक स्वतन्त्र विचरे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ सीमन्तोन्नयन-संस्कार-विधिः

अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं, जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। गर्भमास से सातवें-आठवें[1] महीने में शुक्लपक्ष में, किसी दिन सीमन्तोन्नयन-संस्कार करें।

संस्कार करने से पूर्व यज्ञ की सामग्री तैयार करे और इस संस्कार में विशेष होम के निमित्त पृष्ठ ११-१२ लिखे प्रमाणे निम्न मन्त्रों से खिचड़ी पहले ही बना रक्खे—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

इस मन्त्र से चावल, तिल, मूंग, इन तीनों का सम भाग लेके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥[2]

इस मन्त्र से धोके पका लेवें।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञारम्भ]

इसके अनन्तर पृष्ठ २८-१०६ तक अर्थात् चार आहुति आघारावाज्यभागाहुति की देवें। यज्ञ में पत्नी पति के दक्षिण बाजू बैठे।

[द्वितीय विधि—खिचड़ी की आठ आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के, आठ आहुति देवें—

---

१. सं. वि. में चौथे मास में, सत्यार्थप्रकाश (४।११५) में आठवें मास में करना लिखा है। वस्तुतः यह सातवां मास पूरा हो आठवें मास में किया जाता है।

२. पूर्व पृ० ११-१२ में पठित 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' और 'अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि' मन्त्रों का ऊहित पाठ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवतः स्वाहा ॥
इदं धात्रे—इदन्न मम ॥१॥

ओं धाता प्रजानामुत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान।
धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्र इद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा ॥
इदं धात्रे—इदन्न मम ॥२॥

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥ इदं राकायै—इदन्न मम ॥३॥

---

१. (वाजिनीवति) बलशालिनी ! अन्नपूर्णे ! (धाता) सर्वधारक शक्ति (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वाले या दानशील के लिये (प्राची) प्रभावशाली तुरन्त काम करने वाली (उक्षिताम्) रसों से सिंचित (अथवा अक्षिताम्) अक्षय=अमृतरूप (जीवातुम्) जीवनौषधि या अजीविका को देवे। (वयं) हम (देवस्य) उस देव की (सुमतिं) सुमति का (धीमहि) ध्यान करते हैं।

२. (धाता) सर्वधारक शक्ति ही (प्रजानाम्) प्राणिमात्र और (रायः) जीवन साधनों की (ईशे) स्वामी है। (धात्रा) धाता से (इदं विश्वं भुवनं) यह सकल संसार (जजान) उत्पन्न हुआ है। (धाता) धाता (कृष्टीः) सब मनुष्यों को (अनिमिषा) अनिमेष-दृष्टि से या विना चक्षु व्यापार के (अभिचष्टे) देखता है=निरीक्षण करता है। (धात्रे) धाता के लिये (घृतवत्) घृत से युक्त (हव्यं) सामग्री का (जुहोत) हवन करो।

३. (अहं) मैं (सुहवां) उत्तम नाम वाली या पूजनीया (राकां) पूर्णिमा के तुल्य मनोरम स्त्री को (सुष्टुती) उत्तम गुण स्तुति द्वारा (हुवे) पुकारूं, अपने पास बुलाऊं। वह (सुभगा) सौभाग्यवती (नः शृणोतु) हमारी बात को सुने और स्वयं समझे अर्थात हमारी बात सुने, हमारे इशारे समझे। वह (सूच्याच्छिद्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे ररा॑णा स्वाहा।
इदं राकायै–इदन्न मम ॥५॥

ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ४, ५॥[1]

नेजमेष परा पत सुपुत्रः पुनरा पत।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्त्स्वाहा ॥५॥

मानया) न टूटने वाली सूई से निरन्तर वस्त्र सीने की तरह (अपः सीव्यतु) उत्तम कर्मों को घर से सीती=जोड़ती रहे अर्थात् उत्तम कार्यों का तांता लगाती रहे। (उक्थ्यं), प्रशंसापात्र, (शतदायं) दानशील (वीरं) वीर पुत्र (ददातु) देवे, उत्पन्न करे। अथवा अखण्डित सूई की तरह से 'अखण्डित' तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा सब अपः =कर्मों=बातों=बुद्धियों को जोड़ती जावे।

४. (राके) हे चन्द्रवदने! ज्योतिर्मयि! (यास्ते) तेरी जो (सुपेशसः) उत्तम रूपवाली दीप्तियां और (सुमतियाँ) शुभसंकल्पमय मतियां हैं [उत्तम सुन्दरता और अच्छे विचार हैं], जिनसे तू (दाशुषे) सर्वस्व देने वाले पति के लिये (वसूनि) नाना द्रव्य और अन्नादि बसने योग्य सामग्री=बसने के साधन (ददाति) सम्पादन करती है, देती है, (ताभिः) उनके साथ (अद्य) आज ही तू (सुमनाः) प्रसन्न मन वाली होकर (उपागहि) हमें प्राप्त हो; हमारे पास आ। हे (सुभगे) सौभाग्यवति! (सहस्रपोषं रराणा) असंख्य समृद्धियों को या देती हुई तू, हमारे पास आ। अथवा उनके साथ ही हे सुभगे! असंख्यों के पोषण में मस्त प्रसन्न चित्तवाली होकर तू हमारे पास आ।

५. (यः पुमान्) जिस पुंस्त्वगुणयुक्त पुरुष ने (अस्यै मे पुत्रकामायै) मुझ पुत्र की इच्छा रखने वाली में (गर्भं आधेहि) गर्भ को धारण कराया है, (एष) वह (नेजं=न+इजम्. एजते) नित्यकर्म को न फेंक देवे=छोड़ दे और (पुनः) फिर (सुपुत्रः) उत्तम सन्तान सहित मुझे मिले (आ+पत)।"

---

१. 'स्वाहा'···इदन्न मम' पद रहित पाठ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमा दधे ।
एवं तं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥६॥

विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् ।
पुमांसं पुत्राना धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥७॥[1]

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥
ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ।

[तृतीय विधि—भात की आहुति]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से एक भात की आहुति दे—

ओम् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥

[चतुर्थ विधि—पुनः खिचड़ी की एक आहुति]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से खिचड़ी की एक और आहुति देवें—

---

६. (यथेयं) जिस प्रकार यह (उत्ताना मही, पृथिवी) ऊंची और बड़ी पृथिवी (गर्भं आदधे) 'वनस्पति आदि का' गर्भ धारण करती है। अर्थात् अपने भीतर इनको उचित समय तक रख कर पैदा करती है; (एवं) वैसे ही (दशमे मासि सूतवे) दशम मास में प्रसव उत्पत्ति के लिये (गर्भं आधेहि) गर्भ को धारण कर।"

७. हे पुरुष ! (गवि, इन्यां) सुन्दर इन्द्रियों वाली अथवा गोपालन करने वाली इस (नार्यां) स्त्री में—(विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेण) ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर के श्रेष्ठ सुन्दर रूप से—दशमे महीने में उत्पन्न होने के लिये (पुमांसं) उत्पादन सामर्थ्य युक्त पुत्र के गर्भ का आधान कर अर्थात इस गोपालक नारी में यथा समय पैदा होने वाले सुन्दर रूप युक्त, बलवान् पुत्र पैदा कर।

---

१. निर्देश आश्व० गृह्य १।१४।३॥ स्वाहा पद रहित मन्त्र पाठ ऋ० खिल संख्या ३४ । १—३ सातव० संस्क० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

[पंचम विधि—अष्टाज्याहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से आठ घृत की आहुति देवें—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४, ५ ॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५-१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १ । सू० ३४ । मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

यजु० अ० ५ । मं० ३ ।

[षष्ठ विधि—चार व्याहृत्याहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न चार व्याहृति मन्त्रों से घृत की आहुति देवें ।

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे— इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[सप्तम विधि—पूर्णाहुति]

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् आज्य और होमशाकल्य की तीन आहुति देवें—

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टम विधि—पत्नी-शृङ्गार, यज्ञ समाप्ति]

पति और पत्नी एकान्त में जाके उत्तमासन पर बैठ पति पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठ निम्न मन्त्रों को पढ़ के,

ओं, सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥१॥

यजु० अ० ६ । मं० २२ ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् । कविꣳसम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥२॥

य० अ० ७ । मं० २४ ॥

ओम् अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव ।
पर्णं वनस्पतेऽनु त्वाऽनु त्वा सूयताँ रयिः ॥३॥

---

१. (नः) हमारे लिये (आपः) जल और (ओषधयः) औषधियां (सुमित्रियाः सन्तु) अच्छे मित्र की तरह हों और (यो अस्मान् द्वेष्टि) जो हम से द्वेष करता है व (यं वयं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं, (तस्मै) उसके लिये (दुर्मित्रियाः) ये बुरे साथी की तरह (अनिष्टकारी) हों।

२ (देवाः) विद्वान् पुरुष (दिवो मूर्द्धानम्) दीप्तिमान् विद्वान्पुरुषों के मूर्धन्य, अग्रणी, कान्ति वाले; (पृथिव्या अरतिम्) त्यागशील, पार्थिव सुखों में जो 'अरति' रखते हैं—निरन्तर काम करने वाले; (ऋते जातं+वैश्वानरम्) सत्य में निष्ठा करने वाले समस्त विश्व के नायक सबके हितैषी; (कविम्) क्रान्तदर्शी मेधावी; (सम्राजम्) समन्वित जीवन वाले अथवा अच्छे प्रकार से प्रकाशित 'निराली शान वाले'; (जनानां पात्रं अतिथिम्) मनुष्यों में अतिथि के समान पूजनीय तथा समस्त जनों के पालन में समर्थ; (अग्निम्) अग्रणी योग्य पुरुष को (आसन्) मुख्यपद के लिये (आ जनयन्त) उत्पन्न करें। 'हमारे देश में ऐसे अग्निवत् तेजस्वी बालक पैदा हों'—इत्यर्थः।

३. हे सुभगे ! जैसे (अयं ऊर्जावतो वृक्षः) यह गूलर का वृक्ष (ऊर्जी इव) गूलरों से लदा है, वैसे ही तू भी पुत्र रूप फलवाली हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय। तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥४॥[1]

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुख्यम् ॥५॥[2]

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे ररा णा ॥६॥[2]

किं पश्यसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः* ॥७॥[3]

अर्थात् गूलरों से लदे वृक्ष की तरह तेरी गोदी बच्चों से भरी हो। हे वनस्पते ! (पर्णं नुत्वा-नुत्वा) पत्ते को पीस-पीस कर रस संग्रह की तरह इसके लिये स्थान-स्थान से (रयिं) धनादि ऐश्वर्य (सूयतां) उत्पन्न करो। जैसे पत्ता-पत्ता रस को संग्रह करता है, वैसे ही तेरे पास धन की वृद्धि हो। अर्थात् हे वनस्पति की तरह हरे-भरे पुरुष ! (पर्णं) भरी हुई जगहों में से (नुत्वा-नुत्वा) निचोड़-निचोड़ कर (रयिं सूयताम्) ऐश्वर्यादि को पैदा करो।

अथवा हे वनस्पति के सदृश फलने वाली वधू ! तू (पर्णं) पोषक तत्वों में से रस को भले प्रकार संग्रह कर (रयिं) इस उत्तम-सन्तान रूप धन को पैदा कर।

*इस मन्त्र में पति-पत्नी की इच्छाओं का प्रगटीकरण है। पति पूछता है—

(त्वं किं पश्यसि) हे पीनोदरे वधू ! तू क्या देखती है ? पत्नी कहती है—

---

१. मन्त्र ब्राह्मण १।५।१,२ सामश्रमी संस्क०।

२. ये दो मन्त्र पहले भी आहुति के लिये विनियुक्त हैं यहां पुनः इनके पढ़ने का और विशेष प्रयोजन नहीं दीखता।

३. ये मन्त्र मन्त्रब्रा० १।५।३,४,५ से उद्धृत हैं। मन्त्र ५,६ ऋग्वेद २।३२।४,५ में भी आते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तेल डाल, कंघे से सुधार, हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही पशु के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर, पट्टी निकाल और पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बांध कर, वधू-वर यज्ञशाला में आवें। उस समय वीणा आदि बाजे बजवावे। तत्पश्चात् आरम्भ में

ओं सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः।
अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ[1] ॥*

पार. गृ. १।१५।८॥

इस मन्त्र का गान करके, तत्पश्चात् पृष्ठ १२३ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त वामदेव्य मन्त्रों का गान करें।

तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे। उस समय पति स्त्री से पूछे—"किं पश्यसि"

स्त्री उत्तर देवे—"प्रजां पश्यामि"।

तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें, प्रसन्नवदन और प्रसन्नता

(मह्यं) अपने लिये (प्रजां प्रशूनू सौभाग्यं) उत्तम सन्तान, गवादि पशु सौभाग्य को और

(पत्युः) तुझ पति के लिये (दीर्घायुः) दीर्घायुष्य को।

*(नः) हम गृहस्थों का (सोम एव) शान्त्यादि गुण युक्त चन्द्र ही (राजा) प्रकाश=प्रेरणा देने वाला है और (इमा मानुषीः) यह मननशील स्त्री-पुरुषों की श्रेणी हमारी (प्रजाः) प्रजा=हमारे साथ का जनसमुदाय है। हे नारि! (अविमुक्तचक्रे) मर्यादित व्यवहार वाली (तीरे) तुझ 'जीवननदी' के किनारे (तुभ्यं) तेरे लिये (आसीरन्) हम रहें।

---

१. यहां 'असौ' के स्थान पर किसी नदी का नाम सम्बोधन विभक्त्यन्त उच्चारण करना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की बातें करें। और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुईं उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें—

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥[1]

तू वीर माता, भरी गोद, सदा सुहागन रहे।

ऐसे शुभ माङ्गलिक वचन बोलें। तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें।

इति सीमन्तोन्नयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

१. द्र० गोभिल गृह्य २।७-१२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ जातकर्म-संस्कार-विधिः

इसका समय और कर्मविधि इस प्रकार जानें (सं. वि. ७९)

[प्रथम विधि—गर्भिणी-शरीर-मार्जन]

जब प्रसव होने का समय आवे, तब निम्नलिखत मन्त्र से, गर्भिणी की माता या अन्य कोई विदुषी स्त्री, उसके शरीर पर मार्जन करे (सं. वि. ७९):—[1]

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति ।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥[2]

पश्चात् निम्न मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे ।

ओम् अवैतु पृश्निशेवलꣳ शुभे जराय्वत्तवे ।
नैव मांसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥
पार. गृ. १।१६।१ ॥

हे (शुभे !) शुभकारिणी देवि ! (जरायु) तेरा गर्भ के ऊपर लिपटा चमड़ा, जो कि (पृश्नि) नाना रंग रूपों वाला है और (शेवलं) पिच्छल या गाढ़ा द्रव्य है, वह (अत्तवे) खाये जाने—अर्थात् समाप्त किये जाने के लिये (अव एतु) परमेश्वर की कृपा से नीचे उतर आवे । तेरा वह जरायु (मांसेन) मांस के साथ (पीवरीं) जहां गर्भ पुष्ट होता है उस 'गर्भाशय' की थैली को (कस्मिंश्चन) अन्य किसी में से (आयतनम्) उनके हिस्से को (नैव अव पद्यताम्) न गिरावे । केवल 'जेर' ही बाहर आवे, गर्भिणी के अन्तर्भाग में से कोई और वस्तु नहीं ।

'शुने' व 'पीवरि' पाठयुक्त मन्त्र का अर्थः—

---

१. वर्त्तमानकालिक जीवन में यह 'मार्जन क्रिया' सम्भव नहीं ।

२. अर्थ गर्भाधान-संस्कार, पृष्ठ १६५ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय विधि—प्रसूता व शिशु का स्नान]

जब सन्तान का जन्म हो, तब माता और शिशु के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनाकर रक्खें। उस समय सुगन्धियुक्त किंचित् उष्ण जल से स्त्री को स्त्रियां स्नान करादें (सं. प्र. ४।११५)। उसी समय दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ, शुद्ध कर, पिता के गोद में बालक को देवे। पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो, वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़, ऊपर सूत से बांध के, उस बन्धन के ऊपर से नाड़ीछेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा, शुद्ध वस्त्र पहिना (सं. वि. ८०)। पश्चात् सन्तान को उसकी माता को दे देवें (सं. प्र. ४।११६)। फिर जो प्रसूता-घर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड बना रक्खें, अथवा तांबे का कुण्ड ला रक्खें। और संस्कार सम्बन्धी विशेष पदार्थ और यज्ञ करने के लिये सुगन्धित घृतादि सब सामग्री वेदी के पास रख के, हाथ पग धोके, एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित के लिए कुण्ड के दक्षिण भाग में बिछा, उस पर पुरोहित को सत्कार पूर्वक उत्तराभिमुख बैठावें और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा, उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे।

[तृतीय विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञप्रारम्भ]

तत्पश्चात् पृ. २९ से ९९ तक लिखे प्रमाणे, ऋत्विग्वरण, आचमन, अंगस्पर्श,[1] अग्न्याधान चन्दन से त्रि-समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर,

---

नाना रंगों वाला, गाढ़ा, रुधिर से सना हुआ जरायु कुत्ते आदि के खाने के लिये नीचे आ जावे। गर्भ के कारण पुष्ट शरीर वाली हे स्त्री! यह जरायु गर्भाशय के किसी मांस भाग के सहित तथा तुझको पीड़ा पहुंचाने वाले किसी कारण के होते हुए न गिरे। अर्थात् तेरे शरीर में से केवल 'नवशिशु' ही बाहर आवे। तेरे शरीर का रक्त मांसादि बाहर न आवे।

---

१. इस यज्ञ में ईश्वरस्तुः प्रा. उपा., स्वस्तिवा., शान्तिकरण तथा 'अयन्त इध्म' से पंचाज्याहुति, जलप्रसेचन क्रिया नहीं करनी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि–आठ घृताहुतियां]

आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार, दोनों मिलाकर आठ आज्याहुति देनी[1]—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

इस मन्त्र से वेदि के उत्तर भाग में प्रज्वलित समिधा पर,

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

इस मन्त्र से वेदि के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर ।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

इन दो मन्त्रों से वेदि के मध्य में दो आहुति देनी। पश्चात् प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[पंचम विधि–विशेष होम की दो आज्याहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न दो मन्त्रों से दो आज्याहुति करें—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति ।
तां त्वा घृतस्य धारया यजे सँराधनीमहम् ।
सँराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा। इदं संराधिन्यै–इदन्न मम॥*

---

*पति कहता है:—"या जो तू (अतिरश्ची निपद्यते) मुझसे अनुकूल व्यवहार करती है; (अहं विधरणी इति) और जो अपने आप को गृहस्थ भार की विशेष रूप से धारण करने वाले जुम्मेवार

---

१. इस संस्कार में स्विष्टकृताहुति, प्राजापत्याहुति, पृ. ११४ पर लिखित 'त्वं तो अग्ने' आदि मन्त्रों से मङ्गल अष्टाज्याहुति का विधान नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं विपश्चित्पुच्छमभरत् तद्धाता पुनराहरत् ।
परे हि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा ।
इदं धात्रे—इदन्न मम[1] ॥*

[षष्ठ विधि–पूर्णाहुति, वामदेव्यगान, ईश्वरोपासन]

तत्पश्चात् पृ. १२१ लिखे प्रमाणे,

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से पूर्णाहुति करके पृ. १२३ पर लिखे प्रमाणे वामदेव्य गान करें। पश्चात् पृ. ३२--३९ लिखे प्रमाणे 'विश्वानि देव' आठ मन्त्रों से ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना करें।

मानती है अर्थात् 'मैं घर सम्भालने वाली हूं' तथा (संराधनी अहं) मैं सब कार्यों की साधिका हूं ऐसा समझती है, (तां त्वा) ऐसा तुझ को मैं (घृतस्य धारया) घृत की धाराओं से (यजे) सत्कार करता हूं। (संराधिन्यै) गृहस्थकार्य की साधिका (देष्ट्र्यै) इष्टफलदात्री (देव्यै) देवी के लिए यह (स्वाहा) आहुति है अथवा शुभकामना करता हूं।

*पत्नि कहती है:—(विपश्चित्) विद्वानों ने पुत्र को प्रतिष्ठा का कारण बतलाया है, सर्वधारक परमात्मा ने इसका अनुमोदन किया है। हे विद्वद्गण ! तुम आओ। मेरा इस नाम वाला पति फिर आगे सन्तान उत्पन्न करेगा। इसके नाम पर यह आहुति है।

अथवा (विपश्चित्) विद्वान् पुरुष पति ने (पुच्छं) पुत्=सन्तान के शं=शयन करने के स्थान गर्भाशय को (आभरत्) वीर्य से भरा है और (तत्) उसको (धाता) सब जगत् का धाता प्रभु (पुनः) फिर (आहरत्) उसमें जीव को स्थापित करता है। (विपश्चित्) हे विद्वान् पति (त्वं परेहि) दो वर्ष के लिए मुझसे दूर रह। (अयं पुमान्) यह पुंस्त्वशक्ति युक्त (असौ नाम) नाम वाला अर्थात् 'बहादुर मर्द पुत्र' आगे सन्तान उत्पन्न करने वाला है। यह मेरी सन्तान आगे कुल की वृद्धि करने वाली है। इसके लिये शुभवचन कहती हूं।

---

१. मन्त्र.ब्रा. १।५।६, ७। 'स्वाहा··· इदन्न मम' रहितो मन्त्रपाठः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सप्तम विधि—'ओ३म्' नाम लेखन, मधुप्राशन]

तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला[1] के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो, उससे 'ओं प्रतिष्ठ' ऐसा मन्त्र बोलकर बालक की जीभ पर—"ओ३म्" यह अक्षर लिखे। फिर उसके दक्षिण कान में "वेदोऽसीति[2]"* 'तेरा गुप्त नाम वेद है' ऐसा

पश्चात् पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्रों से थोड़ा थोड़ा चटावे—

ओं प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥१[3]

ओं भूस्त्वयि दधामि ॥२॥

ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥३॥

---

*"वेदोऽसि" तू ज्ञान स्वरूप है; तू सदालाभ है और तू सर्व-प्रसिद्ध है।

१. "मैं (ते) तुझको (घृतस्य मधुनः) घी और शहद की यह बूंद (प्र ददामि) अच्छे प्रकार से देता हूं=चटाता हूं। मैं वेद जानता हूं कि यह मधुघृत विन्दु (मघोनां सवित्रा) धन सम्पत्तियों के स्रष्टा द्वारा ही (प्रसूतम्) उत्पन्न किया गया है अर्थात् यह भी भगवत्प्रसाद हैं। (अस्मिन् लोके) इस संसार में (देवताभिः) विद्वानों=दिव्यशक्तियों द्वारा (गुप्तः) रक्षित (आयुष्मान्) आयुष्मान् तू (शतं जीव) सैकड़ों वर्ष तक जी।"

२-४. समस्त (भूः) भौतिक शक्तियां व पदार्थ, (भुवः) सर्वविध ज्ञान, और (स्वः) आनन्द यह सब तुझ में स्थापित करता हूं। ये सब तेरे में हों।

---

१. बराबर शब्द से सम परिमाण अभिप्रेत नहीं है। बराबर का अर्थ है यथोचित। घृत और मधु सम परिमाण में विष समान होता है। इसलिये इनका अनुपात एक भाग घृत और तीन भाग मधु का होना चाहिये।

२. शत. ब्रा. १४।७।५।२५ ॥

३. आश्व. गृह्य १।२५।१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं स्वस्त्वयि दधामि ॥४॥
ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥५॥

पार. गृ. १।१६।४॥

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषꣳस्वाहा ॥६॥ यजु० ३२।१३॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से अर्थात् एक एक से एक एक बार करके घृत मधु-प्राशन कराके।

[अष्टम विधि—शिशु के कानों में मन्त्र जाप]

पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओं मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती ।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥१॥

आश्व. गृ. १।१५।२॥

ओम् अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन ।
त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥२॥

---

५. भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक का सुख मिले तथा भौतिक ज्ञान, सैद्धान्तिक, तात्त्विक ज्ञान प्राप्त हो।

६. (इन्द्रस्य प्रियम् काम्यम्) जीवात्मा के प्रिय इष्टदेव; (अद्भुतं) अद्भुत और इस (सदसस्पतिं) जमघट के स्वामी से मैं (सनिं) विवेचना शक्ति देने वाली (मेधां) मेधा को (अयासिषम्) प्राप्त करूं। या (सनिं) योग्य उपभोग शक्ति और (मेधां) उसका उचित उपयोग बताने वाली बुद्धि को प्राप्त होऊं॥

१. हे बालक ! (देवः सविता) जगत्-स्रष्टा परमात्मा देव, (सरस्वती देवी) सरस्वती देवी और (अश्विनौ) अश्विदेवता तुझे (मेधां) धारणावती या अज्ञान-नाशक बुद्धि प्रदान करे।

सरस्वती देवी=विद्वानों की चित्तप्रकाशक दिव्यगुण युक्त ऊंची वाणी (मेधा)=मेधृ हिंसने। अज्ञान, अधर्म, पाखण्ड, असत्य और अभाव नाशक बुद्धि।

२-४. हे बालक ! (आयुष्मान्) निरन्तर दीर्घ काल तक रहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन०[1] ॥३॥

ओं ब्रह्माऽऽयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥४॥

ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥५॥

ओम् ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥६॥

ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥७॥

ओं यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥८॥

ओं समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥९॥ पार. गृ. १।१६।६ ॥

इन नव मन्त्रों का जप करे।

इसी प्रकार बायें कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे।

[नवम विधि—शिशुस्कन्ध-स्पर्श]

इसके पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श करें कि जिससे

वाला (अग्निः) अग्नि (वनस्पतिभिरायुष्मान्) लकड़ियों के जलते रहने से आयुष्मान् है; (सोम आयुष्मान्०) औषधियों में रस उत्पन्न होते रहने से चन्द्रमा निरन्तर जीवी है; (ब्रह्म आयुष्मत्) ब्राह्मणों के निरन्तर अध्ययनाऽध्यापन से वेद शाश्वत हैं; (देवाः आयुष्मन्तः०) अमृत से [आयुवर्द्धक भोजन औषधि द्वारा या सज्ज्ञान द्वारा] विद्वान् अमरजीवी (होते) हैं; (ऋषय आयुष्मन्तः०) व्रत अर्थात् नियमित जीवन यापन से ऋषि लोग चिरकालजीवी होते हैं; (पितरः आयुष्मन्तः०) योग्य अन्नादि युक्ति के मिलते रहते से वृद्ध-सम्माननीय पुरुष दीर्घायु होते हैं; (यज्ञ आयुष्मान्०) दक्षिणाओं के देते लेते रहने से यज्ञ निरन्तर होते रहते हैं; (समुद्रः आयुष्मान्०) नदियों के (भरपूर) बहते रहने से समुद्र [सदा भरे रहते हैं] सूखते नहीं=युग युग लहराते रहते हैं; इस प्रकार के दीर्घजीवन से तुझे चिरंजीवी बनाता हूं। इनकी भांति तू चिरजीवी हो। इन सब की आयु तुझे लगे।

---

१. यहां पूर्व मन्त्र का शेष भाग (त्वा०) इत्यादि उत्तर मन्त्रों के पश्चात् बोलें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझा न पड़े, हाथ धर के निम्न-लिखित तीन मन्त्र बोले—

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥१॥[1]
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥२॥[2]
ओम् अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव ।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥३॥

आश्व. गृ. १।१५।३ ॥

---

१. हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! गुरो ! (अस्मे) हमें आप (श्रेष्ठानि द्रविणानि) धन [ज्ञान व बल]; (दक्षस्य चित्तिम्) चतुर-मनुष्य की सावधानता=कर्म करने की योग्यता-सामर्थ्य और (सुभगत्वं) सौभाग्य को दीजिये। (पोषं रयीणाम्) धनों की वृद्धि=ऐश्वर्यों की वृद्धि, (अरिष्टिं तनूनां) शरीरों की आरोग्यता, (स्वाद्मानं वाचः) वाणी की मधुरता=जिह्वा के लिये उत्तम भोजन और (सुदिनत्व मह्नाम्) दिनों की सुदिनता=सर्वकाल की निर्विघ्नता को (धेहि) प्रदान कीजिये ॥

२. हे ऐश्वर्यशाली, सरल स्वभाव तेजस्विन् परमेश्वर ! (विश्ववारस्य भूरेः रायः) सब आपत्तियों का निवारण करने वाला बहुत धन (अस्मे प्रयन्धि) हमें दीजिये। हमें (जीवसे) जीने के लिये (शतं शरदो धाः) सैकड़ों वर्ष दीजिये। सौ बरस तक जीवनधारण करने के लिये हमारा धारण पोषण कर। हमें (शश्वतः वीरान्) निरन्तर रहने वाले वीर पुत्र दीजिये। हमारे में अमर-जीवि-वीरों का स्थापन कराइये।

३. हे बालक ! (अश्मा भव) तू पत्थर [की तरह दृढ़ वा स्थिर] हो; (परशुर्भव) कुल्हाड़े [की तरह शत्रु-नाशक वा रक्षा करने में समर्थ हो; (अस्तृतं हिरण्यं भव) हितकारी स्वच्छ सोने सा तेजस्वी

---

१. ऋ० २।२१।६॥ २. ऋ० ३।३६।१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[दशम विधि—तीन बार जाप]

तत्पश्चात् अर्थपूर्वक इस मन्त्र का तीन बार जप करे—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥१॥*

यजुः ३।६२ ॥

तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठा ले और

[एकादश विधि—प्रसूतागार में मन्त्र जाप व प्रसूता-शरीर-सिंचन]

जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जा के—

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥१॥ पार. गृ. १।१६।१७ ॥

इस मन्त्र का जप करे । तथा—

बन । (पुत्रनामा वेदः वै असि) तू पुत्र नाम से मेरा ही स्वरूप है अथवा मेरी (वेदः) उपलब्धि है अथवा हे पुत्र ! तू वेद स्वरूप नाम वाला है—ज्ञानवान् है । (स जीव शरदः शतम्) ऐसा वह तू सौ वर्ष तक जी ॥

*(जमदग्नेः) देदीप्यमान चक्षुवाले तत्त्वददर्शी की जो (त्र्यायुषं) बाल्य यौवन वार्धक्य रूप तीन आयु की दशायें हैं; (कश्यपस्य) आत्मज्ञानी पुरुषों की जो ये तीन जीवनावस्थायें हैं और (यद्देवेषु त्र्यायुषं) देव विद्वानों में जो ये तीन आयु के भाग हैं, वह (त्र्यायुषं) आयु की तीन अवस्थायें (नः अस्तु) हमारी भी हों । अर्थात् हम भी अपने जीवन की तीनों अवस्थाओं का पूरा उपभोग करें, दीर्घ-जीवी हों ।

१. (भूमि) हे भूमि ! (वेद) मैं जानता हूं कि (ते हृदयं) तेरा हृदय (दिवि चन्द्रमसि) चन्द्रमा आदि आह्लादकारक वस्तुओं में (श्रितं) लगा हुआ है । (वेदाहं) मैं उसे पाऊं. (तन्मां तद्विद्यात्) वह मुझे पाये । अथवा मैं उसे जानता हूं, वह मुझे जाने ।.....हम सौ वर्ष तक देखते सुनते और जीते रहें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्न चार मन्त्रों को पढता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे—

यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ ।
वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥२॥
यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ।
वेदामृतस्येह नाम माहं पौत्रमघꣳ रिषम् ॥३॥
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती ।
यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥४॥
यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् ।
तदहं विद्वाᳬस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघꣳ रुदम् ॥५॥[1]

---

२. हे सुन्दरवेणी प्रिये ! (प्रजापतौ) सन्तान की पालना करने वाले तेरे हृदय के भीतर जो बच्चे का हित विद्यमान है, (तत्) उस (ब्रह्म) बड़े प्रेम को जानने वाला अपने को मानता हूं। मुझे पुत्र जनित दुःख न हो। मैं पुत्र हत्यारा न बनूं। (पृ. १४९ द्र. पुं.स. सं.)।

३. जो (पृथिव्याः) पृथिवी का (अनामृतं) 'अनामृत'=नश्वर सार या छाया कलङ्क, (दिवि चन्द्रमसि श्रितम्) चन्द्रमा आदि आह्लादकारक वस्तुओं में स्थित है; और (इह) इस पृथिवी में जो (अमृतस्य नाम) अमृत=सदा रहने वाला शाश्वत् पदार्थ है, उसके नाम को (वेद) मैं जानता हूं। मुझे पुत्र जनित, कोई दुःख (मा रिषम्) प्राप्त न हो॥

४. (प्रजापती) सन्तान का पालन करने वाले (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि (शर्म यच्छतं) सुख देवें। (यथा) ताकि (जनित्र्या अधि) जनक-जननी से पूर्व में ही या उनके अधिष्ठान में, उनके जीते जी (अयं पुत्रः) यह पुत्र कभी विनाश को प्राप्त न हो।

५. (यद् अदः) जो यह (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में (पृथिव्याः कृष्णं हृदयं) पृथिवी का काला हृदय अर्थात् प्रतिबिम्ब (श्रितं) स्थित है, (तत अहं) इसको मैं (विद्वान्) जानता हूं, (तत् पश्यन्) इसको

---

१. मन्त्र ब्रा० १।५।१०-१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वादश विधि—शिशु को आशीर्वाद]

निम्न मन्त्रों को पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे—

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि ।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥६॥

स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥७॥[1]

देखता हूं। मुझे पुत्र जनित किसी दुःख से रोना न पड़े। अहं पौत्रमघं रुदं मा=मैं पुत्र सम्बन्धी दुःख जनित रोना कभी न रोऊं। 'पुत्र सम्बन्धी दुःख के कारण मेरी आखों में कभी भी (मा रुदम्) आंसू न आवें ॥

चन्द्रमा में कालापन है। कितना भी सुखी जीवन क्यों न हो, उसमें कष्ट आते ही हैं। मैं इस बात को जानता हूं। ईश्वर करे कि इस प्रकार के कष्ट मुझे न हों।

६. बालक की ओर देखकरः—"अरे! (कोऽसि) तू कौन है? (कतमोऽसि) कौन सा है?" [क्या यह तू जानता है?]

"तू यही आत्मस्वरूप है, (अमृतोऽसि) नित्य अमर है।"

"हे बालक! तू (आहस्पत्यं मासं प्रविश) सौर मास में प्रवेश कर, इस संसार में आ।"

७. यह सूर्य तुझे 'दिन' को सौंप दे, [सूर्य किरणों के साथ इस जगत् में आ]; दिन रात को; रात्रि तुझे 'दिन रात' को; 'दिन रात' तुझे 'शुक्लकृष्ण-पक्षों' को; पक्ष तझे बारह मासों को; महीने तुझे छः ऋतुओं को; ऋतुयें तुझे वर्ष को और वर्ष तुझे वृद्धावस्था पर्यन्त लम्बी आयु [भोगने] के लिए सौंप दें। तेरी आयु उत्तरोत्तर बढ़ती जावे।

---

१. मन्त्र ब्रा० १।५।१४,१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[त्रयोदश विधि—शिशु शिरः आघ्राण]

निम्न मन्त्रों को पढ़के पुत्र के शिर का आघ्राण करे* अर्थात् सूंघे—

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम् ॥८॥
अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥९॥
अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
आत्माऽसि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥१०॥
पशूनांत्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥११॥[1]

---

८. "हे बालक! तू मेरे (अंगात् अंगात्) अंग अंग से (संस्रवसि) चूआ है [अंगों का सार है]; तू मेरे (हृदयात् अधि जायसे) हृदय में से उत्पन्न हुआ है [तू मेरे ही शरीर और हृदय का टुकड़ा है]; (ते प्राणं) तेरे प्राण को (प्राणेन) अपने प्राण से (सन्दधामि) संयुक्त करता हूं। (मे जीव) ऐ मेरे बच्चे! (यावदायुषं जीव) पूरी उमर पा; मनुष्य की पूर्ण आयु पर्यन्त जी।

ऐ बेटे! तू मेरे दिल और जिगर का टुकड़ा है, तुझे अपनी जिन्दगी देता हूं। ऐ मेरे बच्चे! पूरी उमर पा।

पिता के शारीरिक और मानसिक गुण बच्चे में जाते हैं।

९. "तू मेरे (अंगादंगात् सम्भवसि) रोम रोम से उत्पन्न हुआ है; हृदय में से प्रगट हुआ है; तू प्रसिद्ध वेदज्ञ=तत्त्वज्ञानी बन। तू पुत्र नाम से मेरा ही स्वरूप है। सौ वर्ष तक जी।"

१०. तू पत्थर की तरह दृढ़ वा स्थिर हो। कुल्हाड़े की तरह शत्रु बन। (पुत्र) हे पुत्र! (आत्माऽसि) तू 'आत्मस्वरूप' है, या तू 'मेरी ही आत्मा है।' (मा मृथाः) मत मृत्यु को प्राप्त होना; ऐसा वह तू सौ वर्ष तक जी।

११. "(हिंकारेण पशूनां) हिं हिं करके जैसे पशु अपने बछड़ों को

---

*इसी प्रकार जब परदेश से आवे वा जावे, तब-तब भी इस क्रिया को करे, जिससे पुत्र और पिता-माता में अति प्रेम बढ़े।

१. मन्त्र ब्रा० १।५।१६-१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्दश विधि—प्रसूता-स्वास्थ्यकामना, शिशु-दुग्धपान]

ओम् इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः ।
सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत् ॥१॥[1]

इस मन्त्र से ईश्वर से शिशु की माता के उत्तम आरोग्य की प्रार्थना करके, प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करे। पश्चात् कोई स्त्री, सन्तान की माता अर्थात् प्रसूता स्त्री के स्तन किञ्चित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के निम्न मन्त्र

ओम् इमꣳस्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥२॥[2]

को पढ़के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे। इसके पश्चात् निम्न मन्त्र

[चूमते चाटते] सूंघते हैं, वैसे (त्वा अभिजिघ्रामि) मैं तुझे सूंघता हूं।"

१. (वीरे) हे वीरे! तू (मैत्रावरुणी) मित्र और श्रेष्ठ पुरुषों को मिलाये रखने वाली (इडासि) साक्षात् बुद्धि है। तूने (वीरम् अजीजनथाः) वीर को जन्म दिया है। (या अस्मान्) जिसने हमें (वीरवतोऽकरत्) वीर सन्तान वाला बनाया है, (स त्वं) वह तू (वीरवती भव) वीर [पुत्रवती] प्रसू हो।

२. हे (अग्ने!) अग्नि समान तेजस्वी बालक! (सरिरस्य=शरीरस्य मध्ये) सरणशील नश्वर शरीर के मध्य में स्थित, (अपां प्रपीनम्) दुग्धपूरित होने से पुष्ट, (ऊर्जस्वन्तं) बलदायक (इमं स्तनं धय) इस स्तन का पान कर। (मधुमन्तं उत्सं जुषस्व) मधु का स्रोत समझ इसका सेवन कर। (मधुमन्तं अर्वन् समुद्रियं सदनं) मधु से भरे लहराते हुए इस स्तन-सागर में (आविश) प्रविष्ट हो। अथवा चलने फिरने में समर्थ होकर समुद्र सहित संसार का भ्रमण कर।

हे बालक! माता के शरीर के मध्य भाग में स्थित दुग्ध पूरित,

---

१. पार० गृह्य १।१६।१९॥ २. यजु० १७।८७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥३॥[1]

को पढ़कर वामस्तन शिशु के मुख में माता देवे (सं. वि. ८७) यदि शिशु दूध पीना चाहे, तो उसकी माता पिलावे।

[पंचदश विधि—प्रसूता के शिर के पास कलश-स्थापन]

तत्पश्चात् शुद्ध वायु वाले कमरे में प्रसूता स्त्री तथा शिशु को रक्खें और निम्न मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खें—

ओम् आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।
एवमस्याᳬसूतिकायाᳬसपुत्रिकायां जाग्रथ ॥१॥[2]

बलदायक स्तन का पान कर। मधु के स्रोत का सेवन कर। तू इस प्रकार (समुद्रियं सदनं) माता के हृदयरूपी समुद्र के घर में पूरी तरह से प्रविष्ट हो।

३. हे (सरस्वति!) सरस्वति देवि! (यः, ते स्तनः) जो तेरा स्तन (शशयः) [बालक के लिये निद्रा दिलाकर] अत्यन्त शान्तिदायक है; (मयोभूः) सुखोत्पत्ति का साधन है; (रत्नधाः) शोभा को धारण करने वाला है; (यः वसुवित्) बसने की शक्ति प्राप्त कराने वाला है; (सुदत्रः) उत्तम दानशील है; (येन) जिससे तू बालक की (विश्वा वार्याणि) समस्त धातुओं को पुष्ट करती है, अब (इह) यहां (धातवे) दुग्ध रस पान करने के लिये या बालक के पोषणार्थ वा पीने के लिए (तं कः) उसको प्रस्तुत कर।

१. हे (आपः) जलो! (यथा देवेषु जाग्रथ) जैसे अन्तरिक्षस्थ दिव्य भौतिक शक्तियों में तुम निरन्तर जागरूक रह कार्य-तत्पर रहते हो। (देवेषु जाग्रथ) पृथिवी-स्थानीय भौतिक शक्तियों में भी वैसे ही कार्यशील रहो। और जैसे वहां हो, (एवमस्यां) वैसे ही इस (सपुत्रिकायां) सपुत्रवान् सूतिकागार में भी (जाग्रथ) प्रभावशाली सहायक, सावधान रहो॥

अथवा हे आप्तजनो! जैसे तुम सब विद्वानों में अधिक जागृत रहते हो, वैसे ही इस उत्तम पुत्र वाली प्रसूता के सम्बन्ध में जागृत =सावधान रहो।

---

१. शत० ब्रा० १४।४।९।२८॥ २. पार. गृह्य. १।१६।२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[षोडश विधि—प्रसूता गृह में विशेषहोम]

प्रसूता स्त्री जिस प्रसूत-स्थान में दश दिन तक रहे, उसमें सुगन्धित घी का होम[1] नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धिवेला में किया करें। और निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर उनकी विशेष आहुतियां भी देवे—

ओं शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदं शण्डामर्काभ्याम् उपवीराय, शौण्डिकेयायोलूखलाय, मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यश्च्यवनाय—इदन्न मम ॥१॥

ओम् आलिखन्ननिमिषः किं वदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो

---

१. (इतः) इस प्रसूतिघर से वा इस शिशु से (शण्डामर्काः) घातक दुष्ट रोग जन्तु (उपवीरः) हठीले अर्थात् क्रौनिक और (शौण्डिकेयः) शिशु के सुख में विघ्न डालने वाला कृमि या रोग (उलूखलः) पाप या पापियों के सम्बन्ध से उत्पन्न रोग (मलिम्लुचः) मैल या मलिन वस्तुओं से उत्पन्न रोग या जूं खटमल मच्छर आदि रोग जन्तु (द्रोणासः) नासा रोगोत्पादक या नासा को विकृत करने वाले रोग कीटाणु (च्यवनः) शरीर को कृश या क्षय करने वाला पीलिया सूखा आदि रोग (नश्यतात्) नष्ट हो जावे, दूर चला जावे। (इदं शण्डादिभ्यः, इदं न मम) यह आहुति की सुष्ठक्रिया इनके नाश के लिये है।

शिशु के उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घायु के लिये उचित है कि निम्न प्रकार के मनुष्यों का प्रवेश प्रसूति-गृह में न हो—

२. (आ, लिखन्) सब प्रकार से दूसरे की वस्तु बिगाड़ने वाला या निरन्तर हानि पहुंचाने वाला (अनिमिषः) आंखें फाड़कर या घूरकर देखने वाला अथवा दूसरे के अपकार में एक क्षण भी न खोने वाला अर्थात् दूसरे के पराभव में निरन्तर ग्रस्त (किं वदन्तः) अफवाहें

---

१. द्र० सं० प्र० ४।११६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नश्यतादितः स्वाहा । इदमालिखतेऽनिमिषाय किंवदन्त्र्य उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय च्यवनाय—इदन्न मम ॥२॥[1]

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् जिस दिन शिशु की माता ने प्रसवगह अर्थात् सूतिकागार से वापिस आना हो, उस दिन अच्छे अच्छे विद्वान् धार्मिक वैदिकमतवाले व इष्ट मित्र बन्धु बान्धव बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता पितामही-मातामही व अन्य सौभाग्यवती विदुषी स्त्रियां भीतर रह कर आशीर्वाद रूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें—

फैलाने वाला या कुत्सितभाषी (उपश्रुतिः) सामने प्रशंसा करने वाला [और पीछे निन्दा] अर्थात् खुशामदी चुगलखोर (हर्यक्षः) बन्दर-बिल्ली की आंखों वाला या टेढ़ी आंखों वाला भेंगा या विकृतनेत्र मद्यसेवी (कुम्भी) दूसरों का शोषण कर अपना घड़ा=तिजोरी=पेट भरने वाला अर्थात् दीन दुःखियों को सता अपना स्वार्थ=कार्य साधने वाला अर्थात् दीन दुःखी पर हंसने वाला (शत्रुः) द्वेषयुक्त स्वभाव वाला (पात्रपाणिः) भिखमंगा अथवा हमेशा मांगते रहने के स्वभाव वाला (नृमणिः) मनुष्यों के मारने के षड्यन्त्र करने वाला, कुतन्त्रीघातक (हन्त्रीमुखः) 'मुख में खून लगे हिंसक' पशु के स्वभाव वाला अथवा मनुष्य-मांस भक्षी, हिंसा प्रधान है मुख जिसका, गुस्से में कच्चा चबा जाने के स्वभाव वाला (सर्षपारुणः) सरसों की तरह लाल पीले वर्ण का अर्थात् गिरगिट की तरह रंग बदलने के स्वभाव वाला (च्यवनः) अन्दर ही अन्दर विनाश करने या खोखला बना देने वाला अर्थात् अपने सङ्ग से दूसरे के धर्म कर्म की च्युत करने वाला, ऐसे मनुष्य (इतः) इस प्रसूतिगृह से, बालक के पास से (नश्यात्) दूर रहें, हटा दिये जावें ॥

(इदमालिखते·····च्यवनाय, इदन्न मम) यह आहुति की सुष्ठुक्रिया इनके नाश के लिये है ० ॥

---

१. पार० गृह्य १।१६।२३ वहां 'इदं'···इदन्न मम' भाग नहीं है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वऽस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥१॥
अथर्व० कां० ६ । अनु० ४ । सू० ४१ । मं० ३ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२॥
अथर्व० कां० १२ । अ० २ । सू० २ । मं० २३ ॥

प्रसव से पूर्व प्रसूतिगृह में 'शण्डामर्काः०' मन्त्र में बताये लक्षणों वाले रोगकृमियों से प्रसूतागार को साफ कर लेना चाहिये। और प्रसव के समय 'आ लिखन्' मन्त्र निर्दिष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति को प्रसूतिगृह में आने नहीं देना चाहिये। और प्रसव के पश्चात् भी ऐसे व्यक्तियों के सङ्ग से शिशु को बचाना चाहिये।

१. (दैव्या ऋषयः) दिव्यगुण सम्पन्न ऋषि=वेदज्ञाता (नः, मा हासिषुः) हम से अलग न हों; (ये तनूपाः) हमारे शरीरों के रक्षक अलग न हों, (तन्वः तनूजाः) हमसे उत्पन्न हुए पुत्र पौत्रादि का हमसे वियोग न हो। हे मुक्त पुरुषो! (नः मर्त्यान्) हम मनुष्यों के (अभिसचध्वं) समीप आओ। (नः जीवसे) हमें जीवन के लिये (प्रतरं आयुः) प्रकृष्ट आयु का (धत्त) दान करो।

अथवा हमारी दिव्य ज्ञानेन्द्रियां, शरीर पालक प्राण, शरीर के अंग, शरीर में उत्पन्न बाल नखादि असमय में हमारा त्याग न करें। अर्थात् ये सब सदा स्वस्थ बने रहें। हम मरणशीलों को अमर शक्तियां प्राप्त होती रहें। हमारे जीवन के लिये बहुत लम्बी आयु बनाये रक्खो।

२. परमेश्वर कहता है (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (इमं परिधिं) 'पिता पुत्र पौत्रादि रूप' यह जन्म मरण की मर्यादा मैंने नियत कर दी है। (एतम् अर्थम्) इसके अर्थ=रहस्य को (अपरः मा नु गात्) दूसरा कोई नहीं जानता। अथवा मैं जीवधारियों के लिये इस 'मृत्यु मर्यादा' या 'जीवन मर्यादा'=मरण मर्यादा को बांधता हूं। (एषां अपरः) इनमें से कोई भी (एतं अर्थम्) इसके लिये=एतदर्थ या इस रक्षाविधि के पार=जीवन रेखा के पार कोई भी न जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नश्यतादितः स्वाहा । इदमालिखतेऽनिमिषाय किंवदन्त्यु उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय च्यवनाय—इदन्न मम ॥२॥[1]

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् जिस दिन शिशु की माता ने प्रसवगह अर्थात् सूतिकागार से वापिस आना हो, उस दिन अच्छे अच्छे विद्वान् धार्मिक वैदिकमतवाले व इष्ट मित्र बन्धु बान्धव बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता पितामही-मातामही व अन्य सौभाग्यवती विदुषी स्त्रियां भीतर रह कर आशीर्वाद रूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें—

फैलाने वाला या कुत्सितभाषी (उपश्रुतिः) सामने प्रशंसा करने वाला [और पीछे निन्दा] अर्थात् खुशामदी चुगलखोर (हर्यक्षः) बन्दर-बिल्ली की आंखों वाला या टेढ़ी आंखों वाला भेंगा या विकृतनेत्र मद्यसेवी (कुम्भी) दूसरों का शोषण कर अपना घड़ा=तिजोरी=पेट भरने वाला अर्थात् दीन दुःखियों को सता अपना स्वार्थ=कार्य साधने वाला अर्थात् दीन दुःखी पर हंसने वाला (शत्रुः) द्वेषयुक्त स्वभाव वाला (पात्रपाणिः) भिखमंगा अथवा हमेशा मांगते रहने के स्वभाव वाला (नृमणिः) मनुष्यों के मारने के षड्यन्त्र करने वाला, कुतन्त्रीघातक (हन्त्रीमुखः) 'मुख में खून लगे हिंसक' पशु के स्वभाव वाला अथवा मनुष्य-मांस भक्षी, हिंसा प्रधान है मुख जिसका, गुस्से में कच्चा चबा जाने के स्वभाव वाला (सर्षपारुणः) सरसों की तरह लाल पीले वर्ण का अर्थात् गिरगिट की तरह रंग बदलने के स्वभाव वाला (च्यवनः) अन्दर ही अन्दर विनाश करने या खोखला बना देने वाला अर्थात् अपने सङ्ग से दूसरे के धर्म कर्म को च्युत करने वाला, ऐसे मनुष्य (इतः) इस प्रसूतिगृह से, बालक के पास से (नश्यात्) दूर रहें, हटा दिये जावें ॥

(इदमालिखते·····च्यवनाय, इदन्न मम) यह आहुति की सुष्ठुक्रिया इनके नाश के लिये है ० ॥

---

१. पार० गृह्य १।१६।२३ वहां 'इदं'···इदन्न मम' भाग नहीं है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वऽस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥१॥
अथर्व० कां० ६ । अनु० ४ । सू० ४१ । मं० ३ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२॥
अथर्व० कां० १२ । अ० २ । सू० २ । मं० २३ ॥

प्रसव से पूर्व प्रसूतिगृह में 'शण्डामर्काः०' मन्त्र में बताये लक्षणों वाले रोगकृमियों से प्रसूतागार को साफ कर लेना चाहिये। और प्रसव के समय 'आ लिखन्' मन्त्र निर्दिष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति को प्रसूतिगृह में आने नहीं देना चाहिये। और प्रसव के पश्चात् भी ऐसे व्यक्तियों के सङ्ग से शिशु को बचाना चाहिये।

१. (दैव्या ऋषयः) दिव्यगुण सम्पन्न ऋषि=वेदज्ञाता (नः, मा हासिषुः) हम से अलग न हों; (ये तनूपाः) हमारे शरीरों के रक्षक अलग न हों, (तन्वः तनूजाः) हमसे उत्पन्न हुए पुत्र पौत्रादि का हमसे वियोग न हो। हे मुक्त पुरुषो! (नः मर्त्यान्) हम मनुष्यों के (अभिसचध्वं) समीप आओ। (नः जीवसे) हमें जीवन के लिये (प्रतरं आयुः) प्रकृष्ट आयु का (धत्त) दान करो।

अथवा हमारी दिव्य ज्ञानेन्द्रियां, शरीर पालक प्राण, शरीर के अंग, शरीर में उत्पन्न बाल नखादि असमय में हमारा त्याग न करें। अर्थात् ये सब सदा स्वस्थ बने रहें। हम मरणशीलों को अमर शक्तियां प्राप्त होती रहें। हमारे जीवन के लिये बहुत लम्बी आयु बनाये रक्खो।

२. परमेश्वर कहता है (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (इमं परिधिं) 'पिता पुत्र पौत्रादि रूप' यह जन्म मरण की मर्यादा मैंने नियत कर दी है। (एतम् अर्थम्) इसके अर्थ=रहस्य को (अपरः मा नु गात्) दूसरा कोई नहीं जानता। अथवा मैं जीवधारियों के लिये इस 'मृत्यु मर्यादा' या 'जीवन मर्यादा'=मरण मर्यादा को बांधता हूं। (एषां अपरः) इनमें से कोई भी (एतं अर्थम्) इसके लिये=एतदर्थ या इस रक्षाविधि के पार=जीवन रेखा के पार कोई भी न जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्वावन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥३॥

अथर्व० कां० १८ । अनु० ३ । सू० ४ । मं० ६१ ॥

जन्मे पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान में जहां की वायु शुद्ध हो, वहां रक्खें। [वहां] सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देश में भ्रमण कराना उचित है, जहां का वायु शुद्ध हो। प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय में निर्बल हो जाती है। (स. प्र. ३।३७-३८)। और आगे भी शिशु की देह माता के दूध से ही बनती है, इसलिए 'बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों' ही का सेवन स्त्री करती रहे। विशेषतः दुग्धवर्धक आहार औषधि का सेवन करे। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री-पुरुष परस्पर संग करें न।[1]

(पुरूचीः) बहुत प्रकार से ज्ञानयुक्त होकर (जीवन्तः शरदः शतं) सौ वर्ष तक जीते हुए बड़े (पर्वतेन) प्रयत्नों द्वारा (मृत्युं तिरो धत्तां) मृत्यु को दूर रखें॥

अथवा मैं जीवधारियों के लिये 'जन्ममरण की' रेखा बांधता हूं कि वे सौ बरस और उससे भी अधिक जीते हुए, महान् प्रयत्नों से मृत्यु को दूर करदें। इनमें से कोई भी इसके निमित्त से (मा नु गात्) इधर उधर मत जावे।

३. (यः सुत्रामा) जो हमारा अच्छा रक्षक (जीरदानुः) प्राण व अन्न देने में समर्थ, (सुदानुः) कल्याण का उत्तम दान देने वाला (विवस्वान्) अन्धकार का नाशक परमात्मा है, वह (नः) हम प्रजाओं के लिये (अभयं कृणोतु) अभय प्रदान करे। (इह) इस घर में (इमे) ये [नाना प्रकार के] बहुत से (वीरा भवन्तु) वीर पुत्र पौत्रादि हों। (मयि) मुझ में (अश्ववत्) घोड़े और (गोमत्) गौओं की (पुष्टिं) पुष्टि (अस्तु) होवे। मेरा पोषण गौओं और घोड़ों वाला हो। अर्थात् ये ही मेरा धन मेरी ताकत हों।

---

१. 'जन्मे पश्चात्...संग न करें।' यह लेख हमने 'जातकर्मसम्बन्धी निर्देश की पूर्णता' के लिये, गर्भाधान संस्कार के बाद में किये 'निर्देश' की तरह यहां दिया है। सं० वि० में नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ नामकरण-संस्कार-विधिः

नामकरण अर्थात् जन्मे हुए सन्तान का सुन्दर नाम धरे। (सं. वि. ८९)। नाम रखने में भी भूल न करे।...नाम का सुख से उच्चारण हो, इसमें मधुरता रहे; इसलिये दो अक्षर वाला या चार अक्षर वाला होवे।...स्त्रियों के नामों में मधुरता होनी चाहिये। जैसे भामा, अनसूया, सीता, लोपामुद्रा, यशोदा, सुखदा ऐसे-ऐसे स्त्रियों के नाम...। (पूना प्रव. ७-७८-७९)। **नामकरण का काल**—जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ग्यारहवें में वा एकसौ एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में, जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे।

जिस दिन नाम धरना हो, उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान बालक का पिता और ऋत्विज करें। और बालक व बालिका को शुद्ध सुगन्धित जल से स्नान करा, शुद्ध नवीन वस्त्र पहिना के रक्खें।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञप्रारम्भ]

तत्पश्चात् पृ. २३-११६ तक लिखे प्रमाणे व्याहृति की चार आहुति पर्यन्त सम्पूर्ण विधि करें। इस सामान्य प्रकरणोक्त विधि करते समय शिशु की माता यज्ञ वेदी पर पति के दक्षिण बाजू बैठे।

[द्वितीय विधि--अष्ट घृताहुतियां]

निम्न मन्त्रों से आठ घृताहुति देवें।

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५-१।११॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[तृतीय विधि–प्रधान होम; तिथि-नक्षत्राहुतियां]

तत्पश्चात् बालक व बालिका को उसकी माता गोद में लेकर कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर, बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रख, बालक के पिता के हाथों में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर पति के उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे। बच्चे का सिर उत्तर में, पैर दक्षिण में रहें। और जो इस संस्कार के लिए कर्त्तव्य है, उस प्रधान होम को करे। उसमें से प्रथम घी का चमसा भर के—

ओं प्रजापतये स्वाहा।[1]

इस मन्त्र से एक आहुति देकर, पीछे जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता* के नाम से, चार आहुती देनी,

---

१. इस आहुति का संकेत गोभिल गृह्य २।८।१२ में है।

* तिथि † देवताः—१—ब्रह्मन्। २—त्वष्टृ। ३—विष्णु। ४—यम। ५—सोम। ६—कुमार। ७—मुनि। ८—वसु। ९—शिव‡। १०—धर्म। ११—रुद्र। १२ वायु। १३—काम। १४—अनन्त‡। १५—विश्वेदेव। ३०—पितर॥ द० स०॥

नक्षत्र देवताः—अश्विनी—अश्वी। भरणी—यम। कृत्तिका—अग्नि। रोहिणी—प्रजापति। मृगशीर्ष—सोम। आर्द्रा—रुद्र। पुनर्वसु—अदिति। पुष्य—बृहस्पति। आश्लेषा—सर्प। मघा—पितृ। पूर्वाफल्गुनी—भग। उत्तराफल्गुनी—अर्यमन्। हस्त—सवितृ। चित्रा—त्वष्टृ। स्वाति—वायु। विशाखा—इन्द्राग्नी। अनुराधा—मित्र। ज्येष्ठा—इन्द्र। मूल—निर्ऋति। पूर्वाषाढा—अप्। उत्तराषाढा—विश्वेदेव। श्रवण—विष्णु। धनिष्ठा—वसु। शतभिषज्—वरुण। पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद्। उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य। रेवती—पूषन्॥ द० स०॥

† तिथि देवता और नक्षत्र देवता के लिए गोभिल गृह्य (२।८।१२) का भट्ट नारायण का भाष्य देखना चाहिए

‡ गोभिल गृह्यसूत्र के भट्ट नारायण के भाष्य (२।८।१२) में 'शिव' के स्थान में 'पिशाच्' और 'अनन्त' के स्थान में 'यक्ष' का निर्देश है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के चार घी की आहुति देवे। जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो, तो निम्न प्रकार से आहुति देवें—

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा।

ओम् अश्विन्यै स्वाहा। ओम् अश्विभ्यां स्वाहा ॥[1] *

[चतुर्थ विधि—स्विष्टकृताहुति]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से एक आहुति घृत की देवें— ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

[पंचम विधि—व्याहृत्याहुतियां]

पश्चात् घृत की चार व्याहृति आहुतियां देवे—

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[षष्ठ विधि—प्रधानहोम की दो विशेष आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान कर, दो आहुति देवें—

---

१. यह पाठ निदर्शनार्थ है। तिथि नक्षत्र और उनके देवता के लिए आहुति देने का विधान गोभिल गृह्य २।८।१२ में है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः स्वाहा ॥१॥
यजुः ३३।३ ॥

ओं, कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे। को मृडाति कतमो न मयस्करत्कतम ऊती अभ्यावर्तति ॥२॥ स्वाहा ॥ ऋ० १०।६४।१ ॥*

[सप्तम विधि—शिशु नासिकाश्वास-स्पर्श नामकरण]

पश्चात् शिशु का वाङ्-मधुर, श्रुतिमधुर तथा अर्थपूर्ण नाम विचार लें।

तत्पश्चात् माता शुभ आसन पर बैठ पत्नी अर्थात् बालक की गोद में स्थित शिशु के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके निम्न मन्त्र बोले—

---

१. "(यस्य नाम) जिस परमात्मा का नाम (महद्यशः) महान् यश वाला है, (तस्य प्रतिमा न अस्ति) उसके सदृश या अधिक और कोई नहीं है।" भाव यह है कि महान् यशस्वी नाम वाले के समान कोई वस्तु नहीं होती।' प्रभु के अनुग्रह से यह बालक महा यशोमय नाम वाला अनुपम बने।

२. (यामनि) इस गृहस्थमार्ग में (शृण्वतां देवानां) सम्भाषण व उपदेश सुनने वालों एवं ज्ञान दाताओं के बीच हम (कतमस्य) किस सुख स्वरूप का हम (सुमन्तु नाम) सुन्दर मननीय नाम (मनामहे) स्वीकारते हैं। (नः कः मृडाति) हमको यह सुख-स्वरूप [शिशु] सुखी करता है; (नः कतमः मयः करत्) हमारे में अधिक सुखी, हमारा सुखकल्याण करे। और यही (कतमः) सदा-प्रसन्न (नः अभि आवर्त्तति) हमें चारों गृहकृत्यों में घुमाता है। भाव यह है कि स्त्री-पुरुष सन्तानों के पालन-पोषण उत्तम विद्या-दानादि के निमित्त नून-तेल के चक्कर में फंसे रहते हैं।

---

*संस्कार—सौन्दर्य के निमित्त ये दो मन्त्र हमने संस्कार में रखे हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि ।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥३॥ यजु० अ० ७ । मं० २९ ॥

और फिर निम्न मन्त्र बोले । इसमें,

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि ।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥४॥[१]

जो यह "असौ" पद है, इसके पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम, अर्थात् जो पुत्र हो, तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार

---

३. हे शिशो ! (कोऽसि) तू कौन है ? [स्त्रीजन या पुरुष, स्त्री सन्तान या पुरुष सन्तान], (कतमोऽसि) कौन सा है ? [सन्तानों में तेरी संख्या कौन सी है ?] (कस्यासि) किसकी सन्तति है ? (को नामासि) तेरा नाम क्या है ? [अरे ! तू किस गुणकर्मस्वभाव से युक्त नाम वाला होगा ?] [आगे इसी का उत्तर दिया है कि तू वही है] (यस्य ते) जिसका (नामं अमन्महि) हमने अभी नाम रक्खा है । और (यं त्वा) जिस तुझे हमने (सोमेन) दूध आदि से (अतीतृपाम) तृप्त किया है । हे (भूर्भुवः स्वः) सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर । मैं (प्रजाभिः) पुत्रों से (सुप्रजाः) सुपुत्रवान्, (वीरैः) वीरसन्तानों से (सुवीर) उत्तम वीर और (पोषैः) उत्तम पुष्टिकारक अन्नादि से (सुपोषः स्याम्) सुपुष्ट हो जाऊं ।"

अथवा जिस तुझे हम (सोमेन) ऐश्वर्यादि से तृप्त करते हैं और जिसका हम नाम रखते हैं, वह तू (कोऽसि) सुखस्वरूप है; (कतमोऽसि) सुखमयों में भी सुखतम है; (कस्यासि) प्रजापति का है, (कः) प्रजापति (नामासि) नाम वाला है ।

४. हे [यहां बच्चे का निर्धारित नाम ले]···? तू [शरीर नहीं] आत्म स्वरूप है, आनन्दमय है; तू अत्यन्त सुख स्वरूप है; तू यह है जो कि [वस्तुतः] नित्य अमर है । हे···? इस संसार में आकर सुख भोग ।

---

१. मन्त्र ब्रा० १।१५।१४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अक्षर का, घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो-दो अक्षर ‡ छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें* जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त, और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो पुत्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे—श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध अर्थात् उच्च स्वर से बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना इस प्रमाणे बालक का रखा नाम संस्कार में आये मनुष्यों को सुना के,

[अष्टम विधि—पूर्णाहुति, महावामदेव्यगान]

पश्चात् निम्न मन्त्र,

ओं सर्वं वै पूर्ण ७ स्वाहा ॥

से तीन पूर्णाहुति कर, पृ० १२३ लिखे प्रमाणे महावामदेव्य-गान करें।

---

‡ वर्गों के आरम्भ के दो-दो अक्षर।

*ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा इतने अक्षर नाम में होने चाहियें और स्वरों में से कोई भी स्वर हो जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये, तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे, जैसे (श्रीः, ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गान्धारी सौभाग्यवती, कल्याणक्रोडा) इत्यादि। परन्तु स्त्रियों के निम्न प्रकार के नाम कभी न रक्खें उसमें प्रमाण—

"नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्" ॥१॥ मनुस्मृतौ ३।९॥

(ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि (नदी) गङ्गा, यमुना, सरस्वती इत्यादि (अन्त्य) चांडाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि (प्रेष्य) दासी, किंकरी इत्यादि (भयंकर) भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ॥ द० स० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[नवम विधि—बालक को आशीर्वाद]

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं, वैसे पिता आशीर्वाद देवें।

स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥*

इस प्रमाणे बालक का नाम रखके संस्कार में कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ३२-३९ में लिखे प्रमाणे 'विश्वानि देव'···से 'अग्ने नय सुपथा' तक आठ मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थनोपासना कर के बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी
श्रीमान् सुनामा भूयाः ।"

हे बालक ! आयुष्मान् विद्यावान् धर्मात्मा यशस्वी पुरुषार्थी प्रतापी परोपकारी श्रीमान् हो ॥

"हे बालिके ! त्वमायुष्मती, वर्चस्विनी,
तेजस्विनी, श्रीमती, सुनाम्नी भूयाः ।"

हे बालिके ! आयुष्मती, विद्यावती, धर्मशीला, यशस्विनी, पुरुषार्थिनी, प्रतापा, परोपकारिणी, श्रीमती सुनामा हो ॥

इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

*यह सूर्य तुझे 'दिन' को सौंप दे, [सूर्य किरणों के साथ इस जगत् में आ]; दिन रात को; रात्रि तुझे 'दिन रात' को; 'दिन रात' तुझे 'शुक्लकृष्ण-पक्षों' को; पक्ष तझे बारह मासों को; महीने तुझे छः ऋतुओं को; ऋतुयें तुझे वर्ष को और वर्ष तुझे वृद्धावस्था पर्यन्त लम्बी आयु [भोगने] के लिए सौंप दें। तेरी आयु उत्तरोत्तर बढ़ती जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट नामकरण

[तिथि और नक्षत्र की आहुतियों का स्वरूप]

पुरोहित का कर्त्तव्य है कि संस्कार से पूर्व तिथि का पता लगा ले। यदि तिथि न ज्ञात हो तो पंचांग (पत्रा) में देख ले। इसमें 'अं' के अन्तर्गत अंग्रेजी तारीख और 'ति०' के अन्तर्गत भारतीय तिथियां दी होती है। तारीख और समय के अनुसार तिथि निकल आयगी। उस तिथि का नक्षत्र भी पत्रा से ज्ञात हो जायगा।

यहां पर हम सुविधा के विचार से तिथि नक्षत्र आदि की पूरी आहुतियों का स्वरूप देते हैं। पहले जिस तिथि में बालक का जन्म हो, उस तिथि की आहुति दे। फिर उसके सामने दी गई तिथि के देवता की आहुति दे।

तिथि की आहुति	तिथि के देवता की आहुति
१. ओं प्रतिपदे स्वाहा	१. ओं ब्रह्मणे स्वाहा
२. ओं द्वितायायै स्वाहा	२. ओं त्वष्ट्रे स्वाहा
३. ओं तृतीयायै स्वाहा	३. ओं विष्णवे स्वाहा
४. ओं चतुर्थ्यै स्वाहा	४. ओं यमाय स्वाहा
५. ओं पञ्चम्यै स्वाहा	५. ओं सोमाय स्वाहा
६. ओं षष्ठ्यै स्वाहा	६. ओं कुमाराय स्वाहा
७. ओं सप्तम्यै स्वाहा	७. ओं मुनिभ्यः स्वाहा
८. ओम् अष्टम्यै स्वाहा	८. ओं वसुभ्यः स्वाहा
९. ओं नवम्यै स्वाहा	९. ओं शिवाय स्वाहा
१०. ओं दशम्यै स्वाहा	१०. ओं धर्माय स्वाहा
११. ओम् एकादश्यै स्वाहा	११. ओं रुद्रेभ्यः स्वाहा
१२. ओं द्वादश्यै स्वाहा	१२. ओं वायवे स्वाहा
१३. ओं त्रयोदश्यै स्वाहा	१३. ओं कामाय स्वाहा
१४. ओं चतुर्दश्यै स्वाहा	१४. ओम् अनन्ताय स्वाहा
१५. ओं पंचदश्यै स्वाहा या. ओं पूर्णिमायै स्वाहा	१५. ओं विश्वेदेवेभ्यः स्वाहा ओं विश्वेदेवेभ्यः स्वाहा
१५. ओम् अमावस्यायै स्वाहा	१५. ओं पितृभ्यः स्वाहा

नक्षत्र की पूरी आहुति सुविधा के विचार से दी है। उसके सामने दी गई नक्षत्र के देवता की आहुति दें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नक्षत्र की आहुति	नक्षत्र के देवता की आहुति
ओम् अश्विन्यै स्वाहा	ओम् अश्विभ्यां स्वाहा
ओं भरण्यै स्वाहा	ओं यमाय स्वाहा
ओं कृत्तिकाभ्यः स्वाहा	ओं अग्नये स्वाहा
ओं रोहिण्यै स्वाहा	ओं प्रजापतये स्वाहा
ओं मृगशिरसे स्वाहा	ओं सोमाय स्वाहा
ओम् आर्द्रायै स्वाहा	ओं रुद्राय स्वाहा
ओं पुनर्वसुभ्यः स्वाहा	ओम् अदितये स्वाहा
ओं पुष्याय स्वाहा	ओं बृहस्पतये स्वाहा
ओम् आश्लेषायै स्वाहा	ओं सर्पेभ्य स्वाहा
ओं मघायै स्वाहा	ओं पितृभ्यः स्वाहा
ओं पूर्वाफाल्गुन्यै स्वाहा	ओं भगाय स्वाहा
ओम् उत्तराफाल्गुन्यै स्वाहा	ओम् अर्यम्णे स्वाहा
ओं हस्ताय स्वाहा	ओं सवित्रे स्वाहा
ओं चित्रायै स्वाहा	ओं त्वष्ट्रे स्वाहा
ओं स्वातये स्वाहा	ओं वायवे स्वाहा
ओं विशाखाभ्यां स्वाहा	ओं चन्द्राग्निभ्यां स्वाहा
ओम् अनुराधायै स्वाहा	ओं मित्राय स्वाहा
ओं ज्येष्ठायै स्वाहा	ओम् इन्द्राय स्वाहा
ओं मूलेभ्यः स्वाहा या	ओं निर्ऋतये स्वाहा
ओं मूलाय स्वाहा	" " "
ओं पूर्वाषाढायै स्वाहा	ओम् अद्भ्यः स्वाहा
ओम् उत्तराषाढायै स्वाहा	ओं विश्वेदेवेभ्यः स्वाहा
ओं श्रवणाय स्वाहा	ओं विष्णवे स्वाहा
ओं धनिष्ठायै स्वाहा	ओं वसुभ्यः स्वाहा
ओं शतभिषजे स्वाहा	ओं वरुणाय स्वाहा
ओं पूर्वाभाद्रपदायै स्वाहा	ओम् अजैकपदे स्वाहा
ओम् उत्तराभाद्रपदायै स्वाहा	ओम् अहिर्बुध्न्याय स्वाहा
ओं रेवत्यै स्वाहा	ओं पूष्णे स्वाहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ निष्क्रमण-संस्कार-विधिः

निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं कि जो बालक को घर से जहां का वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है। उसका समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें। चौथे महीने में भी जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो, उस तिथि में यह संस्कार करें।

इस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा, शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे। पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आ के पति के दक्षिण पार्श्व में होकर, पति के सामने आकर, बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे। पुनः पति के पीछे की ओर घूम के यज्ञ कुण्ड के समीप पति के बायें पार्श्व में पूर्वाभिमुख खड़ी रहे—

[प्रथम विधि—परमेश्वर की आराधना]

पश्चात् दोनों निम्न तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करें।

ओं यन्नो सुसीमे हृदय॑ हितमन्तः प्रजापतौ।
वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्॥१॥

ओं यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघ॑ रिषम्॥२॥

---

१. यहां संस्कार विधि में 'पश्चिमाभिमुख' ऐसा है। 'पूर्वाभिमुख' पाठ सङ्गत प्रतीत होता है। देखो नामकरण-संस्कार। वहां भी ऐसी ही विधि है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे[1] प्रजापती ।
यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥३॥[2]
म. ब्रा. १।५।१०-१२ ॥

[द्वितीय विधि–ऋत्विग्वरण, सामान्य यज्ञ]

तत्पश्चात् पृ० २९-१२३ तक पूर्णाहुति, सामवेदोक्त वामदेव्य-गान पर्यन्त, सामान्य प्रकरणोक्त सब विधि करके,

[तृतीय विधि–शिशु-दर्शन, शिशु-शिरः-स्पर्श]

पश्चात्, 'भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः' इस मन्त्र भाग[3] को बोल शिशु के कल्याण और दीर्घायु के लिए शुभ संकल्प करता हुआ उस को प्रीतिपूर्वक देख, निम्न तीन मन्त्रों से शिशु के शिर का स्पर्श करें।

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥१॥
ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि ।
सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥२॥

---

१. वत्स ! तू मेरे अंग अंग से उत्पन्न होता है; तू मेरे हृदय से प्रगट हुआ है। (पुत्रनामा) पुत्र नाम से तू (वै आत्मा असि) मेरा अपना ही स्वरूप है। अर्थात् तू मेरा ही रूप बनकर पैदा हुआ है। ऐसा वह तू सौ वर्ष तक जी।

२. (प्रजापतेः) जीवन के हेतु प्राण के (हिङ्कारेण) नासिका से निकलने वाले श्वास-प्रश्वास रूप हिं हिं शब्द से अथवा 'हिं हिं ध्वनि रूप स्नेह प्रकाशक शब्द से' (त्वा) तुझे सूंघता हूं। हे [शिशु का नाम ले]·····(असौ) वह तू (सहस्रायुषा) सहस्रों वर्षों के दीर्घ जीवन से सौ बरस तक जीता रह।

---

१. 'प्रजायै मे' पाठ त्रुटित है। मन्त्रपाठानुसार बढ़ाया गया है। यही पाठ-अशुद्धि जातकर्म-संस्कार पृ० १७२ में भी द्रष्टव्य है।

२. मन्त्रार्थ पृ० १७२ पर, जातकर्म-संस्कार में द्रष्टव्य।

३. इस मन्त्रभाग का विनियोग संस्कार में भाव-सौन्दर्य-वृद्धि के लिये हमने किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि ।
सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥[1]

[चतुर्थ विधि—शिशु के कान में मन्त्र जाप]

तथा निम्नलिखित मन्त्र शिशु के दक्षिण कान में जपे—

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥२॥[2]

निम्न मन्त्र को वाम कान में जप के

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥१॥[3]

पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके शिशु को देवे, और मौन करके अपनी स्त्री के शिर का स्पर्श करे ।

[पंचम विधि—शिशु को सूर्य दर्शन कराना]

तत्पश्चात् आनन्द पूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहां बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१॥

यजुः ३६।२४ ॥

इस मन्त्र को बोल के थोड़ा सा शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में ला,

[षष्ठ विधि—आशीर्वाद]

सब लोग इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवें—

---

३. हिं हिं करती अर्थात् रम्भाती गौएं, जैसे अपने बछड़ों को प्रेम से सूंघती हैं, वैसे मैं तुझे सूंघता हूं । हे वत्स ! बड़े दीर्घ जीवन से तू सौ बरस तक जीता रह ।

---

१. पार. गृह्य. १।१८।२-४ ॥ टीका भी देखें ।
२. पार. गृह्य. १।१८।४ ॥ ३. पार० गृह्य १।१८।५ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे बालक ! त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥ अथवा
हे बालिके ! त्वं जीव शरदः शतं वर्धमाना ॥

तत्पश्चात् शिशु के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें। पुरोहितादि को अन्न वस्त्र दक्षिणादि से सत्कृत करें।

तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो; तब शिशु की माता बच्चे को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे, और माता दाहिनी ओर से लौट के पति के बाईं ओर आ, अञ्जलि जल से भर के चन्द्रमा के सम्मुख खड़ी रह के—

ओम् यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् ।
तदह विद्वाँस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघꣳ रुदम् ॥१॥

इस मन्त्र से सुख शान्ति के दाता परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे। तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सम्मुख आके पति के पीछे होकर बाईं ओर आ, बच्चे का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के पति के पास खड़ी रहे. और शिशु का पिता जल की अञ्जली भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से सुख शान्ति के दाता परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़े। पुनः दोनों प्रसन्न होकर घर में शिशु को ले आवें।

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अन्नप्राशन-संस्कार-विधिः

अन्नप्राशन संस्कार तभी करे, जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे। छठे सातवें महीने जिस दिन उसका जन्म हुआ हो, उसी दिन बालक को अन्नप्राशन करावे, जिसको अपनी सन्तान तेजस्वी करना हो, वह घृतयुक्त भात अथवा दही सहत और घृत तीनों भात[1] के साथ मिला के निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करावे और निम्न लिखे प्रमाणे पहले ही भात[1] सिद्ध करे—

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥१॥

ओम् अपानाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥२॥

ओं चक्षुषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥३॥

ओं श्रोत्राय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥४॥

ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥५॥

याज्ञिकों की पद्धति के अनुसार निम्न वचन बोल कर 'चावल, मूंग' आदि को धोना चाहिये—"हे अन्नाद्य! (प्राणाय) श्वास-प्रश्वास रूप प्राण वायु की (अपानाय) शरीर के भीतर से विकार को बाहर निकालने वाली अपान वायु की (चक्षुषे) दृष्टि की (श्रोत्राय) श्रोत्र की और (स्विष्टकृते अग्नये) अन्न को पचाकर इष्ट-रस रूप बना देने वाले अथवा उत्तम इष्ट कार्य के साधक जठराग्नि की शक्ति बढ़ाने के लिये तथा इनके सेवनार्थ (जुष्टं त्वा प्रोक्षामि) प्रीतिपूर्वक तुझे धोकर साफ करता हूं ॥१-५॥

---

१. (क) भात अर्थात् मीठा भात मधुमिश्रित अन्न।

(ख) गोदुग्ध, मधु भी घृतयुक्त भात में मिलाकर खिला सकते हैं। द. अथर्व. २।२६।४॥ "संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।" तथा अथ.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन पांच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को वो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकाते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना।

जब अच्छे प्रकार पक जावें, तब उतार थोड़े ठण्ढे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥१॥

ओम् अपानाय त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥२॥

ओं चक्षुषे त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥३॥

ओं श्रोत्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥४॥

ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥५॥

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों के लिए पात्र में पृथक् पृथक् रख देवे।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञारम्भ]

तत्पश्चात् पृ० २८-१०७ लिखे प्रमाणे, ऋत्विग्वरण से लेकर चार व्याहुति आहुति अर्थात् पर्यन्त सब कर्म यथा विधि करे।

पश्चात् अच्छे प्रकार पकने पर ठण्डे होने पर, निम्न वचन बोलकर होमस्थाली में पृथक् रखना चाहिये—"हे अन्नाद्य! प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र और उत्तम इष्ट कार्य की साधक जठराग्नि द्वारा (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक सेवन के निमित्त तुझे रखता हूं ॥१-५॥"

१९।३१।५ ॥ "पयः पशूनां रसोमषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्।"

(ग) फलों का रस भी मधु में मिला सकते हैं। द्र. "रसमोषधीनाम् ...।" अथवा—

(घ) चावल और यव शुद्ध कर पानी से पीस, उसे छान, [उसमें मधु मिला] भी दे सकते हैं। यह गोभि. पृ. २।७।१८ तथा मं. ब्रा. १।५।८ के अनुसार समझना चाहिये (तुलना सं. वि. पृ. ८२। जात. सं. १)। तथा द्र. अथर्व. ६।१४०।२ "व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्॥" तथा अथर्व २।२६।५ "आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय विधि—भात की आहुतियां]

तत्पश्चात् उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे दो मन्त्रों से देवे—

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा ।
इदं वाचे—इदन्न मम ॥१॥ ऋ० ८।१००।११ ॥

वाजो नोऽअद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयं स्वाहा ।
इदं वाजाय—इदन्न मम ॥२॥ यजुः १८।३३ ॥

---

१. (देवाः) धार्मिक आप्त सज्जन परोपकारी विद्वान् (देवीं वाचं) दिव्य कल्याणी वाणी का (अजनयन्त) निर्माण व प्रचार करते हैं; (विश्वरूपाः पशवः) अनेक रूपों वाले साधारण जन (तां वदन्ति) उसी को बोलते हैं। (सा वाक्) वह वाणी (नः) हमारे लिये (इषं ऊर्जं) अन्न और बल को (दुहाना धेनुः) देने वाली गौ के सामान (अस्मान्) हम को (मन्द्रा सुष्टुता) मधुर और परिमार्जित होकर अर्थात् उचित रूप में परिष्कृत होकर (उप एतु) प्राप्त हो। यह वाणी के प्रति मेरा (स्वाहा) शुभ वचन है।

अन्न प्राशन के पश्चात् शिशु की कण्ठध्वनि स्पष्ट होने लगती है। हमें ऐसा अन्न खिलाना चाहिये, जिससे सन्तान की वाणी कल्याणी और हर्षकारिणी हो।

२. (वाजः अद्य नः) अन्न ही आज हमारी (दानं प्रसुवाति) दानशक्ति को उत्पन्न करता है; (वाजः देवान्) अन्न ही विद्वानों को (ऋतुभिः कल्पयाति) ऋत्वनुकूलाचरण से समर्थ बनाता है, अथवा ऋतुओं के साथ साथ सामर्थ्यवान् बनाता है। (वाजो हि मां) अन्न ने ही मुझे (सर्ववीरं) सब वीर पुत्रों वाला (जजान) बनाया है। (वाजपतिः) अन्न का स्वामी हो कर मैं (सर्वा आशाः जयेयम्) दिग्दिगन्त को जीत लूं। यह अन्न के प्रति मेरा उत्तम वचन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन दो मन्त्रों से दो आहुति दे, पश्चात् उसी भात में और घृत डाल के निम्न मन्त्रों से चार आहुति देवे—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा ॥ इदं प्राणाय—इदन्न मम ॥१॥

ओम् अपानेन गन्धानशीय स्वाहा ॥ इदमपानाय—इदन्न मम ॥२

ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा ॥ इदं चक्षुषे—इदन्न मम ॥३॥

ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा ॥ इदं श्रोत्राय—इदन्न मम ॥४॥

पार. १।१९।४ ॥

[*इन चार आहुतियों के पश्चात् निम्न मन्त्र चार मन्त्रों से भी आहुति देनी चाहिये—

ओम् अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां पुरोधायामस्मिन्

---

१. मैं (प्राणेन) जीवनधारक प्राण वायु की शक्ति द्वारा (अन्नं अशीय) अन्न का भोग करूं ॥

२. मैं (अपानेन) दुःख विमोचक अपान वायु के द्वारा (गन्धान् अशीय) गन्धयुक्त [अर्थात् भोज्य अन्न से अतिरिक्त] पार्थिव द्रव्यों का स्वाद लूं ॥

३. मैं (चक्षुषा) चक्षु द्वारा (रूपाणि अशीय) [पार्थिव द्रव्यों के सुन्दर] रूपों का आनन्द दर्शन करूं ॥

४. मैं (श्रोत्रेण) श्रोत्र द्वारा (यशः अशीय) यश [की बात] का ही श्रवण करूं ॥

१. (अन्नं) अन्न अर्थात् जीवनसाधक भोज्य पदार्थ (साम्राज्यानां) साम्राज्यों=चक्रवर्त्ती शासन क्षेत्रों का (अधिपतिः) वास्तविक स्वामी है। अन्न समस्या के सुधारने से बड़े से बड़ा शासन क्षेत्र भी एक शासन में बन्धा रहता है; इसलिये 'अन्न ही साम्राज्यों का शासक' माना जाता है। (सः) वह अन्न (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्रह्मकर्म अर्थात् विद्या सम्बन्धी यज्ञ व्यवहार अथवा ब्राह्मण वर्ण में

---

*जो सज्जन संस्कार विधि में न होने से इन मन्त्रों से आहुति न देना चाहें वे इन्हें छोड़ दें। इन्हें हमने बढ़ाया है, इसीलिये [ ] में रखा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा ॥
इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये इदं न मम ॥१॥
पार. गृ. १।५।८ ॥

ओं व्रीहिमत्तं यवमत्त मथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय ।
दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च स्वाहा ॥
इदमन्नाय—इदं मम ॥२॥ अथर्व ६।१४०।२ ॥

ओं संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ स्वाहा ॥
इदं पयसे—इदं न मम ॥३॥ अथर्व २।२६।४ ॥

(अस्मिन् क्षत्रे) इस क्षत्र कर्म अर्थात् रक्षण सम्बन्धी व्यवहार में अथवा क्षत्रियवर्ण में (अस्यां आशिषि) इस आशीर्वाद वाले [सत्संग या प्रार्थना] या मङ्गलकार्यों में (अस्यां पुरोधायाम्) इस सामने बैठे संस्कार्य सन्तान के सम्बन्ध में (अस्मिन् कर्मणि) इस प्रवर्त्तमान यज्ञ-संस्कारादि कर्म में और (अस्यां देवहूत्याम्) इस देवों=विद्वानों, इष्ट मित्रों, सज्जनों को जिसमें निमन्त्रित किया गया है, उस विद्वत् गोष्ठी में (मा अवतु) सदा मेरी रक्षा करे। अर्थात् इन सब अवसरों पर अन्न का=खानपान के पदार्थों का अभाव न हो ॥

२. हे मनुष्यो! तुम सदा (व्रीहि अत्तं) चावल खाया करो; (यवं अत्तं) जौ खाया करो; (अथो माषं अथो तिलम्) साथ ही उड़द और तिल भी खाया करो। (एष वां भागः) यह चार धान्यों का तुम्हारा खाने का भाग (रत्नधेयाय) रमणीय=उत्तम फल के लिये (निहितः) निश्चित किया गया है। (दन्तौ) हे दान्तों! (मातरं पितरं च मा हिंसिष्टम्) अपने माता पिता को कष्ट मत दो ॥

३. [माता पिता मन में विचारें]—मैं इस बालक वा अपने खान पान के लिये (गवां क्षीरं) गौओं के दूध को (सं सिञ्चामि) सींचता हूं, एकत्रित करता हूं। (बलं रसं) बलवर्धक रस को (आज्येन सं)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां
यच्च धान्यम् । पयः पशूनां रसमोषधीनां
बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् स्वाहा ॥
इदमन्नाय—इदं न मम ॥४॥ अथर्व १९।३१।५ ॥]

[तृतीय विधि—स्विष्टकृताहुति]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से उसी भात की एक आहुति देवे ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

गोघृत के साथ सींचता हूं । इस प्रकार (अस्माकं वीराः) हमारे वीर सन्तान (संसिक्ताः) गोदुग्ध और गोघृत से सींचे जाते हैं; हमारे सन्तान बालपन से ही गोदुग्ध-गोघृत से सींचे जाकर उत्तम शरीर व निर्मल बुद्धि को प्राप्त करेंगे । इसलिए परमात्मा के अनुग्रह से (मयि गोपतौ) मुझ गो-पति यजमान के घर में (गावः ध्रुवाः) हमेशा गौवें बंधी रहें, ताकि सदा गोदुग्ध, गोघृत सबको मिलता रहे ।]

४. (अहं) मैंने (द्विपदां चतुष्पदां) दो पाये अर्थात् मनुष्य व पक्षिगणों और चौपाये गवादि (पशूनां) पशुओं की (पुष्टिं) पुष्टि अर्थात् पोषण करने वाली शक्ति को (परि जग्रभ) पूर्णता से ग्रहण कर=जान लिया है । (यत् च धान्यं) जो पुष्टि के 'व्रीहि, यव, माष, तिल' रूप धान्य है; (पशूनां पयः) गवादि पशुओं का दूध है और (ओषधीनां रसः) सोमलतादि उत्तम ओषधियों का रस है । इन-सबको (बृहस्पतिः सविता) सब बृहत् अर्थात् लोकलोकान्तर का पालन-पोषण करने वाला, सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर (मे) मुझे (नियच्छात्) रक्ख देवे ।

(अहं पशूनां पुष्टिं) मैंने सब पशुओं की पुष्टि अर्थात् उनमें जो पोषकबल है, उसको (परिजग्रभ) ग्रहण कर लिया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि-बारह घृत-आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से व्याहृति आहुति चार और

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

निम्न मन्त्रों से आठ आज्याहुति, मिला के बारह घृत की आहुति देवें।

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४, ५ ॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५-१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३।

[पंचम विधि—यज्ञ-समाप्ति]

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से तीन पूर्णाहुति करे,

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

तत्पश्चात् पृ० १२२ लिखे प्रकारे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान अवश्य करें।

उस के पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही, मधु और उस में घी यथायोग्य किञ्चित् मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिला के [दूध चावल, फलरस और धान्यरस] बालक के रुचि अनुसार,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥१॥
यजुः ११।८३ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के[1] [अन्नपति परमात्मा का स्मरण करके] थोड़ा थोड़ा पूर्वोक्त बालक के मुख में देवे। यथारुचि खिला, बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके जो बालक के माता पिता और अन्य सम्बन्धी वृद्ध स्त्री पुरुष हितैषी इष्टमित्र तथा सद्धर्मी गृहस्थ पुरोहितादि संस्कार में आये हुए हों, वे सब परमात्मा की प्रार्थना करके—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः ।
त्वमन्नपती अन्नादा, वर्धमाना भूयाः ॥

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देवें। पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का यथायोग्य सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का यथायोग्य सत्कार बालक की माता करके ऋत्विजादि को अन्न-पानादि दक्षिणा से सत्कृत कर, सब को प्रसन्नतापूर्वक विदा करें ॥

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

१. हे अन्नपते ! (नः) हमें (अस्य अनमीवस्य, शुष्मिणः अन्नस्य) इस कृमिकीटादि रहित बलकारक अन्न के भण्डार को दीजिये। (दातारं) अन्न का दान करने वालों को (प्र प्र तारिष) खूब बढ़ाइये; [तारिष=दुखों से पार लगा, उन पर अन्नाभाव का कष्ट कभी न आवे; उसे भरा पूरा सन्तुष्ट रख]। (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे दोपायों और चौपायों के लिये (ऊर्जं धेहि) बलकारक अन्न दीजिए ॥

---

१. [हमारी सम्मति में] "ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम् । (गोभि. २।७।१८) इस मन्त्र से अन्नप्राशन करावे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ चूडाकर्म-संस्कार-विधिः

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है, जिसको केशछेदन संस्कार भी कहते हैं। यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना। उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में जिस दिन आनन्द मङ्गल हो, उस दिन यह संस्कार करें।

आरम्भ में चार शरावे ले, एक में चावल दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में पृथक् धर देवें।[1]

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण; यज्ञारम्भ]

पश्चात् पृ. २८-१२० लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण से लेकर शान्ति-करण तक करके, अग्न्याधान, समिदाधान, पंच आज्याहुतियां, जल प्रसेचन, आघारावाज्यभागाहुति, व्याहृति आहुति, स्विष्टकृत् व प्राजापत्याहुति देके, "ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०"..... इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देकर, "त्वन्नो अग्ने" आदि मन्त्रों से आठ आहुति देवें। यज्ञ करते समय पत्नी पति के दक्षिण भाग में बैठे। संस्कार्य बालक या बालिका माता की गोदी या माता पिता के पास दोनों के मध्य में बैठे।

[द्वितीय विधि—चूड़ाकर्म का आरम्भ]

इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके वेदि के दक्षिण दिशा में बैठे[2] नाई की ओर प्रथम देख के—

ओम् आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि।

(सविता=) सिर पर [उस्तरे की अच्छी प्रेरणा करने

१. व्रीहियवैस्तिलमाषैरिति पृथक् पात्राणि पूरयित्वा पुरस्तादुपनिदध्युः। गोभिल गृ. २।८।६॥

२. गोभि. गृ. सू. २।९।३ तथा भारद्वाज गृ. सू. १।१९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६८ । मं० १ ॥

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठ भाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्ढा जल दोनों पात्रों में से लेके—

उष्णेन वाय उदकेनैधि ॥ [1]

इस मन्त्र भाग को बोल के दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे ।

पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा मांखन अथवा दही की मलाई लेके—

ओम् अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥१॥
अथर्व० कां० ६ । सू० ६८ । मं० २ ॥

वाला] यह 'सफाई से बाल मूंडने वाला' नाई (क्षुरेण आगन्) छुरे के साथ यहां आया है । हे (वायो) वायु के समान जल लाने वाले (उष्णेन उदकेन) गरम जल के साथ (एहि) तू आ । (सचेतसः) बुद्धिमान् (आदित्याः रुद्राः वसवः) आदित्य संज्ञक गृहस्थ, रुद्रसंज्ञक गृहस्थ और वसुसंज्ञक गृहस्थ स्त्री-पुरुष विद्वान् (उन्दन्तु) उसके सिर को गीला करें और इस (प्रचेतसः) ज्ञानी (राज्ञः सोमस्य) सुन्दर शान्त मूर्ति बालक के (वपत) सिर के केशों को छुरे से मूंड दो ।

१. (आदितिः) छुरे की तेजधार (श्मश्रुः) केशों को (वपतु) काटे । (वर्चसा) चमकाहट के साथ (आपः) शुद्ध जल (उन्दन्तु) केशों को गीला करें । (प्रजापतिः) परमात्मा (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन और (चक्षसे) उत्तम दर्शनशक्ति के लिये इसे (चिकित्सतु) रोगों से बचाये रक्खे ।

---

१. आश्व. गृ. १।१७।६ ॥ तु. पार. गृ. २।१।६ ॥ गोभिल गृ. २।६।११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ २ ॥ पार० २।१।९॥

इन दो मन्त्रों को बोल के, बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेर के केशों को भिगोवे। तत्पश्चात् कंगा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे, अर्थात् बिखरे न रहें। तत्पश्चात्

ओम् ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥३॥

मं. ब्रा. १।६।५॥

इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के निम्न मन्त्र से छुरे की ओर देखे—

ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि ॥४॥ मं० ब्रा० १।६।४॥

पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥५॥ यजुः ३।६३ ॥

तत्पश्चात् निम्न दो मन्त्रों को बोल के, उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप ले जा के—

ओं स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः। मं. ब्रा. १।६।६॥ यजु० ४।१।

---

२. हे बालक! (सवित्रा) सूर्य द्वारा (प्रसूता) उत्पन्न ये (दैव्या आपः) दिव्य गुणयुक्त जल (दीर्घायुत्वाय) दीर्घायु और (वर्चसे) कान्ति तेज के लिये (ते तनूं) तेरे शरीर को (उन्दन्तु) भिगोवें।

३. (ओषधे) हे ओषधिरूप कुशाओ! (एनं) इस बालक की (त्रायस्व) रक्षा करो। (स्वधिते) हे उस्तरे! (मा एनं हिंसी) इसके सिर पर कहीं काट न लगा या पीड़ा न पहुंचा।

४. हे उस्तरे! तू (विष्णोः) प्रवेश करने वाले पदार्थ का (दंष्ट्रोऽसि) नुकीला काटने का शस्त्र है अर्थात् खूब तेज है।

५. हे उस्तरे! (शिवः नामा असि) कल्याणकारी मङ्गलकारक नाम से प्रसिद्ध है। (ते पिता स्वधितिः) तेरा उत्पादक अच्छा लोहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥१॥ यजुः ३।१३६॥

निम्न मन्त्र बोल के कुश सहित उन दक्षिण बाजू के केशों को काटे[1]—

ओं येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्वावानयमस्तु प्रजावान् ॥२॥
अथर्व० कां० ६ । सू० ६८ । मं० ३ ॥

है अर्थात् तू अच्छे लोहे का बना है। (ते) तेरा (नमः अस्तु) इस सिर पर नमन=झुकना अच्छा हो। (मा मा हिंसीः) मुझे हानि मत पहुंचा। नमः=झुकना।

१. मैं (आयुषे) आयु (अन्नाद्याय) अन्न के [उचित] भोग (प्रजननाय) सन्तानोत्पादन (रायस्पोषाय) धन प्राप्ति के लिये—पुष्टि के निमित्त, (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम पुत्रों की प्राप्ति लिये, (सुवीर्याय) अच्छे बल के लिये इन बालों को (निवर्त्तयामि) शिर पर से हटाता हूं=मुण्डन करता हूं।

२. (येन) जिस प्रकार के छुरे से (विद्वान्) समझदार (सविता) बाल साफ करने वाला=नाई (सोमस्य वरुणस्य राज्ञः) सोम वरुण

---

१. केशछेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से। काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटें तो भी ठीक है॥ द. स.

[केश काटने की रीति इस प्रकार समझनी चाहिये—क्रमशः दक्षिण, उत्तर, पीछे और आगे के केश काटने हैं। उनमें प्रत्येक ओर के केश चार-चार बार करके काटने हैं। प्रथम बार में 'येनावपत्' मन्त्र से, दूसरी बार 'येन धाता' से, तीसरी बार 'येन भूयश्च' चौथी बार 'येनावपत्, येन धाता, येन भूयश्च' के साथ 'येन पूषा' मन्त्र से अर्थात् चार मन्त्रों से] इस प्रकार एक दक्षिण ओर की विधि पूरी हुई। इसी प्रकार उत्तर और पीछे के बाल चार बार करके काटना चाहिए। आगे के बाल काटते समय चौथी बार में चौथा मन्त्र 'येन पूषा' के स्थान पर 'येन भूरिश्च०' होगा। यह प्रक्रिया ध्यान में रखने से कोई कठिनाई न होगी। यु० मी०]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वे काटे हुए केश और दर्भ शमीवृक्ष के पत्र सहित उन सब को लड़के का पिता या लड़के की मां एक शरावा में रक्खे और केश छेदन करते समय जो केश उड़ा हो, उस को गोबर से उठा के शरावा में अथवा उसके पास रक्खे। तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् ।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ।।३।।[1]

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे। तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्यति सूर्यम् ।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ।।४।।[1]

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केश समूह को काट के उपरि उक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०" "ओं येन धाता" "ओं येन भूयश्च०" और—

राजा रूप शिशु का (अवपत्) मुण्डन करता है, उसी विधि से हे (ब्रह्माणः) ज्ञानियों! (अस्य इदं) इसका सिर (वपत) मुण्डवाओ (अयं) यह बालक (गोमान्, अश्ववान्, प्रजावान् अस्तु) गो अश्व सन्तान से युक्त हो।"

३. जिस प्रकार (धाता) धातृ शक्ति ने (बृहस्पतेः अग्नेः इन्द्रस्य) वायु अग्नि और सूर्य के (च) तथा अन्य पदार्थों के (आयुषे) निरन्तर काम करते हुए चलने के लिये इनका (अवपत्) मार्ग साफ किया है, वैसे ही हे बालक! मैं (सुश्लोक्याय) तेरी सुकीर्ति-पुण्य नाम यश (स्वस्तये) कल्याण और (आयुषे) जीवन वृद्धि के लिये (वपामि) तेरा सिर साफ करता हूं अर्थात् तेरी बुद्धि को निर्मल करता हूं।

४. (येन) जिस ईश्वर के नियम वा सामर्थ्य से (भूयः च) जीव बराबर (रात्र्याम्) रात्रि में स्थित चन्द्रमा नक्षत्रादि पदार्थ समूहों (च) और (सूर्यं) दिन में स्थित सूर्यलोकादि की (ज्योक्) निरन्तर ज्योति को (पश्यति) देखता है, (तेन) उस० शेष पूर्ववत् ।।

---

१. आश्व. गृ. १।१७।१२ ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत् ।
तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥
मन्त्रब्रा. १।६।७ ॥

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोल के चौथी बार, इस प्रकार दक्षिण बाजू के केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने की विधि इस प्रकार पूर्ण हुए पश्चात्, पूर्वोक्त विधि से बाईं ओर के केश काटे अर्थात् 'येनावपत्०' से प्रथम बार, 'येन धाता०' से दूसरी बार, 'येन भूयश्च०' से तीसरी बार उसी प्रकार केश समूह को काट के उपरि उक्त इन तीन मन्त्रों और 'येन पूषा०' इसे मिला इन चार मन्त्रों से चौथी बार काटे।

ऐसे ही पीछे के केश चार बार करके काटे। पश्चात् आगे के केश काटते समय, तीन बार 'येनावपत०', 'येन धाता'० तथा 'येन भूयश्च०' से काटें; परन्तु चौथी बार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् ।
तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ ६ ॥ पार० गृ० २।१।१६॥

यह मन्त्र बोल चौथी बार छेदन करे। तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ।७॥
यजुः ३।६२ ॥

---

५. "जिस प्रकार (पूषा) पोषक शक्ति ने०···उसी प्रकार हे बालक! (ब्रह्मणा) ज्ञानपूर्वक मैं तेरी आजीविका, जीवन और दीर्घायु के लिये०··· ॥

६. जिस ईश्वर के नियम वा सामर्थ्य से (भूरिः चरा) बहुत घूमने वाला जीव (दिवं) द्युलोक में (च) और (पश्चात् हि) उसके पीछे (सूर्यं) सूर्यादि लोकों में (ज्योक्) प्रलय पर्यन्त घूमता रहता है। उसी (ब्रह्मणा) ज्ञान सामर्थ्य से मैं, हे बालक! तेरी जीविका०···।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक बार कैंची से काट के इसी (ओं त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और ओंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर के सन्तान की मंगल कामना करे। मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान् ।
शुन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः ८।। आश्व. गृ. १।१७।१५।।

इस मन्त्र को पिता बोल के नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज कराके, नापित से कहे कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो, सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर, कहीं छुरा न लगने पावे। इतना कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा, उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के केश मुण्डन शुरु करावे। जितने केश रखने हों,[1] उतने ही केश रक्खे। परन्तु पांचों ओर थोड़ा थोड़ा केश रखावे,[2] अथवा किसी एक ओर रक्खे। अथवा एक बार सब केश कटवा देवे; पश्चात् दूसरी बार के केश उपर्युक्त प्रकार से रखने अच्छे होते हैं। बालक सन्तान के शिखा अवश्य रखावे।

जब क्षौर हो चुके, तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिन में प्रथम अन्न भरा था, नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश दर्भ शमीपत्र और गोबर नाई को देवे। यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई केश, दर्भ शमीपत्र और गोबर को जङ्गल में ले जा, गढ़ा खोद के उस में सब डाल ऊपर से मिट्टी से दाब देवे, अथवा गोशाला, नदी व तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे, ऐसा नापित से कह दे अथवा किसी को साथ भेज देवे, वह उस से उक्त प्रकार करा लेवे।

---

८. हे नापित ! (वप्ता) केशों का काटने वाला (यत् मर्चयता सुपेशसा क्षुरेण) तू जिस तेज चलने वाले, चमकती धार वाले उस्तरे से (केशान् वपसि) केशों को काटता है, उसी से (शिरः) इस बालक के शिर को (शुन्धि) साफ कर। (अस्य) इस बालक की (आयुः) आयु को (मा, प्रमोषीः) मत काट, क्षीण न होने दे।।

---

१. पार. गृ. २।१।२२ ।। २. बोधा. गृ. २।४।१७ ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा, बालक के शिर पर लगा के स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ १२२ लिखे में सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥
ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमाना ॥

हे वत्स ! तू सौ वर्ष तक फलता-फूलता/फलती फूलती रह ॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद दे के अपने अपने घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें ।

इति चूडाकर्म्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ कर्णवेध-संस्कार-विधिः

बालक के कर्ण तथा बालिका के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पांचवें वर्ष का उचित है।

जो दिन कर्ण वा नासिका के वेध का ठहराया हो, उसी दिन सन्तान को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालंकार धारण करा के उस की माता यज्ञशाला में लावे। यज्ञवेदी पर वह सन्तान के पिता के दक्षिण बाजू बैठे।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञप्रारम्भ]

पश्चात् पृ. २८-१०६ लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण से लेकर आघारावाज्यभागाहुति की चार आहुति पयन्त सामान्य यज्ञविधि करके,

[द्वितीय विधि—प्रधान होम][1]

निम्न चार मन्त्रों से घृत और शाकल्य की विशेष आहुति देवें—

ओं गाव॒ऽउपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑।
उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ स्वाहा ॥१॥ यजुः ३३।१९ ॥

---

१. (गावः) हे जीवन को गतिशील बनाने वाली वाणियों! (उप अवत) हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करो (रप्सुदा मही) सब पदार्थों को रूप देने वाले भूमि और आकाश (यज्ञस्य अवतम्) मेरे जीवन यज्ञ के रक्षा साधनों की रक्षा करें। और (गावः) हे ज्ञान किरणों! तुम (हिरण्यया उभा कर्णा) सुवर्ण के आभूषण से युक्त दोनों कानों तथा (यज्ञस्य अवतम्) संगत यज्ञ के रक्षणीय वेदि आदि की (उप अवतम्) समीप से रक्षा करो।

अथवा—जैसे (गावः) वाणी, सूर्य किरणें अथवा गौ आदि पशु और (रप्सुदा मही) सृष्टि के पदार्थों को रंग रूप देने वाले भूमि

---

१. इस प्रकरण में ६ मन्त्र हमने बढ़ाये हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् । यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः स्वाहा ॥२॥ अथर्व १।३५।२ ॥

ओं योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सोऽग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः स्वाहा ॥३॥ अथर्व १५।८।३ ॥

ओं सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासं स्वाहा ॥४॥
अथर्व १६।२।४ ॥

और आकाश (यज्ञस्य अवतम्) सब व्यवहारों की सिद्ध करने वाली साधन सामग्री की (उप अवतम्) अन्दर बाहर से रक्षा करते हैं अर्थात् वस्तु मात्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही हितकारी हृदय को अच्छे लगने वाले सुवर्ण ज्ञान अथवा सुवर्ण कुण्डलों से युक्त दोनों कान ज्ञान को प्राप्त करके मेरे जीवन-यज्ञ की रक्षा सामग्री की सुरक्षा करें।

२. (न रक्षांसि) न तो अन्दर अन्दर खा जाने वाले रोग कीटाणु (न पिशाचाः) न मांस खाने वाले रोग कृमि (एनं सहन्ते) इसकी शक्ति का भार सह सकते हैं अर्थात् इसके शरीर में ठहर नहीं सकते। (हि) क्योंकि (एतत् देवानां प्रथमजं ओजः) यह सुवर्ण दिव्य भौतिक शक्तियों से प्रथम उत्पन्न हुआ सामर्थ्य है। (यो दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्त्ति) जो बल वर्धक सुवर्ण का धारण करता है, (सः) वह (जीवेषु) सब जीवों में (दीर्घमायुः कृणुते) अपनी आयु दीर्घ करता है।

३. (अस्य) इस [दात्य अर्थात् संस्कार्य शिशु का] (यः दक्षिणः कर्णः) दांया कान है (सः अयं अग्निः) वह यह पृथिवी-स्थानीय भौतिक अग्नि है और (यः अस्य सव्यः कर्णः) जो इसका बांया कान है (सः अयं पवमानः) वह यह 'पवमान' [सूर्य] अग्नि है।

४. (सु-श्रुतौ कर्णौ) मेरे दोनों कान उत्तम ज्ञान की बात सुनने वाले हों; (भद्र-श्रुतौ कर्णौ) और कल्याणी वाक् या भद्र अर्थात् अभ्युदयनिःश्रेयस की बात सुनने वाले हों। इस प्रकार मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[तृतीय विधि—पूर्णाहुति···महावामदेव्य गान]

तत्पश्चात् पृ० १०७-१२२ लिखे प्रमाणे प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहुति की चार आहुति से लेकर···पूर्णाहुति तीन पर्यन्त सब विधि करके सामवेदोक्त महावामदेव्यगान अवश्य करें।

[चतुर्थ विधि—कर्णवेध व नासिकावेध]

इस प्रकार उपर्युक्त विधि करके, संस्कार्य सन्तान के आगे कुछ खाने का मिष्ट रुचिकर पदार्थ वा खिलौना धर के, निम्न मन्त्र को पढ़ सन्तान का पिता कर्णवेध या नासिकावेध करने वाले वैद्यक विद्या जानने वाले सद्वैद्य या विद्वान् शिल्पी सुवर्णकार से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके।

ओं लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि।
अकर्त्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥५॥

अथर्व ६।१४१।२॥

पुनः पुरोहित कर्णवेध-कर्त्ता से निम्न मन्त्र बुलावे,

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६

अथर्व १।३५।१॥

सदा (भद्रं श्लोकं श्रूयासम्) भद्र वार्ता ही सुनता रहूं। इसी प्रकार यह शिशु भी हमेशा दोनों कानों से भद्र की बात ही सुने।

५. हे सद्वैद्य व विद्वान् शिल्पिन्! (लोहेन स्वधितिना) लोहे की या धातु की शलाका से (कर्णयोः मिथुनं) दोनों कानों में (कृधि) छिद्र कर। (अश्विनौ) इसके माता पिता (लक्ष्म अकर्त्ताम्) इन्हें उत्तम लक्षणों वाला बनावें। (तत्) वह (प्रजया) प्रजनन शक्ति के साथ (बहु अस्तु) बहुत लाभकारी हो।

६. (सुमनस्यमानाः) शुभकामना पूरित मनों वाले (दाक्षायणाः) उत्तम बल प्राप्त करने कराने में प्रयत्नशील अथवा चतुर शिल्पकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और निम्न मन्त्र को पढ़ कर दक्षिण कान वा दक्षिण नासिका का वेध करें—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥७॥

निम्न मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण वा वाम नासिका का वेध करे—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥८॥

तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिस से छिद्र पूरा न जावे और ऐसी ओषधी उस पर लगावे जिस से कान वा नासिका पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें ॥

ने (यत्) जिस प्रकार कि (शतनीकाय) शत वर्ष तक बल रखने वाले अथवा सैकड़ों प्रकार के बल सामर्थ्य से युक्त पुरुष के लिये (हिरण्यं आबध्नन्) 'हितरमणीय व हृदयरमणीय' सुवर्ण बांधते रहे हैं, (तत्) उस प्रकार से वैसे ही सुवर्ण को मैं हे वत्स ! (आयुषे) जीवनवृद्धि के लिये (वर्चसे बलाय) तेजो बलवृद्धि के लिये (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ बरस की लम्बी उमर के लिये (ते बध्नामि) तुझे धारण कराता हूं। सुवर्ण का कर्णभूषण वा नासालंकार पहिनाता हूं।

७. दिव्य बनने की अभिलाषा वाले (यजत्राः) सभ्य पुरुष हम, कानों से अच्छी बातें सुनें, आंखों से अच्छा देखें; दृढ़ अंगों वाले शरीर सहित हमारे लिये जितनी आयु नियत है, उसका पूरा उपभोग करें।

८. (प्रियं सखायं) अपने प्रिय पति को (परिषस्वजाना) आलिंगन करती हुई (योषा इव) स्त्री [के पति के कान में कुछ कहने] की तरह ही (इयं ज्या) यह धनुष की डोरी भी (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानों कुछ कहती हुई धनुर्धारी वीर के (कर्णः अगनीगन्ती) कान को बार बार प्राप्त होती है। यह डोरी (अधिधन्वन् विततः) धनुष में खिंची हुई (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय दिलाने वाली है; स्त्री की तरह ही कुछ अव्यक्त शब्द करती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् यज्ञ में आये सब लोग परमात्मा की प्रार्थना करके निम्न वाक्य से बालक-बालिका को आशीर्वाद देवें—

हे बालक ! त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् नीरोगो भूयाः ॥

हे बालिके ! त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमाना, वर्चस्विनी तेजस्विनी श्रीमती नीरोगा भूयाः ।

तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए सज्जनों को, स्त्रियों को सन्तान की माता और पुरुषों को उसका पिता यथायोग्य सत्कार कर के, प्रसन्नतापूर्वक विदा करें ।

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ उपनयन[1]-संस्कार-विधिः

यज्ञोपवीत धारण करने की आयु

मनुस्मृति [२।३६] का वचन है कि जिस [माता पिता] को [अपने सन्तान] शीघ्र विद्या बल और व्यववहार [कुशल] करने की इच्छा हो और [उनके] बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों, तो जिस दिन जन्म हुआ हो, उससे अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो, उससे ब्राह्मण के लड़के का पांचवें वर्ष में, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे वर्ष में, और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें[2] (सं. वि. १११:११२)।

परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब सन्तान की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे। उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठ बुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़ने वाले होते हैं। [अथवा] जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें।

अथवा जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से आठवें वर्ष में अपने सन्तान का यज्ञोपवीत करें।[3] तथा ब्राह्मण के सोलह, क्षत्रिय के बाईस और वैश्य के बालक का चौबीस से पूर्व पूर्व यज्ञोपवीत [अवश्य होना] चाहिए। यदि पूर्वोक्त काल में इन का यज्ञोपवीत न हो, तो वे पतित माने जावें[4]॥ (सं० वि० १०९)॥

---

१. उप नाम समीप, नयन अर्थात् प्राप्त करना या होना। आचार्य के अथवा चक्षु इन्द्रिय के साथ दूसरा ज्ञाननेत्र देना।

२. अर्थात् ब्राह्मण गुण-कर्म-स्वभाव ग्रहण करने में समर्थ का पांचवें, क्षत्रिय गुण-कर्म-स्वभाव ग्रहण करने में समर्थ का छठे और वैश्य गुण-कर्म-स्वभाव ग्रहण करने में समर्थ का आठवें वर्ष में।

३. यह मत हमारा है। वर्त्तमान काल में यह उचित दीखता है। पर यज्ञोपवीत सब अपनी सन्तानों का करावें।

४. अर्थात् आर्यसभासद् बनाने के अनधिकारी समझे जावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञोपवीत का समय

ब्राह्मण [वर्ण योग्य] का वसन्त, क्षत्रिय [वर्ण योग्य] का ग्रीष्म और वैश्य [वर्ण योग्य] का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है। और इसका प्रातःकाल ही समय है।

यज्ञोपवीत का व्रत[1]

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो, उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व, तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये। उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक वार वा अनेक बार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का यवागू[2] अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ मिला, दलिया बना कर पीवे और (आमिक्षा[3]) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं, उस को वैश्य का लड़का पी के व्रत करे। अर्थात् जब जब लड़कों को भूख लगे, तब तब तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें, अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें (सं० वि० ११३)।

अथवा सब दुग्ध-फलाहार करें।

विधि—जिस दिन उपनयन करना हो, उसके पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवे। और उस दिन कुण्ड के समीप सब सामग्री धर, प्रातःकाल [शिखा छोड़] बालक का क्षौर करा,[4] शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना, यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य बालक को मिष्ठान्नादि का भोजन कराके, वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख

---

१. तुलना करो—पयो ब्राह्मणस्य व्रतं, यवागू राजन्यस्य, आमिक्षा वैश्यस्य। तै. ब्रा. २।८॥ यह सोमयाग में विहित है (यु. मी.)।

२. पतले पके हुए चावल को यवागू कहते हैं, ऐसा कर्काचार्य का कहना है (यु. मी.)।

३. तप्ते पयसि दध्यानयति साऽऽमीक्षा (ब्राह्मण वचन)॥ उबलते दूध में दही डालने पर जो घना भाग इकट्ठा हो जाता है, वह आमिक्षा कहाती है, यह सौतपदार्थवेदी कहते हैं (यु. मी.)।

४. बालिका हो तो क्षौर न करावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बैठावे, और बालक का पिता और ऋत्विज् लोग भी ऋत्विग्वरण पृ० २८ लिखे प्रमाणे, होने के पश्चात् यथा विधि अपने अपने आसन पर बैठे उत्तर यथावत् आचमनादि क्रिया करें (सं० वि० ११४)।

[प्रथम विधि-ऋत्विग्वरण, आचमन-अंगस्पर्श]

[द्वितीय विधि—व्रती का वस्त्रधारण]

पश्चात् कार्यकर्त्ता, बालक के मुख से ये वचन बुलवावे—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि ॥१॥[1]

पश्चात् आचार्य* निम्न मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे।

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥२॥[2]

---

१. मैं ब्रह्मचर्य-व्रत अर्थात् तपोयुक्त विद्याध्ययन के विषय को प्राप्त होऊं, ब्रह्मचारी बनूं।

२. हे बालक! (येन) जिस प्रयोजन के लिये जिस विधि से (बृहस्पतिः) ज्ञानी गुरु आचार्य ने (इन्द्राय) अपने, योग्य शक्तिशाली शिष्य को (अमृतं वासः) स्वास्थ्यकारी जीवन रक्षक वस्त्र को धारण कराया था, (तेन) उसी विधि से मैं भी (त्वा) तुझको यह वस्त्र (आयुषे) स्वास्थ्य, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घायुष्य, (बलाय) बल (वर्चसे) तेज के लिये (परिदधामि) पहिनाता हूं।

---

१. पार. गृ. २।२।६॥

*आचार्य उसको कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा छल-कपट रहित, अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन-मन और धन से सब को सुख बढ़ाने में तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे॥ द. स.॥

२. पार. गृ. २।२।७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[तृतीय विधि—यज्ञोपवीत धारण]

पश्चात् बालक आचार्य के सम्मुख बैठे, और यज्ञोपवीत हाथ में लेके निम्न मन्त्रों को बोले,

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।[1]
आयुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥२॥[2]

---

१. हे वत्स ! (यज्ञोपवीतं) यह ब्रह्मचर्य व्रताभ्यासपूर्वक वेदाध्ययन तथा वेदोक्त कर्म में अधिकार देने का 'ब्रह्मसूत्र' (परमं) [तमसः परो य आत्मा, मीयते ज्ञायते येन] परमात्मा के ज्ञान ग्रहण का बोधक अथवा परम (पवित्रं) पवित्र अर्थात् ज्ञान द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करने वाला है। (यत्) जो कि (पुरस्तात्) पूर्व काल अर्थात् आदि काल से (प्रजापतेः सहजं) प्राण [विद्या व कर्म] से उत्पन्न हुआ है अर्थात् प्राणधारण के साथ ही उनके रक्षण के निमित्त रूप में स्वभावतः विहित है, उस (आयुष्यं) जीवन के लिये हितबोध का (अग्र्यं) मुख्य या आगे की प्रेरणा देने वाले इस 'यज्ञोपवीत' को (प्रतिमुञ्च) धारण कर अर्थात् इससे अपने जीवन को बांध, मर्यादित कर ले। यह (शुभ्रं यज्ञोपवीतं) शोभन यज्ञोपवीत (बलं) बल और (तेजः) तेज होवे अर्थात् तुझे बल और तेज का देने वाला (अस्तु) होवे ।

२. हे वत्स ! (यज्ञोपवीतं असि) तू ही मानो 'यज्ञोपवीत' है। वेदाध्ययन रूप यज्ञ के लिये मेरे द्वारा गृहीत है। (त्वा) तुझे (यज्ञ-

---

१. पार. गृ. २।२।११ में क्वाचित्क पाठ। टीकाकारों ने इसे शाखान्तरीय मन्त्र माना है (यु. मी.)।

२. विनियोग की दृष्टि से आयुषे ···से ये चार पद सङ्गत बैठते हैं। हमने बढ़ाये हैं—

'यज्ञोपवीतं···तेजः' मन्त्र बोल आचार्य निम्न मन्त्र "ओं तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।" (अथर्व १।३५।१) बोलकर यज्ञोपवीत धारण करावे और बालक "ओं तन्मऽआबध्नामि शत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य बालक के बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल, दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक यज्ञोपवीत धारण करावे (सं. वि. ११५)।

[चतुर्थ विधि—यज्ञारम्भ]

तत्पश्चात् आचार्य बालक को अपने दहिने हाथ की ओर साथ बैठा के पृ. ३२-९९ लिखे प्रमाणे ईश्वर की स्तुति-प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण का पाठ करके अग्न्याधान, समिदाधान करे।

[पंचम विधि—जल प्रसेचन]

तत्पश्चात् निम्न चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिड़कावे (सं. वि. ११५)—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥

गोभिल गृ० प्र० १। खं० ३। सू० १-३॥

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

स्य) इस यज्ञ कार्य के लिये (यज्ञोपवीतेन उपनह्यामि) ब्रह्म सूत्र से अपने समीप बांधता हूं; उत्तम जीवन, दीर्घायुष्य, बल और तेज के लिये॥

यज्ञोपवीतम्=यज्ञाय=यज्ञकर्मणे—व्रताभ्यासपूर्वक विद्याग्रहणाय वेदोक्तकर्माधिकारायेति वा यद् उपवीतं=उपरि वीतं=उपरिहितं सूत्रम्॥

प्रजापतिर्वै प्राणः। प्राक्तन कर्मों के फल-भोग व अभ्युदयनिःश्रेयस प्राप्ति के लिये स्वतन्त्रता से कर्म करने के निमित्त ही जीव मानव देह में 'प्राण धारण' करता है। ज्ञान से प्राणों की रक्षा व जीवन व्यवहार सुचारु रूप से चलता है। इससे यह [ज्ञान का] सूत्र, प्राण के साथ रहने वाला निर्दिष्ट किया गया है।

शारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासम्, (यजुः ३४।५२) यह मन्त्र बोलकर धारण करे।

वेदों के आधार पर यह कल्पना हमने की है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[षष्ठ विधि—सोलह घृत की आहुतियां]

पश्चात् वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष में धर, सोलह घृत की आहुति देवें (सं. वि. ११५)।

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १। खं० ८। सू० २४॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे— इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम॥४॥

ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम॥६॥ कात्या० २५-१।११॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५

ओं भवतं नः सनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३।

[सप्तम विधि—विशेष शाकल्य से प्रधान होम]

तत्पश्चात् बालक के हाथ में प्रधान होम जो विशेष शाकल्य[1] बताया हो, उसमें घृत सिंचित कर उसकी आहुतियां निम्न चार मन्त्रों से दिलावें (सं. वि. ११५)।

---

१. हमारे मत में स्थालीपाक विधि से सिद्ध किया, मीठा भात मोहनभोग या मोदक आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥३॥

ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९—२१

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥४॥

ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

[अष्टम विधि—एकादशाज्याहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न ग्यारह मन्त्रों से ग्यारह आज्याहुति बालक के हाथ से दिलावें (सं. विः ११६; ११७)।

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥१॥

---

१. हे (अग्ने व्रतपते!) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञान स्वरूप, सब सत्य तप आदि व्रतों के स्वामी परमात्मन्! (व्रतं चरिष्यामि) मैं जो यह व्रत लेने लगा हूं, (तत्ते प्रब्रवीमि) तुझे बताता हूं। (तच्छकेयम्) मैं उसे पालन करने में समर्थ होऊं। (तेन ऋध्यासम्) उस व्रत से समृद्धि-सम्पत्ति युक्त, उन्नत होऊं। (इदं अहं) मैं (अनृतात्) असत्य [मार्ग] को छोड़ सत्य को ग्रहण करता हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं वायो व्रतपते० * स्वाहा ॥ इदं वायवे, इदन्न मम ॥२॥

ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥३॥

ओं चन्द्र व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥४॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये, इदन्न मम ॥५॥[1]

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥

---

२. हे (वायो व्रतपते !) वायु के समान जीवन देने वाले गतिस्वरूप परमात्मन् !

३. हे (सूर्य व्रतपते !) सूर्य के समान प्रकाश देने वाले ज्योतिस्वरूप० ।

४. हे (चन्द्र व्रतपते !) चन्द्र के समान आह्लादकारक सौम्यस्वरूप० ।

५. हे (व्रतातां व्रतपते !) व्रतों में सब व्रतों के अध्यक्ष० ।

अथवा—हे व्रतों के स्वामी अग्ने ! वायो ! सूर्य ! चन्द्र ! तथा सब व्रतों के पति इन्द्र ! ··· ।

---

*इसके आगे 'व्रतं चरिष्यामि' इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये ॥ द. स. ॥ १. मन्त्र ब्रा. १।६।९-१३ ॥ इदं···मम' अंश पठित नहीं है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[नवम विधि—बालक का परिचय]

इस प्रकार बालक के हाथ से आहुति दिलाये पश्चात् आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देख के—

ओम् आगन्त्रा समगन्महि प्र सुमत्यं युयोतन।
अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥[1]

इस मन्त्र का जप करे॥

माणवकवाक्यम्—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व॥२"[2]

आचार्योक्तिः—"को* नामासि ॥३॥"[3]

बालकोक्तिः—एतन्नामास्मि‡ ॥४॥"[4]

[दशम विधि—तीन जलाञ्जलि-मोक्षण]

पश्चात् निम्न तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी—

इस प्रकार ये पांच सत्य-व्रत हैं, जिनमें प्रत्येक बालक-बालिका को विद्याध्ययन से पूर्व दीक्षित होना चाहिये।

१. हम सब इस गुरुकुल या शाला में (आगन्त्रा) [नवीन—] आगन्तुक ब्रह्मचारी के साथ (समगन्महि) आज मेल करते हैं। (प्र सु मर्त्यं युयोतन) इसकी संगति अच्छे मनुष्यों के साथ हो। हम (अरिष्टाः) निर्विघ्न अहिंसित होते हुए व्रतों पर (समगन्महि) आचरण करते रहें। और (अयं) यह बालक व्रतपति परमात्मा की अनुकम्पा व सामर्थ्य से (स्वस्ति चरतात्) सुख पूर्वक विचरे।

२. मैं ब्रह्मचर्य-व्रत को स्वीकार कर चुका हूं। मुझे अपने समीप [विधि पूर्वक] रखिये; प्राप्त कीजिए।

३. तेरा नाम क्या है?

४. मैं इस नाम वाला हूं।

---

*तेरा नाम क्या है ऐसा पूछना ॥ द. स. ॥

‡ मेरा यह नाम है ॥ द. स. ॥

१. मन्त्रब्रा. १।६।१४ ॥ २. मन्त्रब्रा. १।६।१६ ॥

३. मन्त्रब्रा. १।६।१७ ॥ ४. तुलना—मन्त्रब्रा. १।६।१८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥ यजुः ३६ । १४, १५, १६ ॥

तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि जल से भर के निम्न मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के, बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़ के—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥४॥

ऋक् १०।८२।१ ॥

---

१. (आपः) हे जलो ! तुम (हि) निश्चय रूप से (मयोभुवः स्थ) सुख को देने वाले हो । (ता नः) हम को ऐसे वे तुम (ऊर्जे) अन्न व पराक्रम के लिये, (महे) बड़े-बड़े (रणाय) जीवन-संग्रामों के लिये तथा (चक्षसे) सुख से देखने के लिये (दधातन) अपने रस से पुष्ट करो ।

२. (उशतीः इव मातरः) जैसे वात्सल्यमयी माता अपनी सन्तान को अन्न दूध आदि रसों का भागी बनाती है, वैसे ही तुम (यो वः शिवतमः रसः) अपने सुखकारी रस का (तस्य भाजयत इह नः) सेवन हमें कराओ ।

३ हे जलो ! (यस्य) अन्न समुदाय के या प्राण के (क्षयाय) निवास=स्थिति के लिये तुम 'ओषधियों को' (जिन्वथ) रस से तृप्त करते हो, (तस्मै) उस अन्न व प्राण के लिये हम (वः) तुमको (अरं) पर्याप्त रूप से (गमाम) प्राप्त करते हैं; प्राप्त करें । हे जलो ! (च) और (नः आ जनयथ) हमें पूर्ण रूप से 'उत्पादन सामर्थ्य युक्त' बनाओ ।

४. हम (सवितुः देवस्य) सृष्टिकर्त्ता दिव्य परमात्मा के (तत् श्रेष्ठं भोजनम् सर्वधातमम्) उस श्रेष्ठ सर्वपोषक भोजन=भोग को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्त्र को पढ़ के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देवे।

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याँ पूष्णो हस्ताभ्याम् हस्तं गृह्णाम्यसौ* ॥५॥ आश्व. गृ. १।२०।४॥

पुनः इसी प्रकार, दूसरी बार अर्थात् प्रथम पूर्वोक्त प्रकार से 'आपो हि ष्ठा०' आदि तीन मन्त्रों से अपनी वा बालक की अञ्जलि भर 'तत्सवितुर्वृणी०' मन्त्र से बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भर उसका अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के निम्न मन्त्र से पात्र में जल छुड़वावे।

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ* ॥६॥आश्व. गृ.१।२०।५।

पुनः इसी प्रकार, तीसरी बार अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से 'आपो हि ष्ठा०' आदि तीन मन्त्रों से प्रथम आचार्य अपने हाथ में जल भर 'तत्सवितुर्वृणी०' मन्त्र से पुनः बालक की अञ्जलि में भर उसका अङ्गुष्ठसहित हाथ पकड़ के निम्न मन्त्र से तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल पात्र में छुड़वा देवें—

ओम् अग्निराचार्यस्तव, असौ* ॥७॥ आश्व. गृ. १।२०।५

(वृणीमहे) स्वीकार करते हैं। (भर्गस्य) भजनीय परमेश्वर के (तुरं) पाप विनाशक दण्ड को (धीमहि) धारण करें; मानें। भोग व कर्म के लिये उसके दिये 'भोजन' को चुनें और उसके 'फल' को भी प्रसन्नतापूर्वक धारण करें।

५. हे बालक ! (सवितुः) सर्वोत्पादक परमात्मा की (प्रसवे) सृष्टि में तुझे (अश्विनोः) प्राण अपान वायु की विशाल (बाहुभ्यां) भुजाओं व (पूष्णः) सूर्य के पोषक (हस्ताभ्यां) हाथों से (हस्तं) तेरे हाथ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

६. हे बालक ! (सविता) ज्ञानप्रेरक सविता रूप मैंने (ते हस्तं) तेरे हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है।

७. हे बालक ! (तव) तेरा (आचार्यः) आचार्य (अग्निः) अग्नि की तरह दोषनिवारक व प्रकाशक है, निर्मापक है।

---

*'असौ' इसके स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये। द. स. ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[एकादश विधि—सूर्यदर्शन]

तत्पश्चात् यज्ञवेदी से बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्य निम्न दो मन्त्रों को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करावे—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मामृत ॥१॥[1]

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२॥

यजुः ३६।२४ ॥

[द्वादश विधि—आचार्य-प्रदक्षिणा]

तत्पश्चात् बालक सहित आचार्य सभामण्डप में आ, यज्ञकुण्ड की उत्तरबाजू की ओर बैठ के निम्न पत्र पढ़े—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आ गात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ॥१॥[2]

---

१. हे सर्वप्रेरक देव सवितः ! (एष ते ब्रह्मचारी) यह तेरा ब्रह्मचारी है जो तेरे द्वारा (गोपाय) रक्षा के लिये है, [उसे स्वीकार कर] । वह यह ब्रह्मचारी मृत्यु को प्राप्त न हो ।

२. यह सामने सब देवों = भूतों की हितकारी, शोधनकारी समस्त संसार की चक्षु शक्ति उठ रही है । हम सौ वर्ष तक उत्तमदृष्टि से देखें; सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवें; सौ वर्ष तक मङ्गलमय वचनों को सुनते रहें; सौ वर्ष तक मधुर भाषण करते रहें; सौ वर्ष तक तथा उससे भी अधिक दीनता रहित हो [स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में] हम रहें ।

१. यह (युवा) हृष्ट-पुष्ट बालक (सुवासा) अच्छे वस्त्रों को धारण करके (परिवीतः) यज्ञोपवीत पहिन कर (आगात्) सम्मुख प्राप्त है । इस प्रकार (जायमानः) प्रगट होता हुआ (स उ श्रेयान्) वह निश्चय से कल्याणकारी (भवति) होता है ।

---

१. आश्व. गृ. १।६।२० ॥ २. ऋ. ३।८।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, असौ* ॥ २ ॥[1]

और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सम्मुख यथापूर्व बैठे।

[त्रयोदश विधि—आचार्य द्वारा बालक का अङ्गस्पर्श]

तत्पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके निम्न मन्त्र बोले—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि, अमुम्* ॥१॥ मन्त्र. ब्रा. १।६।२१॥

पश्चात् निम्न मन्त्र से उदर पर स्पर्श करें,

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम्* ॥२॥

मन्त्र. ब्रा १।६।२३॥

निम्न मन्त्र से हृदय पर,

ओं कृशन इदं ते परिददामि अमुम्*॥३॥ मन्त्र ब्रा. १।६।२३॥

निम्न मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध पर—

---

२. हे ब्रह्मचारी ! तुम सूर्य के व्रत को पूरा करो अर्थात् सूर्य की तरह तेजस्वी और परोपकारी बनो। अथवा (सूर्यस्य) सूर्यवत् ज्ञानज्योति से प्रकाशमान आचार्य के (आवृतम्) आवर्त में, (अनु आ वर्त्तस्व) अनुकूल होकर चारों ओर अनुसरण किया कर।

१. हे नाभि ! तू (प्राणानां) प्राणों का (ग्रन्थिरसि) केन्द्र है, (मा विस्रसः) नीचे कभी मत डिग। हे (अन्तक) संसार दुःख का या अज्ञान का अन्त करने वाले परमात्मन् ! इस ब्रह्मचारी को तुझे सौंपता हूं।

२. हे (अहुर) वायु के प्रेरक परमात्मन् ! मैं इस०

३. हे (कृशन) ज्वलन के कर्त्ता=अग्नि के प्रयोजक ईश्वर ! ०

---

*'असौ' और 'अमुम्' इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये। द. स. ॥ 'असौ' के स्थान पर सम्बोधनान्त नाम का उच्चारण करना चाहिए। 'अमुम्' के स्थान पर द्वितीयान्त।

१. मन्त्रब्रा. १।६।२० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ* ॥४॥

मन्त्रब्रा. १।६।२४॥

और निम्न मन्त्र को बोल के वाम हाथ से बाएं स्कन्धे पर स्पर्श करे—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ* ॥५॥

मन्त्रब्रा. १।६।२५

[चतुर्दश विधि—परस्पर हृदय-स्पर्श पूर्वक प्रतिज्ञा]

पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के आचार्य सम्मुख रहकर बालक के दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रख के—

ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥१॥ ऋक् ३।८।४ ॥

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ २ ॥

पार. गृ. २।२।१६॥

"हे शिष्य ! बालक तेरे हृदय को मैं अपने व्रत के अधीन

---

४. हे बालक ब्रह्मचारिन् ! मैं तुझे (प्रजापतये) प्रजाओं के पालक परमात्मा के सुपुर्द करता हूं ।

५. हे ब्रह्मचारिन् ! मैं (त्वा) तुझे (देवाय सवित्रे) दिव्यगुणयुक्त सर्वोत्पादक सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के (परिददामि) सुपुर्द करता हूं ।

१. (तं) उस [पूर्वनिर्दिष्ट युवा=दृढ़ांग] ब्रह्मचारी को, (धीरासः) धीर (कवयः) क्रान्तदर्शी बुद्धिमान्, (स्वाध्यः) अच्छे ध्यान से युक्त, (मनसा) मन से उसे (देवयन्तः) दिव्य बनाने की कामना रखने वाले विद्वान्, (उन्नयन्ति) उन्नति पथ पर ले जाते हैं ।

---

*'असौ' और 'अमुम्' इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना । 'असौ' के स्थान पर सम्बोधनान्त नाम का उच्चारण और 'अमुम्' के स्थान पर द्वितीयान्त उच्चारण करना चाहिये ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता हूं; तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे; तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुनकर उसके अर्थ को सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझको मुझसे युक्त करे।"

इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि—"हे आचार्य! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं; मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे; आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिए आपको सदा नियुक्त रक्खे।" इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करें।

[पञ्चदश विधि—बालक को शिक्षा]

तत्पश्चात् आचार्य शिष्य के दाहिने हाथ को पकड़ कर,[1]

आचार्योक्तिः—को नामाऽसि ॥१॥[2] तेरा नाम क्या है?

बालकोक्तिः—[असौ] अहम्भोः ॥२॥[3] मेरा अमुक नाम है।

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्य्यसि ॥३॥[4]

तू किसका ब्रह्मचारी है?

बालकः—भवतः ॥४॥[5] आपका।

आचार्य इस बालक की रक्षा के लिए निम्न मन्त्र को बोले—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव*असौ ५॥[6]

---

५. हे ब्रह्मचारिन्! तू (इन्द्रस्य) तू सब व्रतों के पति इन्द्र का (ब्रह्मचारी असि) ब्रह्मचारी है। (अग्निः) अग्नि==पूजनीय ईश्वर ही (तव आचार्यः) तेरा आचार्य है अर्थात् उन्नायक शुद्ध आचरणों का सम्पादक है। [उसके पीछे] (अहं आचार्यः तव) मैं भी तेरा आचार्य हूं।

---

१. द्रष्टव्य पार. गृ., यही प्रकरण। २. पार. गृ. २।२।१७॥
३. पार. गृ. २।२।१८॥ ४. पारः गृ. २।२।१९॥
५. पार. गृ. २।२।२०॥ ६. पार. गृ. २।२।२१॥

*'असौ' इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का संबोधनान्त नामोच्चारण करना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों को बोल, बालक को शिक्षा करे कि तू प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ।।

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ।। १ ।।[1]

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ।।२।। पार. गृ. २।२।२१।।

उपनयन संस्कार पूरे हुए पश्चात्, यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य का हो, तो उसी दिन[2] वेदारम्भ संस्कार भी करना, और जो दूसरे दिन का विचार हो, तो निम्न प्रकार से संस्कार की पूर्ति करें ।

[षोडश विधि—आशीर्वाद]

पश्चात् पृष्ठ १२१ में लिखे प्रमाणे—

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ।।

---

१. "तू किस का ब्रह्मचारी है ?"

प्राण का ।

'सुख देने के लिये कौन तेरा उपनयन करता है ? तुझे किसके सुपुर्द करूं ?'

२. मैं (त्वा प्रजापतये) तुझे प्रजाओं के पालक, (देवाय सवित्रे) दिव्यगुण युक्त सृष्टि के रचयिता परमेश्वर के सुपुर्द करता हूं । मैं तुझे (अद्भ्यः) जल, (ओषधिभ्यः) ओषधी, (द्यावापृथिवीभ्यां) द्युलोक, पृथिवी लोक के सुपुर्द करता हूं । मैं तुझे (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) सब अग्नि आदि भौतिक शक्तियों को सौंपता हूं; (सर्वेभ्यः भूतेभ्यः) सब प्राणियों को सौंपता हूं (अरिष्ट्यै) ताकि वे सब तेरा भला करें । तेरे निर्विघ्न निरुपद्रव अहिंसित जीवन चालन में ये सब तेरे सहायक बनें ।

---

१. आश्व. गृ. १।२०।७ ।।

२. हमारे मत में उपनयन के साथ ही वेदारम्भ करना समीचीन है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति देकर महावामदेव्यगान करके, संस्कार में आई हुई स्त्रियों को बालक की माता और पुरुषों को बालक का पिता यथायोग्य सत्कार करके विदा करे। और माता पिता आचार्य सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिल के—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः आयुष्मान्,
तेजस्वी, वर्चस्वी, भूयाः।

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमाना, आयुष्मती,
तेजस्विनी, वर्चस्विनी भूयाः॥

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने अपने घरों को सिधारें॥

इत्युपनयनसंस्कारविधिः समाप्तः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ वेदारम्भ-संस्कार-विधिः

वेदारम्भ उसको कहते हैं, जो प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र के उपदेश से लेके साङ्गोपाङ्ग चार-वेदों अर्थात् सब प्रकार की सत्य विद्याओं के अध्ययन करने के लिए नियम अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना।

समय—जो दिन उपनयन-संस्कार का है, वही वेदारम्भ का भी है। यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो, तो दूसरे ही दिन करे। यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो, तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे। (सं० वि० १२२)। पर संस्कार अवश्य करे।

विधि— जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो, उस दिन प्रातः काल बालक को शुद्धोदक से स्नान करा, शुद्ध वस्त्र पहिना, कार्य-कर्त्ता अर्थात् पिता, यदि पिता न हो, तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे। बालक को अपने दक्षिण बाजू बैठावे।

यदि उपनयन संस्कार वाले दिन ही वेदारम्भ न हो, पृथक् दिन करना हो तो

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण, यज्ञ प्रारम्भ][1]

यथा विधि पृ० २८-१०८ लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण आचमन-अंगस्पर्श, अग्न्याधान, समिदाधान, जल-प्रसेचन, आघारावाज्य-भागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार, पृष्ठ १२० में लिखीं त्वं नो अग्ने० आदि मङ्गलाष्टाज्याहुतियां देने के पश्चात् बालक से प्रधान

---

१. जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे, उसको पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्ति-करण से लेकर 'ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०' की चार पावमानी आहुतियां, करना आवश्यक नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होम[1] की पृष्ठ १११-११३ में लिखी भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि० आदि पावमानी आहुतियां चार, विशेष शाकल्य ले दिलावें ।[2]

[द्वितीय विधि—छै आज्याहुतियां]

पश्चात् बालक से निम्न मन्त्रों से छै आज्याहुति दिलावें—

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे— इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

[पक्षान्तर में]

और यदि उपनयन के साथ ही, वेदारम्भ कर रहे हों, तो उपनयन संस्कार में निर्दिष्ट 'पंचदशविधि—बालक को शिक्षा' के पश्चात्

[प्रथम विधि—अग्नि प्रदीपन]

निम्न मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करें (सं. वि. १२३) ।

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

यजु० अ० १५ । मं० ४४ ॥

[द्वितीय विधि—छै आज्याहुतियां]

तत्पश्चात् व्याहृति आहुति चार, स्विष्टकृताहुति एक तथा

---

१. प्रधान होम उसको कहते हैं जो संस्कार में मुख्य किया जाता है ।

२. द्र. उप. सं. पृ. ११५ सं. वि. । तदनुसार विधान किया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राजापत्याहुति एक, मिलकर छः आज्याहुति पूर्वोक्त ऊपर पृ० २३६ में लिखे प्रमाणे बालक के हाथ से दिलानी।

[तृतीय विधि—अग्निसंचय और कुण्ड प्रदक्षिणा जलप्रसेचन]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रपञ्चक से बालक से वेदि के अग्नि को इकट्ठा करवावें—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।
ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।
ओम् एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।
ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।
ओम् एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्[1] ॥१॥

---

१. (अग्ने) हे ज्ञानदाता तेजस्विन्! तू (सुश्रवः) उत्तम यश वाला है [यस्य नाम महद्यशः]; (मा) मुझे (सुश्रवसं कुरु) उत्तम यशस्वी बना। (सुश्रवः अग्ने) हे सुनाम उन्नायक परमात्मन्! यथा (त्वं सुश्रवा असि) जिस प्रकार से तू उत्तम यश वाला है। (एवं मां सुश्रवः) उसी प्रकार से मुझे हे सुश्रव! (सौश्रवसं कुरु) उत्तम यश वालों की सन्तान अर्थात् उनके यश की रक्षा कर उन्हें बढ़ाने वाला व्यक्ति बना। हे अग्ने! (यथा त्वं) जिस प्रकार से तू (देवानां) भौतिक दिव्य शक्तियों के [द्वारा चलाये गये] (यज्ञस्य) यज्ञ=कार्य व्यवहार को चलाने वाली (निधिपा असि) साधन सामग्री का रक्षक है। (एवम् अहम्) ऐसे ही मैं (मनुष्याणाम्) मनुष्यों के लिये बनाई गई (वेदस्य) वेद नाम की कल्याणी वाणी के (निधिपा) कोश या संग्रह या संहिता का रक्षक (भूयासम्) होऊं।

जैसे भौतिक अग्नि, 'प्राकृत देवों' द्वारा संचालित सृष्टि यज्ञ के निमित्त उत्पन्न पदार्थों का रक्षक है, वैसे ही मैं मनुष्यों के अभ्युदय निःश्रेयस के लिये किये गये वेद ज्ञान कोष का रक्षक बनूं। अथवा हे अग्नि आचार्य जैसे आप विद्वानों द्वारा संचालित ज्ञान यज्ञ के रक्षक हैं, ऐसा अनुग्रह कीजिये कि मैं वैसे ही 'वेदवाणी' का रक्षक मनुष्यों में बनूं॥

---

१. पार. गृ. २।४।२॥ अग्ने सुश्रवस इत्यादिभिः पञ्चभिर्मन्त्रैरिति जयरामः (यु. मी.):

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् बालक, कुण्ड की प्रदक्षिणा करके निम्न मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जल सिञ्चित करे (सं. वि. १२४)।

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

[चतुर्थ विधि—त्रिसमिदाधान]

तत्पश्चात् बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर, घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में ले उसे वेदिस्थ अग्नि के मध्य में निम्न मन्त्र पढ़ कर छोड़ देवे। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े—

ओम् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य-निराकारिष्णुर्यशस्वी तेजोस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥१॥ पार. गृ. २।४।३॥

---

१. मैं व्रतधारी ब्रह्मचारी (बृहते)[1] वृद्धि करने वाले अथवा बड़े (जातवेदसे) ज्ञान देने वाले (अग्नये) इस भौतिक अग्नि, परमात्मा या आचार्य के लिये (समिधं आहार्षम्) खूब जलने वाली समिधा अथवा ज्ञान द्वारा सम्यग् प्रकार से प्रज्वलित हो जाने वाले चित्त को लाया हूं। हे अग्ने! (यथा त्वं) जैसे तू (समिधा) इस समिधारूप काष्ठ या मन से (समिध्यसे) प्रदीप्त होती है, (एवमहं) मैं, आपके अनुग्रह व सामर्थ्य से, (आयुषा) आयु=उत्तम जीवन से (मेधया) देवगणों व पितृगणों[2] की धारणावती बुद्धि से, (वर्चसा) तेज

---

१. बृहतां लोकादीनामिति दयानन्दः। बृंहणत्वात् वा।

२. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पंचम विधि—दुबारा अग्निसंचय, जलप्रसेचन]

पुनः ऊपर पृ० २३७ में लिखे प्रमाणे "ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से अग्नि को इकट्ठा करके, "ओम् अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करे।

[षष्ठ विधि—अग्नि से हस्त-ताप व अङ्गस्पर्श]

तत्पश्चात् बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदि के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा, निम्न सात मन्त्रों से सात बार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श कर के सारा मुख स्पर्श करे।

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥१॥
ओम् आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥

से (पशुभिः) पशुओं से अथवा इन्द्रियों से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्म ज्ञान के प्रकाश से (समिन्धे) प्रदीप्त हो जाऊं—बढ़ूं। (मम आचार्यः) मेरा आचार्य (जीवपुत्रः) वंश रक्षा के लिये जीवित पुत्र वाला मुझ शिष्य द्वारा बने और (अहं मेधावी असानि) मैं, धारणावती बुद्धि से युक्त या निर्मल बुद्धि वाला होऊं और (अनिराकरिष्णुः)[1] किसी विषय या वस्तु को न बिगाड़ने वाला (तेजस्वी) प्रभावी, तेजस्वी (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्म ज्ञान से आलोकित अथवा आत्मिक शक्ति से सम्पन्न तथा (अन्नादः) अन्नादि का समुचित भोग करने वाला (भूयासम्) [भौतिक अग्नि, सर्वज्ञ तेजस्वी परमात्मा वा ज्ञानदाता आचार्य की कृपा व सहायता से] हो जाऊं।

१. हे अग्ने! (तनूपाऽसि) तू शरीर का रक्षक है, (मे तन्वं) मेरे शरीर की (पाहि) रक्षा कर।

२. हे अग्ने! तू (आयुर्दा असि) आयु को देने वाला है, (मे आयुः) मेरे लिये आयु (देहि) दे।

३. हे अग्ने! तू (वर्चोदा असि) तेज व बल देने वाला है, (मे) मुझे भी (वर्चो देह) वर्चः दे।

---

१. आकरिष्णुः आकार बनाने वाला। निराकारिष्णुः आकार बिगाड़ने वाला। अनिराकरिष्णुः···।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥४॥
ओं मेधां मे देवः सविता आ दधातु ॥५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥
ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥७॥

पार. गृ. २।४।७८॥

तत्पश्चात्—

ओं वाक् च म आप्यायताम् ॥१॥ इस मन्त्र से मुख द्वार
ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥२॥इस मन्त्र से नासिका द्वार
ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥३॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र
ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥४॥ इस मन्त्र से दोनों कान
ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥५॥[1]

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे।

---

४. हे अग्ने ! (मे) मेरे (तन्वाः यत्) शरीर में जो (न्यूनं) कमी हो (तत्) उसे (आपृण) पूरा कर।

५. (देवः सविताः) सर्वोत्पादक दिव्य परमेश्वर (मे) मेरे लिये (मेधां) धारणावती बुद्धि को (आदधातु) अच्छी प्रकार से देवे।

६. (सरस्वती देवी) ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी (मे मेधां आदधातु) मुझे मेधा देवे।

७. (अश्विनौ) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् जो कि (पुष्कर-स्रजौ) सुपूजित हैं (मे) मेरे लिये (मेधां) मेधा का (आधत्तां) धारण करावें।

१. (मे वाक्) मेरी वाणी [वाक् शक्ति] (आप्यायताम्) खूब उन्नत हो; वा पवित्र हो;

२. (मे प्राणश्च) मेरा प्राण [श्वास शक्ति] खूब उन्नत हो;
३. मेरी (चक्षुश्च) आंखें [दृष्टि] खूब उन्नत हों;
४. मेरे (श्रोत्रं) कान [श्रवण शक्ति] खूब उन्नत हों;
५. मेरे (यशो बलं च) यश और बल [भुजद्वय] खूब उन्नत हों।

---

१. पार. गृ. २।४।८ के अन्त में कोष्ठक में पठित। सूत्रान्तरकृत्पाठ इति टीकाकाराः (यु. मी.)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सप्तम विधि—परमेश्वर उपस्थान]

निम्न मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करे—

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु ॥१॥
मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु ॥२॥
मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ॥३॥
यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् ॥४॥
यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् ॥५॥
यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥६॥[1]

[अष्टम विधि—गायत्री-मन्त्रोपदेश]

तत्पश्चात् बालक कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर पिता के दक्षिण में जा के, जानू को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे (सं. वि. १२६)।

आचार्य से बालक कहे कि—

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥[2]

---

१. (अग्निः) अग्नि और आचार्य मुझ में धारणावती बुद्धि, सन्तान-कुटुम्बवर्ग, और तेज का आधान करे।

२. (इन्द्रः) इन्द्र अर्थात् विद्युत् या आचार्य मुझ में मेधा, प्रजा और इन्द्रिय को धारण करावे।

३. (सूर्यः) सूर्य वा आचार्य मुझ में मेधा और दीप्ति को धारण करावे।

४. हे अग्ने! (यत्ते) तेरा जो (तेजः) तेज है (तेन अहं) उससे मैं (तेजस्वी भूयासम्) तेजस्वी बनूं।

५. हे अग्ने! तेरा जो सामर्थ्य=वर्चस् है, उससे मैं (वर्चस्वी) वर्चस्वी बनूं।

६. हे अग्ने! तेरी जो (हरः) संहारक [पदार्थों के दोषों को हरण करने की अथवा क्रोध] शक्ति है उससे मैं हरण शक्ति सम्पन्न दोषहारक बनूं।

---

१. आश्व. गृ. १।२१।४ ॥ २. आश्व. गृ. १।२१।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार, पश्चात् तीन महाव्याहृति, तत्पश्चात् सावित्री, ये त्रिक अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक 'गायत्री-मन्त्र' का मुझे उपदेश कीजिये ।

तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रख के अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे—

प्रथम वार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से कराके,

दूसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

एक-एक पद का यथावत् धीरे-धीरे उच्चारण करवा के,

तीसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥ यजुः ३६।३ ॥

धीरे-धीरे इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप में इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थ—(ओ३म्) यह परमेश्वर का मुख्य नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं। (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ाने हारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति करानेहारा है, उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्धस्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें। (यः) ऐसा यह जो परमात्मा है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्र, चोदयात्) प्रेरणा करे। हे शिष्य ! समृद्धि की प्राप्तिरूप इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पासना करना योग्य है और इससे भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये।

[नवम विधि—हृदय-स्पर्शपूर्वक प्रतिज्ञा]

इस प्रकार अर्थ सुनाये पश्चात् निम्न मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करें—

ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥१॥[1]

[दशम विधि—मेखलाधारण व वस्त्रदान]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना के रक्खी हुई मेखला* को बालक के कटि में बांधे—

ओम् इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥२॥[2]

---

१. आचार्यः—"हे शिष्य! तेरे हृदय को मैं अपने व्रत=दीक्षा के आधीन करता हूं। मेरा चित्त तेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर, मेरे उपदेशानुसार कार्य कर। बृहस्पति आज से तुझ को मेरा अनुगामी बनावे।"

बालकः—"हे आचार्य! उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति के लिये अपने हृदय को आपके हृदय के आधीन करता हूं। मेरा मन आपके मन के अनुकूल सदा रहे। आप मेरी वाणी=प्रार्थना को एकाग्र मन हो सुनिये। परमात्मा आपको आज से मेरे लिये नियुक्त रक्खे।"

२. (इयं, मेखला इयं) यह और यह मेखला ही (दुरुक्तं) दुर्वचनों अथवा दुष्टों के कथनों को (परिबाधमाना) दूर हटाती हुई (वर्णं) वर्ण-अक्षरों को (पवित्रं पुनती) शुद्ध उच्चारण वाला

---

१. आश्व. गृ. १।२१।७॥

*ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुषसंज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये॥ द. स.॥

२. पार. गृ. २।२।८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥१॥[1]

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कोपीन, दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उनमें से एक कोपीन एक कटिवस्त्र एक उपन्ना अर्थात् अंगोछा बालक को आचार्य धारण करावे।

[एकादश विधि—दण्डधारण]

तत्पश्चात् आचार्य दण्ड[2] हाथ में लेके सामने खड़ा रहे, और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़ निम्न मन्त्र को बोल के बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे,

---

करती हुई तथा (प्राणापानाभ्याम्) प्राण अर्थात् व्यक्त स्पष्ट ध्वनि तथा अव्यक्त-अस्पष्ट ध्वनि से (बलं आदधाना) बल प्रभाव को बढ़ाती हुई, (स्वसा शुभगा देवी) शुभाकांक्षिणी बहिन के समान (मे आगात्) मुझे प्राप्त हुई है।

भाव यह है कि 'ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा रूप मर्यादा', बुरा बोलने से बचाती है; शुद्ध वर्णोच्चारण की शिक्षा देगी; ब्रह्मचर्य द्वारा प्राण व अपान शक्ति के वशीकरण से बल को धारण कराने वाली होगी। स्वसा=सु+असा=सच्चाई की ओर प्रेरणा करने वाली, शुभ को प्राप्त करने वाली, देवी=ज्ञान प्रकाशिका है।

१. यह हृष्ट पुष्ट बालक, अच्छे वस्त्रों को धारण करके यज्ञोपवीत पहिन कर सम्मुख प्राप्त है। इस प्रकार प्रगट होता हुआ, वह निश्चय से कल्याणकारी होता है। उस ब्रह्मचारी को धीर क्रान्तदर्शी बुद्धिमान्, अच्छे ध्यान से युक्त, मन से उसे दिव्य बनाने की कामना रखने वाले विद्वान् उन्नति पथ पर ले जाते हैं।

---

१. ऋ. ३।८।४ ॥

२. ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाटभ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक प्रमाण का दण्ड देना चाहिये और वे दण्ड चिकने सूधे हों, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों* और एक-एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये, एक-एक जलपात्र, एक-एक उपपात्र और एक-एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये।

*तुलना मनु. २।४५, ४६, ४७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओं यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् ।
तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥१॥

पार. गृ. २।२।१२

[द्वादश विधि—बालक को पिता का उपदेश]

तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ[1] ॥१॥ अपोऽशान ॥२॥ कर्म कुरु ॥३॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥४॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥५॥[2] द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥६॥[3] आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥७॥ क्रोधानृते वर्जय ॥८॥ मैथुनं वर्जय ॥९॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥१०॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥११॥[4] अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥१२॥[5] प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्

---

१. (यो मे दण्ड) जो मेरा यह दण्ड (वैहायसः) आकाश से (अधिभूम्याम्) भूमि की ओर (परापतत्) गिरा खड़ा है: (तमहं) उसे मैं (आयुषे) आयु, (ब्रह्मणे) वेद और (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्मवर्चस् के लिये (पुनः आददे) विशेष रूप से ग्रहण करता हूं।

---

१. असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र संबोधनान्त उच्चारण करे।

२. आश्व. गृ. १।२२।२ ॥ प्रथम सूत्र में 'असौ' पद नहीं है।

३. द्र. आश्व. गृ. १।२२।३, ४ तथा पार. गृ. २।४।१३-१५ का सम्मिलित रूप।

४. गोभिल गृ. ३।१।१३-१७ तक। अन्त्य ३ सूत्रों में 'वर्जय' का अनुषङ्ग जानना चाहिए।

५. गोभिल गृ. (३।१।१८) में 'स्नानं' इतना ही पाठ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नित्यमाचर ॥१३॥[1] क्षुरकृत्यं वर्जय ॥१४॥[2] मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥१५॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥१६॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥१७॥[3] अकामतः स्वमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥१८॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥१९॥ नित्यं युक्तहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥२०॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥२१॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥२२॥[4]

अर्थ—तू आज से ब्रह्मचारी अर्थात् विद्याव्रत दीक्षा से विद्यार्थी है ॥१॥ नित्य सन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥२॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ सत्यन्यायानुमोदित धर्म कर्म किया कर ॥३॥ दिन में शयन मत कर ॥४॥ आचार्य के आधीन रह के नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद अर्थात् सब प्रकार की विद्यायें पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥५॥ एक एक साङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् अड़तालीस वर्ष तक वा जब तक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें अर्थात् विद्याध्ययन की पूर्ति तक तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥६॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर; परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर ॥७॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥८॥ आठ प्रकार के मैथुन[5] अर्थात् स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध को छोड़

---

१. सूत्र १३, १९, २०, २१ ऋषि दयानन्द के वचन हैं।

२. द्र. गोभिल गृ. ३।१।२० ॥ 'वर्जय' अनुषङ्ग जानना चाहिए।

३. तुलना—गोभि० गृ० ३।१।२१--२४॥

४. तुलना—गोभि० गृ० ३।१।२५॥

५. (क) स्त्री का ध्यान, विषय-कथा, पारस्परिक स्पर्श, कन्याओं के साथ क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम।

(ख) पुरुष का ध्यान, विषय-कथा, पारस्परिक स्पर्श=इकट्ठा सोना,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देना ॥९॥ भूमि में शयन करना, पलंग आदि पर न सोना ॥१०॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत करना ॥११॥ अतिस्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, दूसरे की निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक मत किया कर ॥१२॥ रात्रि के चौथे पहर में अर्थात् प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व जाग, आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना योगाभ्यास नित्य किया कर ॥१३॥ क्षौर मत कर ॥१४॥ मांस, रूखा शुष्क अन्न, बीड़ी सिगरेट और मद्यादि का सेवन न करना ॥१५॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥१६॥ गांव में निवास और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥१७॥ लघुशङ्का के विना उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श न करना, वीर्यस्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता बनने का यत्न करना ॥१८॥ तैलादि से अंगमर्दन-उबटना, अतिखट्टा इमली आदि, अतितीखा लालमिर्ची आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥१९॥ नित्य युक्ति से आहार-विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो ॥२०॥ सुशील थोड़े बोलने वाला सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥२१॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, और प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना, ये तेरे नित्य करने के और जो ऊपर निषेध किये हैं; वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥२२॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा।

[त्रयोदश विधि—भिक्षा-चरण]

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रह के माता, पिता, बहिन, भाई, मामा, मौसी,

---

लड़कों के साथ क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है।

जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाचा आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करें, उनसे भिक्षा[1] मांगे। और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी। तत्पश्चात् आचार्य उसमें से कुछ थोड़ा सा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिए रख छोड़े [सं० वि० १३१]।

तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा के उससे पृष्ठ १२२ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करावें। तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे। पश्चात् सायंकाल तक विश्राम करे और आचार्य 'सन्ध्योपासन' बालक के हाथ से करावे।

[चतुर्दश विधि—पुनः अग्निप्रदीपन, समिदाधान, अष्टाज्याहुतियां]

पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे, और निम्न मन्त्रों से समिदाधान अर्थात् समिधा प्रदीप्त करें—

ओं सुमिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्न मम॥२॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥३॥

ओं तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम[1]॥४॥

(यजुः ३।१, २, ३)

पुनः प्रदीप्त समिधा पर निम्न मन्त्रों से आठ आज्याहुति देवें—

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥१॥

---

१. ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले॥ द० स०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १ । खं० ८ । सू० २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे— इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[पंचदश विधि—ब्रह्मचारी द्वारा त्रिसमिदाधान]

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा होके पृ० २३७ में लिखे प्रमाणे "ओम् अग्ने सुश्रवः०" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे। तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड के अग्नि से अपना हाथ तपा पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे पूर्ववत्[1] मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करे (सं० वि० १३३)।

[षोडश विधि—स्थालीपाकाहुति चार]

तत्पश्चात् पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे बनाये हुए मिष्ठ भात या खिचड़ी को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे। पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में ले के उस में घी मिला निम्न मन्त्र से चार आहुति देवे।

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयाशिषꣳस्वाहा। इदं सदसस्पतये—इदन्न मम ॥१॥[2]

---

१. इस पृष्ठ में अङ्ग-स्पर्श के मन्त्र हैं। हमारा विचार है यहां पृष्ठ २३९ के 'तनूपा' आदि मन्त्रों से मुख स्पर्श होना चाहिए, वहां भी मुखस्पर्श का विधान है (यु० मी०)। हमारा भी ऐसा ही मत है। (ग्रन्थकर्ता)

२. यजु० ३२।१३॥ 'इदं···मम' मन्त्र से बहिर्भूत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥ इदं सवित्रे–इदन्न मम ॥२॥[1]
ओम् ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ इदम् ऋषिभ्यः–इदन्न मम ॥३॥[2]

[सप्तदश विधि–सोलह आज्याहुतियां]

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी निम्न मन्त्रों से चार आघारावाज्यभाग-हुति, चार व्याहृति आहुति और आठ मङ्गलाहुतियां देवे ।

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदं न मम ॥१॥
ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय–इदं न मम ॥२॥
गो० गृ० प्र० १ । ख० ८ । सू० २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये–इदं न मम ॥३॥
ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय–इदं न मम ॥४॥
ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदन्न मम ॥१॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे–इदं न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय–इदन्न मम ॥३॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः–इदं न मम ॥४॥

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥
ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४, ५ ॥

---

१. यजु० ३।३५॥ 'इदं···मम' मन्त्र से बहिर्भूत ।
२. द्र० । तीनों आहुतियों के लिये आश्व० गृ० १।२२।११,१२१४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५।१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १ । सू० ३४ । मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ।

[अष्टादश विधि—पूर्णाहुति, वामदेव्यगान]

तत्पश्चात् आचार्य के साथ उसके दक्षिण भाग में ब्रह्मचारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुभासन पर यथापूर्व बैठे हुए, निम्न तीन मन्त्र से पूर्णाहुति अर्थात् एक एक बार करके तीन आहुति देवें—

ओं सर्वं वै पूर्ण ७ स्वाहा ॥

और दोनों पृष्ठ १२२ के अनुसार वामदेव्यगान करें।

[एकोनविंशति विधि—आचार्य-अभिवादन]

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ऐसा वाक्य बोल के आचार्य का वन्दन करे और सबको नमस्कार करे—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥१॥

अमुक गोत्रोत्पन्नाऽहं भवन्तमभिवादये ॥*

[विंशति विधि—आशीर्वाद]

और आचार्य्य ऐसा आशीर्वाद दे।

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

आयुष्मती विद्यावती भव सौम्ये ॥

और सब जने भी बालक को निम्नलिखित प्रकार से ऐसा आशीर्वाद देवें—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

हे ब्रह्मचारिन् ! तू ईश्वर कृपा से विद्वान्, शरीर आत्मा के बल से सम्पन्न, कर्म कुशल, वीर्यवान्, स्वस्थ, सब विद्या पढ़ कर ही हमें पुनः मिलने घर वापिस आना ॥

हे बालिके ! त्वमीश्वरकृपया विदुषी शरीरात्मबलयुक्ता कुशलिनी, वीर्यवती सुवासिनी अरोगा सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सत्यागम्याः।

हे ब्रह्मचारिणी ! तू ईश्वर कृपा से विदुषी, शरीर आत्मा के बल से सम्पन्न, कर्म कुशल, सुवासिनी, स्वस्थ सब विद्या पढ़ कर ही हमें पुनः मिलने घर वापिस आना ॥

---

*(भो) हे आचार्य ! ···गोत्र में उत्पन्न मैं, आपको प्रणाम=दण्डवत् करता/करती हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्ठान्न का भोजन आचार्य के साथ ब्रह्मचारी करे अर्थात् पृथक् पृथक् बैठ के करें।

तत्पश्चात् गृहस्थ कार्यकर्त्ता, संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों, उनको यथायोग्य भोजन करा, तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें। और सब जने अपने अपने घर को चले जायें।

तत्पश्चात्, आगे परिशिष्ट में दिये आचार्योपदेश को तीन दिन तक ग्रहण कर, घर को छोड़कर गुरुकुल में जावें। यदि पुत्र हो, तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो, तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें। यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो, तो आचार्य बालकों को और विदुषी आचार्या स्त्री कन्याओं को····· वर्णोच्चारण शिक्षा एक महीने के भीतर पढ़ा देवें (सं. वि. १४७)। ·····इस प्रकार शिक्षा से लेकर···आयुर्वेद तक चौदह विद्याओं को ···पढ़ के महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें (सं. वि. १५३)।

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः ॥

परिशिष्ट

आचार्य का उपदेश

यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि। एके चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः, तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्'॥१॥ तैत्तिरी० आर० प्रपा० ७। अनु० ११। कं० २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो ब्रह्म भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ॥२॥ तैत्तिरी० आर० प्रपा० १० । अनु० ८ ॥[1]

अर्थ—हे शिष्य ! जो हमारे अनिन्दित पापरहित अर्थात् मिथ्याभाषणादि अन्याय अधर्माचरणरहित सत्यभाषणादि न्याय धर्माचरणसहित कर्म हैं, उन्हीं का सेवन तू किया कर, इन से विरुद्ध मिथ्याभाषणादि अधर्माचरण कभी मत करना। हे शिष्य ! जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्मयुक्त उत्तम कर्म हैं, उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हों उनका आचरण तू कभी मत कर। हे ब्रह्मचारिन् ! जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं, उन्हीं के समीप बैठना, संग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर ॥१॥

हे शिष्य ! (ऋतं) तू यथार्थ तत्त्व का ग्रहण, (सत्यं) सत्य मानना सत्य बोलना तथा सत्याचरण करना, (श्रुतं) वेदादि सत्य शास्त्रों का सुनना-सुनाना (शान्तं) अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना व उत्तम स्वभाव धारण करना, (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, (शमः) क्रोधादि के त्याग से से शान्त रहना, (दानं) विद्या आदि शुभ गुणों का दान करना; (यज्ञः) अग्निहोत्रादि और विद्वानों का सङ्ग कर, (ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ...) जितने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोकों में पदार्थ हैं उनका यथाशक्ति ज्ञान प्राप्त कर और योगाभ्यास प्राणायाम से एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना कर, ये सब कर्म करना ही तप कहाता है। इसी को तप समझ, इससे विपरीत को तप मत समझो ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ तपश्च स्वाध्या० ॥ दमश्च स्वाध्या० ॥ शमश्च स्वाध्या० ॥ अग्नयश्च स्वाध्या० ॥ अग्निहोत्रं च स्वाध्या० ॥

---

१. द्र०—स० प्र० ३ समु० तथा ऋ० वे० भा० भू० 'वेदोक्तधर्मविषय'। तीनों पुस्तकों को मिलाकर अर्थ किया है; ताकि भाव अधिक स्पष्ट हो जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः ॥ तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥३॥

तैत्तिरी० आर० प्रपा० ७ । अनु ९ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन् ! तू सत्य धारण कर, [वेदादि शस्त्रों को] पढ़ और पढ़ाया कर ।। सत्योपदेश करना कभी मत छोड़, [जैसा जाने वैसा] सदा सत्य बोल, [सत्य को मान]; पढ़ और पढ़ाया कर ।। हर्ष शोकादि छोड़ सदा प्राणायाम योगाभ्यास रूपी तप कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर ।। अपने इन्द्रियों को बुरे कामों व आलस्य से हटा अच्छे कामों में चला, विद्या का ग्रहण कर और कराया कर ।। अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा सदा न्यायाचरण व धर्मसेवन में प्रवृत्त कर और कराया कर तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर ।। अग्निविद्या के सेवनपूर्वक शिल्प विद्या को जानते हुए विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर ।। अग्निहोत्र करता हुआ, पढ़ और पढ़ाया कर ।। सत्यवादी होना ही तप है, ऐसा 'सत्यवचा' राथीतर आचार्य; न्यायाचरण में कष्ट सहना ही निश्चित तप है ऐसा 'तपोनित्य' पौरुशिष्टि आचार्य और धर्म में चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है, यह 'नाक' मौद्गल्य आचार्य का मत है ।। सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप है यही पूर्वोक्त तप है, हे शिष्य ऐसा तू जान ।।३।। इत्यादि उपदेश तीन दिन तक आचार्य करे (सं. वि. १४७-१४८) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ समावर्त्तन-संस्कार-विधिः

जब वेदों की समाप्ति हो, तब समावर्त्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। और स्नातक का अपूर्वागमन जब हो, अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूरण करके ब्रह्मचारी प्रथम बार घर को आवे, तब प्रथम उसे (पाद्यम्) पग धोने का जल, (अर्घ्यम्) मुख प्रक्षालन के लिए जल, और आचमन के लिगे जल देके प्रसन्नता प्रीतिपूर्वक शुभासन पर बैठावें, पश्चात् दही में मधु अथवा सहत न मिले तो घी मिला के, एक अच्छे पात्र में धर, विश्रान्तिनिवृत्त्यर्थं प्राशन करावें। इस प्रकार मधुपर्क विधि से युवा ब्रह्मचारी का स्वागत सत्कार करें (सं. वि. १५४)।

इसका समय ब्रह्मचर्यव्रत अभ्यास पूर्वक विद्याभ्यास समाप्त कर गृहाश्रम स्वीकार करने से पूर्व जानें। परन्तु जब विद्या, हस्त-क्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे, तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें।

विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार की विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे।

विधि—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे, उस दिन यदि आचार्य के घर में करने का निश्चय हो तो उसके घर में अथवा पिता के घर में पृ० ८-१३ में लिखे यज्ञकुण्ड आदि बना के सब शाकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे। और स्थाली-पाक बना के तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खें (सं. वि. १५५)। सुगन्धादि औषधयुक्त जलसे भरे आठ घड़े भी वेदी के उत्तर भा गमें रख लेवें।

[दधिप्राशन, क्षौरकर्म, दन्तधावन]

तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके, जटा लोम और नख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वपन अर्थात् छेदन करा के निम्न मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे—

ओम् अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजा यमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ॥*

पार. २।६।१७॥

तत्पश्चात् ब्रह्मचर्यावस्था में नित्य किये जाने वाला स्नान शीतल जल से करे और कटिवस्त्र उपवस्त्र धारण कर, दण्ड सहित यज्ञकुण्ड पर आवे।

[प्रथम विधि—ऋत्विग्वरण यज्ञ आरम्भ]

यथावत् पुनः चारों दिशाओं में आसन बिछा उन पर सब जने बैठे। पश्चात् पृ० २८ से पृ० १२० तक में लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण, आचमन अंगस्पर्श, ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें; और जितने वहां पुरुष आये हों, वे भी एकाग्रचित्त होके ईश्वर के ध्यान में मग्न होवें। तत्पश्चात् अग्न्याधान समिदाधान करके वेदी के चारों ओर उदकसेचन करके, आसन पर पूर्वाभिमुख आचार्य बैठ के आघारावाज्यभागाहुति चार तत्पश्चात् व्याहृति आहुति ४, अष्ट आज्याहुति ८, स्विष्टकृतआहुति १, प्राजापत्याहुति १, मिलकर अठारह आहुति देवें।

---

*[ब्रह्मचारी मन में ऐसी भावना करे कि हे दांतों!] (अन्नाद्याय) गृहस्थाश्रम में भोग्य [षड्रस युक्त] अन्न के उपभोग के लिये (व्यूहध्वम्) शुद्ध हो कर सन्नद्ध हो जाओ। अथवा हे विद्या समाप्त कर गृहाश्रम में प्रवेश की इच्छा रखने वाले ब्रह्मचारियों! तुम 'अन्नाद्य' के लिए, दांतों का शोधन कर उन्हें तय्यार करो। (अयं राजा सोमः) यह दांतों को साफ कर, शान्ति पहुंचाने वाला गूलर का दातुन (आ, आगमन्) मेरे दन्त-शोधन के लिये मुझे प्राप्त हुआ है। (सः) वह दातुन (मे मुखं) मेरे मुख की (च) और (यशसा) उत्तम प्रशस्त यश से (च) और (भगेन) सर्वविध ऐश्वर्य से, सौभाग्य से (प्रमार्क्ष्यते) शुद्धि करेगा। अर्थात् इसमें मेरे यश और भग दोनों की वृद्धि होगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय विधि—अग्निसंचय]

तत्पश्चात् युवा ब्रह्मचारी निम्न मन्त्र से कुण्ड की अग्नि कुण्ड के मध्य में इकट्ठा करे (सं. वि. १५६)—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।
ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।
ओम् एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।
ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।
ओम् एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्[1] ॥१॥

[तृतीय विधि—त्रिसमिदाधान]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से कुण्ड में तीन समिधा होम करे।

ओम् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य-निराकारिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥१॥ पार. गृ. २।४।३॥

[चतुर्थ विधि—अग्नितप, अङ्गस्पर्श]

तत्पश्चात् निम्न सात मन्त्रों से सात बार दक्षिण हस्ताञ्जलि अग्नि पर थोड़ी-सी तपा, उस जल से मुखस्पर्श करे (सं. वि. १५६)—

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥१॥
ओम् आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥
ओम् अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥४॥
ओं मेधां मे देवः सविता आ दधातु ॥५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आ दधातु ॥६॥
ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥७॥

पार. गृ. २।४।७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से उक्तप्रमाणे अंगस्पर्श करे।

ओं वाक् च म आप्यायताम् ॥१॥ इस मन्त्र से मुख द्वार

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥२॥इस मन्त्र से नासिका द्वार

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥३॥ इस मन्त्र-से दोनों नेत्र

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥४॥ इस मन्त्र से दोनों कान

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥५॥[1]

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे।

[पञ्चम विधि—मङ्गलाभिषेक]

पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए आठ घड़े वेदी के उत्तर भाग में, जो पूर्व से रक्खे हुए हों, उनमें से निम्न मन्त्र को पढ़, एक घड़े को ग्रहण कर, उस घड़े में जल ले के—

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदुषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ पार. २।६।१०॥

निम्न मन्त्र को बोल के स्नान करे—

ओं तेन मामभिसिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥*

पार. २।६।११॥

तत्पश्चात् उपरि लिखित (ओं ये अप्स्वन्तर०) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घड़े को ग्रहण कर उसमें से लोटे में जल लेके निम्न मन्त्र बोल के स्नान करे।

---

*(तेन) इस सुगन्धित जल से (माम्) अपने को (श्रियै) शरीर की शोभा वृद्धि के लिये (यश से) [सामाजिक] कीर्ति के लिये (ब्राह्मणे) [बौद्धिक] वृद्धि अर्थात् ज्ञानवर्धन के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) ज्ञान द्वारा उपलब्ध प्रभाव के लिये अथवा उत्कृष्ट तेज के लिये (अभिषिञ्चामि) अच्छे प्रकार से रोम रोम को सींचता हूं अर्थात् स्नान करके शुद्ध होता हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं येन श्रियमकृणुतां येनाव मृशतां सुराम् ।
येनाक्ष्यावभ्यसिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥*

पार. २।६।१२

तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपरलिखित (ओं ये अप्स्वन्तर०) मन्त्र बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे शेष छै घड़ों में से तीन घड़ों को ले के निम्न तीन मन्त्रों को बोल, उन घड़ों के जल से स्नान करे।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥ यजुः ३६ । १४, १५, १६ ॥

तत्पश्चात् आठ घड़ों में से शेष तीन घड़ों को ले के (ओम् आपो हि०) इन्हीं तीन मन्त्रों को मन में बोल के और स्नान करे।

[षष्ठ विधि—मेखला-दण्ड त्याग]

निम्न मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़े—

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

यजुः १२।१२॥

---

*हे (अश्विना) ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड में व्याप्त प्राण-अपान वायुओं ! अथवा मित्र-वरुण नाम से प्रसिद्ध जल के दो मूल घटक तत्त्वो ! (येन) जिस 'दुरित विनाशक' व 'तेजोवर्द्धक' जल के प्रभाव से (सुराम्) ब्रह्माण्ड की दिव्य शक्तियों वा पिण्ड की इन्द्रियों के प्रति (श्रियं अकृणुताम्) तुमने 'श्री' को दिया है; और (येन अव, मृशताम्) जिस जल से उन्हें गतिशील अथवा सुखकारक बनाया है; (येन अक्ष्यौ) जिस जल से नेत्रों [तथा अन्य इन्द्रियों] को (अभ्यसिञ्चताम्) इस प्लवित किया है अर्थात् वृद्धि के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सप्तम विधि—परमात्मा का उपस्थान]

तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सम्मुख खड़ा रह कर निम्न मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान स्तुति करे—

ओम् उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद् दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद् दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥* पार. २।६।१९॥

सिञ्चित किया है, ऐसा (यत् वां यशः) जो तुम्हारा प्रभाव है, (तत्) वही यश, वैसा हो प्रभावीगुण, स्नान से मेरे में भी आवे।

*यह (उद्यन्) ऊपर आकाश मार्ग में प्रकाशमान या उदय होता हुआ (भ्राजभृष्णुः) अपने प्रकाश से सब नक्षत्रों के प्रकाश को दबाने वाला। (इन्द्रः) सब प्रकाशों का अधिष्ठाता सूर्य (मरुद्भिः) अपनी किरणों से (अस्थात्) सामने विद्यमान है। (प्रातः) उषः काल में (यावभिः) गमनशील=फूटती किरणों के साथ (अस्थात्) विद्यमान होता है। हे सूर्य! (दशसनिः असि) तुम दशों दिशाओं में सेवनीय हो; (मा) मुझे (दशसनिं कुरु) दशों दिशाओं में सेवनीय इष्ट बनाओ। (आविदन्) भली प्रकार से सृष्टि को प्राप्त होने वाला तू (मा गमय) मुझे सब प्रकाशों को प्राप्त करा, ज्योतिर्मय बना॥

(उद्यन्……अस्थात्)……(दिवा) दिन के समय (यावभिः) ……। तू (शतसनिः) सौ वर्ष तक सेवनीय है; मुझे भी सौ वर्ष तक सेवनीय, सबका इष्ट बना।

(उद्यन्……अस्थात्)……(सायं) सायंकाल के समय……। तू (सहस्रसनिः) सहस्रों पदार्थों से सेवनीय है; मुझे भी सहस्र-शक्तियों से युक्त बना।

परमात्मपरक अर्थः—

सर्वदा ऊपर ले जाने वाला अर्थात् उन्नायक अपने तेज से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टम विधि—नवीन वस्त्रधारण, अलङ्करण]

तत्पश्चात् सुगन्धि द्रव्य शरीर पर मल के, साधारण शुद्ध जल से स्नान कर, शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्धयुक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे। तत्पश्चात् चक्षु मुख और नासिका के छिद्रों का निम्न मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥*

पार. २।६।१८॥

सूर्यादि के तेज को परिभूत करने वाला [हिरण्यगर्भ], सब ऐश्वर्यों को देने वाला अथवा सब दिव्य भौतिक शक्तियों का निधान परमात्मा अपनी (मरुद्भिः) शक्तियों से (अस्थात्) सब चराचर जगत् में विद्यमान है। प्रातः सवन, माध्यंदिनसवन और सायंसवन के समय (यावभिः) अपनी चेष्टाओं से स्थित रहता है अथवा जीवन के प्रभात, मध्याह्न व सन्ध्या में भी अपनी शक्तियों के साथ सब में रहता है अर्थात् प्रातः मध्याह्न सायं तीनों समयों में अपने स्वाभाविक ज्ञान बलक्रिया से एकरस विद्यमान रहता है।

हे परमात्मन्! तुम (दशसनिः) दशों दिशाओं में अथवा दश इन्द्रियों द्वारा सेवनीय हो, मुझे भी 'दशसनि' बनाओ।

हे जगदीश्वर! तुम (शतसनिः) सैकड़ों पदार्थों से सेवनीय अथवा सौ वर्ष तक सेवनीय=इष्टदेव हो, मुझे भी 'शतसनि' बनाओ।

हे सर्वेश्वर! तुम (सहस्रसनिः) हजारों शक्तियों से सन=युक्त हो, मुझे भी 'सहस्रसनि' बनाओ।

हे 'अग्नि-वायु-आदित्य' नामों से प्रसिद्ध भगवान्! (आ, विदन्) शुभ-अशुभ अथवा शारीरिक व मानसिक चेष्टाओं को पूरी तरह से जानने वाले तुम (मा गमय) मुझे अपने तेज को प्राप्त करा।

*हे आपः! जल! तू (मे) मेरे (प्राणापानौ) प्राणवायु व आपन वायु को (तर्पय) तृप्त करो; (ये चक्षुः तर्पय) मेरी आंखों को तृप्त करो; (ये श्रोत्रं तर्पय) मेरे कानों को तृप्त करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् अपसव्य और दक्षिणमुख होके निम्न मन्त्र से जल भूमि पर छोड़े—

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥१॥ पार. २।६।१७॥

पश्चात् सव्य होके निम्न मन्त्र का जप करे—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳसुवर्चा मुखेन ।
सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥२॥ पार. २।६।१९॥

निम्न मन्त्र से सुन्दर अति श्रेष्ठ वस्त्र धारण करे—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥३॥
पार. २।६।२०॥

निम्न मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करे—

---

१. (पितरः) हे पालक जलो ! तुम (शुन्धध्वम्) मुझे शुद्ध करो अथवा पालक पूजनीय सज्जन पुरुषों! आप मेरा शुद्धिकरण कीजिए; ब्रह्मचर्य निवास के समय प्राप्त कठिन नियमाचारों को सुसंस्कृत बनाइये ।।

२. हे पितरो ! आपके सामर्थ्य व सहाय से (अहं) मैं (अक्षीभ्यां सुचक्षाः) जल द्वारा स्वच्छ आंखों से मैं दर्शनीय आकृति वाला (मुखेन) और मुख से मैं (सुवर्चा) उत्तम तेज वाला अर्थात् 'तेजोमय सौम्य मूर्त्ति' और (कर्णाभ्यां) कानों से (सुश्रुत्) अच्छा सुनने वाला (भूयासम्) होऊं ।

३. हे पितरो ! (परिधास्यै) परिधान अर्थात् वस्त्रों से अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये (यशोधास्यै) जीवन में यश प्रतिष्ठा धारण करने के लिये और (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (जरदष्टिः अस्मि) वृद्धावस्था पर्यन्त जीवित रहने के संकल्प वाला हूं । तुम्हारे अनुग्रह से (पुरूची शतं) सब प्रकार के सुखों की पूर्त्ति करने वाली सौ शरद् ऋतुओं तक (जीवामि) जीता रहूं । और (रायस्पोषं) ज्ञान और धन की पुष्टि को (अभि संव्ययिष्ये) चारों ओर से सम्यक् प्रकार से धारण करूंगा अर्थात् वृद्धावस्था पर्यन्त ज्ञानवान् धनवान् रहकर मैं सौ वर्ष की आयु भोगूं ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च माविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥४॥
पार. २ ६।२०॥

निम्न मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला हाथ में ले—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ।
ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥५॥
पार. २।६।२३॥

निम्न मन्त्र से धारण करे—

ओं यद्यशोप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु ।
तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥६॥
पार. २।६।२४॥

---

४. हे पितरो ! [गृहाश्रम में प्रवेश की इच्छा से गुरुकुल से लौटे] (मा) मुझे (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवीवत् स्थित मेरे पिता-माता वा कुटुम्बी स्त्री-पुरुष (यशसा) यश प्रतिष्ठा के साथ (प्रति-पद्यताम्) प्राप्त हों, मिले; (इन्द्राबृहस्पती) समाज के धनी और विद्वान् अथवा शासक और उपदेशक, मुझे यश से मिलें; (च) और (भगः) ऐश्वर्यशाली व तेजस्वी पुरुष (मा) मुझे (यशः अवि-न्दत्) यश प्राप्त करावे; अथवा यश और ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हों। और आप ऐसा आशीर्वाद दें कि (यशः) यश ही यश (मा प्रति, पद्यताम्) सदा मेरी ओर बढ़ता रहे, मेरी कीर्ति सदा बढ़ती रहे अर्थात् चिरस्थायी यश मुझे मिले। अथवा यश मेरे सब कामों को प्रतिपन्न करे; मैं जो भी काम करूं, मुझे यश ही यश मिले ॥

५. (जमदग्निः) उत्तम दृष्टि वाला सत्पुरुष (याः) जिन पुष्प मालाओं को (श्रद्धायै) श्रद्धा भाव के धारण के लिए (मेधायै) धारणावती बुद्धि के [वर्णन के] लिए (कामाय) कामना या संकल्प [की पूर्त्ति] के लिये (इन्द्रियाय) इन्द्रियों [की प्रसन्नता] के लिए (आहरत्) लाया है या उसने ग्रहण किया है, (ताः) उनको (अहं) मैं (यशसा च भगेन च) यश के साथ और ऐश्वर्य के साथ (प्रति-गृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

६. हे पितरो ! (यत्, यशः) जिस यश अर्थात् कीर्त्ति-प्रसन्नता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में ले के निम्न मन्त्र से धारण करे—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आ गात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ॥ ऋक् ३।८।४ ॥

इसके पश्चात् अलंकार ले के निम्न मन्त्र से धारण करे—

ओम् अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥१॥

पार. २।६।२६॥

और निम्न मन्त्र से आंख में अंजन करे—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥२॥

पार. २।६।२७॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से दर्पण में मुख अवलोकन करे—

को (इन्द्रः अप्सरसां[1] [मध्ये]) सूर्य ने अपनी किरणों में अथवा ऐश्वर्य सम्पन्न शासक ने अपने क्रियादक्ष अधिकारियों में अथवा जीवात्मा ने अपनी इन्द्रियों या प्राणों में (विपुलं पृथु) अधिक व विस्तृत (चकार) किया है, तेन उस 'विपुल पृथु' के साथ (संग्रथिताः) सम्यग् प्रकार से गूंथी गई इन पुष्पमालाओं को (सुमनसः [कृते]) उत्तम मन की प्रसन्नता के निमित्त (आ बध्नामि) कण्ठ में धारण करता हूं। तुम्हारे आशीर्वाद और परमात्मा की अनुकम्पा से (मयि यशः) यह मेरे अन्दर यश को धारण करावे ॥

१. हे अलङ्कार ! आभूषण ! तू (अलङ्करणमसि) तू शोभा देने वाला है। परमात्मा व पितरों की अनुकम्पा से मेरे पास (भूयः) बहुत अथवा पुनः (अलङ्करणं) रत्नादि अलंकार भण्डार (भूयात्) हो।

२. हे अञ्जन ! वस्तुत. तू (वृत्रस्य)[2] नेत्रों के आवरक= आच्छादक अर्थात् पलक का (कनीनकः) पुतली है; अर्थात् पुतली की तरह देखने का साधन है। तू (चक्षुर्दा असि) तू दर्शन शक्ति का दाता अर्थात् बढ़ाने वाला है; (मे चक्षुः देहि) तू मुझे 'दृष्टि' दे।

---

१. अप्सरसः सूर्यरश्मयः। अप्सरसो वै प्राणा इन्द्रियाणि वा अप्सु प्रजासु कर्मसु वा सरन्ति व्याप्नुवन्तीत्यप्सरसः कर्मचारिणः शासनाधिकारिण इत्यर्थः। २. वृञ् आवरणे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं रोचिष्णुरसि ॥३॥ पार. २।६।२८॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से छत्र धारण करे—

ओं बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥४॥ पार. २।६।२९॥

पुनः निम्न मन्त्र से उपानह पादवेष्टन पगरखा और जिस को जोड़ा भी कहते हैं, धारण करे—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ॥५॥ पार. २।६।३०॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करे।

ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्रभ्यस्परिपाहि सर्वतः ॥६॥

पार. २।६।३१॥

---

३. हे दर्पण ! (रोचिष्णुः असि) तू रोचक अर्थात् मुखादि का प्रकाशक है।

४. हे छत्र ! तू (बृहस्पतेः) बड़े राजा, आचार्य ज्ञानी विद्वान् का (छदिः) अच्छादक अर्थात् 'मान का साधन' है (माम्) मुझे (पाप्मनः) पतनशील कर्मों की [मारसे] (अन्तर्धेहि) अन्दर करले, बचाने का साधन बन; परन्तु (तेजसः यशसः) पुरुषार्थ पराक्रम और कीर्त्ति-प्रतिष्ठासे (मा अन्तर्धेहि) न बचा अर्थात् तेरे नीचे मुझे 'तेज व यश' मिले और 'पाप का प्रभाव'='पाप की गर्मी' मुझे न लगे।

५. हे उपानहो ! ऋत व सत्य तथा श्रद्धा व मेधा रूप जीवन की गतियो ! तुम (प्रतिष्ठे) मल शूल आदि से [चरित्र को बचा] मेरी [गति विधि] की ठीक स्थिति करने वाले हो। (विश्वतः) सब ओर से अथवा 'चुपचाप मेरे आचरण में प्रविष्ट हो जाने वाले' दुरित=शूलों से (मा पातम्) मेरी रक्षा करो॥

१. हे दण्ड! (विश्वाभ्यः) मानव-जीवन व्यवहार में प्रविष्ट सब (नाष्ट्रभ्यः) राक्षस अर्थात् दुष्टादिकों से अथवा दुष्ट भावों से (सर्वतः) सब ओर से, सब बाधाओं में (मा परिपाहि) मेरी सम्पूर्णतः रक्षा करो।

दण्ड=प्रायश्चित्त की भावना। यह मनुष्य को पापों से बचाती है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[नवम विधि—यज्ञसमाप्ति, पूर्णाहुति]

तत्पश्चात् यज्ञवेदी पर आकर पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख बैठे और अग्नि प्रदीप्त कर, पृ० १०६ से १२० पृ० तक लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार, स्विष्टकृत् होमाहुति एक, प्राजापत्याहुति एक, पावमानी आज्याहुति चार, 'त्वं नो०' को मंगल अष्टाज्याहुति, सब मिला बाईस आहुतियां देवे।

तत्पश्चात्—

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ॥

मन्त्र से तीन पूर्णाहुति देकर, महावामदेव्यगान करे।

[दशम विधि—आचार्योपदेश]

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छैत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः। एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषद्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैदुपास्यम् ॥

तैत्तिरीय० प्रपा० ७। अनु० ११। कं० १।२।३।४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[1]इस प्रकार वेद विद्या को पढ़ाकर आचार्य [व आचार्याणी] अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य व शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि "तू सदा सत्य बोल; धर्माचरण कर; स्वाध्याय से प्रमाद न करना अर्थात् प्रमादरहित होके पढ़-पढ़ा, सुन सुना पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं व आचार को ग्रहण कराने वाले आचार्य के लिए दक्षिणारूप प्रिय धन देकर [अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से[2]] विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर; सत्य मानने सत्य करने सत्य कहने से प्रमाद=हिचकिचाहट न करना अर्थात् सत्य को कभी मत छोड़; धर्माचरण से प्रमाद न करना, न डगमगाना अर्थात् धर्म का त्याग मत कर; प्रमाद से आरोग्य व चतुराई को मत छोड़; प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करने कराने में प्रमाद न करना; स्वाध्याय और प्रवचन में कभी आलस्य न करना; देव अर्थात् आप्त धार्मिक विद्वान् व पितर अर्थात् मातापितादि वृद्धजनों की सेवा तथा अभिवादन में प्रमाद न करना [क्योंकि ऐसा करने से आयु, विद्या, यश, बल की प्राप्ति होती है[3]]।

माता को 'जन्मदात्री' देवता समझ उसका सेवा-सम्मान करने वाला पुत्र बन; पिता को 'पालक पोषक' देवता जान उसका आज्ञाकारी पुत्र बन; आचार्य [गुरु उपाध्याय] को 'ज्ञानदाता' देवता मान उसके अनुशासन में रहने वाला हो और इसी प्रकार अतिथि संन्यासी आदि की सेवा सदा किया कर।

परन्तु, जो हम 'देव ऋषि-पितरों' के अनिन्दित सत्यभाषणादि धर्मयुक्त कर्म हैं, तू उन्हीं का सेवन, उन्हीं के अनुसार आचरण किया कर, उनसे भिन्न निन्दित मिथ्याभाषणादि अधर्म युक्त कर्मों का सेवन कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् उत्तम सत्य न्याययुक्त आचरण हैं, उन्हीं का आचरण कर और जो पापाचरण हों, उनकी प्रशंसा कभी न करना।

हमारे मध्य में भी जो उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के पास बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर अर्थात् 'धर्माधर्म' का निर्णय जाना कर।

---

१. यह अर्थ स. प्र. समु. ३ पृ. ६३, ६४ के आधार पर है।

२. द्र. स. प्र. समु. ४ पृष्ठ ९५॥ ३. द्र. मनु. २।१२१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सब प्राणियों की हितकामना के निमित्त] श्रद्धा से देना; अश्रद्धा से देना; शोभा अर्थात् गौरव बुद्धि से देना; लज्जा से देना; भय अर्थात् लोकलाज से भी देना और प्रतिज्ञा व नियम से देना। [अर्थात् जैसे भी हो, लोककल्याण के निमित्त यथाशक्ति देते रहना]।

और फिर जब कभी तुझको 'कर्त्तव्याकर्त्तव्य' कर्म के विषय में, 'सदसत्' रूप वृत्त=शील के सम्बन्ध में और इसी प्रकार उपासना व ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो, तो जो 'राष्ट्र व समाज में' वे समदर्शी या उत्तम विचारशील पक्षपात रहित योगी=वान-प्रस्थ संन्यासी अयोगी=सद्गृहस्थ आर्द्रचित्त धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों, जैसे वे धर्म मार्ग में वर्तें, वैसे तू भी उस कर्म व वृत्त में वर्त्ता कर।

हे वत्स! हमारा यही आदेश आज्ञा है; यही उपदेश है और यही वेद की उपनिषत् अर्थात् जीवन में सुख देने वाले ज्ञान का यथार्थ सार है। यही हमारा अनुशासन=अन्तिम शिक्षा है। तुझे इसी प्रकार जीवन में वर्त्तना चाहिए और अपना चाल-चलन सुधारना चाहिए।

[एकादश विधि—आचार्य-सत्कार]

यदि समावर्त्तन संस्कार आचार्य के गृह पर सम्पन्न हुआ हो, तो उपरोक्त सब क्रिया किये पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि, जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे, उसको बड़े मान्य प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें। घर पर ला के उनके पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार पृ० २५६ में लिखे प्रमाणे मधुपर्क विधि से करें।

पुनः उस संस्कार में आये हुए आचार्य ऋत्विज् आदि को उत्तम अन्नपानादि से सत्कार पूर्वक भोजन कराके और ब्रह्मचारी और उसके माता पिता, आचार्य को उत्तम-आसन पर बैठा, पूर्वोक्त पृ० २५६ में लिखे प्रकारे मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र, गोदान, धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति दे के, सब के सामने आचार्य के जो कि उत्तम गुण हों, उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सब को सुनावे—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनो भद्रजनो ! इन महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है, जिसने मुझको पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है, उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसके बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे, नमस्कार कर, प्रार्थना करता हूं कि जैसे आपने मुझको उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के कृतकृत्य किया, उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे। और जैसे आपने मुझको विद्या दे के आनन्दित किया है, वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूंगा, और आपके किये उपकार को कभी न भूलूंगा। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ानेहारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सबको सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ पुरुषार्थी उत्साही करे, कि जिससे इस परमात्मा की सृष्टि में उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभावों को करके धर्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर कराके, सदा आनन्द में रहें ॥

तत्पश्चात् 'धार्मिक, सामाजिक ऋत्विजों को यथायोग्य सत्कार कर दक्षिणा दें। तथा कार्यार्थ आये हुए इष्टमित्र और सम्बन्धियों को भी उत्तम भोजन करा यथायोग्य सत्कार करके पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नतापूर्वक विदा करें।

इति समावर्त्तनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ विवाह-संस्कार-विधिः

विवाह उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभगुण, कर्म, स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त होके···सन्तानोत्पत्ति और अपने अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री पुरुष का सम्बन्ध होता है ।। (सं. वि. १६२) ।।

जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन···स्त्री का पाणि ग्रहण, जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो, करना चाहिए। (सं. वि. १६३) ।।

[विवाह निश्चय से पूर्व]वधू और वर की आयु, कुल, वास्तव्य स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करे,···दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले होने चाहिए। स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून डयोढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे। परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिए। (सं. वि. १६३) ।।

कुछ भी न लेकर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण आर्ष विवाह है। (सं. वि., टिप्पणी १६७) ।।···मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती है, उनका त्याग और जिन उत्तम विद्वानों से उत्तम प्रजा होती है उनका वर्ताव=प्रचलन किया करे ।।

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाव वाले, कन्या के सदृश रूप लावण्यादि गुणयुक्त वर को ही चाहें ।···उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना,··· ताकि दोनों अति प्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें ।। चाहे मरण पर्यन्त पिता के घर में विना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे। वर तथा कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें। जब कन्या विवाह करने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से तीन वर्ष को छोड़ के चौथे वर्ष में विवाह करें। (सं. वि. १६९)॥

जो 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी' इत्यादि श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा उनको नष्ट-भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं, वे अपने कुल का मानों सत्यानाश कर रहे हैं। इसलिए यदि शीघ्र विवाह करें तो ··१६ वर्ष से न्यून कन्या और १५ वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें॥ इसके आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उनको आनन्द अधिक होगा॥ (सं. वि. १६७-१७०)।

(प्रश्न) विवाह निकटवासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिये।

(उत्तर) जितना दूर देश में विवाह होगा उतना ही उनको अधिक लाभ होगा।

(प्रश्न) अपने गोत्र व भाई बहनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होना चाहिए ?

(उत्तर) एक दोष यह है कि इनके विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती; क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी प्रत्यक्ष में नहीं। और बाल्यावस्था के गुण दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते।

दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण (रूप से) नहीं होती।

तीसरा दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है, निकट से नहीं (सं. वि. १७०)।

जो स्त्री माता की ६ पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही द्विजों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों) के लिये विवाह करने में उत्तम है। (सं. वि. १६६)।

"जो कन्या माता की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र भी न हो, उस कन्या से विवाह करना चाहिए।"

"इसका प्रयोजन यह है कि···जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। यह बात निश्चित है। जैसे किसी ने मिश्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है और जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र व माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिए।"

"एक—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं, परस्पर क्रीड़ा लड़ाई और प्रेम करते; एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नंगे भी एक दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।"

"दूसरा—जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र के पितृकुल व मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।"

"तीसरा—जैसे दूध में मिश्री व शुंठ्यादि औषधियों के योग होने से उत्तमता होती है, वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृकुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

"चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खानपान के बदलने से रोगरहित होता है वैसे ही दूरस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।"

"पांचवें—निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने से सुख दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूरदेशस्थों में नहीं। और दूरस्थों के विवाह में दूर दूर प्रेम की डोरी लम्बी बंध जाती है। निकटस्थ विवाह में नहीं।"

"छठे—दूर दूर देश में वर्त्तमान (अपने देश में अनुपलब्ध) अन्य पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह में नहीं।"

"सातवें—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है क्योंकि जब जब कन्या पितृकुल में आवेगी तब तब इसको कुछ देना ही होगा।"

आठवां—कोई निकट होने से एक-दूसरे को अपने-अपनें पितृ-कुल के सहाय का घमण्ड और जब कभी कुछ भी दोनों में वैमनस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होगा, तब झट ही कन्या पिता के कुल में चली जावेगी। एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि ऐसा प्राय स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है।...इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र और माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं। (स. प्र.। चतु. समु. १७०।१७१)।

(प्रश्न) विवाह अपने अपने वर्ण में होना चाहिए वा अन्य वर्ण में भी ?

(उत्तर) अपने अपने वर्ण में। (सं. वि. १७४)।...यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करे। (सं. वि. १६५)।...परन्तु वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार होनी चाहिए, जन्ममात्र से नहीं। जो विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादि दोष रहित विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे वे ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्याय-करित्वादि जिसमें हों वे क्षत्रिय क्षत्रिया। विद्वान् होके कृषि पशु-पालन व्यापार देशभाषाओं में चतुरत्वादि गुण जिनमें हों वे वैश्य वैश्या।...जो विद्याहीन मूर्ख हों वे शूद्र शूद्रा कहावें। इसी क्रम से विवाह होना चाहिए। अर्थात् ब्राह्मण (वर्ण) का ब्राह्मणी, क्षत्रिय (वर्ण) का क्षत्रिया, वैश्य (वर्ण) का वैश्या और शूद्र (वर्ण) का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द आता है, अन्यथा नहीं।। (सं. वि. पृ. १७४)। (स. वि. चतु. समु.)। और तभी अपने अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य होगी।। (स. प्र. चतु. समु. पृ० १८२)।। आर्यावर्त देश में जब तक ऐसी वर्ण व्यवस्था अर्थात् पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी। अब भी ऐसा ही होना चाहिए जिससे आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो कर आनन्दित होवे। (स. वि. पृ. १७५)।।

जब विद्या, हस्तक्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करे। विवाह के स्थान दो हैं, एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने .....समावर्त्तन विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे (स. वि. १५५)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुमार अविवाहित रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त (विवाह योग्य) समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है (तुलना—सं. वि. १६९)।

(प्रश्न) विवाह करना माता पिता के आधीन होना चाहिए वा लड़का लड़की के आधीन रहे।

(उत्तर) लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता से विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है।·····(स. प्र. चतुर्थ समु. पृ० १७५)।

"जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में आनन्द लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है। जहां विरोध कलह होता है वहां दुःख दरिद्रता और निन्दा निवास करती है। इसलिए जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है, वही उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इतना मेल नहीं होता, तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता है।(स. प्र. चतु. समु. पृ.१७६)

"जो ब्रह्मचर्य धारण, विद्या उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये बिना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट-भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते।···बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश, उससे अधिक स्त्री का नाश होता है। (स. प्र. चतुर्थ समु. पृ. १७७)।

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण युवा होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने सदृश कन्या से विवाह करें, वैसे [ही] कन्या भी अखण्ड-ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवति हो, अपने तुल्य पूर्ण युवावस्था वाले पति को प्राप्त होवे (सं. वि. १३५।१३६)।

ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है।...सब स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिससे जिसकी विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना उत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न कराके बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावेंगे...वे महा दुःखसागर में क्योंकर न डूबेंगे? (सं. वि. १७४)।

इसलिए यही निश्चय रखना चाहिए कि कन्या और वर के विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए। क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है। परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या कुमारों का प्रतिबिम्ब=प्रतिकृति=फोटो उतार कर कन्यायों की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिलिपि भेज देवें। जिस जिस का रूप मिल जावे उस उस के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें। जब दोनों के कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस-जिस के साथ जिस-जिस का विवाह होना योग्य समझें उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इस इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब (उन दोनों का समावर्त्तन एक ही समय में होवे) जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों व कन्या के माता-पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिख के एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाये तब से उनके खानपान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए। जिससे उनका शरीर जो पूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट मे दुर्बल होता है वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो जाए। (स. प्र. ४)।

अब वधू वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें:—दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्यमधुरभाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने की निर्भयता, उत्साह, कपट-द्यूत चोरी मद्यमांसादि दोषों का त्याग, गृह कार्यों में अति चतुरता, ...(आदि को प्रत्यक्ष रूप से देख कर जानने का प्रयत्न करें।) पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें (स. वि. १७५।१७६)।

जहां विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे। पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा कर के दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष! इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ-स्वरूप महत्तत्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है। जैसे प्रकृति और पुरुष के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी स्त्री और मैं कुमार पुरुष (परस्पर दोनों में) विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं। उसको (मैं) यह कन्या और वर प्राप्त होवें। सदा अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें। सं. वि. १७६-१७७ ॥

....."स्त्री पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान, भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री-पुरुष प्राप्त होवें। सं. वि. १७१-१७२ ॥

....."वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्ध तक स्त्री का शरीर होना चाहिये (सं. वि. १७६)।

.....(पति-पत्नी) जब-जब प्रातः सायं या परदेश से आकर मिले तब-तब नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार करें। स्त्री पति के चरण-स्पर्श, पादप्रक्षालन, आसनदान करे तथा दोनों प्रेम बढ़ाने हारे वचनादि व्यवहारों से वर्त्त कर आनन्द भोगें। सं. वि. १७२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस देश वा समाज में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण रहित बाल्यावस्था में विवाह, तथा परस्पर अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहण-पूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगाड़ से बिगाड़ हो जाता है। सं. वि. पृ. १७३ ॥

"कुछ आवश्यक निर्देश"

(क) विवाह के सात अङ्ग

सम्पूर्ण विवाह-संस्कार के सात अङ्ग हैं—

१. मङ्गल स्नान विधि—विवाह-संस्कार से कुछ दिन पूर्व वर-वधू को उबटना मल कर प्रतिदिन स्नान करना चाहिये। इससे शरीर स्वच्छ और चेहरा कान्तिमय हो जाता है। पुनः जिस दिन विवाह-संस्कार होना निश्चिय हो उस दिन संस्कार कृत्य प्रारम्भ होने से कुछ समय पूर्व सुगन्धित जल से सब अङ्गों को अच्छी प्रकार मर्दन करके स्नान करना चाहिये। इसी समय वधू वर दोनों को हाथ पैर के नाखून कटवा देने चाहिये। यह क्रिया वधू वर दोनों के घरों में पृथक्-पृथक् रूप से होनी चाहिये।

२. मण्डप-विधि—जिसको साधारण बोलचाल में मण्डवा कहते हैं। यह वर के घर वर-पक्ष के लोग और कन्या के घर बारात आने से पूर्व कन्या-पक्ष के लोग करते हैं। इसमें ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना, शान्तिकरण, स्वस्तिवाचन, सामान्य यज्ञ किया जाता है।

३. मधुपर्क विधि—जो कन्या के द्वार पर वर के स्वागत के रूप में की जाती है। इसी को द्वाराचार भी कहते हैं।

४. पाणिग्रहण विधि—इसके दो भाग हैं। प्रथम पूर्व विधि अर्थात् मूलविवाह विधि जिसमें कन्यादान; वस्त्रदान; हवन के सामान्य मन्त्रों के अतिरिक्त राष्ट्रभृत् जया होम अभ्यातन होमादि द्वारा यज्ञ; पाणिग्रहण; शिलारोहण; लाजाहोम–मङ्गल प्रदक्षिणा; सप्तपदी; ग्रन्थिबन्धन, हृदयस्पर्श, सूर्यावलोकन आदि सम्मिलित हैं। द्वितीय उत्तर विधि अर्थात् जिसमें प्रधान होम; ध्रुवदर्शन; अरुन्धतीदर्शन; वरवधू सहभोजनादि किये जाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५. कन्या प्रस्थान—विवाहानन्तर कन्या के पहली बार पिता के घर से चलने के समय का कृत्य।

६. वधू स्वागत—वर के विवाहानन्तर वधू के साथ प्रथम बार घर लौटने पर किये जाने वाला कृत्य। उस समय सामान्य यज्ञ कुछ विशेष मन्त्रों सहित किया जाता है।

७. चतुर्थी विधि=गर्भाधान—यह भी विवाह का एक मुख्य अङ्ग हैं। इसके लिये पृथक् एक संस्कार है; जो कि प्रारम्भ में पूरा-पूरा दिया गया गया है।

(ख) विवाह का समय

काल—सुविधा के अनुसार। विशेष कर ऐसा समय जब वर्षा आदि का भय न हो और ऋतु अच्छी हो बहुत गर्मी या बहुत सर्दी न हो परन्तु अत्यन्तावसर पड़ने पर 'सार्वकालमेके विवाहम्' (आश्व. गृ. सू.) सब समयों में किया जा सकता है।

वेला=मुहूर्त्त—दिन में किसी समय या पहर रात गये तक सुभीते के अनुसार। हमारी सम्मति में प्रातः ७ से १० तक या सायं ५ से ७ बजे तक पूर्व विधि करके रात्रि ९ के बाद ध्रुव उदित होने पर उत्तर विधि करनी चाहिये। ऐसा होने पर दोनों विधियां एक साथ ही की जा सकती हैं।

मध्याह्न के समय या आधी रात से प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त तक विवाह-संस्कार कराना ठीक नहीं। इससे लोगों को बहुत कष्ट होता है तथा संस्कार का प्रयोजन व भाव ज्ञात नहीं होते।

(ग) पुरोहित

प्रत्येक गृहस्थ यजमान के लिये एक पुरोहित होना चाहिए। वर पक्ष वालों की तरफ से एक, और वधूपक्ष वालों की तरफ से दूसरा। क्योंकि मुख्य विवाह-संस्कार के अतिरिक्त, मण्डप विधि कन्या प्रस्थान, वधू स्वागत आदि विधियां दोनों घरों में पृथक्-पृथक् सम्पन्न होती हैं।

विवाह-संस्कार के आदि में ऋत्विग्वरण के समान तथा अन्त में संस्कार समाप्ति पर यजमान का यह कर्त्तव्य है कि वह आचार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा पुरोहित को द्रव्य, वस्त्र दानादि से सत्कृत करे। क्योंकि ...."जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र आर्थिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं, उनकी अचल कीर्ति..." (द्र./ ऋ. द. यजुः भाष्य ७।४६ तथा १८।४२ ॥

(घ) संस्कार-स्थान व यज्ञमण्डप

विवाह-संस्कार वधू के घर में होना सर्वोत्तम है। यदि वधू के घर में होने की सुविधा न हो तो वर के घर में या किसी सामूहिक प्रार्थना मन्दिर आदि पवित्र स्थान में किया जाना चाहिये।

(ङ) कुछ विधियों की संक्षिप्त व्याख्या

१. मण्डप विधि क्या है ? वास्तविक विवाह कृत्य प्रारम्भ होने से अर्थात् मधुपर्क विधि से पूर्व, वधू वर दोनों घर में पृथक्-पृथक् रूप से हमारे सनातनी पौराणिक महानुभाव विघ्नेश्वरपूजा या गणेशपूजादि कृत्य करते हैं। कोई भी शुभकार्य क्यों न हों, इसके विना आरम्भ नहीं किया जाता है। यह वेद-प्रतिपादित विधि नहीं है, इसी लिये वेदों में 'गणेश-पूजा' का नाम तक भी नहीं। तथा वेदानुकूल चलने वाले, षोडश संस्कारों से विधि विधान के परिचालक गृह्य सूत्रादि में भी इसका विधान न होने से यह त्याज्य हैं।

वस्तुतः 'मण्डप विधि' के द्वारा कर्म की निर्विघ्न समाप्ति के उद्देश्य से ईश्वर-पूजा ही की जाती है। इसमें सर्व प्रथम, ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना, तदनन्तर मानव मात्र के व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक स्वस्ति शान्ति की शुभ कामना और सब प्रकार के भयों से निर्भय होने का दृढ़ संकल्प है। उसके पश्चात् यज्ञ द्वारा ईश्वर-पूजा व वायु की शुद्धि के लिये अग्नि होत्र किया जाता है।

२. मधुपर्क क्या है ? संस्कारविधि में सर्वाङ्ग पूर्ण है। इसमें विवाह के भिन्न-भिन्न समस्त अङ्गों का विधि पूर्वक वर्णन है। इसे पूरी तरह न जान कर कई विद्वान् ऐसा समझते हैं कि संस्कारविधि में 'द्वार-पूजा' अर्थात् वधू के घर बारात के आने के समय के कृत्य के लिये ले कोई भी विधि निर्दिष्ट नहीं है। कुछ तो कराना ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहिये। इसलिये वे अपनी ओर से हवन आदि क्रिया मात्र करा देते हैं। यह ठीक नहीं। वास्तव में मधुपर्क विधि ही द्वार-पूजा या द्वाराचार की विधि हैं, जिसमें वधू और कार्यकर्त्ता दोनों वर और बरातियों का स्वागत करते हैं।

(च) संस्कार कैसे करें ?

पुरोहित को चाहिये कि वह समस्त विधियां, संस्कार की करे। अपनी तरफ़ से घटाने=बढ़ाने का प्रयत्न न करे। उतना ही कहे, जो मन्त्रों से अभिप्रेत है और देशकालानुसार है। मन्त्र पढ़कर उसका संक्षिप्त मन्त्रार्थ जो पुस्तक में दियाहैं, उसे वर-वधू द्वारा बुलवा दे। यदि वे दोनों पढ़ें हों, तो उनको पुस्तक दे देवें और उन्हीं से पढ़वावे। वर-वधू को चाहिये कि दोनों धीरे-धीरे साथ-साथ मन्त्रों को बोलें।

(छ) नाम परिवर्त्तन व यज्ञोपवीत

यदि दोनों में से किसी का नाम बदलना हो तो अपने घर में ही मण्डप विधि के समय बदल लेना चाहिए। यदि अब तक दोनों या दोनों में से किसी एक का उपनयन न हुआ हो तो विवाह से पूर्व मण्डपविधि के समय वह भी कर लेना चाहिए।

(छ) अभ्यागत सत्कार

विवाह महोत्सव में निमंत्रित मित्र परिजन बन्धु बान्धवादि का यथायोग्य सत्कार करना तथा उनके भोजन खानपानादि का यथायोग्य उत्तम प्रबन्ध करना तो कार्यकर्त्ता यजमान का आवश्यक कर्त्तव्य है।

परन्तु ऐसे शुभावसरों पर संस्कार के मध्य में ही पान सुपारी वा कोई पेय दिया जाना व संस्कार कृत्य तथा भोजन के अनन्तर बीड़ी सिगरेटादि देने का जो फैशन 'अभ्यागत सत्कार' का आवश्यक चिह्न बनता चला जा रहा है, वह सर्वथा अनुचित है और आर्य संस्कृति के प्रेमियों को इनका त्याग करना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाग्दान विधि[1] —विवाहसंस्कार का प्रारम्भ

जब वेदों की समाप्ति हो चुके अर्थात् विद्या हस्त-क्रिया ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होने पर समावर्त्तन यथाविधि कर, गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें।[2] (सं. वि. १५४; १५५)।

पश्चात् दोनों पक्षों के पितर अर्थात् माता-पिता निकट सम्बन्धी आदि जिन ब्रह्मचारिणी=कन्या व ब्रह्मचारी=पुरुष के गुण-कर्म-स्वभाव-रुचि व आयु, परस्पर मेल खाते हों, उनके सम्बन्ध का निश्चय करें।

वाग्दान या वाङ्निश्चय तथा विवाह के दो ठिकाने हैं। एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकानें 'वाग्दान-विधि' करनी चाहिये। यह विधि पूरा किये पश्चात् 'विवाह करें (सं. वि. १५५)।

वाग्दान की प्रथम पद्धति (वैदिक)

[प्रथम विधि—वधू-वर द्वारा स्वीकृति]

वाग्दान का दिन व समय तथा आचार्य या स्वगृह जिस स्थान पर करना हो, उस स्थान का निश्चय हो जाने पर, दोनों पक्षों के उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके, [सत्यार्थ-प्रकाश चतुर्थ समु. में लिखे प्रमाणे] स्त्री व पुरुष दोनों को एकत्र बिठावें और दोनों परस्पर निम्न मन्त्र बोल, संवाद करें कि—

ओम् ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्।
यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्।
यत्सत्यं तद् दृश्यताम्॥ आश्व. गृ. १।५।५॥*

*हे स्त्री वा हे पुरुष ! (अग्ने) इस जगत् के बनने से पूर्व (प्रथमं) सबसे पहिले (ऋतं जज्ञे) यथार्थ स्वरूप रूपान्तर धारण योग्य महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और (ऋते) उस महत्तत्व में (सत्यं) सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित मूल प्रकृति=क्षरब्रह्म (प्रतिष्ठितम्)

१. इसी को सगाई, कुड़माई या वरनिश्चय भी कहते हैं।
२. तुलना—ऋषिभाष्य यजुः ८।९ का भावार्थ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव यह है कि "जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न होता है,वैसे ही स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से संसार चलता है। हम दोनों कुमार और कुमारी इस समय विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करते हैं; हम दोनों एक दूसरे को प्राप्त होवें और [आप सब के सामने संकल्प करते हैं कि] हम ऐसा देखेंगे कि जिससे इस स्त्री की जो मूल उत्पादक शक्ति है, वह सफल होवे और अपनी इस प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें (सं. वि. १७७ के अनुसार)।

[द्वितीय विधि—यज्ञ क्रिया]

तत्पश्चात् पृ. २८ से १०६ लिखे प्रमाणे अर्थात् ऋत्विग्वरण से आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सामान्य विधि करें।

[तृतीय विधि—स्वयंवरण]

तत्पश्चात् स्त्री-पुरुष को आमने-सामने बैठावे और पिता या आचार्य या पुरोहित वधू से निम्न मन्त्र बुलवावे—

ओम् अपश्यं त्वा मनसो चेक्रितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥*

ऋक् १०।१८३।१ ॥

और वर से निम्न मन्त्र बुलवावे—

प्रतिष्ठित है। (यत्) जिस प्रकार से प्रकृति की तरह (इयं कुमारी) यह कुमारी कन्या (अभिजाता) उत्पादन योग्य अर्थात् सन्तानवती हो, (तद्) उस प्रकार से (इयं) यह कन्या (इह) इस गृहस्थ में (प्रतिपद्यतां) तुझे प्राप्त होवे। (यत् सत्यं) जो इसका मूल सत्य उत्पादनशील धर्म है, (तद् दृश्यताम्) वही दीखना चाहे॥

*हे वर! (चेक्रितानं) ज्ञानयुक्त, (तपसो जातं) तपोजात, (तपसो विभूतम्) तपःपूत, तुझको मैंने (मनसा) अपने मन से (अपश्यम्) देख लिया है। हे पुत्रकाम! (इह) इस लोक में,(प्रजां) प्रजा और (रयिं) धन का (रराणः) आनन्द लेता हुआ (प्रजया प्रजायस्व) सन्तान रूप से पैदा हो अर्थात् सन्तानोत्पत्ति कर॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥*
ऋक् १०।१८३।२ ॥

पुनः कार्यकर्त्ता पुरोहित वर से कहलवावे—

ओं यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि प्रजापतेः ॥‡
अथर्व ६।८२।३ ॥

[चतुर्थ विधि—वधू-वर को उपदेश]

पुरोहित दोनों को समझावे कि तुम दोनों ऐसा संकल्प करो—

ओं सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥†

---

*"हे वधू ! (दीध्यानां) सौन्दर्ययुक्त (स्वायां तनूः) अपने शरीर का (ऋत्व्ये नाधमानाम्) ऋतुकालीन संयोग चाहती हुई, तुझ को मैं (मनसा अपश्यं) मन से चाहता हूं । हे पुत्रकामे ! (उच्चा युवतिः) अत्यन्त तरुणावस्था सम्पन्न तू ! (माम् उपबभूयाः) मुझे विवाह द्वारा प्राप्त कर और (प्रजया प्रजायस्व) सन्तानोत्पत्ति कर ।।

‡ वर—"हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! हे समस्त शक्तियों के स्वामिन् ! जो तेरा, धन निवास देने वाला, बढ़ाने वाला, तेजोमय हितकारी, (अङ्कुश) नियामक शासन अर्थात् व्यवस्था है, उससे अर्थात् उसी के अधीन (जनीयते) पुत्रोत्पादन योग्य स्त्री की कामना करने वाले (मह्यं) मुझे (जायां धेहि) स्त्री प्रदान कर ।"

† "हम एक दूसरे के पदार्थों की व एक दूसरे की प्रीति से रक्षा किया करें । प्रीति से मिलकर भोग करें । प्रीति से मिलकर एक दूसरे के पराक्रम=प्रभाव प्रतिष्ठा शक्ति की बढ़ती सदा किया करें अथवा उचित समय में वीर्याधान-वीर्यस्थापनादि करें । हमारा 'अधीत' अतिप्रकाशमान् हो । हम एक दूसरे से कभी विद्वेष विरोध न करें । किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्यप्रेम से वर्त कर सदा आनन्द में बढ़ते जावें ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पंचम विधि—संस्कार समाप्ति]

तत्पश्चात् पृ. १०६ लिखे प्रमाणे पुनः आघारावाज्याभागाहुति चार देकर, व्याहृति-आहुति आहुति चार से लेकर पूर्णाहुति देकर, वामदेव्यगान देकर संस्कार समाप्त करें।

यज्ञादि के पश्चात् या 'अपश्यं त्वा' मन्त्र बोलते समय वधू वर दोनों परस्पर सुवर्णमुद्रिका का आदान-प्रदान करें।

उसी समय 'वरपक्ष' के लोग, देशकालानुरूप लोकाचार के अनुसार कन्या के लिये जो फल, वस्त्र, आभूषण लायें हों, वे कन्या को अर्पित करें और सौभाग्यवती गृह-वधुयें कन्या को टीका लगावें।

उसी प्रकार 'वधूपक्ष' के पुरुष भी वर के लिये वस्त्र, आभूषण, फल मिष्ठान्नादि भेंट करें। वधू का भाई अपनी अनामिका व अनुष्ठ से वर के मस्तक पर तिलक लगावे।

वाग्दान की द्वितीयपद्धति, लोकाचारानुसारी

यदि आचार्य या स्वगृह में किसी एक ही स्थान में दोनों को एकत्र बिठा, एक ही बार वाग्दान-विधि न करके, लोकाचारानुसार पृथक्-पृथक् घरों में वाग्दान-क्रिया करनी हो, तो जिस दिन दोनों पक्ष के पितर अपने सन्तानों का सम्बन्ध [नाता, सगाई, रिश्ता] स्थिर अर्थात् वाग्दान=वाङ् निश्चय करना चाहें और वधूपक्ष के लोग 'देशकालानुरूप' लोकाचर के अनुसार 'शगन' के तौर पर, वर-पक्ष को कुछ अर्पण करना चाहें, तो उस दिन वर के घर, निम्न प्रकार से सामान्य प्रकरणोक्त यज्ञ की विधि करे।

[प्रथम विधि—यज्ञ प्रारम्भ]

पश्चात् पृ० २८ से १०६ लिखे प्रमाणे अर्थात् आघारावाज्य-भागाहुति चार पर्यन्त सब क्रिया करें।

[द्वितीय विधि—पुरोहित-वचन]

तत्पश्चात् वधू को मन में लक्ष्य करके पुरोहित निम्न मन्त्रों का उच्चारण करे—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रेतो मुञ्चामि नामुतस्सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥१॥

ऋक् १०।८५।२५ ॥

ओम् ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञे, ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम् ।
यत् सत्यं तद् दृश्यताम् ॥२॥

आश्व० गृ० सू० अ० १, कं० ५, सू० ५ ॥

[तृतीय विधि–विशेष आहुतियां]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों द्वारा विशेष आहुतियां देवें। पुरोहित को चाहिये कि इनका भावार्थ अवश्य सुनावे (अथर्व १।१४।१-४)।

ओं भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१॥

---

१. "हे ऐश्वर्यशाली ! शक्तिशाली वीर्यवान् पुरुष ! मैं इस कन्या को (इतः) 'इधर पितृगृह' से मुक्त करता हूं; (नामुतः) 'उधर पतिकुल' ते नहीं। (अमुतः) उस परिवार से तो (सुबद्धां करम्) इसे अच्छी प्रकार से समृद्ध कर चुका हूं। ताकि यह कन्या (सुभगा) सौभाग्यवती और (सुपुत्रा) पुत्रवती (सती) बन जावे ॥"

२. "हे तजस्विन् वर ! सृष्टि के आरम्भ में पहले (ऋतं) रूपान्तर धारण योग्य महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। उसमें (सत्यं) त्रिगुणात्मिका नाश रहित प्रकृति [क्षरब्रह्म] प्रतिष्ठित होता है। जिस प्रकार से, प्रकृति की तरह, यह कुमारी (अभिजाता) उत्पादन योग्य अर्थात् सन्तानवती हो, इस प्रकार से तू उसको प्राप्त होना। ऐसा देखना कि जिससे जो इसकी मूल सत्य स्त्री शक्ति है, वह सफल होवे।"

१. समावर्त्तन के पश्चात् विवाहेच्छु तरुण ब्रह्मचारी कन्या के माता-पिता से प्रस्ताव करता है कि ' (वृक्षादिव स्रजम्) वृक्ष से फल लेकर गले की माला बना लेने की तरह, मैं (अस्याः) इस कन्या के (भगं) ज्ञान अथवा सौन्दर्य तथा (वर्चः) तेज को ग्रहण करता हूं। यह अपने (पितृषु) नूतन माता पिता के बीच (महाबुध्नः पर्वत इव) बड़े मूल वाले पर्वत के समान अचल रहे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समावर्त्तन के पश्चात् विवाहेच्छु तरुण ब्रह्मचारी कन्या के माता-पिता से प्रस्ताव करता है कि—

ओम् एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥

निम्न मन्त्रों द्वारा कन्या के माता-पिता वर के प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं—

ओम् एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परिददमसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः शमोप्यात् ॥३॥

ओम् असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

---

२. "(यम) हे संयमी वा स्थिरचित्त एवं ज्ञानज्योतिः और (राजन्) ब्रह्मवर्चस् से प्रकाशमान् वर ! (एषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (नि धूयतां) गृहस्थ का आनन्द भोगे । (सः) यह कन्या (मातुः) नई माता=सास, (अथो भ्रातुः) नये भाई=देवर और (अथो पितुः) नये पिता=ससुर के गृह में (बध्यताम्) विवाह द्वारा बन्ध जावे ॥"

३. "हे प्रकाशमान् वर ! यह कन्या आगे तेरे (कुलपा) कुल धर्म का पालन करने वाली हो, इसलिए उसको हम तुझे (परिददमसि) देते हैं=समर्पण का संकल्प करते हैं । यह निरन्तर (पितृषु) सास ससुर आदि पितरों के मध्य में (आसाते) स्थिर रहे और (शीर्ष्णः) अपनी उत्तम बुद्धि वा सुविचारों से (शमोप्यात्) उनमें शान्ति की स्थापना करे (=के बीज बोवे) ।"

४. "बन्धन रहित अर्थात् [जिसका विवाह बन्धन अभी कहीं नहीं हुआ] स्वतंत्र, (कश्यपस्य) द्रष्टा अर्थात् देश काल परिस्थिति का निरीक्षण करने वाले अथवा ख्याल करने में चतुर और (गयस्य च) इसके प्राणधारक या प्राणस्वरूप या प्राणवत् आश्रय (ते) तुझ वर के (ब्रह्मणा) महत्त्व या बड़ेपन से इस कन्या के (भगं) भाग्य को या ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म आदि के गुण कर्म स्वभावों को (अपि नह्यामि) स्थिर रूप से बांधता हूं । जैसे स्त्रियां अपने (भगम्) आभूषणादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारी सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभाग्यमस्त्वस्यै ॥५॥
ओं तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥६॥
ऋक् २।३५।४ ॥

को (कोशमिव अन्तः) सन्दूक के अन्दर रखती है; वैसे इसका सौभाग्य तुझमें सुरक्षित रहे।" अथवा "……ताकि स्त्रियां छिपे खजाने की न्याई सुरक्षित हो जावें। अर्थात् तेरे साथ इसकी मान मर्यादा सुरक्षित रहे।" (ते नह्यामि भगम्) इस स्त्री का 'भग' हे वर! तेरे लिये बांधता हूं=नियत करता हूं अर्थात् "तुम दोनों का पारस्परिक मिलन मर्यादित करते हैं।"

५. "हे परमेश्वर! आचार्य! पुरोहित! (संभलः) उत्तमरीति से कन्या के योगक्षेम को आदान करने योग्य पात्र (न गमेत्) हमें प्राप्त हो अर्थात् हमारे पास आवे। और (इमां) इस (सुमतिं) सुमति (कुमारीं) कन्या को (भगेन सह) ऐश्वर्यमय धन और सौभाग्य के साथ, स्वीकार करे। (जुष्टा समनेषु वरेषु) यह कन्या समान चित्त वाले घरों में से (पत्या) अपने पालन करने में समर्थ वरणीय पति के संग (वल्गुः) मधुर आलाप करे [और उसी के साथ] इस कन्या को (ओषं सौभाग्यम्) सहवासरूप सौभाग्य प्राप्त हो।"

६. जो (मर्मृज्यमानाः) बार बार रजस्वती होकर शुद्ध हो चुकी हैं तथा उत्तम ब्रह्मचर्यव्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध (युवतयः) १६वें वर्ष से २४वें वर्ष वाली कन्यायें अथवा मिश्रण=मिलाप=समागम योग्य कन्यायें, जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही (अस्मेराः) हमारे परिवार रूपी 'समुद्र' में मिलने वाली हैं; वे उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभ-लक्षणयुक्त 'युवा व्यक्ति' को पूर्णतः प्राप्त होती हैं। वह ब्रह्मचारी तरुण (शुक्रेभिः) प्रभावशाली शुभ गुणों तथा (शिक्वभिः) उत्पादक वीर्यशक्ति से युक्त हो अथवा (शिक्वभिः शुक्रेभिः) सेचन करने योग्य शुद्ध वीर्यों सहित (अप्सु घृतनिर्णिक्) जलों में तेजस्वी विद्युत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—यज्ञ समाप्ति, पूर्णाहुति]

पश्चात् पृ० १०६ से १२३ लिखे प्रमाणे आघारावाज्य-भागाहुति से·····पूर्णाहुति, वामदेव्यगान पर्यन्त सब विधि करें।

मांगलिक विधि हुए पश्चात्, वधू का पिता, या भाई वर को

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रति कामाय वेत्तवे ॥

अथर्व २।३६।७ ॥

मन्त्र बोल अनामिका और अंगुष्ठ से गन्धाक्षत से तिलक करें, उस पर चावल लगावें, मुख में छुआरा या मोदक देवे और वर के हाथ में पूगी फल (सुपारी), नारियल, फल-मिष्ठान्न, वस्त्र, अंगूठी आदि द्रव्य यथा शक्ति देवे। उन्हें दोनों हाथों से ग्रहण कर श्वशुर आदि को नमस्ते करे।

वाग्दान के पश्चात् वर पक्ष वाले इसी प्रकार कन्या के लिये, खजूर-छुआरा, सुपारी, उत्तम नवीन वस्त्र अर्थात् साड़ी चोली, आभूषणादि भेजें।

वधू गृह में—

यथाविधि पृ० २८ से १०६ लिखे प्रमाणे 'आचमन अङ्ग-स्पर्श'···आघारावाज्यभागाहुति चार तक सब विधि करके, निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां वधू से दिलावें—

ओं सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥१॥

अथर्व १४।१।९ ॥

अग्नि के समान, स्त्रीरजोयुक्त गर्भाशय में वीर्य सेचन कर तीव्रगति पैदा करने वाला (अनिध्मः) बाह्य निमित्त के विना स्वयं प्रकाश-मान् अथवा 'गर्भ में स्थापित हो' स्वयं प्रगटने वाला (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म वाला होकर या ऐश्वर्ययुक्त होकर (दीदाय) अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे या चमके और हमें भी चमकाये।

१, "जब पुरुष (सोमः) वीर्यवान् होकर वधू की कामना से युक्त होवें, उस समय (अश्विनौ उभौ) दोनों स्त्रीपुरुष परस्पर एक दूसरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरु सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥२॥
ऋक् ५।३७।३ ॥

ओम् इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३॥

का वरण करने वाले होवें। (यत्) जिससे कि अभिलाषा करने वाली (सूर्या) गर्भधारण योग्य कन्या को (सविता) उसका जनक पिता (पत्ये) पालन करने में समर्थ पात्र के हाथ में (मनसा) अपने मनोनिश्चय द्वारा (अददात्) दे देवे।"

२. (यः) जो पूर्वोक्त लक्षण युक्त युवा पुरुष (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके इस (महिषीम्) महिमामयी अर्थात् उत्तम कुलोत्पन्न, विद्या-शुभगुण-रूप-सुशीलतादि स्वभावयुक्त (इषिराम्) सन्तानेच्छा से वर की कामना करने वाली या हृदय को प्रिय लगने वाली स्त्री को (वहाते) विवाह करता है, (पतिं इच्छन्ती) विवाह से ऐसे पति की इच्छा करती-हुई या 'गृहस्थ का भार वहन करने योग्य अपना पति चाहती हुई,' यह वधू (एति) आगे बढ़ती है। (अस्य) इनके इस गृहाश्रम के मध्य (आ+श्रवस्यात्) सब ओर से धन धान्य तथा यश होवे। (रथः च आघोषात्) और रथ के 'दोनों चक्रों के' समान परस्पर 'एकवचन' तथा प्रियवचन बोले। और (सहस्रों पुरु) सहस्रो प्रजाजन अर्थात् इनके गृहस्थ जीवन में अनेकानेक व्यक्ति इनके (परि+वर्त्तयाते) अधीन रहे। अथवा (पुरु) बहुत (सहस्रा) उत्तम कार्यों को वे दोनों मिलकर सब प्रकार से सिद्ध कर सकते हैं। भावः—इनका परिवार भरा पूरा हो और इन्हें सर्वसिद्धियां प्राप्त हों।

"यह नारी (पतिं) पालक पति को (विदेष्ट) प्राप्त होवे। (सोमः राजा) वीर्यसेचन में समर्थ=प्रसन्न अर्थात् पुत्रोत्पादन में शक्त वीर्यवान् और विद्या+ऐश्वर्य से युक्त 'वह पति' ही (सुभगां कृणोति) इसे सौभाग्यवती करता है। यह नारी (पुत्रान्) पुत्रों को (सुवाना) उत्पन्न करती हुई (महिषी भवाति) महिमामयी=महत्त्वशालिनी होवे। और यह (पतिं गत्वा) पति को प्राप्त करके (सुभगा) सुहागन बन, (विराजतु) वहां विराजित होवे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भगस्य नावमारोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोप प्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥४॥

ओम् इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवै ॥५॥

अथर्व २।३६।२, ५, ७ ॥

पश्चात् पृ० १०६ से १२३ लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति से पूर्णाहुति, वामदेव्यगान पर्यन्त सब विधि करें।

पश्चात् वरपक्ष की जो सुवासिनी गृह वधुएं उपरोक्त सब सामान लेकर वधू क घर आई हों. वे 'इदं हिरण्यं०' मन्त्र बोल उसे साड़ी चोली आभूषण आदि पहिनावें; उसके मस्तक पर टीका लगावें और उसकी झोली में 'पांच फल' भरें।[1]

उत्तम शिष्टाचार यही प्रतीत होता है कि वरपक्ष वाले, वधू के लिये 'वस्त्र-आभूषण-फल-मिष्ठान्न' भेजें। फिर वधूपक्ष वाले वर के घर जाकर उसका फलदान से सत्कार करें।

---

४. हे कन्ये ! (यः वरः) जो वर (प्रतिकाम्यः) तेरा अभिलषित है, तू उस (भगस्य) ऐश्वर्यशाली पति के ऐश्वर्य से बनी (पूर्णां अनुपदस्वतीम्) पूरी, विनाश रहित या शरणदायिनी (नावं आरोह) 'जीवन नौका' पर चढ़ (तया) उससे अपने तथा अपने पति को (उप प्रतारय) सब कष्टों, ऋणों से पार उतार।"

५ "हे कुमारि कन्ये ! यह स्वर्णमय अंगूठी या सुवर्ण मुद्रा या सुवर्णाभूषण, यह गुग्गुल का सुगन्धित द्रव्य (अयं औक्षः) यह प्रोक्षण अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क या दूध का बना पदार्थ (अथो भगः) और यह सौभाग्य अर्थात् सुभगंकरण, सौभाग्य सूचक 'हरिद्रा कुंकुम'+ 'सुपारी नारियल' आदि (एते) ये सब पदार्थ, (पतिभ्यः) मान्य पति के लिए प्रस्तुत करने के लिए एवं (प्रतिकामाय वेत्तवे) तेरे प्रेम के बदले तुझे चाहने वाले 'प्रियतम' को प्राप्त करने के लिए (त्वाम् अदुः) तुझ को 'वरपक्ष' वाले देते हैं।"

---

१. इसी का नाम 'चुन्नी चढ़ाना' है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मङ्गलस्नान और मण्डप-विधि

वाग्दान के पश्चात्, जो शुभ दिन व समय विवाह-संस्कार का नियत किया हो, उससे पूर्व दिवस या उससे कुछ समय पूर्व, जैसे सायंकाल विवाह करना हो, तो प्रातःकाल या मध्याह्न, दोनों पक्षों के जन अपने-अपने घरों में यज्ञ की सामान्य-विधि करने की तैयारी प्रसन्नता-पूर्वक करें। यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, स्थालीपाक, समिधा, घृत शाकल्य आदि सब सामग्री पूर्व ही जोड़ रक्खे।

घर के किसी विशेष स्थान पर दरी-गलीचा आदि चारों दिशाओं में आसन बिछा, सब इष्ट मित्र बन्धु-बांधव, आचार्य, ऋत्विग् बैठें। संस्कार्य अर्थात् वर या वधू के लिये एक विशेष आसन कुण्ड के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठने के लिये स्थापित करें। आचार्य या पुरोहित वर या वधू के दक्षिण में उत्तराभिमुख बैठें।

१. मङ्गलस्नान या उबटना मलना

उस दिन सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे आठ कलश वेदी के उत्तर भाग में रक्खें। पुनः निम्न मन्त्र बोलकर जितना अभीष्ट हो, उतना या सारा जल ग्रहण करे। (सं. वि. १५६)।

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदुषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥* पार. २।६।१०॥

पश्चात् निम्न तीन मन्त्रों का भाव मन में भली प्रकार समझ,

---

*"जो (अप्सु) जो प्रजाओं=स्त्री-पुरुषों में छिपी, अन्दर छिपी, कामरूप अग्नियां हैं, स्नान द्वारा उनमें से,.....मन और इन्द्रियों को कष्ट पहुंचाने वाली तीव्र अग्नियों को (विजहामि) उपशमन करता/करती हूं और (यः रोचनः) जो रुचिकर आनन्द प्रकाशक है, उसे (गृह्णामि) ग्रहण करता/करती हूं।

---

१. 'ओं ये अप्सु०'... तथा आगे पृ. २९५ पर 'ओं तेन०'... मन्त्र का विनियोग अनुष्ठान की पूर्णता व सौन्दर्य वृद्धि के लिये 'समावर्त्तन-संस्कार' में से लेकर हमने किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन सुगन्धित जल से पूर्ण कलशों को लेकर (सं० वि० १७७) वधू वर दोनों स्नान करें:—

ओं कामवेद ते नाम मदो नामासि समानयामुꣳ सुराते अभवत्।
परमत्र जन्माग्रे तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥१॥
ओम् इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम्।
तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा ॥२॥

---

१. वरः—हे (काम) कामभावने! (ते नाम) तेरे नाम को (वेद) मैं जानता हूं। (मदो नामासि) तू मद नाम से प्रसिद्ध है। (समानायाम् उ) समान वय वाली दशा में ही (ते सुरां) तेरा आकर्षण, सार, रस (अभवत्) हुई है, होती है। अथवा यह कन्या (ते सुरा अभवत्) तेरे लिये 'मद का साधन' हो चुकी है अथवा यह जल तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है। (अमुम् समानय) इसकी तू प्रतिष्ठा कर (मेरे लिये ला)।

(अग्ने) हे तेजस्विन्! दाह करने वाले काम। (अत्र) इस स्त्री जाति में (परं जन्म) तेरा उत्कृष्ट जन्म अर्थात् प्रकाशन, प्रादुर्भाव है अथवा "हे अग्ने! तेरा जन्म विशेष है।" तू (तपसो निर्मितोऽसि) तप=ब्रह्मचर्य पालन द्वारा बनाया गया है=विकसित हुआ है अर्थात् ब्रह्मचर्य में की गई तपस्या का दूसरा रूप ही काम है।

वधूः—"हे काम! तेरे नाम को मैं जानती हूं। तू आह्लादकारक है। [समान युक्तवयस् में ही तेरा आकर्षण होता है। अथवा] यह पुरुष मेरे लिये मद का साधन हो चुका है। तू इसे मेरे लिये उपस्थित कर। हे कामाग्ने! इस पुरुष में तेरा उत्कृष्ट जन्म है अथवा 'तेरी उत्पत्ति विशिष्ट है।' तू उत्तम तपश्चर्या द्वारा (आसन व्यायामादि द्वारा) उचित रूप में तैयार होता है।

२. वरः—हे कामभावने! या हे स्त्री! (इमं ते उपस्थं) तेरे आनन्द गुणयुक्त उपस्थेन्द्रिय को (मधुना) माधुर्य से (संसृजामि) संसृष्ट, संयुक्त करता हूं। यह (प्रजापतेः) गृहस्थ बनने का अथवा प्रजोत्पादन का (द्वितीयं मुखम्) द्वितीय द्वार है। [पहली बार तो वीर्य में जीव आता है। दूसरी बार 'शिश्न के उपस्थ में प्रविष्ट होने पर' स्त्रीयोनि द्वारा गर्भाशय में]।

(तेन) इस काम के द्वारा ही अथवा 'उपस्थ' के द्वारा ही तू

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः
तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैभृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥३॥

साम. मन्त्रब्रा. प्र. १ । खं. १ । मं. १-३ ॥

(अवशान्) किसी के वश में न होने वाले भी (सर्वान्, पुंसः) सब पुरुषों को (अभि भवासि) वशी भूत कर लेती है=नीचा दिखाती है। तू (राज्ञी) शासन करने वाली=गृहस्वामिनी होती हुई (वशिनी असि) सबको वश में करने वाली है।

वधूः—[अपने को ही लक्षित करके स्त्री भी सोचे]……हे स्त्री ! मैं तेरी उपस्थेन्द्रिय=योनि को मधु=कामोद्रेक स्रवित रस से प्लावित करता हूं अर्थात् मेरी योनि सदा मधुयुक्त अर्थात् सम्भोग के अनुकूल रहे।* यह सन्तानोत्पादन का द्वितीय द्वार है। तू इसी के द्वारा किसी के वश में न होने वाले पुरुषों को भी अभिभूत करती हो। रानी बन कर तू सब को वश में करने वाली तू ही गृहस्थ धर्म की स्वामिनी है।" इसलिये तुझे उत्तमकोटि के काम मार्ग का ग्रहण करना चाहिये।

३. वर.—(गुहानाः ऋषयः पुराणाः) गूढ़-तत्त्वदर्शी पुराने ऋषियों ने (स्त्रीणामुपस्थं) स्त्रियों के इस 'आनन्द गुणयुक्त इन्द्रिय को (क्रव्यादं अग्निं अकृण्वन्) मांस खाने वाली=सुखा देने वाली अग्नि जैसा स्वीकार किया है। (तेन) उसके साथ-साथ (त्रैभृङ्गम्) पुरुष के शिश्न से प्रादुर्भूत (त्वाष्ट्रम्) सन्तान-उत्पादन में समर्थ वीर्य को (आज्यं अकृण्वन्) घृत के समान कहा है। [घृत उचित मात्रा में अग्नि में पड़ने पर, अग्नि स्वयं प्रदीप्त हो, दूसरों को ताप और प्रकाश देती है और यदि घृत अधिक पड़े, तो जहां अग्नि ही बुझ जाती है, वहां घृत का भी अपव्यय होता है। परिणामतः अग्नि=स्त्रीयोनि उत्पादन कार्य के योग्य नहीं रहती और वीर्य का भी नाश हो जाता है।] हे वधू ! वीर्यवान् पुरुष (त्वयि) तुझ में (तत्)

---

*प्रथमवार सम्भोग के समय पुरुष को चाहिये कि वह उतावली से जल्दी न करे, स्त्री [—योनि] को अपने अनुकूल प्रथम करले; तभी सम्भोग करे। यही 'स्त्रीयोनि के मधुर करने' की कल्पना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्न मन्त्र को बोलते हुए सुगन्धादि द्रव्य शरीर पर मलकर स्नान करें।

ओं तेन मामभिसिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥[1]

पार. २।६।११॥

श्री, यश, बुद्धि ज्ञान व ब्रह्मवर्चस के लिये इस जल से अच्छे प्रकार स्नान करता है।

स्नान से पूर्व वर क्षौर कर्म, लोम नख आदि वपन करा लेवे। वधू भी नख कटवा लेवे। मङ्गलस्नान विधि ही 'विवाह से पूर्व वधू-वर को उबटना मलना' विधि है।

तत्पश्चात् शरीर को पोंछ कर अधोवस्त्र अर्थात् धोती व पीताम्बर धारण करके सुगन्ध युक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे और वधू भी वस्त्रधारण करे। वधू-वर स्नान कर पश्चात् अपने-अपने घरों में उत्तम आसन पर यज्ञ के लिये पूर्वाभिमुख बैठें। (सं. वि. १७८)।

२. मण्डप विधि[2]

वधू गृह में--

विवाह-संस्कार से पूर्व 'सौभाग्यपेटिका' या 'सुहाग पिटरी'

उस आज्य==वीर्य को (दधातु) धारण करावे। अथवा काम पुरुष में वीर्य को धारण करावे।*

वधूः—[मन में विचारे] "यह अग्नि=उष्णता जो स्त्री उपस्थ में रहती है, पुरुष को कच्चा खा जाने वाली है। इस को प्रदीप्त करके लाभ प्राप्ति के लिये 'पुरुषेन्द्रिय में सन्तानोत्पादन में समर्थ वीर्य' को बनाया गया है। तेरे गर्भाशय में यह आज्य-शुक्र पुष्ट हो।"*

---

*वीर्य परिपक्व न होने की दशा में स्त्री-सम्भोग या अतिमात्रा में स्त्री-सम्भोग मनुष्य को कच्चा खा जाने वाला होता है। इस अग्नि को तभी उपयोगी बनाया जा सकता है, जब कि पुरुष के शरीर में पर्याप्त मात्रा में पक्व वीर्य हो और अल्प मात्रा में उसका व्यय हो।

१. अर्थ द्र. पृ० २५९ समा. सं.।

२. मण्डप-विधि का विकृत रूप 'सैंत' [=शान्तिकरण मन्त्र पाठ] है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वधू के घर में वरपक्ष की ओर से भेजी जाती है, जिसमें शृंगार-सामग्री होती है, वेदी के पास रक्खें।

[प्रथम विधि—सामान्य यज्ञ]

तत्पश्चात् पृ. २८ से १०९ तक लिखे प्रमाणे ऋत्विग् वरण ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन शान्तिकरण कर, 'ओं यदस्य०' से स्थालीपाक की एक आहुति पर्यन्त सामान्य प्रकरणोक्त यज्ञ विधि करें।

तत्पश्चात् वधू के मस्तक पर द्विज सौभाग्यवती स्त्रियां तिलक =सिन्दूर-कुंकुम-चावल लगावें। उस समय वधू निम्न मन्त्र बोले--

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳसुवर्चा मुखेन* ।[1]

तत्पश्चात् 'चूड़ा-चढ़ाना' मौली बन्धन या कलीरे बान्धने का करना हो, तो निम्न प्रकार से कर लें –

१. 'चूड़े' को पहले चावल, यव [या गेहूं] में रखना चाहिये।

२. पुनः उसे दूध [या लस्सी] में अभिषिञ्चित करें।

३. पुनः पहनाने से पूर्व, कुंकुम-हल्दी लगा, सुहागनों से स्पर्श करावें।

पश्चात् निम्न मन्त्र बोल बांधे और तभी कलीरे भी मौली में बांध, चूड़े के साथ वधू के मामा से बन्धवा दें।

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२

अथर्व १।३५।१ ॥

तत्पश्चात् 'वर-पक्ष की ओर से आये वस्त्र पुरोहित निम्न मन्त्र को पढ़, वधू को दिलावे—

---

*हे पितरो! मैं आपके आशीर्वाद से, सुन्दर स्वच्छ आंखों से दर्शनीय आकृति और मुख से तेजोमय सौम्यमूर्ति हो जाऊं।

---

१. अर्थ द्र. पृ. २६३ समा. सं.।

२. विस्तृत अर्थ द्र. पृ. २१४ कर्णवेध।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् ।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥१॥[1]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से वधू साड़ी-चोली आदि एकान्त में जा धारण करे—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥२॥[2]
पार. २।६।२०॥

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च माविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥३॥[2]
पार. २।६।२०॥

तत्पश्चात् निम्नों मन्त्र से सुगन्धित पुष्पमाला लेके धारण करे—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ।
ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥४॥[2]
पार. २।६।२३॥

---

१. हे कन्ये ! जिस 'शीलरक्षण व शरीराच्छन' प्रयोजन के लिये, आचार्य अपने शिष्य को (अमृतं वासः) महावस्त्र=जीवनसूचक वस्त्र धारण कराता है, उससे व उसी विधि से वर द्वारा दिया यह वस्त्र तेरे स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, बल और तेजोवृद्धि के लिये पहिनाता हूं ।

२. मैं शीलरक्षण वा शरीराच्छादन, यश और दीर्घायुष्य के निमित्त इस वस्त्र को पहिनती हूं, ताकि पूरी उमर भोगूं । सौ वर्ष तक नीरोग जीऊं, अनेक ऐश्वर्यशाली सन्तानों तथा पोषक धनों का संचय करूं ।

३. मुझे पृथिवी और आकाश में यश मिले; धनी और बुद्धिमान् मेरा यशोगान करें अर्थात् चारों ओर मेरा यश हो । जो भी काम करूं, उससे मुझे यश और ऐश्वर्य मिले । इस प्रकार मुझे यश ही यश की प्राप्ति हो ।

४. उत्तम दृष्टि वाला व्यक्ति जिनको श्रद्धा मेधा काम और

---

१. विस्तृत अर्थ पृ. २१९ । २. विस्तृत अर्थ पृ. २६३-२६४ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यद्यशोऽसरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु ।
तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥५॥[1]
पार. २।६।२४॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से नानाविध अलङ्कार धारण करे—

ओम् अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥१॥[2]
पार. २।६।२६॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से स्वयं वा भाभी से काजल डलवावे—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥२॥[2]
पार. २।६।२७॥

और निम्न मन्त्र-भाग बोले—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥३॥

पश्चात् निम्न मन्त्र से दर्पण में मुख देखें—

ओं रोचिष्णुरसि ॥४॥ पार. २।६।२८॥

इन्द्रिय शक्ति में वृद्धि के लिए ग्रहण करता है, उन पुष्पमालाओं को मैं यश व ऐश्वर्य के साथ ग्रहण करती हूं ।

५. जिस कीर्त्ति-प्रकाश को, सूर्य अपनी किरणों में विस्तृत करता है, उस पूर्ण विस्तृत यशोज्योति के साथ सम्यक् प्रकार से गूंथी इन पुष्पमालाओं को मन की प्रसन्नता के लिए कण्ठ में धारण करती हूं । इससे मेरे जीवन में यश प्रशंसा आवे ।

१. तू शोभा देने वाला है । परमात्मा व पितरों की अनुकम्पा से मेरे पास रत्नादि का भण्डार रहे ।

२. हे अञ्जन ! वस्तुतः तू ही पलकद्वय के नीचे देखने की साधन पुतली की तरह है; व दृष्टि का बढ़ाने वाला है । मुझे उत्तम दृष्टि दे ।

३. यज्ञ करने वाले हम आंखों से 'भद्र' ही देखें ।

४. हे दर्पण ! तू मुखादि का प्रकाशक है ।

---

१. विस्तृत अर्थ २६४ पृ.समा. सं. । २. अर्थ पृ. २६५ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् वधू अपने माता-पिता, बड़े-बूढ़ों तथा आचार्य-पुरोहित के चरण स्पर्श पूर्वक उन्हें नमस्ते कर, उनका आशीर्वाद ले।

इस प्रकार वधू को उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करा, उसे विवाह-मण्डप की ओर ले जाने की तैयारी करें।

इस अवसर पर, यजमान सब अभ्यागतों का सत्कार करे। जो कोई सेवक-सेविका हों, उन्हें भी द्रव्य-वस्त्र-मिष्ठान्नादि से प्रसन्न करें। आचार्य पुरोहितादि को उत्तम अन्न-पान, वस्त्र फल मिष्ठान्नादि से सत्कृत करें।

वर के गृह में—

वधू पक्ष से वर के लिये आये वस्त्र-आभूषणादि यज्ञ वेदी के समीप रक्खें। पश्चात् पुरोहित वर के समक्ष बैठ कर उसके मस्तक पर चन्दन लगा, उस पर रोली और चावल लगा तिलक करे और अपने मस्तक पर भी इसी प्रकार तिलक करावे।

वर निम्न मन्त्र का भाव समझ कर मन्त्र बोले—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳसुवर्चा मुखेन* ।[1]

यदि मौलि-बन्धन करना हो, तो निम्न बोलकर करें—

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥[2]
अथर्व १।३५।१ ॥

पश्चात् निम्न मन्त्र से पुरोहित वस्त्र दिलवाने—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् ।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे‡ ॥[1]

---

*हे पितरो ! मैं आपके आशीर्वाद से, सुन्दर स्वच्छ आंखों से 'प्रियदर्शन' और मुख से तेजोमय सौम्यमूर्ति होऊं।

‡ हे वर ! जिस शीलरक्षण या शरीराच्छादन प्रयोजन के लिये, आचार्य अपने शिष्य को (अमृतं वासः) जीवन सूचक वस्त्र

---

१. विस्तृत अर्थ पृ. २६३। २. विस्तृत अर्थ पृ. २१४।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से दर्पण में मुख देखें [और पगड़ी आदि वर ठीक कर लें]—

ओं रोचिष्णुरसि ॥१॥[1] पार. ४।६।२८॥

तत्पश्चात् [यदि छत्र धारण कराना हो तो] निम्न से छत्र (सं. वि. १६८) धारण करे—

ओं बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥२॥[1] पार. २।६।२९॥

और फिर निम्न मन्त्र से उपाहन=बूट या जूता, पादवेष्टन (=जुर्राब), पगरखा (=मारवाड़ में प्रयुक्त) और जोड़ा (=मराठी में जूते के लिये प्रयुक्त) धारण करे—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ॥३॥[1] पार. २।६।३०॥

और फिर निम्न मन्त्र से [यदि उचित समझे वा देशाचार हो] बांस आदि की सुन्दर लकड़ी या बेंत छड़ी आदि हाथ में धारण करे—

ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः ॥४॥[1]

पार. २।६।३१॥

और वधू के घर जाने का ढङ्ग करे (सं. वि. १७८) तत्पश्चात् वर पक्ष के लोग वर को मोटर रथ या सवारी पर बैठा, बड़े मान आदर और उत्साह के साथ उसे विवाह के लिये वधू के गृह की ओर

---

१. हे दर्पण ! तू मुखादि का प्रकाशक है।

२. हे छत्र ! तू ज्ञानी पुरुष के 'मान का साधन' है। मुझे पतनशील कर्मों से बचा, परन्तु पुरुषार्थ-पराक्रम और कीर्त्ति-प्रतिष्ठा से बचा। तेरे नीचे मुझे 'तेज व यश' मिलें और पाप की गरमी मुझे न लगे।

३. तुम मेरी गति को ठीक करने वाले हो। सब ओर से मेरी शूलों से रक्षा करो।

४. सब दुष्टादिकों से, सब दशाओं में मेरी रक्षा कर।

---

१. विस्तृत अर्थ पृ. २६६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाजे-गाजे के साथ (यदि प्रबन्ध हो तो) ले जावें। वधू पक्ष के लोग भी स्वगृह में वधू को विवाह-मण्डप की ओर ले जाने की तैयारी करें।

वर अपने माता-पिता, बड़े-बूढ़ों, तथा आचार्य पुरोहित आदि के चरण-स्पर्श पूर्व, उन्हें नमस्ते करे।

इस अवसर पर वर के माता-पिता या अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे सब अभ्यगतों का यथाशक्ति सत्कार करें। जो कोई सेवक-सेविका हों, तो उन्हें भी द्रव्य वस्त्र मिष्ठान्नादि से प्रसन्न करें। और पुनः इस संस्कार में आये हुए आचार्य पुरोहित आदि को उत्तम अन्नपानादि से, [वस्त्र फल मिष्ठान्नादि से] सत्कृत करे।

तत्पश्चात् जिस समय वर, वधू के घर प्रवेश करे, उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता वर तथा वरपक्ष के लोगों का मधुपर्क आदि से निम्न प्रकार से आदर सत्कार करें। (सं. वि. १७८)।

३. मधुपर्क विधि : द्वाराचार अर्थात् मिलनी[1]

उसकी रीति यह है कि, जब बारात वधूगृह या विवाह-मण्डप के समीप पहुंचे, तब वधूपक्ष के लोग दो पंक्तियों में खड़े हो, वर तथा बारातियों का वाणी, माला व पेय आदि से स्वागत करें। वर और बराती, वधू गृह या यज्ञ-मण्डप के द्वार पर वधूपक्ष के लोगों से कुछ अन्तर पर ठहर जावें। उस समय वाजा बन्द करा देना चाहिये।

पश्चात् सब मिलकर निम्न दो मन्त्रों से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासना करें—

ओ३म्, विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥ यजु० अ० ३०। मं० ४॥

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम स्वाहा ॥
यजुः ४०।६॥

पश्चात् घराती बरातियों का पुष्पमालादि से स्वागत करें। उचित समझें, दोनों पक्षों की वंशावली भी पढ़ी जावे।[2] दोनों पक्षों

---

१. शास्त्रविध्युक्त मधुपर्क विधि से पूर्व, मिलनी या द्वाराचार की विधि हमने कल्पित की है। २. पंजाब में नाई इस समय 'बेल' पढ़ता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के विशिष्ट सम्बन्धियों आदि का परिचय भी कराया जावे। इस अवसर पर पद्य [या गद्य] में स्नेह श्रद्धा सद्भावना का प्रकाशन भी समीचीन है। क्योंकि सेहरा बांधना आर्यरीति न होकर मुसलमानी रीति है, इसलिये उसके निमित्त बने 'सेहरे'—आदि का पढ़ना भी आर्यों को त्यागना चाहिये।

यदि मिलनी जनवासे या किसी धर्ममन्दिर में हो, तो वहां बैठकर यह क्रिया कर लेनी चाहिये।

पश्चात् विद्वान् पुरोहित सबको समझाते हुए निम्न मन्त्रों से ईश्वर का उपस्थान करे और दोनों पक्षों को उपदेश करे—

ओं सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥१॥

ऋक् १०।१९१।२ ॥

ओं समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥२॥

---

१. (यथा) जैसे, (पूर्वे देवाः संजानानाः) सम्यग् ज्ञान वाले तुम्हारे पूर्वज देव पुरुष (भागं उपासते) अपने आप उत्तरदायित्व को निभाते रहे हैं, वैसे ही (संजानतां) आत्मा से धर्माधर्म, प्रिया-प्रिय तथा सत्यासत्य जानने हारे (वः) तुम दोनों परिवारों के (मनांसि) मन 'एक दूसरे से अविरोधी होकर' पारस्परिक उत्तर-दायित्व निभाने वाले होवें। तुम दोनों (संवदध्वम्) एक जैसी बात करो।

२. आज से तुम दोनों परिवारों का (समानी प्रपा) जलपान एक सा हो (सह वोऽन्नभागः) आहार-विहार साथ साथ हुआ करे। मैं (वः) तुम सबको (सामने योक्त्रे सह युनज्मि) एक समान उत्तर-दायित्व उठाने वाला बनाता हूं। जैसे चक्र के आगे धुरी [=नाभि] में केन्द्रित रहते हैं, वैसे ही दोनों परिवारों के सदस्य (सम्यञ्चः) सम्यग् व्यवहार वाले होकर (अग्निं सपर्यत) आगे ले जाने वाले परमात्मा की भक्ति मिलकर किया करो ताकि तुम्हारे 'धार्मिक व्यवहार, एक हो जावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥
अथर्व ३।३०।१, ७ ॥

ओम् आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥२॥
यजुः १९।५८ ॥

……"आते हुए [वर पक्ष के] पितर सज्जनों को देख कर घराती…खड़े होकर प्रीतिपूर्वक कहें कि आइये, बैठिये, कुछ जल-पान कीजिये । …ऐसा कह उन्हें आसन देकर स्वागत-सत्कारकरें ।

पश्चात् वर को लक्ष्य कर, कन्यापक्ष का मुख्य पुरुष कहे—

---

१. हे गृहस्थो ! तुम्हारे दोनों परिवारों में परस्पर (सहृदयं) सहृदयता, 'सुख दुःख में एकानुभूति' (सांमनस्यं) मन से सम्यक् प्रसन्नता (अविद्वेषं) वैर विरोधादि रहित व्यवहार को (कृणोमि) स्थिर करता हूं । (इव) जैसे (अघ्न्या) अवध्य पशु गाय (वत्सं जातं) नवजात बछड़े पर वात्सल्य भाव से बर्त्तती है, वैसे ही तुम सब भी (अन्योऽन्यमभिहर्यत) एक दूसरे से प्रेमपूर्वक कामना से वर्त्ता करो ।

२. परमेश्वर के अनुग्रह से (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों के द्वारा अनुसरणीय मार्गों से (नः) हमारे समीप (सोम्यासः) ये शान्तशील स्वभाव (अग्निष्वात्ता) अभ्युदय के लिए तेजस्वी परमात्मा के भक्त आस्तिक ज्ञानी (पितरः) सज्जन बुजुर्ग (आयन्तु) आवें । (अस्मिन् यज्ञे) ये सब सज्जन इस सत्कार रूप यज्ञ में (स्वधया) अमृतरूप अर्थात् विस्मृत न होने वाली सेवा से (मदन्तः) प्रसन्न होते हुए (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें और (अस्मान् अधिब्रुवन्तु) हमारे साथ सत्यज्ञान की बात बोले……अर्थात् अपना सत्य व्यवहार रखें ।[1]

---

१. द्र. । ऋ. वे. भा. भू. ; पंचम. वि. पृ. ६४३-६४५ । ऋषिदयानन्द के अर्थ का आधार लेकर हमने इस मन्त्र का यहां विनियोग किया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥३॥

अथर्व ६।८२।१॥

ऐसा कह वर को आगे मण्डप के द्वार पर लावें। उसी समय वधू भी अपनी सखी आदि के सहित आगे आकर वर को नमस्ते करके, उसे 'वरमाल' पहनावे। वर भी उसी प्रकार वधू के कण्ठ में 'पुष्पमाला' पहनावे।

पश्चात् सब अभ्यागत नियत स्थान पर बैठ जावें।

[प्रथम विधि—वर की अर्चा=आसन-प्रदान]

तत्पश्चात् वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥१॥ पार. १।३।४॥

इस वाक्य को बोले। उस पर वर—

ओम् अर्चय ॥२॥ ऐसा प्रत्युत्तर देवे।

पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध

---

३. हे सज्जनो! (आ+गच्छत्) 'दूर देश से' पधारे हुए (आगतस्य) कन्या ग्रहण के लिये नाम···को (गृह्णामि) आप सबके सामने लेता हूं, ताकि 'आप सब जान जायें' कि मैं 'अपनी कन्या के लिए' (आयतः) व्यापक गति वाले या व्यवस्थित मर्यादा वाले (वृत्रघ्नः) दोषों-विरोधों के नाश में समर्थ, साहसी (वासवस्य) धन ऐश्वर्य के स्वामी (शतक्रतोः) सैकड़ों प्रज्ञाओं व शिल्प कर्मों के साधक (इन्द्रस्य) उत्तमेन्द्रिय युक्त पुरुष का (वन्वे) स्वीकार=सत्कार करता हूं।

१. वधू और कार्यकर्त्ता—"आप (साधु) सुख से तो हैं? (आस्ताम्) आइये, बैठिये। (भवन्तं अर्चयिष्यामः) आपका स्वागत [पूजा] करते हैं।

२. वरः—ओम् (अर्चय) स्वागत [पूजा] कीजिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रक्खा हो, उसको वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रह और निम्न वाक्य से वर को आसन देवे—

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ॥३॥

तुलना पार. १।३।३६ ॥

यह उत्तम आसन है, आप ग्रहण कीजिये। वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥४॥ तुलना पार. १।३।७ ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभामण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर निम्न मन्त्र को बोले—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥५॥

पार. १।३।८ ॥

[द्वितीय विधि—पाद्य, अर्घ-प्रदान]

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवें, और कन्या निम्न वाक्य को बोल के वर के आगे करे—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥६॥ तु.। पार. १।६।९ ॥

पुनः वर निम्न वाक्य—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥७॥

को बोल कन्या के हाथ से उदक ले, पग प्रक्षालन करे।[1]

---

३. वधूः—यह उत्तम आसन आप ग्रहण कीजिए।

४. वरः—स्वीकार करता हूं।

५. (उद्यतां) उदय होने वालों में (सूर्य इव) सूर्य की तरह, मैं (समानानां) तुल्य जनों में (वर्ष्मोऽस्मि) तेजस्वी हूं। (इमं तं) मैं उस पर (अभितिष्ठामि) चढ़ बैठता हूं, (यो मा) जो मुझको (अभिदासति) दास बना कर दबाना चाहता है।

६. वधूः—यह शुद्ध जल हाथ-पैर धोने के लिये लीजिये।

७. वरः—लाइये, लेता हूं।

---

१. प्रथम दक्षिण पद पश्चात् बायां पग धोवें (ग्र. क.)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और उस समय निम्न मन्त्र को बोले—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥८॥ पार. १।३।१२ ॥

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पुनः दूसरा लोटा शुद्ध पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे। पुनः कन्या निम्न वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे—

ओम् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥९॥

और वर निम्न वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र ले के उससे मुखप्रक्षालन करे—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥१०॥

और उसी समय वर मुख धोके निम्न मन्त्र को बोले—

ओम् आप स्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवानि।
ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।
अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥११॥

पार. १।३।१३-१४ ॥

[तृतीय विधि—आचमन]

तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम भाग में बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल

---

८. हे जल! (मयि पाद्यायै विराजो दोहः) पादश्रम को दूर करने के लिये तू उपस्थित है।

९. वधूः—यह शुद्ध जल मुखप्रक्षालनार्थ है।

१०. वरः—लाइये, लेता हूं।

११. (आपस्थ) ये तुम जल हो, (युष्माभिः) जिन से मैं (सर्वान् कामान्) अपने सब अभीष्टों (अवाप्नवानि) को सिद्ध करूं। मैं (वः) तुम्हें (समुद्रं) [आकाशस्थ] समुद्र की ओर (प्रहिणोमि) भेजता हूं ताकि तुम (स्वां योनिं) अपने कारणभूत मेघरूप में (अभिगच्छत) परिणत हो जावो। (अस्माकं वीराः) हमारी सन्तति (अरिष्टाः) दुःख दारिद्रय रहित हो; (मत्) हमें कभी (पयः) जल का (मा परासेचि) अभाव न हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे; और उस समय कन्या निम्न वाक्य बोल के वर के सामने करे—

ओम् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥१२॥

तुलना—पार. १।३।५, ६ ॥

और वर निम्न वाक्य—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥१३॥

को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले, सामने धरे, उसमें से दाहिने हाथ में जल, जितना अंगुलियों के मूल तक पहुंचे, उतना लेके निम्न मन्त्र से एक आचमन, करे और इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे—

ओम् आ मागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा ।
तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥१४

पार. १।३।१५ ॥

[चतुर्थ विधि—मधुपर्क]

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क* का पात्र कन्या के हाथ में देवे, और कन्या—

---

१२. वधूः—आचमन के लिये जल स्वीकार करें ।

१३. वरः—सधन्यवाद ग्रहण करता हूं ।

१४. हे जलो ! (मा आगन्) चारों ओर से मुझे प्राप्त हुए हो । (यशसा) यश और (वर्चसा) कान्ति से (संसृज) मुझे संयुक्त करो । (तं मा) उस मुझे (प्रजानां प्रियं) पुत्र पौत्रादिकों का प्रिय, (पशूनां) पश्वादि धनसम्पत्ति का (अधिपतिं) स्वामी और (तनूनां अरिष्टिं) शरीर से नीरोग बनाओ ।

---

*मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है उस का परिमाण १२ बारह तोले दही में ४ चार तोले सहत, अथवा ४ चार तोले घी मिलाना चाहिए, और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है ॥ द. स.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥१॥

तुलना पार. १।३।५, ६ ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर निम्न वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥२॥

और उस समय निम्न मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥३॥ पार. १।३।१६ ॥

और निम्न मन्त्र को बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवें

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृह्णामि ॥४॥ द्र. । पार. १।३।१७; यजुः १।१० ॥

और निम्न तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे—

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥

---

१. वधूः—यह मधुपर्क है; कृपया ग्रहण कीजिये।

२. वरः—धन्यवाद, ग्रहण करता हूं।

३. (त्वा) तुझे (मित्रस्य चक्षुषा) हितकर्त्ता की दृष्टि से (प्रतीक्षे) देखता हूं।

४. सविता देव की सृष्टि में मैं तुझे विशाल बाहुओं तथा बलिष्ठ हाथों से स्वीकार करता हूं।

१. (भूर्भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्द स्वरूप! प्रत्येक ऋतुओं में वायुएं मधुर होकर बहें। नदियों में मीठा जल बहे। हमारे लिये मधुर रसभरी औषधियां फलें।

२. हमारे लिये रात्रि और उषःकाल मीठे सुहाने हों, पृथिवी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥[1]

पुनः निम्न मन्त्र को पढ़, दहिने हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोवे—

ओं नमः श्यावास्यायायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥४॥ पार. १।३।१८ ॥

उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेणच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥१॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा ।

का प्रत्येक कण मिठास भरा हो। वर्षादि द्वारा सब का पालक आकाश हमारे लिये मधुर हो।

३. हमारे लिये मधुर रसमयी वनस्पतियां हों, सूर्य मधुर [संतापकारी न हो] गवादि पशु मधुर लाभकारी हों।

४. हे जठराग्ने ! (श्यावास्याय) 'श्यावः आस्यं यस्य'=मुख है खाने का द्वार जिसका या पीतवर्णमुख वाली (ते) तेरे लिये (नमः) यह मधुपर्क है। (ते अन्नशने) तेरे द्वारा अशन=भोज्य इस मधुपर्क में (यत् आविद्धम्) जो 'न खाने योग्य' आ पड़ा है, मिला हुआ है, (ते) तेरी खातिर (तत् निष्कृन्तामि) उसे निकलता हूं, पृथक् करता हूं।

१. हे मधुपर्क ! (वसवः[2]) चौबीस-पच्चीस वर्षीय पुरुष व षोडशवर्षीया स्त्री रूप में गृहस्थ बने या विवाहेच्छु वसु संज्ञक विद्वान् स्त्री-पुरुष (गायत्रेण छन्दसा) वेद में प्रतिपादित किये गायत्री आदि छन्दों से[2] अथवा गायत्री मन्त्र से निकले आनन्ददायक अर्थ के साथ[3] (त्वा) तुझे—

---

१. यजुः १३।२७-२९ ॥ व्याहृति छोड़ कर मन्त्र पाठ।

२. यह अर्थ ऋषि दयानन्द कृत यजुः ११।५८ के अनुसार तथा

३. यह अर्थ ऋषि दयानन्द कृत यजुः ११।९, १०, १० के भाष्य के आधार पर किया है। तुलना यजुः ७।४७ का ऋषिभाष्य।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥२॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा।

ओम् आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥३॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और—

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥४॥

आश्व. गृ. १।२४।१४-१५ ॥

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा-थोड़ा छोड़े अर्थात् छींटे देवे। तत्पश्चात्

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि[1] ॥५॥

---

२. (रुद्राः) तीस से चालीस वर्षीय पुरुष व अठारह से बाइस वर्षीय स्त्रीरूप में गृहस्थ बने या विवाहेच्छु रुद्रसंज्ञक विद्वान् स्त्री पुरुष (त्रैष्टुभेन छन्दसा) वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप् छन्द से अथवा त्रिष्टुप् मन्त्र से निकले स्वतन्त्र अर्थ के साथ (त्वा) तुझे—

३. (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष या बाईस-चौबीस-तीस वर्ष ब्रह्मचर्य से बने पूर्ण विद्या और बल से युक्त, आप्त सत्यवादी धर्मात्मा गृहस्थ बने या विवाहेच्छु विद्वान् स्त्री-पुरुष (जागतेन छन्दसा) वेद में प्रतिपादन किये जगती छन्द से अथवा जगती मन्त्र से विधान किये सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (त्वा) तुझे--

४. (विश्वे देवाः) सब 'विद्याओं में प्रविष्ट [=निष्णात]' उपदेशक विद्वान् लोग, वानप्रस्थी संन्यासी आदि (आनुष्टुभेन छन्दसा) वेद में प्रतिपादन किये अनुष्टुप् छन्द से अथवा अनुष्टुप् में कहे हुए स्वतन्त्र अर्थ के योग से (त्वा) तुझे—

अर्थात् यज्ञवेदी के क्रमशः पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर दिशा में विराजमान, वसु-रुद्र-आदित्य संज्ञक विद्वान् क्रमशः गायत्री-त्रैष्टुभ्-जगती तथा अनुष्टुप् छन्द बोलते हुए (भक्षयन्तु) खावें।

५. (भूतेभ्यः) अन्य प्राणियों के लिये भी (त्वा) तुझे (परिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

---

१. आश्व. गृह्य. १।२४।१५ ॥ 'परिगृह्णामि' यह आध्याहृत पद है। आश्व. गृह्य टीकाकार के अनुसार 'भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि' मन्त्र तीन बार उच्चारणीय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना।[1]

तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रक्खे, रख के—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ६॥[2]

को एक-एक बार बोल के एक-एक भाग में से वर थोड़ा-थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे।

---

६. (यन्मधुनः) जो शहद का (मधव्यं) मिठास; (परमं) उत्कृष्टता=विशेषता से युक्त है (रूपं), दर्शनीय=साफ है और (अन्नाद्यं) अन्न की तरह उपभोग करने योग्य है; (तेन मधुनः) मधु के (मधव्येन) उसी माधुर्योपयोगी (अन्नाद्येन) अन्न के तुल्य खाने योग्य (परमेण रूपेण) सुन्दर स्वरूप से, मैं (परमः) पवित्र, सर्वोत्कृष्ट, (मधव्यः) मधुरभाषी या मधुर स्वभाव वाला (अन्नादः) अन्न को खाने वाला (असानि) होऊं।*

---

१. अर्थात् सब भूतमात्र का भी इसमें थोड़ा हिस्सा है।

२. पार. गृ. १।३।२०॥

*क. आश्वलायन व द्राह्यायण गृ. सू. का मत है कि यदि मधुपर्क शेष रहे तो किसी विद्वान् ब्राह्मण व इष्ट मित्र को भक्षणार्थ दे देवे।

सर्वोत्तम यह हैं कि जितना मधुपर्क खाना इष्ट हो उतना ही लेवे। सारे को जूठा न करे।

ख. 'मधुपर्क' प्राचीन सत्कार की विधि है। मधु=मधुर पर्क=सम्बन्ध, सम्मिलन। यह संन्यासी, आचार्य, राजा, वर या स्नातक आदि के गृह पर या संस्कार यज्ञादि शुभ अवसरों पर उनके पधारने पर सन्मानार्थ की जाती थी।

ग. इसमें 'मधुपर्क' पदार्थ के द्वारा चारों दिशाओं में छींटे डालने का विधान 'विवाह-संस्कार' में किसी भी गृह्यसूत्रकार ने नहीं किया। आश्वलायन ने 'समावर्त्तन संस्कार' में उपरोक्त छींटे लगाने को कहा है।

घ. इससे अनुमान होता है कि अति प्राचीन काल में, जो वसु रुद्र आदित्य तीन कोटि के 'स्नातक विद्वान्' अपने नूतन स्नातक बन्धु के समावर्त्तन के समय यज्ञवेदी की पूर्वादि दिशाओं में बैठते थे, तथा अन्य जो विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पंचम विधि—आचमन अङ्गस्पर्श]

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥[1]

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥[1]

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक-से-एक और दूसरे से दूसरा वर करे। तत्पश्चात् वर निम्न मन्त्रों से चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे।

ओम् वाङ् म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा, और

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

पारस्कर गृ० का० २। कण्डिका ३। सू० २५ ॥

[षष्ठ विधि—गोदान]

पश्चात् कन्या निम्न वाक्य से

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥१॥ तु० पार. गृ. १।३।२६ ॥

---

१. वधू कार्यकर्त्ताः—हे वर ! 'बुद्धि धनधान्यादि की प्रतिनिधि रूप' इस गौ को स्वीकार कीजिये।

उत्तर दिशा में बैठते थे, पहले उनका 'मधुपर्क'=सत्कार किया जाता था। वे स्नातक व अन्य विद्वन्मण्डल यथाविहित गायत्री त्रिष्टुप् आदि छन्दों वाली ऋचाओं का उच्चारण करते थे। तदुपरान्त 'नवीन स्नातक'=गृहस्थेच्छु तरुण स्वयं कुछ 'मधुपर्क' ग्रहण करता था और शेष 'किसी 'ब्राह्मण'= आदरणीय विद्वान् पुरुष या पुरोहित को दे दिया जाता था।

१. आश्व. गृह्य. १।२४।२१, २२ ॥ 'स्वाहा' पद रहित पाठ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो अर्पण करे और वर निम्न वाक्य से उसको ग्रहण करे।

ओं प्रतिगृह्णामि ॥२॥

इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करे।

४. पाणिग्रहण विधि

[प्रथम विधि—कन्यादान]

पश्चात् वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान* से घर में ले जा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के‡—

ओम् अमुक[1] गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीं[2] समलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥३॥

---

२. वरः—मैं स्वीकार करता हूं।

३. कन्यादाताः····· गोत्र में उत्पन्न, ·····[अमुक की पौत्री,

---

*यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो, तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उससे दूसरे घर में वर को ले जावें॥

‡इस समय निम्न मन्त्र को बोलना चाहिये—

ओं कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते॥

यजुः ७।४८॥

(प्रश्न) कौन देता है ? किसको देता है ? (उत्तर) काम अर्थात् मनः-संकल्प अथवा स्त्री पुरुष का परस्पर लैङ्गिक आकर्षण रूप काम ही देता है और कामयुक्त जीव के लिया देता है। वास्तव में दाता भी काम है और 'प्रतिग्रहीता' लेने वाला भी काम ही है। हे काम ! यह 'दान-प्रतिग्रहण' वस्तुत. तेरे निमित्त या कारण ही है।

१. अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उसका उच्चारण अर्थात् उसका नाम लेना यथा 'काश्यपगोत्रोत्पन्नां'। यहां वर वधू दोनों के पिता, पितामह, प्रपितामह का गोत्रोच्चारणपूर्वक नाम लिया जाता है (पार. गृ. १।४ का हरिहर भाष्य।

२. "अमुकनाम्नीम्" इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एक वचन से बोलना, यथा 'मधुश्रीं०' -

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार बोल के, वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रक्खे, उसके हाथ में वधू का दक्षिण हथा चत्ता* ही रखे और वर बोले—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥४॥

[द्वितीय विधि—वस्त्र आदान प्रत्यादान]

पश्चात् निम्न मन्त्र बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीवः शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥१॥ पार. गृ. १।४।१२॥

अमुक की पुत्री]·····नाम वाली, शील-वस्त्राभूषण से अलंकृत, इस कन्या को आप [धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि[1] के लिये] स्वीकार करें।

४. वरः—स्वीकार करता हूं।

१. हे कन्ये ! (जरां गच्छ) चिरंजीविनी हो; (परिधत्स्व वासः) महावस्त्र को[2] भली प्रकार पहिन; (कृष्टीनां) कामासक्त मनुष्यों के बीच में (वा=वै) निश्चय रूप से (अभिशस्तिपाः) अभिशाप=प्रमाद, दोष, गुलामी से अपनी रक्षा करने वाली (भव)

---

१. (क) कन्यां सालंकृतां साध्वीं सुशीलाय सुधीमते।
श्रीमतेऽस्मै प्रयच्छामि 'मोक्षकामार्थधर्मणे ॥ कल्पित ॥

(ख) द्र. यजुः ऋषि भाष्य ८।९ का भावार्थ।

२. महाराष्ट्र में इस वस्त्र का नाम 'महावस्त्र' है; सुहागवस्त्र।

*अभिभावक या माता-पिता द्वारा 'वर के हाथ में कन्या का हाथ रखने' का तात्पर्य कन्या को वर के लिये 'पशु-गृह-धन' की तरह दान करना नहीं। कन्या कोई अचल सम्पत्ति नहीं कि जिसका दान किया जा सके।' 'कन्या-दान' का जो अर्थ अब प्रचलित है, वैदिक काल में वैसा नहीं था। वैदिक धर्म में कन्या के अधिकार, वर के सर्वथा समान है। बल्कि कन्या 'साम्राज्ञयी' है; वर तो 'राजा' ही है। कन्या अपनी इच्छा से पुरुष का वरण करती है और वर अपनी इच्छा से वधू को स्वीकारता है। पृ. २८४ में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे। वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे—

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ।
तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥१॥[1]

पुनः निम्न मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥२॥[2]

हो। (सुवर्चा शतं च शरदः जीव) कान्तिमती=वर्चस्विनी होती हुई सौ वर्ष तक जी! (रयिं च पुत्रान् च) धन और पुत्रों का (अनु) पति की अनुकूलवर्तिनी होकर (संव्ययस्व) संचय कर। हे आयुष्मती! (इदं वासः) इस वस्त्र को (परिधत्स्व) शरीर और रक्षण के निमित्त धारण कर।

१. (याः) जिन देवियों=स्त्रियों ने (अकृन्तन्) इस ['महा-वस्त्र' के सूत] को काता है, (अवयन्) बुना है, (या अतन्वन्) जिन्होंने [इसका तानावाना] फैलाया है और (याः च देवीः) जिन सुशिक्षित नारियों ने (तन्तून्) इसकी तन्तुओं=किनारियों क (अभितः) दोनों या सब ओर से (ततन्थ) गूंथ कर फैलाया है अथवा इसको सीया है, (त्वा जरसे) तू अपने वृद्धावस्थापर्यन्त (ताः देवीः) उन देवियों को (संव्ययस्व) सम्पादन करती रह अर्थात् इन से सम्बन्ध बनाये रख ताकि ये समस्त आयु तेरे लिये ऐसे वस्त्र तैयार करती रहें, तुझे शिक्षा देती रहें और तू भी 'कातना-बुनना-बनाना' सीख ले। हे आयुष्मति! इस वस्त्र को शरीर और शील रक्षण के निमित्त धारण कर।

२. हे पितरो! शरीराच्छादन के लिये, यशः प्राप्ति और

लिखे 'अपश्यं त्वा मनसा०' मन्त्र द्वारा दोनों एक दूसरे को मन से स्वीकारते' हैं। अतः कन्यादान का आशाय 'उत्तरदायित्व का हस्तान्तरकरण=समर्पण' मात्र समझना चाहिये। अब से 'कन्या के भावी संरक्षण अर्थात् पालन-पोषण तथा भावी जीवन के सर्वतोमुखी विकास का पूर्णदायित्व, कन्या संरक्षक द्वारा वर-राजा को सौंपा जाना' ही इसका सत्य अभिप्राय है।

१. पार. गृ. १।४।१३ ॥ २. पार. गृ. २।६।२० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और निम्न मन्त्र को पढ़ के द्विपट्टा धारण करे—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥३॥[1]

इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान करके जब तक सम्भले तब तक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञ मण्डप में जा कुण्ड के समीपस्थ हो, इन्धन, कपूर और आहुति के लिये सुगन्ध डाला हुआ घी बटलोई में सिद्ध करके अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे और स्रुवादि होम के पात्र तथा शुद्ध जलपात्र इत्यादि यज्ञ की सब सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे ।

और वरपक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाय तब तक उत्तराभिमुख बैठा रहे ।

और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिण भाग में कार्य समाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे ।

और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो, वह चावल या जुवार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिलाकर

दीर्घायुत्व के लिये, वस्त्र धारण कर मैं वृद्धावस्थापर्यन्त जीने की इच्छा रखता हूं । सब प्रकार से सुखों की पूर्त्ति करने वाले सौ बरस जीवित रह, ज्ञान और धन को अथवा धन और शरीरपुष्टि को प्राप्त करता हूं ।

३. हे पितरो ! [वस्त्र धारण कर] मुझे सूर्य और पृथिवी वत् स्थिर माता-पिता, समाज के धनी और विद्वान् अथवा बालक और उपदेशक, यश प्रतिष्ठा के साथ मिलें । मुझे ऐश्वर्य और उत्तम नाम मिले । चिरस्थाई यश मिले ।

---

१. पार. गृ. २।६।१९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शमीपत्रयुक्त धाणी की चार अञ्जलि एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे।

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो, उसको; तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन अथवा यज्ञीयवृक्ष की छाल के; जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों; उन आसनों को रखवावे।

[तृतीय विधि—वधू-वर की यज्ञमण्डप में प्रतिज्ञा]

तत्पश्चात् वस्त्र अलङ्कार धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता, वर के सम्मुख लावे और उस समय वर और कन्या मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए आवें और दोनों निम्न मन्त्र को बोलें (सं. वि. १८७)।

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥१॥[1]

तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के निम्न मन्त्र को बोल के,

---

१. वर और कन्या बोले कि हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगों! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं। (नौ) हम दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शान्त और मिले हुए रहेंगे; जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हमको प्रिय है, वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे; जैसे (धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है, वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे और जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारा विद्वान् श्रोताओं से प्रीति करता है, वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे। द. स.।

---

१. ऋ. १०।८५।४७ ॥ पार. गृ. १।४।१४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा ।
हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ* ॥२॥[1]

दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधू निम्न मन्त्र को बोले—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताँ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥३॥ गोभि. गृ. २।१।२० ॥ मन्त्रब्रा. १।१।८ ॥

[चतुर्थ विधि—सामान्ययज्ञ की विधि][2] पुरोहित वर्णन

तत्पश्चात् पृ. २८-१०८ में लिखे प्रमाणे पुरोहित की स्थापना अर्थात् ऋत्विग्वरण आचमन-अङ्गस्पर्श, अग्न्याधान, त्रिसमिदाधान[3]

---

*(असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना ।

२. हे वरानने ! वह (यत्) जो तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु (वा) जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि की किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पृथिवी आदि पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को को प्राप्त होता है, वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को (एषि) प्राप्त होती, उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) सदा मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे ।

३. (ओम्) हे सर्वव्यापक, मेरे मन की बात जानने वाले परमात्मन् ! तेरे अनुग्रह से (पतियानः) पति के आचार का मार्ग ही अब से (प्र) विशेष रूप से (मे पन्थाः कल्पताम्) मेरा जीवन-पथ बने । मैं (शिवा) सदासुखी-प्रसन्न और (अरिष्टा) दुःखदारिद्रय से रहित (पतिलोकं गमेयम्) पति के घर जाऊं अर्थात् गृहस्थन बनूं ।

---

१. पार. गृ. १।४।१५ ॥

२. यदि कन्या या वर का अब तक यज्ञोपवीत न हुआ हो तो 'ऋत्विग्वरण व आचमन अङ्ग स्पर्श के पश्चात् दोनों को यज्ञोपवीत 'ओं यज्ञोपवीत०' मन्त्र से अवश्य करा दें ।

३. यहां ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण तथा त्रिसमिदाधान के पश्चात् 'ओम् अयन्त०' से पंचाज्याहुतियों का विधान ऋषि दयानन्द ने नहीं किया ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और कुण्ड के चारों ओर दक्षिण हाथ की अञ्जलि से शुद्ध 'जल-प्रसेचन' करें।

[पंचम विधि—घृत की सोलह आहुतियां]

पश्चात् कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त होने पर, वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता अर्थात् यजमान आघारावाज्यभागाहुति चार व्याहृति-आहुति चार और मङ्गल-अष्टाज्याहुति आठ, ये सब मिल के सोलह आहुति घी की देवें (सं. वि. १९०)।

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १। ख० ८। सू० २४॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५।१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १ । सू० ३४ । मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

यजु० अ० ५ । मं० ३ ।

[षष्ठ विधि—विवाह का प्रधानहोम]

१. पंचाज्याहुतियां

…सोलह आहुति दे के प्रधानहोम का प्रारम्भ करें । प्रधान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होम [की पांच आज्याहुति] के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करे।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥४॥

ओं भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि। अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥*[1]

---

*हे (भूः)[2] जीवनदाता (भुवः) विघ्नविनाशक (स्वः) सुखदाता परमात्मन् अथवा पति परमेश्वर! (यत् त्वं) जो तू (कनीनां) सूक्ष्म पदार्थों वा कामना करने वाले कन्या आदिकों का (अर्यमा) नियामक (नाम) रूप से प्रसिद्ध है, ऐसा (स्वधावन्) अन्नादि सुख सामग्री को धारण करने वाला तू (गुह्यं बिभर्षि) सब गुह्य की, गोपनीय अङ्गों का भरण करने वाला है।

(यत्) हे परमेश्वर! जो तू (दम्पती समनसा कृणोषि) स्त्री-पुरुषों का समान मन जोड़ा बनाता है, संयोग मिला पति-पत्नी

---

१. ऋ. ४।३।२॥ व्याहृति, स्वाहा पद तथा 'इदं···न मम' मन्त्र से बहिर्भूत है। आश्व. गृ. १।४।७॥

२. भूः=प्राणदाता। भुवः=दुःखहर्त्ता। स्वः=सुखदाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२. राष्ट्रभृत् यज्ञ-घृत और शाकल्य की बारह आहुतियां

ओम् ऋतषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥१॥

ओम् ऋतषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः—इदन्न मम ॥२॥

बनाता है अथवा विवाहित स्त्री-पुरुषों को तुल्य मन और दृढ़ प्रीति-युक्त करता है, वे (गोभिः) अपने ज्ञानों, वाणियों वा इन्द्रियों द्वारा (मित्रं न) मित्र के समान तुमको (सुधितम्) सम्यक्तया प्रसन्न जैसा (अञ्जन्ति) प्रगट=पूजित करते हैं।

१-२. (अग्निः) भौतिक अग्नि (ऋतषाड्) ऋत=भूमण्डल के परिवर्त्तन प्राकृत नियमों को सहने वाला और (ऋतधामा) ऋत अर्थात् ठीक अनुपात में प्रत्येक भौतिक पदार्थ में विद्यमान है। वह (गन्धर्वः) इस 'पृथिवी' का धारण करने वाला अर्थात् इसका पति है[1]। (औषधयः) तेज को धारण करने वाली ओषधियां (तस्य) इस 'गन्धर्व' अग्नि की (अप्सरसः) जो अप्=कर्म को आगे सरकाने वाली अर्थात् भूमि पर कार्यसाधक शक्तियां अप्=प्राणों में प्रभाव पैदा करने वाली शक्तियां हैं, वे (मुदो नाम) 'मुद्' अर्थात् हर्ष देने वाली नाम से प्रसिद्ध हैं। (स.) वह 'अग्नि गन्धर्व' (नः) हमारे (इदं) इस (ब्रह्म)[2] नियमपूर्वक वर्धनशील तत्व तथा (क्षत्रं)[2] क्षय

---

१. गन्धर्व पति को कहते हैं। तु. ऋ. १०।८५।४। द्र. स. प्र. ४ समु. पृ. १४४॥

२. हे मनुष्यो! तुमको योग्य है कि (ब्रह्म) पूर्ण विद्यादि शुभ गुण युक्त मनुष्य और सब के उपकारक शमदमादि गुणयुक्त ब्रह्म कुल (क्षत्रं···) विद्यादि उत्तम गुणयुक्त [मनुष्य] तथा विषय और शौर्यादि गुणों से युक्त क्षत्रिय कुल···का पालन और उसकी उन्नति···[सं. वि. २३९]···सदा किया करो [सं. वि. २४०]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं. संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं संहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥३॥

ओं संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः—इदन्न मम ॥४॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिचन्द्रमा गन्धर्वः। स न इदं

=दोषनाशक तत्त्व अथवा ब्राह्म एवं क्षात्र गुणों की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै स्वाहा) उस 'अग्नि गन्धर्व' के लिए हमारी यह सत्यवाणी 'शुभ प्रार्थना' हैं। और (ताभ्यः) उसकी उन कार्य साधक 'मुद्' नामक ओषधियों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया करते हैं, ताकि सदा सदुपयोग हो; जिससे कि (वाट्) गृहस्थ [यज्ञ] के व्यवहारों का यथायोग्य वहन=वर्त्ताव किया जा सके।

३-४. (सूर्यः) यह सूर्य (संहितः) सब मूर्त्तिमान् वस्तुओं के साथ मिला हुआ और उनको परस्पर मिलनेहारा अथवा दिन व रात्रि की सन्ध्या का कारण और (विश्वसामा) समस्त विश्व में समान विश्व में समान रूप से शान्ति देने वाला है। वह (गन्धर्वः) इस 'पृथिवी' का भरण पोषण करने वाला, इसका पति है। (मरीचयः) अन्धकार व दोषों की मारक गतिशील किरणें (तस्य) इस 'गन्धर्व' सूर्य की (अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में कार्यसाधक शक्तियां हैं, वे (आयुवो नाम) 'आयु' अर्थात् सब ओर से संयोग-वियोग करने वाली अथवा जीवन-दात्री अथवा परस्पर संगत, नाम से प्रसिद्ध हैं। वह 'सूर्य गन्धर्व'..... रक्षा करे। उस सूर्य गन्धर्व के लिए (स्वाहा) उत्तम क्रिया से काय सिद्धि के निमित्त हमारी यह 'शुभ प्रार्थना' है। और उसकी उन 'आयु' नामक मरीचियों के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया को अच्छे प्रकार से युक्त करते हैं; जिससे कि (वाट्) .....जा सके।

५-६, (चन्द्रमाः) यह चन्द्रमा (सुषुम्णः) जिससे उत्तम सुख होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥५॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः—इदन्न मम ॥६॥

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥७॥

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमद्भ्यो अप्सरोभ्यऽऊर्ग्भ्यः—इदन्न मम ॥८॥

है या सुख निद्रा का देने वाला और (सूर्यरश्मिः) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त=प्रकाशित होने वाला है। वह (गन्धर्वः) इस 'पृथिवी' का धारण करने वाला इसका 'पति' है। (नक्षत्राणि) अश्विनी भरणी आदि तारा-तारिकायें, इस 'चन्द्र गन्धर्व' की (अप्सरसः) जो आकाश में कार्य साधक शक्तियां हैं, वे (भेकुरयो नाम) 'भेकुरि' अर्थात् भास=दीप्ति करने वाली, प्रकाश सम्पन्न, नाम प्रसिद्ध हैं। वह 'चन्द्रमा गन्धर्व'.....रक्षा करे। उस चन्द्रमा गन्धर्व के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वाट्) कार्य निर्वाह पूर्वक प्रयुक्त करते हैं, जिससे कि (वाट्)...जा सके।

७-८. (वातः) यह सब जगह गति भ्रमण करने वाला मध्य लोकस्थ वायु (इषिरः) अन्नोत्पत्तिका प्रेरक अर्थात् अन्नोत्पादन वर्धन में सहायक अथवा जिसके कारण मन में इच्छा करते हैं और (विश्वव्यचाः) सारे विश्व में इसकी व्याप्ति है अथवा यह सब संसार की व्यक्ति=प्रगटन अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त होने का कारण है। यह (गन्धर्वः) इस पृथिवी का धारण करने वाला, इसका पति

CC-0,Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय, गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥९॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः—इदन्न मम ॥१०॥

है। (आपः) प्राण अपानादि दश प्राण रूप, इस गन्धर्व वायु की, जो मध्यलोक में कार्य साधक शक्तियां हैं, वे (ऊर्जो नाम) 'ऊर्क्' अर्थात् सृष्टि के पदार्थों में गति, बल पराक्रम देने वाले होने से, नाम से प्रसिद्ध हैं। अथवा (तस्य) उस वायु के आश्रय पर स्थित (आपः) जल ही उसकी (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में गतिमान् होकर मेघरूप से विचरने वाली शक्तियां, अन्न द्वारा विश्व को सप्राण करने से 'ऊर्ज' नाम से प्रसिद्ध हैं। वह 'वात गन्धर्व'···रक्षा करे। उस बाल गन्धर्व मे लिए हमारी यह शुभ प्रार्थना है और उसकी उन 'कार्य साधक' 'ऊर्क्' नामक अप् शक्तियों से लाभ के लिए उत्तम क्रिया करते हैं, जिससे कि (वाट्)···जा सके।

९-१०. (यज्ञः) यह संगति करने योग्य कर्म अथवा 'देवपूजा संगतिकरण-दान' कर्मों का साधक गृहस्थ व्यवहार (भुज्युः) सुखों के भुगाने वाला अथवा 'ब्रह्मचारी-वानप्रस्थी-संन्यासी' तीनों आश्रमियों योग्य फलों का देने वाला सबका पालक (सुपर्णः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से युक्त है। यह (गन्धर्वः) वायु शुद्धि व उत्तम दृष्टि द्वारा सबका धारण-पालन करने वाला पृथिवी का पति है। (दक्षिणाः) जो सुपात्र धर्मात्मा विद्वानों को दी जाने वाली दक्षिणायें अथवा कार्य में दक्षता उत्साह की उत्पादक दक्षिणायें (तस्य) इस यज्ञ-गन्धर्व की (अप्सरसः) कार्य क्षमता बढ़ाने वाली शक्तियां हैं, प्राणों में उत्साह संचार करने वाली हैं, वे (स्तावाः नाम) 'स्तावा' अर्थात् यज्ञ व यज्ञकर्त्ता दोनों की स्तुति का कारण अथवा स्तुति=प्रशंसा योग्य होने से, नाम से प्रसिद्ध हैं। वह 'यज्ञ गन्धर्व' हमारे (इदं) इस (ब्रह्म) ब्रह्मक्षत्र=वेदज्ञान के रक्षक व ज्ञाता अर्थात् संस्थापक=

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं प्रजापतये, विश्वकर्मणे, मनसे, गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥११॥

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्य-प्सरस एष्टयो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः—इदन्न मम ॥१२॥

यजुः १८।३८।४३ पर आधारित ॥

कुल और (क्षत्रं) क्षत्र=दुष्कृत विनाश द्वारा साधुपरित्राता शासक कुल की (पातु) रक्षा व वृद्धि करता रहे। गृहाश्रम में, यज्ञ कराने से दक्षिणा के योग्य विद्वान् गृहस्थी तथा ब्राह्मण कर रूप दक्षिणा पाकर शूरवीर चक्रवर्त्ती राजा अथवा (ब्रह्म) वेद=अध्यात्म ज्ञान व (क्षत्र) धनुर्वेद=आधिभौतिक ज्ञान दोनों, राष्ट्र में उत्तम गृहस्थ व्यवहार द्वारा, सुरक्षित रहें। इस यज्ञ गन्धर्व के लिये (स्वाहा) ऐसी उत्तम क्रिया का अनुष्ठान करो, अथवा ऐसे उत्तम शाकल्य=समिधा, घृत हव्य की आहुति दो (वाट्) जिससे कि सब व्यवहारों की यथासंकल्पित प्राप्ति हो और और (तस्मै) उन 'स्तावा' नामक दक्षिणाओं के निमित (स्वाहा) सदा सुष्ठु व्यवहार व शुभ वचन बोलो अर्थात् इन्हें ऐसी उत्तम रीति से करो कि (वाट्) सब कार्य निर्वाह पूर्ण हो।

११-१२. (मनः)[1] ज्ञान की सिद्धि करनेहारा मन (प्रजापतिः) अष्टचक्रा, नवद्वारा अयोध्या नाम से प्रसिद्ध मानव 'देह-पुरी' की आँख इन्द्रियादि प्रजा का पालने वाला स्वामी और (विश्वकर्मा) पुरुष के सब कामों का हेतु है। यह (गन्धर्वः) वाणी, इन्द्रिय आदि का धारण करने वाला, इस शरीर का पति है। (ऋक्सामानि) ऋग्वेदस्थ ज्ञान व सामवेदस्थ विद्यायें अथवा अध्यात्म=शरीर और आत्मा सम्बन्धी बुद्धि में (तस्य) उस 'मन गन्धर्व' की (अप्सरसः) जो कर्मों में प्रवृत्त होने वाली वृत्तियां हैं अथवा कार्य साधक शक्तियां

---

१. तुलना यजुः ३४ शिवसंकल्पाध्याय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. जयाहोम—घृत और शाकल्य से

तत्पश्चात् इन मन्त्रों से जयाहोम की तेरह आज्याहुति दें—

ओं चित्तं च स्वाहा। इदं चित्ताय—इदन्न मम ॥१॥
ओं चित्तिश्च स्वाहा। इदं चित्यै—इदन्न मम ॥२॥
ओम् आकूतं च स्वाहा। इदमाकूताय—इदन्न मम ॥३॥
ओम् आकूतिश्च स्वाहा। इदमाकूत्यै—इदन्न मम ॥४॥
ओं विज्ञातञ्च स्वाहा। इदं विज्ञाताय—इदन्न मम ॥५॥

हैं, अथवा हृदयाकाश में व्याप्त प्राण आदि पदार्थों में होने वाली क्रियायें हैं, वे (एष्टयो नाम) 'एष्टि' अर्थात् इष्ट कार्यों की पूरक होने से, नाम से प्रसिद्ध हैं। वह 'मन गन्धर्व' हमारे इस (ब्रह्म) शरीर व राष्ट्र के वर्धनशील तत्त्व और (क्षत्रं) शरीर व राष्ट्र को क्षति से बचाने वाले तत्त्व की (पातु) सदा रक्षा कर वृद्धि करे। इस गन्धर्व मन के लिए (स्वाहा) उत्तम ज्ञान का संकल्प करते हैं और उसके 'एष्टि' नामक 'ऋग् साम बुद्धियों' के लिये (स्वाहा) हमारा यह 'शुभ संकल्प' है; जिससे (वाट्) धर्म की प्राप्ति होकर गृहस्थ [यज्ञ] के व्यवहारों का यथायोग्य वहन=बर्त्ताव किया जा सके।

१-१२. जीवन में सर्वदा सर्वत्र 'जयशील'=यशोमय जीवन बिताने के लिए, (चित्तं) चेतना के आधार चित्त, (चित्तिः) उसकी चेतना शक्ति, (आकूतं) अध्यवसाय वा संकल्प, (आकूतिः) संकल्प की शक्ति, (विज्ञानं) विज्ञान, (विज्ञातिः) विज्ञान की शक्ति, (मनः) सुख दुःख के ज्ञान का साधक मन, (शक्वरीः) सामर्थ्य वाली कर्मेन्द्रियां ज्ञानेन्द्रियां[1] अथवा ऐश्वर्य[2] शक्ति सामर्थ्य

---

१. चित्त से मन तक के पद 'अन्तः करण' वाची हैं। इसलिए 'शक्वरी' का अर्थ इन्द्रियां अधिक सुसंगत हैं। ऋषि ने यजुः १०।४ व १८।२२ में 'शक्तिमती' अर्थ किया है। इन्द्रियों का नाम 'पशु' भी होता हैं। ताण्ड्य १३।१३; १३।४।१३; १३।५।१८; १७।७।६ तथा तैत्ति. १।७।५।४ में 'पशवः शक्वरीः' ऐसा लिखा है।

२. श्रीः शक्वर्यः। ताण्ड्य १३।२।२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं विज्ञातिश्च स्वाहा। इदं विज्ञात्यै—इदन्न मम ॥६॥

ओं मनश्च स्वाहा। इदं मनसे—इदन्न मम ॥७॥

ओं शक्करीश्च स्वाहा। इदं शक्करीभ्यः—इदन्न मम ॥८॥

ओं दर्शश्च स्वाहा। इदं दर्शाय—इदन्न मम ॥९॥

ओं पौर्णमासं च स्वाहा। इदं पौर्णमासाय—इदन्न मम ॥१०॥

ओं बृहच्च स्वाहा। इदं बृहते—इदन्न मम ॥११॥

ओं रथन्तरञ्च स्वाहा। इदं रथन्तराय—इदन्न मम ॥१२॥

ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः प्रतना जयेषु। तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो वभूव स्वाहा। इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय—इदन्न मम ॥१३॥

की निमित्त गौवें=प्राण या इन्द्रियां[1], (दर्शः) अमावस्या सम्बन्धी कृत्य, (पौर्णमासं) पूर्णिमा सम्बन्धी कृत्य, (बृहत्) महद्विज्ञान[2] अथवा शुभ गुणों व उत्तम भोगों से प्राप्त महत्त्व[3] और (रथन्तरम्) संसार-समुद्र से पार लगाने वाला उत्तम शरीर=रथ[4] अथवा [सृष्टि में उपलब्ध] रमणीय पदार्थों से प्राप्त दुख-विनाशक सुख; ये सब पदार्थ (स्वाहा) सुष्ठु क्रिया युक्त अर्थात् लाभ पहुंचाने वाले हों।

इन सब पदार्थों की प्राप्ति के लिए शुभ संकल्प करते हुए, आहुति देते हैं।

१३ क. (उग्रः प्रजापतिः) तेजस्वी यज्ञनाम परमात्मा, अथवा सूर्य ने (वृष्णे) यज्ञादि द्वारा वर्षा करने वाले (इन्द्राय) मेघ के लिये (पृतनाजयेषु) अभाव अकाल सूखा आदि शत्रुरूप आपत्ति को जय करने में साधन भूत (जयान्) जय मन्त्रों अर्थात् सफल होने

---

१. शक्तिनिमित्ता गाः। ऋषिभाष्य यजुः २१।२७॥

२. द्र.। ऋषिभाष्य ऋ. २।३९।८॥

३. द्र. ऋ. भा.। ऋग् १।९।७॥

४. ये अर्थ यजुः १५।५; ११।८ तथा यजुः १३।५४ के आधार पर हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४: अभ्यातन होम—घृत और शाकल्य से
तत्पश्चात् अभ्यातन होम करना। इसके मन्त्र ये हैं—

ओम् अग्निर्भूतानामधिपतिः स मामत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये—इदन्न मम ॥१॥

ओम् इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देहूत्वयाँ स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये—इदन्न मम ॥२॥

के गुणों उपायों को (प्र, अयच्छत्) प्रकृष्टता से दिया है। इसीलिए (तस्मै) उस प्रजापति परमात्मा के लिए (सर्वाः, विशः) सब प्रजायें (सम् अनमन्त) सम्यग् प्रकार से झुकती हैं। क्योंकि (स उग्रः) वह उग्र होता है (स इ) इसलिए वह ही (हव्यः) हवि=आहुति देने के योग्य या आहवनीय पूज्य (बभूव) हुआ है।

ख. तेजस्वी प्रजापालक परमात्मा ने वीर्य सींचने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये, सन्तानोत्पत्ति में विघ्न रूप तत्त्वों को जय करने में साधन भूत, 'जयमन्त्रों' की प्रकृष्टता से दिया है।.....

ग. प्राण इन्द्रियादि प्रजा के पालक तेजस्वी मन ने (वृष्णे) वीर्य सींचने में समर्थ (इन्द्राय) आनन्द गुण वाले उपस्थेन्द्रिय के लिए (पृतनाजयेषु) शारीरिक-मन्दता को जय करने में (जयान्) साधन भूत जयमन्त्रों=सफल साधनों को प्रकृष्टता से दिया है। इसलिए उस मन के लिये उसकी सब (विशः) शरीर में प्रविष्ट प्रजायें उसका अभिनन्दन करती हैं।.....

१. (अग्निः) भौतिक अग्नि (भूतानां) 'आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथिवी' इन पञ्च भूतों अथवा सब भौतिक पदार्थों का (अधिपतिः) प्रमुख है;

२. (इन्द्रः) विदारण करने वाली विद्युत् शक्ति (ज्येष्ठानां)[1] जलों से प्रवृद्ध मेघों पर अधिकार रखने वाली है;

---

१. ज्येष्ठ का अर्थ होता है, प्रवृद्ध=बड़ा। विद्युत् के सम्बन्ध से 'जल भरे बादल' अर्थ किया है। इन्द्र द्वारा इनको विदारण करने से वर्षा होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यमः पृथिव्याऽअधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये—इदन्न मम ॥३॥

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये—इदन्न मम ॥४॥

ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये—इदन्न मम ॥५॥

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये—इदन्न मम ॥६॥

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये—इदन्न मम ॥७॥

---

३. (यमः) मृत्युः=नियमित मरणशीलता (पृथिव्याः) पार्थिव पदार्थों का (अधिपतिः) नियम में रखने वाला शासक है;

४. (वायुः) भौतिक वायु (अन्तरिक्षस्य) अन्तरिक्ष अर्थात् मध्यलोक का अधिपति है;

५. (सूर्यः) आदित्य (दिवः) द्युलोक का संचालक है;

६. (चन्द्रमा) चन्द्रमा (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का राजा है;

७. (बृहस्पतिः) बृहत्=वाणी[1], शब्दगुण वाला आकाश (ब्रह्मणः) शब्द ब्रह्म का रक्षक है;

---

१. यजुः ७।१५; १४।२०; १२।५४ तथा १।१२ में 'बृहती' का अर्थ क्रमशः वाणी, वचन, वेदवाणी, देववाणी किया है। इससे हमने 'शब्द' अर्थ का ग्रहण किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥८॥

ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये—इदन्न मम ॥९॥

ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् कर्मण्यस्यां स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥१०॥

ओम् अन्नꣳ साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥११॥

---

८. (मित्रः)[1] सब तत्त्वों को मिलाकर एक रूप देने वाला सूर्य (सत्यानां) सत्पदार्थों=रंगरूप आकार धारण कर दृश्य पदार्थों का अथवा स्थितिधारक पदार्थों का अधिपति है;

९. (वरुणः)[1] वरुण संज्ञक विशेष भौतिक देव (अपां) सब जलों का अथवा प्रवहणशील द्रव्यों का नियामक है;

१०. (समुद्रः) समुद्र (स्रोत्यानां) 'स्रोत' से उद्गम वाली नदी नालों का अन्तिम शरण है;

११. (अन्नं) अन्न (साम्राज्यानां) समविकास वाले पदार्थों का प्रमुख है; वा बड़े बड़े राज्यों का आधार है, अन्न के अभाव में बड़े से बड़ा साम्राज्य भी नष्ट हो जाता है;

---

१. जल को 'मैत्रावरुण' कहते हैं। 'मित्र' वह तत्त्व है जो स्थित=स्थिरता=सत्ता देता है और 'वरुण' वह तत्त्व है जो गति=आप्=प्रवहणशीलता देता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सोमऽओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये—इदन्न मम ॥१२॥

ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये—इदन्न मम ॥१३॥

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं रुद्राय पशूनामधिपतये—इदन्न मम ॥१४॥

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये—इदन्न मम ॥१५॥

ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये—इदन्न मम ॥१६॥

---

१२. (सोमः) सोम=चन्द्रमा (ओषधीनां) ओषधियों का राजा है;

१३. (सविता) सर्वोत्पादक सूर्य (प्रसवानां) सब उत्पत्तियों =जननों=रचनाओं का पालक है;

१४. (रुद्रः) प्राण (पशूनां) पशुओं के जीवनों का पति है;

१५. (त्वष्टा) सूर्य (रूपाणां) सब पदार्थों के रूपों=आकृतियों का स्वामी=कर्त्ता है;

१६. (विष्णुः) सूर्य (पर्वतानां) पर्वतों का राजा है;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं मरुतो गणानामधिपतिस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥ इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः—इदन्न मम ॥१७॥

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च—इदन्न मम ॥१८॥

द्र. पार. १।५।१० ॥

---

१७. (मरुतः)[1] सूर्य रश्मियाँ[2] या विशेष 'अप् संज्ञक'[3] वायुवें (गणानां) अपने अपने किरण समूहों[4] या वायु समूहों[5] की संचालक हैं; अथवा 'हृदयाकाश संचारी प्राण वायु' (गणानां) ध्वनियों[6] की उत्पादक हैं;

१८. विश्व (ब्रह्माण्ड व जीव पिण्ड) में स्थित अग्नि..... मरुत् ये सब पदार्थ और [परिवार में विद्यमान] (पितरः) माता-पिता, चाचा-चाची आदि (पितामहाः) दादा-दादी, नाना-नानी आदि (परे) दूर (अवरे) नजदीक के (ततः) इनके सम्बन्ध से फैले (ततामहाः) उनके भी सम्बन्ध में विस्तृत दूर दूर तक के सब सगे सम्बन्धी, (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्राह्म=मण्डल में=ज्ञान गोष्ठी में, (अस्मिन् क्षत्रे) इस क्षत्र मण्डल में=शासक सभा में, (अस्यां आशिषि) [इष्टसिद्धि के निमित्त होने वाली] इस मंगल प्रार्थना में (अस्यां पुरोधायां) इस सम्मुख वेदी या कन्या के विषय में (अस्मिन् कर्मणि) इस क्रियमाण यज्ञ कर्म के सम्बन्ध में (अस्यां

---

१. ऋषि दयानन्द ने ऋक् १।३८।१० में 'वायु और विद्युत्' अर्थ किया है।

२. मरुतो रश्मयः ॥ ताण्डच. १।१२।९ ॥

३. आपो वै मरुतः ॥ ऐत- ६।३० ॥

४. द्र. ऋषिभाष्य ऋक् ४।५०।५ ॥

५. द्र. ऋषिभाष्य ऋक् १।२।३।७ ॥

६. गणः वाङ्नाम निघण्टु १।११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५. मृत्यु-दुःखपाशविमोचन होम—घृत व शाकल्य से

इस प्रकार अभ्यातन होम की अठारह आज्याहुति दिये पीछे, पुनः निम्न मन्त्रों से आठ आज्याहुति देवें—

ओम् अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳬ सौऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳬ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳬ स्त्रीपौत्रमघन्नं रोदात् स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

देवहूत्यां) इस विद्वन्मण्डल[1] या सज्जनों की संगत[1] के सम्बन्ध में अथवा विद्वत् चर्चाओं में[2] (मा अवतु) मेरी रक्षा करें। (स्वाहा) मेरी यह प्रार्थना व क्रिया सत्य सिद्ध हो। हमारी आहुति इन सबके निमित्त है।

भाव यह है कि ब्रह्माण्ड [वा शरीरस्थ] सब शक्तियां तथा परिवार के सब बन्धु बान्धव इष्ट मित्र इन सब परिस्थितियों में हमारे रक्षक सहयोगी बनें।

१. (देवतानां=भूतानां) भौतिक दिव्य शक्तियों में (प्रथमः=अधिपतिः)[3] मुख्य (अग्निः) भौतिक अग्नि (आ एतु) इसमें अच्छी प्रकार गति करे। (सः) वह (अस्यै) इस स्त्री के लिए (मृत्यु-पाशात्) [प्रसवजनित] मृत्यु-बन्धन से (प्रजां) सन्तान को (मुञ्चतु) पृथक् करे अथवा गर्भवास रूप 'मृत्युपाश' से इसे छुड़ावे। (अयं वरुणः राजा)[4] यह 'अप्=प्रवहणशील पदार्थों' का नियामक अर्थात् शरीर में 'स्त्री-स्तन' में प्रसारण कराने वाली वरुण शक्ति (तद् अनुमन्यताम्) पश्चात् [स्तनों में दूध भर] सन्तान के जीवन में सहायक हो (यथा) ताकि (इयं स्त्री) यह स्त्री (पौत्रं) पुत्र-जनित=सन्तान सम्बन्धी (अघं) दुःख को (न, रोदात्) न रोवे; प्राप्त न हो ॥

इस स्त्री के शरीर में 'अग्नि' ऐसी क्रिया करे कि गर्भवास के बन्धन से सन्तान सुखपूर्वक छूट जावे और 'वरुण शक्ति' इसके स्तनों में तत्काल दूध बहा दे।

---

१. द्र. ऋषि भाष्य ऋ. ६।६।२।४ ॥

२. द्र. ऋषि भाष्य ऋग्र ७।१४।१ ॥

३. अग्निर्भूतानामधिपतिः । ४. वरुणोऽपामधिपतिः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यताम्मियꣳ स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥२॥

ओं स्वस्ति नोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र। यदस्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रꣳ स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥३॥

---

२. (गार्हपत्यः अग्निः) गृहस्थ धर्म सम्बन्धी अग्निः अर्थात् इसके रसोई की अग्नि (इमां) इस स्त्री की (त्रायतां) सदा रक्षा करे (अस्यै) इसके लिए (प्रजां) सन्तान को और (दीर्घं आयुः) दीर्घायुष्य को (नयतु) प्राप्त करावे। भाव यह है कि यह गार्हपत्याग्नि उत्तम अन्न देकर इसकी रक्षा करे, शरीर पुष्टि कर उत्तम सन्तान देवे, इसे दीर्घायुषी करे। इस प्रकार यह स्त्री (अशून्योपस्था =अ+शून्य+उपस्थ=योनि वाली) बन्ध्यात्व दोष रहित होकर (जीवताम्)जीवित रहने वाले सन्तातों की (माता) चरित्र निर्मात्री माता (अस्तु) होवे। (इयं) यह स्त्री (पौत्रं)पुत्र सम्बन्धी (आनन्दं) आनन्द को अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के सुख को (अभि, वि बुध्यताम्) विशेष रूप से प्राप्त हो। भाव यह है कि इसकी गोद सदा भरी रहे; यह अपने सन्तानों की सच्ची माता बने, केवल प्रसवयित्री नहीं। इस प्रकार सन्तानवती होने के सच्चे सुख का अनुभव करे॥

३. (यजत्र अग्ने!) हे गृहस्थ=यज्ञ के रक्षक अग्नि देव! (दिवा) द्युलोक अथवा अन्तःकरण विषयक मस्तिष्क सम्बन्धी विषयों द्वारा और (पृथिव्याः) पृथिवीलोक अथवा सप्तधातु विषयक शरीर विषयक जो (नः) हमारे (विश्वानि) सब कर्म (अयथा) जैसे नहीं होने थे वैसे अर्थात् अन्यथा, प्रतिकूल हुए हैं, उन्हें (स्वस्ति) सुधारे जैसा करके (धेहि) हमारे में स्थापन कराओ। भाव है कि 'मन बुद्धि चित्त अहंकार' सम्बन्धी तथा 'प्राण इन्द्रिय' सम्बन्धी दोषों का सुधार कर हमारा कल्याण करो। (अस्यां) इस स्त्री में (मयि) मुझ में (दिवि जातं) प्रकाश में उत्पन्न हुआ (प्रशस्तं) प्रशंसनीय (यत् चित्रं द्रविणं) जो नाना प्रकार का ऐश्वर्य है, (तत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा। इदं वैवस्वताय—इदन्न मम ॥४॥

ओं परं मृत्योऽअनु परेहि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा॥ इदं मृत्यवे—इदन्न मम ॥५॥[1]

वह 'चित्र विचित्र सम्पत्ति' (अस्मासु धेहि) हमारे परिवार में स्थापित कराओ। अर्थात् हम दोनों का भी जो न्यायोचित धन है, उससे सारे परिवार का लाभ हो॥

४. हे अग्निदेव! स्वयंप्रकाश परप्रकाशक परमेश्वर! तुम (सुगं, पन्थां) सुगमता या सुख से सुगमनीय मार्ग=ऋजु मार्ग=आनन्द पथ का (प्रदिशन्, नु) उपदेश करते या दिखलाते हुए ही (नः एहि) हमें प्राप्त होओ। और (ज्योतिष्मध्ये) इस ज्योतिर्मय गृहस्थ यज्ञ में (नः) हमें (अजरत्) जरा वृद्धावस्था के विकारों से रहित, कभी बूढ़ी न होने वाली (आयुः) आयु अर्थात् नित्य तरुण जीवन दो। (मृत्युः) [आयु का प्रतिबन्धक] मृत्यु (अप एतु) हमसे दूर हो जावे; (मे अमृतं) मुझे अमरता (आ, अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। (वैवस्वतः) विवस्वान् अर्थात् सूर्य [=जीवन-दाता], तत्सम्बन्धी प्रकाश=जीवन का नियामक परमेश्वर (नः अभयं) हमें भयरहित (कृणोतु) करे॥

५. हे (मृत्यो) मृत्यु (यत्र) जहां कहीं (नः देवयानात्)[2] हमारे धार्मिक योगी विद्वानों द्वारा गन्तव्य या स्वीकृत मार्ग से (इतरः, अन्यः) भिन्न दूसरा 'पितृयान'[2]=सांसारिक लोगों का

---

१. द्र. पार. गृ. १।५।११, १२॥

२. आर्यजीवन के दो मार्ग=सृती हैं [द्र. छन्द. उप. ४।१५; ५।१०॥ प्रश्न उप. १।९-१०॥ ऋ. २०।८८।१५॥ यजुः १९।४७॥ तै. ब्रा. १।४।२, ३॥ तथा २।६।३।५॥ शत. ब्रा. १४।९।१, ४]। एक प्रवृत्ति-प्रधान, पितृयान; दूसरा निवृत्ति-प्रधान, देवयान। सामान्य मनुष्य 'पितृयान' पर चल 'जन्ममरण के चक्र' में फंसते हैं; देव जन 'देवयान' पर चल 'जन्मरण के चक्र' से छूट, मोक्ष पाते हैं। मृत्यु का सम्बन्ध 'देवयान से इतर' अन्य जो पितृयान है, उससे है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं द्यौस्ते पृष्ठꣳरक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च। स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परिधाद् बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम ॥६॥

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु। मा त्वꣳ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाꣳ सुमनस्यमानाꣳ स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥७॥

गन्तव्य मार्ग है, तू उस (परं पन्थां) दूसरे पथ के (अनु) पीछे (परा इहि) हमसे पराङ्मुख होकर जा=परे हट। (चक्षुष्मते) सब प्राणियों के 'सत् असत्' चेष्टाओं को ज्ञान पूर्वक देखने वाले और (शृण्वते) उनके 'धर्म-अधर्म'=पाप पुण्य की वाणी को सुनने वाले (ते) मुझसे (ब्रवीमि) निवेदन करता हूं कि (नः प्रजां) हमारे कुटुम्बीजनों को (मा, रीरिषः) मत नष्ट कर (उत) और (वीरान्)[1] हमारी सन्तानों को भी (मा) मत नष्ट कर ॥

६. हे कन्ये! (द्यौः) द्युलोक स्थित (वायुः) वायु रूप विद्युत् तेजः शक्तिः (ते पृष्ठं) तेरे पृष्ठभाग अर्थात् मेरुदण्ड की (रक्षतु) रक्षा करे (च) और (अश्विनौ) प्राण अपान (ऊरूः) तेरे उरु=जांघ आदि नीचे के प्रदेशों की रक्षा करे। (स्तनन्धयः) दूध पीते गोदी के (पुत्रान्) तेरे बच्चों की (आवाससः) वस्त्र पहिरने की दशा आने तक (सविता) इनका जनक (अभिरक्षतु) रक्षा करे। (परिधात्) और वस्त्र पहिरने की दशा से आगे (बृहस्पतिः) विद्यादाता आचार्य या गुरु रक्षा करे। (पश्चात्) उसके बाद (विश्वेदेवाः) सब वृद्ध अर्थात् विद्वान् 'देव ऋषि पितर' सभी (अभिरक्षन्तु) इनकी भली प्रकार रक्षा करें ॥

इस मन्त्र में सन्तान के गर्भदशा से लेकर जीवन में प्रविष्ट होने तक चरित्र निर्माण की सुन्दर योजना है ॥६॥

७. हे स्त्रि! ईश्वर करे कि (ते गृहेषु) तेरे घर [के रसोई बैठक आदि भिन्न भिन्न भागों] में (निशि) रात्रि में (घोषः)

---

१. वेद में 'वीर' पद का अर्थ सन्तान होता हैं। एतत्सम्बन्ध से 'प्रजा' का अर्थ सामान्य कुटुम्बी जन करना समीचीन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपाप्मानमुत वा अघम्। शीर्ष्ण-स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥८॥[1]

आर्त्तनाद=रोना धोना आदि का शोर (मा उत्थाद्) न उठे। (रुदत्यः) रोने धोने [से शान्ति भंग या कलह मचाने] वाली स्त्रियां (त्वत् अन्यत्र) तुझसे पृथक् ही घर में (सं विशन्तु) प्रविष्ट हो जमीं रहें। (त्वं) तू स्वयं भी (रुदत्) रोती हुई=रोती पीटती घर में किसी को (उरः मा आ वधिष्ठाः) पीड़ित मत कर=परेशान न कर। तथा (जीवपत्नी) जीवित पति वाली होती हुई अर्थात् जीवित पति के साथ (सुमनस्यमानां प्रजां) प्रसन्न चित्त=हंसती खेलती सन्तान का (पश्यन्ती) मुख देखती हुई (पतिलोके) मुझ पति के घर में (विराज) विराज अर्थात् वर पत्नी, माता आदि विविध रूपों में साम्राज्ञी बन ॥७॥

८. हे स्त्रि ! मैं (अप्रजस्यं) पुत्र-शून्यता के दोष अर्थात् वन्ध्यात्व (पौत्रमर्त्यं) पुत्रों के मर जाने सम्बन्धी (पाप्मानं) पाप=दोषों को (उत वा) अथवा (अघं)[2] रोग व आलस्यरूपी पाप अथवा मन-वचन=शरीर से उत्पन्न हुए पाप[3] को; दुष्टव्यसन[4] को; शत्रुजन्म दुःख रूप पाप[5] को, दारिद्र्य दुःख[6] को अथवा दुष्ट स्वभाव व दुष्ट संगरूप पाप[7] को, (शीर्ष्णस्रजं इव) [पुरानी हुई] सिर की माला [को उतार फैंकने] के समान, (उन्मुच्य) उतार=फैंक कर (द्विषद्भ्यः) अधर्माचरणी विरोधियों को (पाशं प्रतिमुञ्चामि) इनसे, पाश से बांधे जैसा, बांधता हूं।

पुत्र न होना, होकर मर जाना अथवा अन्य प्रकार के (अघं) दोषों को तुझसे दूर करता हूं।

---

१. मन्त्रब्रा. १।१।१२, १३, १४ ॥ 'इद···न मम' मन्त्रपाठ में नहीं है।

२. 'अघं' शब्द के इन अर्थों में ऋषि दयानन्द के 'पाप' के नाना रूपों का सूक्ष्म वर्णन किया है। यह उनका 'मन्त्रद्रष्टृत्व' है।

३. द्र. ऋ. १।९७।१, ८। ४. १।९७।२ ॥

५. १।९७।३, ४, ७। ६. १।९७।५। ७. १।९७।६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६. व्याहुति आहुतियां, घृत व शाकल्य से

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से चार आहुतियां दें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[सप्तम विधि—पाणिग्रहण]

ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दाहना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उचाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जली अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण करके वर--

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥

---

१. हे वरानने ! मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिए (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं। तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ ऐसे रह (यथा) जैसे कि (जरदष्टिः) जरावस्था को सुखपूर्वक प्राप्त (आसः) होवे। (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डल में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिए (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं। मैं और आप आज से पति-पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं।

वधूः—[वधू भी प्रतिज्ञा करे कि] हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके हाथ को ग्रहण करती हूं। आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिए। परमात्मा और सब विद्वानों ने गृहाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिए तुझको मुझे दिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥२॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् ॥३॥

द्र० अथर्व १४।१।५१, ५२ ॥

है। आज से मैं आपके हस्ते और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं; कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ॥

१. हे प्रिये ! (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं। (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी (पत्नी) भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूं। दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उसको कभी न करें, जिससे कि घर के सब काम सिद्ध, उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥

वधूः—[वधू भी प्रतिज्ञा करे]—हे प्रिय ! ऐश्वर्ययुक्त, धर्मयुक्त मार्ग के प्रेरक आपके हाथ में अपना हाथ मैंने रक्खा है। मैं आपके धर्म की पालन करने वाली रहूंगी। आप धर्माचरण से मेरे गृहाश्रम के पालक रहें ॥२॥

३. हे अनघे ! (बृहस्पतिः) सब जगत् के पालन करनेहारे परमात्मा ने, जिस (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पोष्यां) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो। हे (प्रजावति) प्रजनन में समर्थ तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर।

वधूः—[वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे।] हे भद्रवीर ! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो। मेरे लिए आप के विना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करनेहारे सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है; न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५॥

जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे, वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी। आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिए ॥

४. हे शुभानने ! (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में और उसकी तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दंपती होते हैं। (त्वष्टा) जैसे बिजुली सबको व्याप्त हो रही है, वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिए (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझसे सुख को प्राप्त हो। इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध=व्यवस्थित करे। जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करनेहारा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा (सूर्यामिव) सूर्य की किरण को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करता है, वैसे मैं (तेन) इस वस्त्र और भूषणादि से तथा (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमां) इस (नारीं) मुझ नर की स्त्री को सुशोभित सदा रक्खूंगा।

वधूः—[वधू भी प्रतिज्ञा करे कि] हे प्रिय ! मैं भी आपको इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण तथा उत्तम सन्तान से सदा आनन्दित रक्खूंगी।

५. हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु तथा (भगः) ऐश्वर्य और (उभा) दोनों (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करनेहारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सब से बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥६॥
अथर्व १४।१।५३, ५४, ५७ ॥

[अष्टम विधि—मङ्गलप्रदक्षिणा चार]

[प्रथम प्रदक्षिणा]

पश्चात् वर, वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के उसे उठावे और उसको साथ लेके, जो [कलश] कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम

करते हैं, वैसे (इमां, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं, वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) सदा बढ़ाया करो।

वधूः—[स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि] मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी; जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें।

६. हे कल्याणकोडे जैसे (मनसः) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इस में प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे। जैसे मैं (स्तेयम्) किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूं और (स्वयम्) आप (श्रथ्नानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को (मनसा उदमुच्ये) मन के द्वारा दूर करता रहूं, वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे।

वधूः—[इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि] मैं भी इसी प्रकार आप से वर्त्ता करूंगी। तेरे रूप को प्राप्त हो, तेरे हृदय में प्रेम से व्याप्त हो अनुकूल व्यवहार करूंगी। स्वयं ही दोषरूपी सामाजिक बन्धनों को मन से छोड़ती हूं। चोरी से छिपाकर कभी भोग नहीं करूंगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थापन किया था, उसको वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था, वर-वधू को साथ-साथ लेके चले। यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा कर के निम्न मन्त्र से पुनः प्रतिज्ञा करें।

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥७॥

पार. गृ. १।६।३॥

---

७. हे वधू! जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं, वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करनेहारी (असि) है। जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझको (अमः) ग्रहण करता हूं, वैसे (सा) वह मुझ द्वारा ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझको भी ग्रहण करती है। (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं। हे वधू! तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है। (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करनेहारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करनेहारे सूर्य के समान हूं। ऐसे तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें; (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें; (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें; (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें। (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवन युक्त (सन्तु) रहें। (संप्रियौ) और हम दोनों अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) एक दूसरे में रुचियुक्त (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए गृहाश्रम चलावें। इस प्रकार हम दो और हमारी सन्तान, सब (शतम्) सौ (शरदः) शरद्-ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें; (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[शिलारोहण]

पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जली अपनी दक्षिणाञ्जली से पकड़े। दोनों वैसे ही खड़े रहें और वह कलशधारी पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके वैसे रहे। तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी, उसको बायें हाथ में लेके दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर निम्न मन्त्र को बोले—

ओम् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥१॥
पार. १।७।१॥

तत्पश्चात् वधू-वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रहके अपनी हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली पर रक्खे।

[लाजाहोम]

तत्पश्चात् वधू की माता वा भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूपड़ा पकड़ के खड़ा रहा हो, वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जली है, उसमें प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करे। पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जली से दो बार ले के वर-वधू की एकत्र की हुई अञ्जली में धाणी डाले। पश्चात् उस अञ्जलीस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सिंचन करे; पश्चात् वधू, वर की हस्ताञ्जली सहित अपनी हस्ताञ्जली को आगे से नमा के

---

१. हे वधू! (इमं अश्मानं) इस [गृहस्थ की] शिला पर (आरोह) चढ़ और (अश्मा, इव) इस शिला की तरह गृहाश्रम में स्थिर-अचल हो। (पृतन्यतः) कलहकारी विरोधियों का (अभितिष्ठ) मुकाबला कर; (पृतनायतः) आक्रमणकारियों को (अवबाधस्व) नीचा दिखा।

पृतन्यतः=दुष्ट को! पृतनायतः=दुष्टभाव वालों को।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्न तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी थोड़ी घाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित इन्धन पर देवे—

ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा। इदमर्यम्णे, अग्नये—इदन्न मम ॥१॥ पार. गृ. १।६।२॥

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥२॥ पार. गृ. १।६।२॥

ओम् इमांल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥३॥ पार. गृ. १।६।२॥

---

१. (कन्याः) कन्यायें (अर्यमणं) न्यायकारी (देवं अग्निं) सर्वज्ञ अग्रनायक परमात्मादेव की [इस भाव से] (अयक्षत) पूजा =प्रार्थना करती हैं कि (सः अर्यमा देवः) वह न्यायकारी देव (नः) हमें (इतः) इस पितृकुल से (प्र मुञ्चतु) प्रकृष्ट रूप मुक्त करे; (मा पतेः) पतिकुल से नहीं।

२. (लाजान्) खीलों की (आ, वपन्तिका) अग्नि में आहुति देती हुई (इयं नारी) यह स्त्री (उपब्रूते) प्रार्थना करती है कि (i) (आयुष्मान् अस्तु मे पतिः) मेरा पति दीघायु हो; (ii) (ज्ञातयः मम एधन्ताम्) मेरे ज्ञाति=बन्धुबान्धव फूलें-फलें, धनधान्यादि से बढ़े।

३. हे वर! (इमां लाजान्) इन खीलों को (अग्नौ आवपामि) अग्नि में छोड़ती हूं। यह लाजाहोम (तव समृद्धिकरणं) तेरी समृद्धि का [करने वाला हो। और यह कृत्य (मम तुभ्यं च) मेरा-तेरा (सं, वननम्) मिलन [कराने वाला] हो। (अग्निः) यह अग्नि =भगवान् (तद् अनुमन्यताम्) इसका अनुमोदन करे। (इयं स्वाहा) ऐसा यह कन्या सत्य भाव से कहती है। भाव यह है कि 'अनुराग' अग्नि की तरह सदा प्रदीप्त और बढ़ता रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय प्रदक्षिणा]

पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के, अपने जमणे हाथ की हस्ताञ्जली से वधू की हस्ताञ्जली वर पकड़े--

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥१॥ पार. १।७।२॥

पश्चात् निम्न दो मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें। (वधू वर के दक्षिण बाजू रहे)—

---

१. हे (सरस्वति) ज्ञानवति या सरसे! (सुभगे) सौभाग्यवति या आनन्दशालिनि! (वाजिनीवति) अन्नपूर्णे! देवि! (इदं) तू इस गृहस्थ-यज्ञाग्नि=गार्हपत्याग्नि की (प्र, अव) प्रकृष्ट व प्रशस्य भाव से रक्षा कर। तू मेरे 'गृहाश्रम' की रक्षिका बन। (यां त्वा) जिस तुझको (विश्वस्य भूतस्य) इस सकल प्राणिमात्र की (प्र, जायां) प्रमुख=वास्तविक जननी (अस्य) इस गृहाश्रम से (अग्रतः) पूर्व से ही [विद्वान् जानते हैं]। यहां, प्रकृति के दृष्टान्त से स्त्री का महत्त्व प्रगट किया है। हे प्रवाहरूप से 'रस'=आनन्ददायिनि! ऐश्वर्यशालिनि! वाज=अन्नदात्रि प्रकृतिदेवि! तू हमारे (इदं) इस 'संयोग' की भली प्रकार रक्षा कर। तुझको ही विद्वान् लोग इस दृश्यमान सब पृथिव्यादि की (अग्रतः) स्थूलसृष्टि से पूर्व सूक्ष्म कारण रूप से विद्यमान (प्र, जायां) विविध उत्पादन शक्ति सम्पन्न अर्थात् सकल प्राणिमात्र की 'प्रमुख जननी' मानते हैं। (यस्यां) जिस तुझ में (भूतं) भूत प्रपंच या 'गुजरा जमाना' (समभवत्) उत्पन्न हुआ था और (यस्यां) जिस तुझ में (इदं विश्वं जगत्) यह सब जगत् उत्पन्न होकर विद्यमान है, (अद्य) आज से (तां गाथां) 'उत्पादन सामर्थ्य' की उस यशोगाथा=महत्त्व का (गास्यामि) गान गाऊंगा, (या) जो 'प्रजनन गाथा' (स्त्रीणां) स्त्रियों की (उत्तमं यशः) उत्कृष्ट कीर्त्ति है। भरी गोद होना ही स्त्रियों का उत्तम यश है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१॥[1]

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमप दीक्षामयष्ट ।
कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ॥२॥[2]

---

१. हे (अग्ने) गार्हपत्याग्ने गृहाश्रम के उन्नायक अग्ने ! (तुभ्यं) तुम्हारे [सम्पादन के] लिए ही, मैंने (अग्ने) मुख्य रूप में (सूर्यां) उषा के समान शोभा वाली इस कन्या को (परि अवहन्) स्वीकार किया है । (ना सह) मुझ नर=पति के साथ (वहतु) गृह धर्म का वहन करे=भार उठाये । हे गृहस्थ यज्ञ के अग्निदेव ! (जायां) इस जनन धर्म वाली स्त्री को (पुनः) कालान्तर में (प्रजया सह) सन्तान सहित (पतिभ्यः दा) गन्धर्व सोमरूप पहियों के लिए दीजिए ।[3]

२. (पितृभ्यः) पिता भ्राता आदि से [अपने सम्बन्धों को] (अप) छोड़कर (पतिलोकं) पति के घर को (पतीयं=पतती) उतरती=आती हुई (इयं कन्यला) इस बाला=भोली कन्या ने (दीक्षां अयष्ट) गृहाश्रम प्रवेश की दीक्षा ली है=गृहस्थ व्रतधारण किया है । (उत) और इससे आगे (त्वया कन्या=कन्यया) तुझ कन्या के साथ मिलकर (वयं) हम सब अर्थात् तेरा पति मैं और अन्य बन्धु बान्धव सब (उदन्याः धारा इव) जल भरी वेगवती धाराओं [द्वारा तृणादि को बहा ले जाने] के समान (द्विषः) धर्म द्वेषियों[4] अर्थात् सामाजिक मर्यादा भंग करने वालों को अथवा द्वेष युक्त क्रियायों को (अतिगाहेमहि) अति दूर करदें, नष्ट करदें ।[5]

---

१. ऋ. १२।८५।३८ ॥ पार. गृ. १।७।३ ॥

२. मन्त्रब्रा. १।२।५५ ॥

३. तुलना ऋग् १०।८५।३९, ४० ॥ मन्त्र का भाव यह है कि स्त्री का स्त्रीत्व=वास्तविक गुणकर्म स्वभाव 'सन्तानोत्पादन सामर्थ्य' ही है । यही इसकी यशोगाथा है । यह निष्पन्न होना चाहिये । इसी के लिये 'नियोग विधि' है कि किसी कारणवश पति असमर्थ हो, तो 'पुनः पतिभ्यो दाः' की बात होनी चाहिये, ताकि स्त्री का प्राकृतिक धर्म पूरा हो ।

४. द्र. ऋषिभाष्य ऋ. ५।४४।१२ ॥ ५. द्र. ५।२५।९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[शिलारोहण लाजाहोम सहित, तृतीय चतुर्थ प्रदक्षिणा]

तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार से पुनः दो बार इसी प्रकार अर्थात् सब मिला के चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख थोड़ा वर वधू खड़े रहें। पश्चात् वधू की मां अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जली में डाल देवे।

[नवम विधि—अवशिष्ट लाजाहुति एक तथा घृताहुति एक]

पश्चात् वधू निम्न मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे।

ओं भगाय स्वाहा ॥ इदं भगाय—इदन्न मम* ॥[1]

पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रखके कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के निम्न मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

[दशम विधि—वेणीमोचन या केशविमोचन]

तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बंधे केशों को वर—

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥१॥

---

*(भगाय) सन्तानोत्पादन रूप ऐश्वर्य के लिए (स्वाहा) सुष्ठु-क्रिया है।

१. हे वधू![1] मैं (त्वा) तुझे (वरुणस्य पाशात्) वरुण राजा के [समाज के वैधानिक] बन्धन से (प्र मुञ्चामि) प्रशस्तरूप से

---

१. पार. गृ. १।७।५ ॥ 'इदं···मम' पाठ मन्त्र बहिर्भूत।

२. पुरोहित या विवाह-विधायक [=रजिस्ट्रार] द्वारा इन दो मन्त्रों का विनियोग कराया जा सकता है।

३. पुरोहित पहले मन्त्र द्वारा 'वधू को' और दूसरे द्वारा 'वर को' सम्बोधन करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२॥
ऋक् १०।८५।२४, २५ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के प्रथम, वधू के गुन्धे केशों को खोले तत्पश्चात् सभामण्डप में आके सप्तपदी विधि का आरम्भ करे। इस समय पहले वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी चाहिये। इसे जोड़ा कहते हैं।

पश्चात् वधू-वर दोनों जने आसन पर से उठें; वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़े और दोनों यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में जावें। तत्पश्चात् वधू को दक्षिण बाजू रख

छुड़ाता हूं, (येन) जिस बन्धन से कि (त्वा) तुझे (सुशेवः) सुखदाता (सविता) पिता ने (अबध्नात्) बांधा हुआ था। और (ऋतस्य, योनौ) ऋतु धर्म [की सफलता] के मूल कारण अर्थात् प्राकृत= प्राजापत्य धर्म के निर्वाहक स्थान तथा (सुकृतस्य लोके) सुकृत अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों के साधक गृहस्थलोक में (अरिष्टां त्वा) अहिंसित अर्थात् दुःखदारिद्र्य शून्य तुझ को (पत्या सह) पति के साथ (दधामि) धारण करता हूं; मैं पति तेरे जीवन का भार लेता हूं।[1]

२. मैं इस वधू को (इतः) इधर से=इस पितृगृह से (प्र मुञ्चामि) छुड़ाता हूं, (न अमुतः) उस पतिकुल से नहीं। (अमुतः) उस पतिकुल से तो (सुबद्धां, करं) सुबद्ध कर चुका हूं। यथा जिससे कि हे (इन्द्र मीढ्वः) ऐश्वर्य शालिन्, वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष! तेरे द्वारा (इयं) यह स्त्री (सुपुत्रा) सुन्दर सन्तानों वाली तथा (सुभगा) सौभाग्यवती (असति) हो जावे।

---

१. विवाह से पूर्व कन्या पर माता-पिता का 'वैधानिक अधिकार' [वरुणपाश] होता है। विवाह के समय उस 'अधिकार बन्धन' से छूट, कन्या पतिकुल के नियन्त्रण में आ जाती है। इस नियन्त्रण में 'ऋत'=प्रकृति के सत्य नियमानुसार सन्तानोत्पादन का तथा 'सुकृत' करने का अवसर प्राप्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें।

[एकादश विधि—विवाह का प्रधान अङ्ग सप्तपदी]

तत्पश्चात् वर—

मा सव्येन दक्षिणमतिक्रामः* । गोभि. पृ. २।२।१२॥

ऐसा बोल के वधू को उस का दक्षिण पग उठवा के चलने के लिए आज्ञा देवे और—

ओम् इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव ।
विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दामहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥१॥[1]

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग* चले और चलावे।

ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव०‡ ॥२॥ इस मन्त्र से दूसरा ॥

---

१. हे वधू ! (सव्येन) बाँये पैर से (दक्षिणं) दाहिने पैर को (मा अतिक्राम) मत उल्लंघन कर। जीवन में सदा सीधा पग रखना, उलटी चाल न चलना।

२. हे अन्नपूर्णे ! (इषे) अन्न [प्राप्ति व यथोचित भोग] के लिए (एकपदी भव) पहला पग उठा। (सा) वह तू (मां अनुव्रता भव) मेरे अनुकूल व्रत पर चलने वाली बन।

२. हे सुवीरे ! सबले ! (ऊर्जे) बल प्राप्ति के लिए (द्विपदी भव) दूसरा पग उठा……।

---

*इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा=दक्षिण पग उठा के ईशान कोण=उत्तर की ओर बढ़ा के धरे। पश्चात् दूसरे बायें पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ा सा पीछे बायाँ पग रक्खे। इसी को एक पग गिनें। इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी अर्थात् एक-एक मन्त्र से एक-एक पग पहले दक्षिण-पीछे वाम धरते हुए ईशान दिशा की ओर चलें।

‡ जो भव के आगे मन्त्र में पाठ है, सो छः मन्त्रों के इस भव पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करनी।

१. इस तथा उत्तर मन्त्रों के लिये द्र. आश्व. १।७।१३ ॥ तथा पार. गृ. १।८।१, २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं रायस्पोपाय त्रिपदी भव० ॥३॥ इस मन्त्र से तीसरा ॥

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव ॥४॥ इस मन्त्र से चौथा ॥

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव० ॥५॥ इस मन्त्र से पांचवां ॥

ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव० ॥६॥ इस मन्त्र से छटा और–

ओं सखे सप्तपदी भव०॥७॥इस मन्त्र से सातवाँ पगला चलना (द्र. आश्व. गृ. १।७।१९ ॥ पार. गृ. १।८।१, २ कुछ भेद से)

इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू-वर दोनों गाँठ बन्धे हुए शुभासन पर यथापूर्व बैठें।

[द्वादश विधि–मस्तक पर जलाभिषेचन]

तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को ले के यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्व स्थापित जलकुम्भ को ले के वधू वर के समीप आवे और उसमें से थोड़ा सा जल लेके निम्न मन्त्रों से वधू वर के मस्तक पर छिटकावे–

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥

---

३. हे सुभगे ! ज्ञानवति ! (रायस्पोषाय) धन व ज्ञान की पुष्टि के लिए (त्रिपदी भव) तीसरा पग उठा……।

४. हे सुमुखि ! सुखदे ! (मयो भवाय) सुखी जीवन व आमोद-प्रमोद के लिए (चतुष्पदी भव) चौथा पग उठा……।

५. हे प्रजावति ! (प्रजाभ्यः) सन्तति के लिए (पञ्चपदी भव) पाँचवां पग उठा……।

६. हे सुव्रते ! आरोग्यवति ! (ऋतुभ्यः) देशकालानुसार व्यवहार व ऋतुओं की अनुकूलता से स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए (षट्पदी भव) छठा पग उठा……।

७. हे जीवनसखि ! (सखे) सख्य-सौहार्द व विश्वमैत्री के लिए (सप्तपदी भव) सातवां पग गठा……।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥२॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥ यजुः ३६। १४, १५, १६॥

ओम् आपः शिवाः शिवतमा शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३॥ पार. २।८।६॥

[त्रयोदश विधि—सूर्यावलोकन]

तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के निम्न मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२॥
यजुः ३६।२४॥

[चतुर्दश विधि—परस्पर हृदय-स्पर्श]

तत्पश्चात् वर, वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ लेके उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥[1]

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले।।

---

१. हे वधू! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्रचित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का

---

१. पार. गृ. १।८।८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पञ्चदश विधि—मङ्गलाशीर्वाद[1]]

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥१॥

ऋ. १०।८५।३३ ॥

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर दोनों अवलोकन करें और हाथ जोड़ निम्न मन्त्र बोल आशीर्वाद की प्रार्थना करें—

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥२॥

तैत्ति. आर. प्र. ८ । अनु. १ ॥

पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझको (मह्यम्) मेरे लिए (नियुनक्तु) नियुक्त करे ।

हे प्रियवीर स्वामिन् ! आप का हृदय आत्मा और अन्तःकरण मैं अपने प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूं । मेरे चित से अनुकूल आप का चित्त सदा रहे । आप एकाग्र हो के मेरी वाणी को जो कुछ मैं आप से कहूं उसका सेवन सदा किया कीजिए; क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन और मुझ को आप के आधीन किया है । इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों बर्ता करें; जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्त्तिमान् मैं पतिव्रता और आप स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ।

१. (इयं) यह (वधूः) वधू (सुमङ्गलीः) शोभन मंगलकारिणी है । (इमां समेत पश्यत) इसको सब मिल कर [कल्याण दृष्टि= मङ्गल भावना से] देखो (अथ) और (अस्यै) उसके लिये (सौभाग्यं दत्वाय) सौभाग्य का आशीर्वाद देकर ही (अस्तं) अपने घरों को (विपरेतन) लौट जाओ ।

(नौ) हम दोनों स्त्री पुरुष (सह) मिल के प्रीति से (अवतु)

---

१. पूर्वोक्त पृ. १४१ लिखे प्रमाणे कन्या के गोत्र परिवर्तन की क्रिया यहां करा लेनी चाहियें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय सब लोग निम्न मन्त्र बोलें—

ओं समितꣳ संकल्पेथाꣳ संप्रिय रोचिष्णु ।
सुमनस्यमानौ इषमूर्जमभि संवसानौ ॥३॥ यजु. १२।५७॥

तत्पश्चात् निम्न वाक्य से आशीर्वाद देवें ।

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥[1]

[षोडश विधि—प्रधान होम]

तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् अर्थात् वर के दक्षिण वाजू वधू, बैठ के पुनः प्रधानहोम की विशेष आहुतियां अग्नि संचय कर समिधायें प्रदीप्त कर निम्न प्रकार से करें—

निम्न चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति,

एक दूसरे की रक्षा किया करें । (सह नौ भुनक्तु) मिलकर हम दोनों प्रीति से सब भोगैश्वर्य भोगें । और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्यम्) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें । (नौ) हमारा (अधीतम्) पढ़ा-पढ़ाया गृहाश्रम में (तेजस्वि) अति प्रकाशमान (अस्तु) होवे; और हम एक दूसरे से (मा, विद्विषावहै) कभी विशेष विरोध न करें; किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्तकर सब गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल हो के सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सबको आनन्द में रक्खें (सं. वि. ३१०) ।

३. हे विवाहित स्त्री पुरुषो ! तुम (संप्रियौ) आपस में सम्यग् प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयासक्ति से पृथक् हो प्रकाशमान (सुमनस्यमानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वर्त्तमान वा उत्तम मन वाले (संवसानौ) सुन्दर वस्त्र आभूषणों से युक्त हुए (इषं) अपने अन्नादि इष्ट को (सम्+इतम्) इकट्ठे प्राप्त होवो और (ऊर्जं) बल पराक्रम को (अभि) चारों ओर से सन्मुख (संकल्पेथाम्) एक समान अभिप्राय में लगाओ (द्र. ऋषिभाष्य) ॥

---

१. "सदा सुहागिन बनी रहे । घर में मङ्गलकल्याण हो ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १ । खं० ८ । सू० २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

और निम्न चार मन्त्रों से चार व्याहुति आहुति,

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

ये सब मिल के आठ आज्याहुति दे तत्पश्चात् प्रधान होम निम्नलिखित छः मन्त्रों से करें ।

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥१॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम ॥

ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ॥२॥

---

१. हे कन्ये ! (लेखासन्धिषु) रेखा=माथे भौं की रेखाओं के जोड़ों में (पक्ष्मसु) आंखों की पलकों या नेत्रों के लोगों में (च) और (आरोकेषु) नाभि के रन्ध्रादिकों में (ते) तेरे (यानि) जो दोष या बुरे चिह्न हैं; (तानि ते सर्वाणि) तेरे उन सब दोषों, विकारों को (पूर्णाहुत्या) पूर्णाहुति=उत्तम उपाय से, पूर्ण संकल्प से (शमयामि) शमन करता हूं । (स्वाहा) मेरी यह शुभप्रार्थना सफल हो । (इदं कन्यायै) यह मैं कन्या [की बाह्य आभ्यन्तर शुद्धि] के निमित्त आहुति दे रहा हूं । (इदं न मम) यह मेरे लिए नहीं ।

२. (यच्च) और जो तेरे (केशेषु) केशों में (पापकम्) बुराई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ॥३॥

ओम् आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ॥४॥

ओम् ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥५॥

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवद् । पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥६॥ इदं कन्यायै—इदन्न मम ॥ मन्त्र ब्रा. १।३।१-६॥

[सप्तदश विधि—ध्रुव और अरुन्धती का दर्शन]

इस प्रकार चौदह आज्याहुति देके, वधू वर वहां से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें। तत्पश्चात् वर ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे –

=अनौचित्य (यत् च) और जो तेरे (ईक्षिते) देखने में (रुदिते) रोने में [आंखों सम्बन्धी अनौचित्य है; ..... ।

३. (यच्च) और जो तेरे (शीलेषु) स्वभाव=हावभाव के व्यवहारों में (पापकर्म) कुरीति है (यत् च) और जो (भाषिते) बातचीत व (हसिते) हंसी मजाक में (पापकं) भद्दापन=अनौचित्य है; ..... ।

४. (यत् च) और जो तेरे (आरोकेषु) दान्तों के छिद्रों में या जबड़ों में (दन्तेषु) दान्तों में (हस्तेषु पादयोः) हाथों व पैरों में (पापकम्) बेढंगापन है; ..... ।

५. (ऊर्वोः) दोनों कटिप्रदेशों या चूतड़ों में (उपस्थे) योनिप्रदेश में, (जङ्घयोः) जांघों (सन्धानेषु च) और घुटने टखने आदि जोड़ों में (यानि) जो विकार है; .....

६. हे कन्ये ! (यानि कानि च) और जो भी कोई (घोराणि) भयानकता अर्थात् विकार (तव सर्वाङ्गेषु) तेरे अन्य सब अङ्गों में (अभवन्) हुये हैं, आ गये हैं, (तानि सर्वाणि) उन सब को (आज्यस्य पूर्णाहुतिभिः) घृत के पूर्ण प्रयोग से (अशीशमं) शान्त करने [का निश्चय कर] लिया है; ..... ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध्रुवं पश्य ॥*[1]

और वधू, वर से बोले कि मैं—

पश्यामि ॥[2]

"ध्रुव के तारे को देखती हूं।"

तत्पश्चात् निम्न वाक्य वधू बोले—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य[3] असौ) ।‡

तत्पश्चात् निम्न वाक्य बोल के वर, वधू को अरुधन्ती तारा दिखलावे—

अरुधन्तीं पश्य ॥[4]

और वधू बोले कि

पश्यामि ॥[4]

"मैं अरुधन्ती के नाम तारे को देखती हूं।"

पश्चात् निम्न वाक्य बोल के वर, वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ धरके—

---

*इस ध्रुव तारे को देखो, जैसे यह अपने स्थान में स्थिर है, उस प्रकार तुम गृहाश्रम में स्थिर रहो।

‡सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्धाङ्गी (पतिकुले) आपके कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम् दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आपकी स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊं।

---

१. द्र. गो. गृ. २।३।८ ॥ पार. १।८।१९, २० ॥

२. (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठीविभक्तयन्त पति का नाम, बोलना, जैसे—शिवशर्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमाविभक्तयन्त बोल के इस मन्त्र को पूरा बोले, जैसे—"भूयासं सौभाग्यदाहं शिवशर्मणस्ते" इस प्रकार दोनों पद जोड़ के बोले।

३. गो. गृ. २।३।९ ॥

४. द्र. गो. गृ. २।३।१०, ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि (अमुष्य असौ)*

निम्न दोनों मन्त्रों को बोले—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥१॥[1]

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि । मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् ॥२॥[2]

---

*हे अरुधन्ति तारिके ! जैसे तू आकाश में वसिष्ठ नामक तारे के निकट टिकी है, वैसे ही (अहं) मैं·····अमुक नाम वाली, ·····अमुक की पत्नी; (रुद्धा अस्मि) गृहस्थाश्रम में पति के समीप टिक गई हूं।

१. हे वरानने ! जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्य लोक वा पृथिव्यादि में निश्चल, जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर, जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर हैं, जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं, वैसे (इयम्) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रह।

२. हे स्वामिन् ! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ संकल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आप को (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिए मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आपको (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है। वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त हो के (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नी (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह। (मह्यम्) मुझको अपनी मनसा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है, तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर। वधू-वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उलटे विरोध में न चलें ॥

---

१. पार. १ ८।१९ ॥ २. म. ब्र. १।३।७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टादश विधि—आठ आज्याहुतियां]

पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के समीप पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख पूर्ववत् बैठें और समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर के पृष्ठ ११ में लिखे प्रमाणे घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें। पश्चात् वर वधू दोनों, आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार, सब मिला के आठ आज्याहुति देवें।

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १। ख० ८। सू० २४॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

[एकोनविंश विधि—स्थालीपाक आहुतियां]

तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात [है] उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिला कर दक्षिण हाथ से थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने ले के निम्न चार मन्त्रों से चार आहुति, देवें—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अनुमतये स्वाहा ॥ इदमनुमतये—इदन्न मम ॥[1]

और निम्न मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति देनी—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

[विंश विधि—मङ्गलाष्टाज्याहुतियाँ]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से आठ आज्याहुति दोनों देवें—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४, ५ ॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

---

१. द्र. गो. पू. २।३।२० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५।१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदन्न मम ॥७॥

ऋ० मं० १। सू० ३४। मं० १५

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३।

[एकविंश विधि—वधू-वर का सहभोजन]

तत्पश्चात् स्थालीपाक होम से शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के निम्न तीन मन्त्रों को,

ओम् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना।
बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते ॥१॥

---

१. हे वधू वा वर! जैसे अन्न के साथ प्राण, प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है, वैसे अथवा (मणिना) आभूषण रूप (अन्नपाशेन) अन्न-पाश से, (पृश्निना) अन्नरूप (प्राणसूत्रेण) प्राणसूत्र से और (सत्यग्रन्थिना)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम ।
यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥२॥

ओम् अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ॥३॥[1]

मन से जप के वर, उस भात में से प्रथम थोड़ा सा भक्षण कर के जो उच्छिष्ट शेष भात रहे, वह अपनी वधू के लिए खाने को देवे और जब वधू उसको खा चुके, तब वधू-वर दोनों हस्तमुख धोकर, यज्ञमण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें। वधू-वर के दक्षिण भाग बैठे[2] और

[द्वाविंश विधि—महावामदेव्यगान, संस्कार समाप्ति]

पृष्ठ १२२ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें। तत्पश्चात् पृष्ठ ३२-९४ में लिखे प्रमाणे ईश्वर की स्तुति प्रार्थ-

---

सत्यता की गांठ से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (बध्नामि) बांधता वा बांधती हूं।

२. हे वर या वधू, हे स्वामिन् वा हे पत्नी! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है, (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो; और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है, (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे।

३. (असौ) हे यशोदे वा सत्यकर्मन्! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करनेहारा (षड्विंशः) छब्बीसवां तत्त्व (अन्नम्) अन्न है, (तेन) उससे (त्वा) तुझको (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बाँधता वा बांधती हूं।

---

१. द्र. म. ब्रा. १।७।८-१० ॥

२. गोत्र का परिवर्तन गर्भाधान-संस्कार के अन्त में कराया जाता है। क्योंकि आजकल सामान्यतः गर्भाधान कराया ही नहीं जाता; इसलिये संस्कार समाप्ति से पूर्व या आशीर्वाद से पूर्व गोत्रपरिवर्तन की क्रिया पूर्वोक्त पृ. १४१ लिखे प्रमाणे करा देनी चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण कर्म करके, दोनों क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें।

तत्पश्चात् पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सम्मानार्थ उत्तम भोजन करावें। तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवे।

तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय, तब वधू और वर पृथक् पृथक् स्थान में भूमि पर बिछोना करके तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आवे, तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रह कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और गर्भाधान की रात्रि भी हो, उस रात्रि में यथाविधि प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान करें।

[५ पितृकुल से कन्याप्रस्थान या बिदाई]

तत्पश्चात् दूसरे वा तीसरे दिन प्रातकाल या जो उत्तम समय वा दिन नियत किया हो, वर पक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ वा किसी यान में बैठा के बड़े सम्मान से अपने घर में लाने की तय्यारी करें। और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आँख में अश्रु भर लावे, तो वर निम्न मन्त्र को पढ़ उसे धैर्य देवे।

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१॥[1]

---

१. (ये नरः) जो मनुष्य (अध्वरे) शुभ कार्यों पर शुभसमारोहों=मंगलोत्सवों पर (रुदन्ति जीवम्) आंसू बहाते हुए रोते हुए जीव को (विमयन्ते) विशेष रूप से या विवध प्रकार सुख=सान्त्वना देते हैं; [वि+मयन्ते। मय इति सुखनाम] (दीर्घां प्रसितिम्) अपने दूर तक फैले सम्बन्धों को (अनुदीधियुः) अपने अनुकूल बनाते हैं अथवा गृहस्थ के इस दूर तक फैले हुए पारस्परिक बन्धन

---

१. ऋ. १०।४०।१० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे। उस समय में वर—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२॥[1]

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णꣳ सुवृतं सुचक्रम्। आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकꣳ स्योनं पत्ये वहतुꣳ कृणुष्व ॥३॥[2]

का विचार=ध्यान रखते हैं; और जो (इदं) इस जीव के सामने (पितृभ्यः) उसके जनकजननी के लिए (वामं यथा स्यात् तथा) सुन्दर मधुर (समेरिरे) भाषण करते हैं [अर्थात् अपनी दुःखी रोती स्त्री के माता पिता के लिये सदा मीठे वचन बोलते हैं]; (पतिभ्यः) ऐसे पतियों से (जनयः) स्त्रियां (परिष्वजे) आलिंगन में (मयः) सुख प्राप्त करती हैं। अथवा (जनयः) स्त्रियां ऐसे (पतिभ्यः) पतियों के लिए (परिष्वजे) आलिंगनार्थ सुख पहुंचाती हैं। अर्थात् हे वधू! मैं इन्हीं गुणों वाला हूं; तुम मुझसे सदा सुख-सान्त्वना पाओगी। इसलिए पितृकुल से जाते समय मत रो।

२. हे कन्ये! यह (पूषा) पोषक पति (त्वा इतः) तुझे यहां से (हस्तं गृह्य) हाथ पकड़ कर [हाथ का सहारा देकर] (नयतु) ले जावे। (अश्विनौ) वेग वाले घोड़े (रथेन) रथ से (त्वा) तुझे (प्र वहतां) अच्छी प्रकार खींचकर ले जावें; अथवा 'अश्विना रथेन'=वेगवती सवारी से ले जावे। तू (गृहान्) पतिकुल के घरों को (गच्छ) जा (यथा) जिससे कि तू (गृहपत्नी) गृह की स्वामिनी (असः) होवे। तू (विदथम्) संगत=जमघट में ऐसे (आ, वदासि) भाषण कर कि (वशिनी) सब को वश में रखने वाली (असः) हो जावे।

३. हे (सूर्ये) सूर्यवत् शोभामयि! (सुकिंशुकं, शल्मलिं) अच्छी पलाश और सेमल की लकड़ी से निर्मित (विश्वरूपं) रंगविरंगे (हिरण्यवर्णं) चमकीले या सोने का पानी चढ़े (सुवृतं) अच्छी

---

१. ऋ. १०।८५।२६ ॥ २. तु. ऋ. १०।८५।२० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे। उस समय कन्या के माता पिता निम्न बोल कन्या को विदा करें।

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४॥[1]

यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े, तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोले के नौका पर बैठे—

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ॥५॥[2]

और नाव से उतरते समय—

अत्रा जहामो ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥६॥[2]

प्रकार से जुड़े हुए (सुचक्रं) सुन्दर पहियों वाले इस रथ पर (आरोह) चढ़। (वहतुं) अपने गमन को (पत्ये) अपने पति के लिए (स्योनं) सुखकारी, और (अमृतस्य लोकं) पीड़ा रहित स्थान (कृणुष्व) बना। अर्थात् अपने गमन को, पति के सुखदान और मंगल साधना से सफल बना।

४. हे पुत्री! तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घकाल जीने के लिए (सुबुधा) उत्तम बुद्धियुक्त (बुध्यमाना) सज्ञान होकर (गृहान्) पति के घरों को (गच्छ) प्राप्त हो। और (गृहपत्नी) घर की स्वामिनी स्त्री (यथा) जैसे (असः) तू होवे, वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्टज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान। (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देनेहारा परमात्मा (दीर्घं त आयुः) तेरी आयु लम्बी (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा करे। जिससे तू और तेरा पति सदा उन्नतिशील होकर आनान्द में रहें।

५. (सखायः) समान विचार वाले मित्रो! (अश्मन्वती) बड़ी बड़ी चट्टानों वाली यह नदी (रीयते) बह रही है; (सं, रभध्वम्) अच्छी प्रकार अर्थात् सावधानी से वेग या उत्साह से काम लो; (उत्तिष्ठत) उठो और (प्र तरत) तैर कर पार कर जाओ।

६. (ये) जो (अशेवाः) अकल्याणकारी बातें (असन्) हैं,

---

१. अथर्व १४।२।७५ ॥ २. ऋ. १०।५३।८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल ले नाव से उतरे।

पुनः इसी प्रकार मार्ग में चार मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे, खाढ़ावाली पृथिवी बड़े बड़े वृक्षों का झुण्ड वा श्मशान भूमि आवे तो निम्न मन्त्र को बोले—

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥७॥[1]

तत्पश्चात् वधू-वर जिस रथ में बैठ के जाते हों, उस रथ का कोई अंग टूट जाये अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खें हुए विवाहाग्नि को प्रगट अर्थात् प्रज्वलित करके उसमें पृष्ठ १०७-१०८ में लिखे प्रमाणे 'ओं भूरग्नये स्वाहा' आदि मन्त्रों से चार व्याहृति आज्याहुति देनी। पश्चात् पृष्ठ १२२ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना।

[६. पतिकुल में वधू स्वागत]

पश्चात् जब वधू-वर का रथ वर के घर के आगे आ पहुंचे, तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती वा कोई अपने कुल की स्त्री आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में वधू को ले जावे।

उन्हें (अत्र) यहीं नदी व मार्ग में ही छोड़ दें और (शिवाम्) मंगलकारी (वाजान्) अन्नादि पदार्थों को मंगलदायी भावों को; (अभि, उत्तरेम) लेकर पार कर जावें चलें।

७. इस (दम्पती) पति पत्नी=भार्या भर्त्ता के जोड़े पर, जो (परिपन्थिनः) आक्रमण करने वाले या दुःख देने वाले विरोधी (आ, सीदन्ति) आ टूटते हैं या घेरा डालते हैं, वे इनको (मा विदन्) ईश्वर करे कि न मिलें। अथवा इनके वहां रहने को न जानें। (दुर्गं) दुर्गम मार्ग को (सुगेभिः) उत्तम रथादि से (अतीताम्) लांघ लें; (अरातयः) दुष्ट लुटेरे (अप द्रान्तु) दूर भाग जावें।

---

१. ऋ. १०।८५।३२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[प्रथम विधि—वधू को आशीर्वाद]

सभामण्डप द्वारे आते ही वर वधू के मस्तक पर हाथ धर के वहां स्वागत कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके निम्न मन्त्र को बोले—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥१॥[1]

ऋ. १०।८५।३३ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवो पत्ये श्वशुराय शम्भूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥२॥[2]

और आये हुए लोग निम्न मन्त्र बोल,

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ॥३॥

इस प्रकार से आशीर्वाद देवें ।

[द्वितीय विधि—वधू को यज्ञमण्डप में लाना]

तत्पश्चात् वर निम्न मन्त्र को बोल के वधू को यज्ञमण्डप में ले जावे—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

---

१. यह सुमङ्गली वधू आई है । शुभदृष्टि से सब देखो । इसको सौभाग्य का आशीर्वाद देकर ही विदा होवें ।

२. हे वरानने ! तू (सुमङ्गली) अच्छे मङ्गलाचरण करने तथा (प्रतरणी) दोष और शोकादि से पृथक् रहनेहारी (गृहाणाम्) गृह कार्यों में चतुर और तत्पर रहकर (सुशेवा) उत्तम सुखयुक्त होके (पत्ये) पति (श्वशुराय) श्वशुर और (श्वश्र्वै) सासु के लिए (शम्भूः) सुखकर्त्री[2] और (स्योना) स्वयं प्रसन्न हुई (इमान्) इन (गृहान्) घरों में सुखपूर्वक (प्रविश) प्रवेश कर ।

३. सदा सुहागन बनी रहे । घर में मङ्गल कल्याण हो ।

४. हे वधू (इह) इस घर में (प्रजया) पुत्रादि सहित अथवा कुटुम्बी जनों से (ते) तेरा (प्रियं) प्रेम=क्षेम बढ़े (सम् ऋध्य-

---

१. ऋ. १०।८५।३३ ॥ २. अथ. १४।२।२६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥३॥[1]

और वधु-वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें। उस समय वर निम्न मन्त्र को बोल के,

ओम् इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदतु ॥४॥[2]

यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिणभाग में पूर्वाभिमुख बैठावे।

[तृतीय विधि—सामान्य यज्ञ]

तत्पश्चात् पूर्व लिखे प्रमाणे सामान्ययज्ञ की पूरी विधि करें। आचमन-अंगस्पर्श, ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना सब स्त्री पुरुष एकाग्रचित्त ध्यानावस्थित प्रसन्नमन होके करें।

पश्चात् समिधाचयन वेदी में कर, अग्न्याधान, त्रिसमिदाधान, पञ्चाज्याहुतियां, जलप्रसेचन, आघारावाज्यभागाहुति, चार व्याहृति आहुति, चार मंगलाष्टाज्याहुतियां आठ सब मिलाके सोलह आज्याहुति वधू-वर दोनों करें।

ताम्) अच्छी प्रकार से बढ़े। इस घर के सदस्यों से तेरा सुखद मेल हो। (अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय) इस घर में गृहस्थ धर्म पालनार्थ सदा (जागृहि) सावधान=जागृत रह। (एना पत्या) इस पति के साथ ही (तन्वं) अपने शरीर का (सं सृजस्व) संसर्ग कर; इस पति से ही सहशयन कर। (अध) और (जिव्री) तुम दोनों बुढ़ापे तक (विदथम्) उत्तम वाणी को (आ, वदाथः) बोलते रहो या सम्मिलित कार्यों को करते रहो।[3]

४. (इह) इस घर में (गावः) गौएं (अश्वाः) घोड़े और

---

१. ऋ. १०।८५।२७ ॥

२. अथ. २०।१२७।१२ ॥ मन्त्रब्रा. १।३।१३ ॥ पार. १।८।१० ॥

३. (जिव्री) वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तुम दोनों गृहपति धर्मपत्नी (विदथं) गृहाश्रम व्यवहार यज्ञ में (आ, वदाथः) मिलकर बोलते रहो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—प्रधानहोम]

तत्पश्चात् वधू-वर के प्रधानहोम की आज्याहुति निम्न आठ मन्त्रों से दें।

ओम् इह धृति स्वाहा ॥ इदमिह धृत्यै—इदन्न मम ॥
ओम् इह स्वधृतिः स्वाहा ॥ इदमिह स्वधृत्यै—इदन्न मम ॥
ओम् इह रन्तिः स्वाहा ॥ इदमिह रन्त्यै—इदन्न मम ॥
ओम् इह रमस्व स्वाहा ॥ इदमिह रमाय—इदन्न मम ॥
ओम् मयि धृतिः स्वाहा ॥ इदं मयि धृत्यै—इदन्न मम ॥
ओम् मयि स्वधृतिः स्वाहा ॥ इदं मयि स्वधृत्यै—इदन्न मम ॥
ओं मयि रमः स्वाहा ॥ इदं मयि रमाय—इदन्न मम ॥
ओं मयि रमस्व स्वाहा ॥ इदं मयि रमाय—इदन्न मम ॥[1]

(पूरुषाः) पुत्र पौत्रादि की (प्र, जायध्वम्) खूब वृद्धि हो। इस घर में (सहस्रदक्षिणः अपि) अनेक दान करता हुआ भी (पूषा) पोषक पति (नि षीदतु) सदा स्थिर रहे, जीवित रहे।

हे वधू! (इह) इस पतिकुल में तेरा (धृतिः) धरना या धैर्य बना रहे।

(स्वधृतिः) तेरा अपना स्थिति=व्यक्तित्व बना रहे।

(रन्तिः) तेरा रमण=आमोद प्रमोद पूर्वक स्वतन्त्र व्यवहार बना रहे।

(रमस्व) यहीं सर्वात्मना=शरीर मन आत्मा से रम जा।

(मयि धृतिः) मुझ पति में तुझे धैर्य हो, मेरा सहारा हो।

(मयि स्वधृतिः) मुझ पति में तेरी विशेष स्थिति हो, पति का विशेष सहारा मिले।

(मयि रमः) मुझ पति में तेरा रमण हो।

(मयि रमस्व) मुझ पति में ही सर्वात्मना रम जा।

---

१. मन्त्रब्रा. १।३।२३ निर्दिष्ट मन्त्र की 'आज्याहुतिर्जुहोत्यष्टाविह धृतिरिति' गो. गृ. (२।४।९) के अनुसार आठ आहुतियां कल्पित की गई है और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् निम्न मन्त्रों से एक एक करके चार आज्याहुति देवें—

ओम् आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै—इदन्न मम ॥१॥

ओम् अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः। सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै—इदन्न मम ॥२॥

---

१. हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्य्यन्त जीने के लिए (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे; स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को (अदुः) आनन्द देवें। उनमें एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो। (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिए (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो।

२. हे वरानने (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करनेहारी तू (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो; (शिवा) मंगल करनेहारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करनेहारी (देवृकामा) देवर की कामना करती हुई अर्थात् अवसर होने पर नियोग की भी इच्छा करनेहारी अथवा देवरों से मेल चाह बनाये रखने वाली (स्योना) सुखयुक्त होके (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिए (शम्) सुख करनेहारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देनेहारी हो। वैसे ही मैं तेरा पति भी तुझ से वर्त्ता करूं।

पारस्कर ने भी ऐसा ही माना है। यजुः ८।५१ में प्रथम चार का विधान मिलता है; पिछली चार इन्हीं के निष्कर्ष में ऊहित प्रतीत होती है। अर्थात् इह=मयि इत्यर्थः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै —इदन्न मम ॥३॥

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै —इदन्न मम ॥४॥ ऋ. १०।८५।४३-४६ ॥

[पञ्चम विधि—दधिप्राशन]

पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें—

---

३. ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करनेहारे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त इस वधू के स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य भोग वाली (कृणु) कर। (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों अर्थात् सन्तान तक को (आ, धेहि) उत्पन्न कर; अधिक नहीं। और हे स्त्री ! तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्याहरवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर, यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जावोगे। इसलिए अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना।

४, हे वरानने ! (श्वशुरे) मेरे पिता अर्थात् अपने श्वशुर में प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो; (श्वश्र्वाम्) मेरी माता, अपनी सासु में प्रेमयुक्त होके उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर; (ननान्दरि) जो मेरी बहन और तेरी ननन्द है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि, भव) अधिकारयुक्त हो अर्थात् सब से अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्ता कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम॑ञ्जन्तु विश्वे॑ दे॒वाः समापो॒ हृद॑यानि नौ ।
सं मा॑त॒रिश्वा सं धा॒ता समु॒ देष्ट्री॑ दधातु नौ ॥१॥[1]

[षष्ठ विधि—अभिवादन, नमस्कार]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र को बोल के वधू वर, वर की माता पिता आदि बुद्धि को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें—

अहं भो अभिवादयामि* ॥[2]

सप्तम विधि—आशीर्वाचन, स्वस्तिवाचन]

पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के पृष्ठ १२३ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके, उसी समय पृष्ट ३३-३९ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करनी। उस समय कार्यार्थ आये हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें। तथा वधू-वर दोनों अपने पिता आचार्य और पुरोहित आदि सब को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥[3]

आप लोग स्वस्तिवाचन करें।

तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित अथवा जो भी विद्वान् वहां उपस्थित हों अथवा उनके अभाव में यदि वधू-वर विद्वान् वेदवित्

---

१. सब विद्वान् सज्जन निश्चय करके जानते कि हम दोनों के हृदय पानी में पानी की तरह शान्त होकर मिलें रहेंगे। एक ही प्राण वायु हम दोनों को समान रूप से अनुप्राणित करता रहे। संसार की धारणशक्ति हमारी अच्छी प्रकार से धारण करावे। विद्वान् उपदेशक सदा हमारे पथ-प्रदर्शक बने रहें।

---

*इससे उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्य-प्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है। प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब-जब मिलें तब-तब इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें। द. स. ॥

१. अर्थ पृ. ३१९ ॥ २. द्र. गो. गृ. २।४।१० ॥

३. द्र. आश्व. गृ. १।८।१५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हों, तो वे ही दोनों पृष्ठ ४०-७२ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें। अथवा निम्न मन्त्रों का पाठ करें:--

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१॥[1]

यजु० अ० २५। मं० १९॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥[2]

यजुः २५।१९, २१॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वामेमिति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥३॥[3]

ऋ० मं० १०। सू० ६३॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥४॥[4]

ऋक् ५।५१।१५॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥५॥[5]

यजुः ५।३॥

---

१. हे नवीन गृहस्थो! तुम (नः) हम सबके लिए (जातवेदसौ) नाना विद्याओं को ग्रहण किये तथा गृहस्थ के सब विषयों को जानते हुए (सचेतसौ) सावधान चित्त (समनसौ) अनुकूल उत्तम मन वाले (अरेपसौ) पापरहित अर्थात् असंयमी न होते हुए, पारस्परिक अनिच्छा से मिलन न करने वाले होते हुए (भवतम्) गृहस्थ परिवार में रहो। (यज्ञं मा हिंसिष्टं) परिवारिक सामाजिक व्यवहार रूप कर्म भंग करने वाले मत बनो। और (यज्ञपतिं मा) घर के संचालक के विरोधी मत बनो। (अद्य) आज से निरन्तर (नः) हम सबके लिये (शिवौ) कल्याणकारी होवो।

---

१. मन्त्रार्थ पृष्ठ ६६॥ २. मन्त्रार्थ पृष्ठ ६७॥
३. मन्त्रार्थ पृष्ठ ६०॥ ४. मन्त्रार्थ पृष्ठ ४४, ४५॥
५. मन्त्रार्थ पृष्ठ १२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् कार्यार्थ आये हुए स्त्री-पुरुष सब निम्न वाक्य बोलें—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

[अष्टम विधि—पुरोहितदक्षिणा, अभ्यागतसत्कार]

तत्पश्चात् पुरोहित का अन्नपानादि तथा दक्षिणा से यथायोग्य सत्कार कर, कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाचा, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार कर के विदा करे।

यदि किसी विशेष कारण से श्वशुरगृह में गर्भादान संस्कार न हो सके तो वधू-वर क्षार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होके विवाह के चौथे दिवस में गर्भादान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो, तो किसी दूसरे दिन गर्भस्थापन करें।

और यदि वर दूसरे देश से विवाह के लिए आया हो, तो वहां जिस स्थान में विवाह करने के लिए जाकर उतरा हो उसी स्थान में गर्भाधान करे। पुनः दोनों अपने घर चले जावें।

पुनः [विवाहसंस्कार के पश्चात् चतुर्थी-विधि=गर्भाधान हो जाने के पश्चात्] अपने घर आ के पति, सास-श्वसुर, ननन्द, देवर-देवरानी ज्येष्ठ-जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें। सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्ते और मधुरवाणी वस्त्र आभूषण आदि से वधू को सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रक्खें तथा वधू भी सब को यथायोग्य व्यवहार से प्रसन्न रक्खे। वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्ते और स्त्री की सेवा, प्रसन्नता में तत्पर रहे तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ वानप्रस्थ-संस्कार-विधिः

श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वानप्रस्थाश्रम [का ग्रहण] अवश्य करना चाहिए (सं. वि. ३१६)। अर्थात् ब्रह्मचर्य पूर्वक 'विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके' पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे, और [उस] पुत्र का भी एक पुत्र हो जाय, तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम [की दीक्षा ले] वन में जाकर[1] (सं. वि. ३१२) तपः स्वाध्याय का जीवन व्यतीत करे।

वानप्रस्थाश्रम का समय पचास वर्ष के उपरान्त है (सं. वि. ३१८) अर्थात् 'गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेतकेश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जावे, तब···ग्रामों =नगरों में उत्पन्न=उपलब्ध; पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों [का मोह] को छोड़; ·····अग्निहोत्र की सब सामग्री साथ लेके (सं. वि. ३१७),·····अपनी स्त्री, पुत्र, भाई बन्धु, पुत्रवधू आदि सब को गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तय्यारी करे। यदि स्त्री साथ चले, तो साथ ले जावे,····· [परन्तु] उससे सेवा के सिवाय विषय सेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे (सं. वि. ३१८)। नहीं तो, पुत्र को अथवा ज्येष्ठ पुत्रों को अपनी पत्नी को सौंप जावे [और उन्हें शिक्षा कर दे] कि इसकी सेवा यथावत् किया करना। और अपनी पत्नी को [भी] शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्ममार्ग में चलने के लिए और अधर्म से हटाने के लिए शिक्षा करती रहना (सं. वि. ३१८); सब से प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना; अपने समय को धर्मकार्यों व सत्संग सेवा में लगाना; यथा सम्भव गृहस्थ के व्यवहारों से अपने मन को पृथक् रख स्वाध्याय योगाभ्यास में लगाना आदि आदि (ग्र० क०)।

स्वयं, 'वहाँ जङ्गल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने में नित्य युक्त मन और इन्द्रियों को जीत, सब से मित्रभाव, सावधान, नित्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देनेहारा और किसी से कुछ भी न लेनेहारा, सब प्राणिमात्र पर अनुकम्पा– कृपा रखनेहारा होवे।'

जो जंगल में पढ़ाने और योगाभ्यास करनेहारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् गृहस्थ वा वानप्रस्थ वनवासी हों, उनके घरों में से भिक्षा ग्रहण करे।

इस प्रकार वन में वसता हुआ आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिए नाना प्रकार की उपनिषद* अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे। इसी प्रकार जब तक संन्यास करने की इच्छा न हो तब तक वानप्रस्थ ही रहे (सं० वि० ३१८)।

[प्रथम विधि–व्रत संकल्प धारण]

यज्ञ की सब सामग्री यथावत् सिद्ध कर सब जने अपने अपने आसनों पर यथास्थान बैठ जावें, तब वानप्रस्थ ग्रहण करने वाला विद्वान् पुरुष निम्न मन्त्र से व्रत ग्रहण करे—

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥१॥

यजुः अ. २०। मं. २४॥

[द्वितीय विधि–मंगल कामना]

पश्चात् आचार्य और ऋत्विज् निम्न मन्त्र से उसकी सफलता की मङ्गल कामना करें।

---

१. हे (व्रतपतेऽग्ने) नियमपालक सत्पथ प्रणेतः प्रभो! (दीक्षितः) वानप्रस्थ की दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि व्रतों का धारण (च) और उसकी सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य के धारण को (च) और उसके उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं। इसीलिये यज्ञ की अग्नि में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं, वैसे विद्या और व्रत को धारण कर अपनी बुद्धि को ज्ञान से प्रज्वलित करता हूं, और (त्वा) तुझको अपने आत्मा में धारण करता और सदा (ईन्धे) प्रकाशित करता हूं।

---

*इसका मूल अर्थ है—उप=परमात्मा के समीप, नि=निश्चय से या निरन्तर सद्=बैठना जिन से हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥२॥
अथर्व कां. ९ । सू. ५ । मं. १ ॥

[तृतीय विधि—यज्ञारम्भ]

तत्पश्चात् पृ० ३० से ९९ पर्यन्त लिखे प्रमाणे, आचमन अङ्ग-स्पर्श, ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, अग्न्याधान, त्रिसमिदाधान करे ।[1]

पश्चात् पृ० १०४ से १०८ में लिखे प्रमाणे कुण्ड के चारों ओर जलप्रोक्षण करके, आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आज्याहुति चार[2] करके

[चतुर्थ विधि—स्थालीपाक से प्रधान होम]

निम्नलिखित मन्त्रों से घृतसिञ्चित स्थालीपाक की ४३ आहुति देवें ।

---

२. हे गृहस्थ ! (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर । (आनय) अपने मन को गृहाश्रम से इधर की ओर ला । (सुकृताम्) तू पुण्यात्माओं के (लोकमपि) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी (गच्छतु) प्राप्त होवे । (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े-बड़े (तमांसि) अज्ञान दुःख और संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् होकर (अजः) अपने आत्मा को अजर-अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःख रहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीतिपूर्वक आरूढ हो ।

---

१. 'अयन्त इध्म०' से पांच आज्याहुतियों का विधान नहीं है ।

२. 'यदस्य कर्मणो०'...से स्विष्टकृताहुति, 'प्रजापतये०' से प्राजापत्याहुति, 'चार पावमानी' और 'अष्ट मङ्गलाहुति' का विधान इस संस्कार में यद्यपि नहीं है । तथापि अष्टाज्याहुति व प्राजापत्याहुति का विधान हमें सङ्गत लगता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं काय स्वाहा। कस्मै स्वाहा। कतमस्मै स्वाहा। आधिमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तं विज्ञाता-यादित्यै स्वाहा। अदित्यै मह्यै स्वाहा। अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा। सरस्वत्यै स्वाहा। सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा। सर-स्वत्यै बृहत्यै स्वाहा। पूष्णे स्वाहा। पूष्णे प्रपाथ्याय स्वाहा। पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा। त्वष्ट्रे स्वाहा। त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा। त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा ॥१॥[1]

---

१. जो मनुष्य (काय) सुखसाधक, सुखदाता के लिये (कस्मै) सुखस्वरूप के लिये (कतमाय) मोक्षस्वरूप के लिये या बहुतों में 'सर्वो-परि विराजमान' अर्थात् अपने गुण-कर्म-स्वभाव से सर्वोत्कृष्ट होने के लिये (आधि+आ+अधीताय) सब पदार्थों व विषयों को धारण करने वाली धारणा शक्ति को प्राप्त होकर सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये, (मनः प्रजापतये) मन को प्रजा जनों की पालना करनेहारे के लिये, (चित्तं+विज्ञाताय आदित्यै) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारे चैतन्य मन को प्राप्त होकर विशेष जाने हुए के लिये और अखण्डित वाणी के लिये, (मह्यै अदित्यै) बड़ी विनाश रहित भूमि माता के लिये, (सुमृडीकायै आदित्यै) सुखदात्री माता=जननी के लिये, (सरस्वत्यै)[1] नदी के लिये (पावकायै=सरस्वत्यै)[2] पवित्र करने वाली विद्यायुक्त वाणी के लिये (बृहत्यै सरस्वत्यै)[2] विशाल विद्वानों की वाणी के लिये (पूष्णे) पुष्टि करने वाले 'तत्त्व या पदार्थ के लिये (पूष्णे+प्रपथ्याय)[3] पोषक प्रकृष्ट भाव से योग्य पथ्य=भोजन के लिये (पूष्णे+नरन्धिषाय) पोषक+नरों=मानवों के लिये हितकारी या जो घूम-घूम कर मनुष्यों को उपदेश देता है, उस पोषक=समाज धर्म रक्षक के लिये, (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले या रूप-निर्माता के लिये, (त्वष्ट्रे+तुरीपाय) नौकाओं के रक्षक

---

१. यजुः अ. २२। मं. २०॥

२. 'निरन्तर प्रवाह' पवित्र होने व करने का सर्वोत्तम साधन है।

३. अन्नाद्य='पथ्य' अर्थात् शरीर के लिये हितकारी होना चाहिये, केवल स्वादिष्ट नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भुवनस्य पतये स्वाहा। अधिपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा ॥२॥[1]

ओम् आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। अपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। व्यानो

विद्या प्रकाशक व्यक्ति के लिये (त्वष्ट्रे+पुरुरूपाय) नाना रूपों के पदार्थों को बनाने वाले शिल्प विद्यावान् के लिये।

(स्वाहा) सत्य क्रिया, सद् व्यवहार 'गृहाश्रम में' करते हैं, 'ब्रह्मचर्याश्रम में' कर चुके हैं, 'वानप्रस्थाश्रम में' आगे करेगें, वे कैसे न सुखी हों?[2] भाव यह है कि जो पुरुष 'विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञ क्रियाओं को [वानप्रस्थ धारण कर] करते हैं, वे सुखी रहते हैं।"[3]

२. (भुवनस्य पतये) संसार 'के प्राणिमात्र' की 'बाह्य शत्रुओं से' पालना=रक्षा करने वाले के लिये (अधिपतये) सब के अधिष्ठाता अर्थात् सब के शिक्षक, नियन्ता के लिये (प्रजापतये) सब प्रजा जनों की 'आन्तर शत्रुओं से' पालना=रक्षा करने वाले के लिये (स्वाहा) परमेश्वर की प्रशंसा=स्तुति प्रार्थना उपासना करो तथा ऐसे पुरुषों के लिये उत्तम क्रिया को भली-भांति युक्त करो।[4]..... 'जो मनुष्य.....सुख बढ़ाने के लिये सत्य क्रिया करते हैं, वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले[5] अर्थात् प्रजा को अधिक सुख लाभ पहुंचाने वाले होते हैं।

३. हे मनुष्यो! सामान्यतः सब को और विशेषतः वानप्रस्थ ग्रहण करने वाले तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि—

हमारी (आयुः) आयु, जीवनकाल (यज्ञेन) परमेश्वर और

---

१. यजुः अ. २२। म. ३२॥

२. द्र. यजु. २२।२० का ऋषि दयानन्द भाष्य, तदनुसार।

३. द्र. यजुः २२।२० का भावार्थ।

४. द्र. यजुः २२।३२ तथा १८।२८ ऋषि दयानन्द भाष्य, तदनुसार।

५. द्र. यजुः २२।३२ ऋषि भाष्य का भावार्थ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। उदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। आत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥३॥[1]

विद्वन्सत्कार से मिले कर्म विद्या आदि देने के साथ, (प्राणः) जीवन की मूल 'प्राण-वायु' (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ, (अपानः) दुःख विनाशक 'अपान-वायु' (यज्ञेन) प्राण वायु में होम करने से, (व्यानः) देह की सब सन्धियों=जोड़ों में व्याप्त हो=संचार कर शरीर चलाने व इन्द्रियों से कर्म कराने का निमित्त 'व्यान-वायु' (यज्ञेन) उत्तम कर्म=सङ्गत चाल के साथ (उदानः) बल वृद्धि देने वाला 'उदान-वायु' (यज्ञेन) उत्तम कर्म के साथ, (समानः) देह के अङ्ग-अङ्ग में यथावाश्यकता समान रूप से अन्न-रस पहुंचाने वाला 'समान-वायु' (यज्ञेन) सङ्गतिकरण के कर्म के साथ, (कल्पताम्) समर्पित हो, समर्थ हो।

हमारी (चक्षुः) दर्शनशक्ति का मूल नेत्र (यज्ञेन) अपने रूप विषय से उत्तम सङ्गति के साथ, (श्रोत्रं) श्रवणेन्द्रिय [तथा नासिका, जिह्वा, त्वग् इन्द्रियां जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं] (यज्ञेन) अपने शब्द [तथा प्राण, रस, स्पर्श] विषय से उत्तम मेल के साथ (वाक्) वाणी [आदि कर्मेन्द्रियां] (यज्ञेन) अच्छे काम==श्रेष्ठतम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों, समर्थ हों।

हमारा (मनः) मन अर्थात् अन्तःकरण चतुष्टय (यज्ञेन) इन्द्रियों के साथ उत्तम सङ्गतिकरण द्वारा (कल्पताम्) समर्पित हो, समर्थ हो।

हमारा (आत्मा) जीव (यज्ञेन) प्राणों के साथ उत्तम सम्बन्ध

---

१. यजुः अ. २२। मं. ३३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् एकस्मै स्वाहा। द्वाभ्यां स्वाहा। शुताय स्वाहा।

से[1] (कल्पताम्) उत्तम जीवन यापन में पूर्ण रूप से समर्थ हो।

हमारा (ब्रह्मा) चार वेदों का जानने वाला विद्वान् गृहस्थ ऋत्विग् (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के साथ अथवा (ब्रह्मा) चतुर्वेदवित् संन्यासी (यज्ञेन) सत्योपदेश सद्धर्म प्रचार रूप उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्थ हो।

(ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश या परमेश्वर के वेद-ज्ञान की ज्योतिः (यज्ञेन) स्वाध्याय यज्ञ रूप उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) सफल हो।

(स्वः) मोक्ष-सुख (यज्ञेन) प्राणायाम योगाभ्यास द्वारा आत्मा का परमात्मा के साथ मेल कराने से (कल्पताम्) सिद्ध हो।

(पृष्ठं) प्रष्टव्य या 'बचा हुआ पदार्थ अर्थात् प्रकृति या पिछला=प्रारब्धकर्म (यज्ञेन) सत्कर्मों के साथ (कल्पताम्) समर्थ हो, इनका होना सफल हो।

(यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (यज्ञेन) अपने सृष्टि-कर्म रूप यज्ञ द्वारा अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो। अथवा (यज्ञः) यज्ञ रूप शुभकर्म (यज्ञेन) सत्कर्म योगाभ्यास प्राणीमात्र की सेवा आदि श्रेष्ठतम कर्मरूप यज्ञ के साथ समर्पित हों।

ये सब (स्वाहा) उत्तम क्रिया से, सत्कर्म के साथ परस्पर सङ्गत हों, समर्पित, सफल सिद्ध हों।[2]

भावार्थ—सब मनुष्यों [विशेषतः वानप्रस्थियों] को चाहिये कि जितना अपना जीवन, शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दश इन्द्रियां और जो सबसे उत्तम सामग्री हो, उसको यज्ञ के लिये समर्पित करें, जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें।[3]

सब मनुष्यों को, विशेषतः वानप्रस्थियों को चाहिये कि—

---

१. द्र. प्रश्नोपनिषद् प्रश्न २। वहां 'प्राण' को आत्मा की छाया कह, दोनों की सङ्गति का वर्णन है।

२. द्र. यजुः २२।३३ ऋषि दयानन्द भाष्य, तदनुसार।

३. द्र. यजुः २२।३३ ऋषि भाष्य का भावार्थ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकशताय स्वाहा । व्युष्ट्यै स्वाहा । स्वर्गाय स्वाहा ॥४॥[1]

[पञ्चम विधि—चार व्याहृति आहुतियां]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से चार व्याहृति आहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

(एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) भक्ति रूप सत्य प्रशंसा कहें, सत्य क्रिया करें ।

(द्वाभ्यां) सत्ताभाव से विद्यमान जीव और पर ब्रह्म के लिये अथवा दो अर्थात् कार्य कारण के लिये ।

(शताय) अनेकविध प्राकृत पदार्थों के लिये,

(एकशताय) एक सौ एक वर्ष की जीवनावधि वाले नरदेह धारी पुरुष के लिये अथवा सैकड़ों प्रकार के व्यवहार के लिये ।

(व्युष्ट्यै) अव्यक्त से व्यक्त अर्थात् प्रकाशित पदार्थों के विनियोग के लिये ।

(स्वर्गाय) सुख को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया भली-भांति युक्त करनी चाहिये ।[2]

भाव यह है कि—मनुष्यों [विशेषतः] वानप्रस्थों को चाहिये कि विशेष भक्ति से, जिसके समान दूसरा नहीं, उस ईश्वर को तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें, जिससे [उन्हें] संसार का सुख और मोक्षसुख प्राप्त होवे ।[3]

---

१. यजुः अ. २२ । मं. ३४ ॥

२. द्र. यजुः २२।३४ ऋषि दयानन्द भाष्य, तदनुसार ।

३. द्र. यजुः २२।३४ ऋषि भाष्य का भावार्थ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[षष्ठं विधि—महावामदेव्यगान यज्ञ समाप्ति]

पश्चात् पृ० १२२ में लिखे प्रमाणे सामगान करके सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार घर के, अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकान्त में अपने निवास का प्रबन्ध कर सदा योगाभ्यास, वेदादि शास्त्रों का विचार, महात्माओं का संग करके स्वात्म और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे।

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

[ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के लिये तथा योगदर्शन के योग-साधना-विषयक विशेष सूत्रों का अभिप्राय जानने के लिये ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का "ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना प्रकरण" का विशेष मनन करना चाहिये। ग्र. क.]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ संन्यास-संस्कार-विधिः

संन्यास संस्कार उसको कहते हैं जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ने [की दीक्षा लेके] विरक्त होकर सब पृथिवी में [प्राणीमात्र के] परोपकारार्थ विचरना (सं. वि. ३२१)।[1]

प्रथम प्रकार

प्रथम जो वानप्रस्थ के आदि में प्रथम प्रकार [सं. वि. ३१३] कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ, गृहस्थ होके वनस्थ और वनस्थ होके संन्यासी होवे, यह क्रम-संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करते करते वृद्धावस्था में संन्यास लेना कहाता है (सं. वि. ३२१)।

द्वितीय प्रकार

जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन, चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो, अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके, गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे; क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है। (सं० वि० ३२२)।[2]

तृतीय प्रकार

यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे, पक्षपात रहित होकर सबके उपकार करने की इच्छा होवे, और [फिर] जिसको दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरण पर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा, तो वह न गृहाश्रम करे. न वानप्रस्थाश्रम; किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे (सं. वि. ३२२)।[3]

---

१. द्र. मनु ६।३३; सं. वि. ३१२, ३१३, ३३१॥

२. द्र. जावालोपनिषद् खण्ड ४॥

३. यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

…जंगल में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष अथवा न्यून से न्यून बारह वर्ष तक [वानप्रस्थ रूप में] विहार करके अर्थात् सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके आयु के चौथे भाग अर्थात् [पैंसठ] सत्तर वर्ष के पश्चात् "सब मोहादि संगों को छोड़कर,[1]…यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग कर,…आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणा संज्ञक अग्नियों को अपने आत्मा में समारोपित करके[2] विद्वान् मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मन को लगावे (सं. वि. ३३०-३३१)"[3] अथवा "जब सब कामों=कामनाओं को जीत लेवे और इनकी अपेक्षा न रहे,…पवित्रान्तःकरण मननशील हो जावे, तभी गृहाश्रम से…अथवा ब्रह्मचर्य ही से [सीधा] संन्यास ग्रहण कर लेवे" (सं. वि. ३३१)।[4]

वह संन्यासी (अनग्निः[5]) आहवनीयादि अग्नियों से रहित रहे, कहीं अपना स्वाभिमत घर (मठ-आश्रम) भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिए ग्राम [व नगर बस्ती] का आश्रय लेवे; बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता और स्थिर बुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे।[6]

न तो अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने; किन्तु जैसे भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता है, वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे।[7]

चलते समय आगे-आगे देख के पग धरे; सदा वस्त्र से छानकर जल पीवे; सबसे सत्य वाणी बोले। जो कुछ व्यवहार करे, वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे।[8]

मांस मद्यादि का त्यागी, आत्मा से ही सुखार्थी होकर विचरा करे और सबको सत्योपदेश करता रहे।[9]

---

१. मनु. ६।३३ ॥ २. मनु. ६।३८ ॥

३. मनु. ६।३६ ॥ ४. मनु. ६।४१ ॥

५. इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते, यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। यहां आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है, स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है ॥ द० स० ॥

६. मनु. ६।४३ ॥ सं. वि. ३३१ ॥ ७. मनु. ६।४५ ॥ सं. वि. ३३२ ॥

८. मनु. ६।४६ ॥ सं. वि. ३३२ ॥ ९. मनु. ६।४९ ॥ सं. वि. ३३२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब शिर के बाल दाढ़ी मूंछ और नखों को समय-समय छेदन कराता रहे, पात्री, दण्डी और कुसुंभ के रंगे हुए* वस्त्रों को धारण किया करें। सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे।[1]

यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी लोग निन्दा आदि से दूषित वा अपमानित भी करें, तथापि धर्म ही का आचरण करे। सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर समबुद्धि रक्खें इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिए संन्यासाश्रम की विधि है; किन्तु केवल दण्डादि चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है।[2]

यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है, तथापि उसके नाम ग्रहणमात्र से जल शुद्ध नहीं होता। किन्तु उसको पीस जल में डालने ही से जल शुद्ध होता है। वैसे नाममात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता; किन्तु अपने-अपने आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने ही से आश्रम धारण सफल होता है।[3]

इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिए संन्यासी पुरुष विधिवत् योगशास्त्र की रीति से "भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्" इन सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव अर्थात् 'ओम्' लगा के उसको मन से जपता हुआ तीन भी प्राणायाम यथाविधि करे, तो जानो वह अत्युत्कृष्ट तप करता है।[4]

बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में, जो अशुद्धात्माओं से देखने के योग्य नहीं है, उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यानयोग से ही संन्यासी देखा करे।[5]

जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान से युक्त है, वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सत्सङ्ग, धर्मानुष्ठान से रहित विज्ञानहीन होकर संन्यास लेता है. वह संन्यास पदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्म-मरण रूप संसार को प्राप्त होता है। ऐसे अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है।[6]

---

*अथवा गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने ॥ द० स० ॥

१. मनु. ६।५२ ॥ सं. वि. ३३२ ॥ २. मनु. ६।६६ ॥ सं. वि. ३३२ ॥
३. मनु. ६।६७ ॥ सं. वि. ३३३ ॥ ४. मनु. ६।७० ॥ सं. वि. ३३३ ॥
५. मनु. ६।७३ ॥ सं. वि. ३३३ ॥ ६. मनु. ६।७४ ॥ सं. वि. ३३३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और जो निर्वैर इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक् वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं. वे इसी जन्म अर्थात् इसी वर्त्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं। उनको संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य हैं।[1]

जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निःस्पृह होता है, तभी इस लोक, इस जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होके निरन्तर[2] सुख को प्राप्त होता है।[3]

इस विधि से धीरे-धीरे सब [सांसारिक विषयों के] संग से हुए दोषों को छोड़ के सब हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से विशेष कर निमुक्त होके विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है।[4] और जो विविदिषा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे यह भी विद्या का अभ्यास सत्पुरुषों का संग योगाभ्यास और ओंकार का जप और उसके अर्थ परमेश्वर का विचार भी किया करें (सं. वि. ३३४)।

यही अज्ञानियों अर्थात् गौण-संन्यासियों का शरण, यही विद्वान् संन्यासियों का, यही [अभ्युदय—] सुख की खोज और अनन्त[2] सुख [=निःश्रेयस] की इच्छा करनेहारे मनुष्यों का आश्रय है।[5]

इस क्रमानुसार संन्यासयोग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य संन्यास ग्रहण करता है, वह इस संसार और शरीर में सब पापों को छोड़-छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है (सं. वि. ३३१-३३४ द्र,)।[6]

[प्रथम विधि—नियम व्रत धारण]

विधि—जो पुरुष संन्यास लेना चाहे, वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्न हो, उस दिन नियम और व्रत [धारण करे] अर्थात् तीन दिन तक दुग्धपान करके उपवास और भूमि में शयन और प्राणायाम

---

१. मनु. ६।७५ ॥ सं. वि. ३३३ ॥

२. निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं कर सकता ॥ द० स० ॥ [और] अनन्त इतना ही है कि मुक्ति सुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश न होवे ॥ द० स० ॥

३. मनु. ६।८० ॥ सं. वि. ३३४ ॥ ४. मनु. ६।८१ ॥ सं. वि. ३३३ ॥

५. मनु. ६।८४ ॥ सं. वि. ३३४ ॥ ६. मनु. ६।८५ ॥ सं. वि. ३३४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध्यान तथा एकान्तदेश में ओंकार का जप किया करे। पृष्ठ ७-१२ में लिखे प्रमाणे यज्ञ के लिये यज्ञमण्डप, वेदि, समिधा, घृतादि शाकल्य सामग्री एक दिन पूर्व कर रखनी।

पश्चात् जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो, उस दिन प्रहर रात्रि से उठ कर शौच स्नानादि आवश्यक कर्म करके प्राणायाम ध्यान और प्रणव का जप करता रहे (सं. वि. ३३५)।

[द्वितीय विधि—ऋत्विग्वरण]

सूर्योदय के समय संस्कार प्रारम्भ करे। पहले उत्तम गृहस्थ धार्मिक विद्वान् चार ऋत्विजों का पृष्ठ २९-२९ में लिखे प्रमाणे वरण करे।

[तृतीय विधि—यज्ञारम्भ]

पश्चात् पृष्ठ ३१ से ९५ तक लिखे प्रमाणे आचमन-अङ्गस्पर्श ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासन, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ, अग्न्याधान. यथा विधि करे।

[चतुर्थ विधि—त्रिसमिदाधान][1]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से में भीगी तीन समिधा अग्नि में चढ़ावें—

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥१॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदं न मम॥२॥

ओं तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धमासि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदं न मम॥३॥

यजुः अ. ३। मं. १, २, ३॥

---

१. यहां त्रिसमिदाधान में 'अयन्त इध्म०' का विधान नहीं; क्योंकि मन्त्रोक्त 'प्रजया पशुभिः' का संन्यासी से कोई सम्बन्ध नहीं। इसीलिये 'अयन्त इध्म०' से इस संस्कार में पंचाज्याहुतियों का विधान भी ऋषि ने नहीं किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पंचम विधि—जल प्रोक्षण]

पश्चात् यज्ञकुण्ड के चारों ओर निम्न मन्त्रों से जल-प्रोक्षण करे—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व,

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इस से उत्तर, और

गोभिल गृ. प्र. १ । खं. ३ । सू. १-३ ॥

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

यजु. अ. ३० । मं. १ ॥

[षष्ठ विधि—ग्यारह आज्याहुतियां]

पश्चात् निम्न प्रकार से, एक-एक मन्त्र से ग्यारह आज्याहुति देवे—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १ । खं० ८ । सू० २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भुवनपतये स्वाहा ॥[1]

ओं भूतानां पतये स्वाहा ॥[1]

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥[2]

[सप्तम विधि—विशेष भात की आहुतियां]

पश्चात् जो विधिपूर्वक भात बनाया हो, उसमें घृत सेचन कर के संन्यास लेने वाला यजमान और दो ऋत्विज् निम्नलिखित स्वाहान्त मन्त्रों से भात का होम और शेष दो ऋत्विज् साथ साथ घृताहुति करते जावें (सं० वि० ३३५)—

ओं ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः स्वाहा ॥१॥

---

१. (भुवनपतये) सब संसार के पति अर्थात् लोकलोकान्तरों के पति=समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर के लिये, अथवा संसारी सुखों के साधक भौतिक अग्नि के लिये;

२. (भूतानां पतये) पंच महाभूतों के संयोग से उत्पन्न सब प्राणियों के अथवा संसारी पदार्थों के स्वामी अथवा ऐश्वर्य के हेतु भौतिक अग्नि के लिये;

३. (प्रजापतये) सब प्रजाओं के स्वामी परमेश्वर के लिये (स्वाहा)[3] मेरी यह यज्ञक्रिया सुहुत हो, ऐसा मेरा सत्य निश्चय है।

१. (ब्रह्म) वेद से (होता) होता याजक का स्वरूप (ब्रह्म, यज्ञः) यज्ञ का विधान (ब्रह्मणा, स्वरवः, मिताः) यज्ञ-स्तम्भों के परिमाण निरूपित होते हैं। वेद से ही (ब्रह्मणा अध्वर्युः) यजुर्वेद का ज्ञाता अध्वर्यु (जातः) बनाया जाता है (ब्रह्मणः अन्तः) वेद के भीतर ही (हविः) हवन के योग्य पदार्थ समूह विधि रूप से (हितम्) विहित है। अर्थात् वेद में इन सबका यथायोग्य निर्देश व विधान किया गया है।

---

१. यजुः २।२ ॥ २. यजुः १८।२८ ॥

३. ...वेद के मन्त्रों के साथ "स्वाहा" शब्द का अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है (यजुः २।२ के पदार्थ में)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्म स्रुचौ घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञश्च सत्रं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः ।
शमिताय स्वाहा ॥२॥

अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राम्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्यास्सन्तु यजमानस्य
कामाः स्वाहा ॥३॥

अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धियेन्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः
स्वाहा ॥४॥

---

२. (ब्रह्म) वेद ही (घृतवतीः, स्रुचः) घृत वाली स्रुक्=घृत डालने के साधन बतलाता है (ब्रह्मणा वेदिः) वेद ने ही यज्ञवेदि का (उद् हिता) उत्कृष्ट कल्याण करने वाली भूमि के ऊपर बनाना बतलाया है। (ब्रह्म) वेद ही (यज्ञश्च, सत्रं, च) बड़े और छोटे सब प्रकार के यज्ञ और (ये हविष्कृतः, ऋत्विजः) जो हवि देने वाले ऋत्विज् हैं, उनका विधान करता है। (शमिताय) ऐसे शान्तिपूर्ण साधनों के देने वाले वेद के लिये (स्वाहा) यह हमारी सत्य क्रिया हो, हमारे शुभ वचन हों।

३. (अंहोमुचे) दुःख वा पापों के दूर करने वाले परमात्मा में, मैं (मनीषाम्) अपनी बुद्धि को (आ प्र+भरे) सब तरफ से प्रकृष्टतया भेंट चढ़ाता हूं और (सु, त्राम्णे) श्रेष्ठ रक्षक उसी परमात्मा में (सु, मतिम्) सुन्दर बुद्धि का (आ, वृणानः) अच्छे प्रकार प्रवेश कराना हुआ चाहता हूं कि हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! आप (इदं हव्यम्) इस हवनीय पदार्थ को (प्रति+गृभाय) ग्रहण करें और आपकी कृपा से (यजमानस्य) मुझ यजमान के (कामाः) सब मनोरथ (सत्याः, सन्तु) पूर्ण हों, सत्य सिद्ध हों।

४. हे (अश्विना) माता-पिताओं! आचार्य ऋत्विजो! अध्यापक और उपदेशको! मैं (अंहोमुचम्) दुःखों वा पापों को दूर करने वाले (यज्ञियानाम्, वृषभम्) आचार्य ऋत्विज्, पूजनीय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे ।
अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥५॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे ।
वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥६॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुस्सूर्यो दधातु मे ।
सूर्याय स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥७॥

माता-पिता आदि में सबसे श्रेष्ठ अथवा यज्ञ के हितकारक पदार्थों की वर्षा करने वाले, (अध्वराणाम्) सब प्रकार के यज्ञों में (प्रथमम्, विराजन्तम्) मुख्य रूप से विराजमान, (अपाम्, नपातम्) प्रजाओं व जलों को नाश न होने देने वाले प्रभु की (धिया) बुद्धि से (हुवे) अच्छे प्रकार ध्यान में रखने की प्रतिज्ञा करता हूं। (इन्द्रेण) आत्म-बल के साथ (मे) मुझे (ओजः) तेज और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (दत्तम्) प्रदान करो।

५. (यत्र) जिस ब्रह्मलोक में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी लोग (तपसा) धर्माचरण मनोनिग्रह आदि रूप तप (दीक्षया) और संन्यासाश्रम में पालनीय व्रत-नियमों को दीक्षा के (सह) साथ (यन्ति) प्राप्त होते हैं, (तत्र) वहां (मा) मुझे (अग्निः) पूजनीय परमात्मा व ज्ञानवान् आचार्य अपनी कृपा से (नयतु) पहुंचावे और (अग्निः) वही ज्ञानस्वरूप परमात्मा (मे) मुझे (मेधां, दधातु) ब्रह्मलोक-प्राप्ति की शुद्धि बुद्धि को धारण करावे। (अग्नये) इस अग्नि के लिये (स्वाहा) सुहुत हो, इससे उत्तम प्रार्थना करता हूं।

६. ···(वायुः) नित्य ज्ञान वाला परमेश्वर या उत्तम चरित्र आचार्य···(प्राणान्) प्राणों को···।

७. ···(सूर्यः) सूर्यवत् जगत् का प्रकाशक व ज्ञानप्रकाशक आचार्य·· देखने की शक्ति को···।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।
चन्द्राय स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय–इदन्न मम ॥८॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।
सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय–इदन्न मम ॥९॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे ।
इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय–इदन्न मम ॥१०॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु ।
अद्भ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भ्यः–इदन्न मम ॥११॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।

---

८. ···(चन्द्रः) चन्द्रवत् आह्लादक परमात्मा व आचार्य··· (मनः) मनन शक्ति को ।

९. ···(सोमः) सोमलता की तरह सब लोकों का प्रेरक व शान्ति देने वाला परमात्मा अथवा आचार्य··· (पयः) दुग्धादि उत्तम पदार्थों पुष्टिकारक अन्न-वीर्य-तेज को ।

१०. ···(इन्द्रः) विद्युत् व वायु के समान बलशाली व ऐश्वर्य वाला परमात्मा व आचार्य··· (बलं) बल को ।

११. ···(आपः) जगत् का कारणीभूत सूक्ष्म तत्त्व व सर्व-व्यापक परमात्मा व आप्त धार्मिक विद्वान्··· (अमृतम्) मुक्ति (मा उपतिष्ठतु) मुझे प्राप्त हो ।

१२. ···ज्ञान का आदि मूल परमेश्वर व चारों वेदों के ज्ञाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।
ब्रह्मणे स्वाहा । इदं ब्रह्मणे—इदन्न मम ॥१२॥

अथर्व कां. १९ । सू. ४२, ४३ ॥[1]

[अष्टम विधि—भात की पन्द्रह आहुतियां]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से एक एक करके भात की आहुति देवें—

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ॥
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥१॥

वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥२॥

शिरःपाणिपाद[पार्श्व]पृष्ठोरूदरजङ्घाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥३॥

विद्वान्··· । वेद ज्ञान को (ददातु) देवें, ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें यह आहुति वेदों के विद्वान् की प्रसन्नता के लिये है ।

१. मेरे (प्राणापानव्यानोदानसमानाः) हृदय देशवर्त्ती वायु प्राण, गुदादेशवर्ती वायु अपान, सर्वशरीरसंचारी वायु व्यान, कण्ठदेश में रहने वाला वायु उदान, नाभिदेशस्थ वायु समान, ये पांचों मेरे वायु ईश्वर करे कि प्राणायाम द्वारा (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हो जायं और (अहम्) मैं (ज्योतिः) जगत् के सम्बन्ध को छोड़ के प्रकाश-स्वरूप अर्थात् सत्यगुणी और (विरजाः) रजोगुण रहित अर्थात् निष्कलङ्क तथा (वि, पाप्माः) पापों के मूल तमोगुण से रहित ईश्वर करे कि (भूयासम्) होजाऊं ।

२. मेरे (वाङ्मन०) वाणी, मन, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका, वीर्य, बुद्धि, अभिप्राय-विचार व संकल्प ये सब (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों जायें··· ।

३. मेरे (शिरःपाणि०) मस्तक, हाथ, पैर, पीठ, जांघें, घुटने, पेट, मूत्रेन्द्रिय ये सब ·· ।

---

१. पहले चार मन्त्र सूक्त ४२ के और अगले ५-१२ सूक्त ४३ के हैं । मन्त्र ५-१२ तक 'इदं···न मम' अंश मन्त्र से बहिर्भूत है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वक्चर्ममाꣳसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥४॥

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥५॥

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशा मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥६॥

अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥७॥

---

४. मेरे (त्वक्चर्म०) त्वगिन्द्रिय, चाम, मांस, रुधिर, मेद [=चर्बी] मज्जा [=हड्डियों के बीच का सार द्रवरूप पदार्थ] स्नायु [=नाड़ी] और अस्थि ये सब (स्वाहा) सम्यक् प्रकार से स्थित हों।

५. (शब्दस्पर्श०) शब्दस्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय मेरे शुद्ध हों जाय०··· (स्वाहा) शोधने की सुष्ठु क्रिया करूं ।

६. (पृथिव्यप्०) पृथिवी जल, तेज, वायु और आकाश ये मेरे लिये शुद्ध हों जाय०···(स्वाहा) उनका सद्विनियोग करता हूं ।

७. (अन्नमय०) अन्नमयादि* पांच कोश मेरे लिये शुद्ध हों। ···(स्वाहा) उन्हें सफल करूं ।

८. (विविष्टचं) विशेष करके विविध रूप में चराचर जगत् में व्याप्त परमात्मा के उद्देश्य से (स्वाहा) यह मेरी आहुति=शुभ-त्याग है।

---

*स्थूल शरीर—अन्नमय कोष, पांच कर्मेन्द्रियों सहित पांच प्राणमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित, मनोमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित निश्चयात्मक बुद्धि वृत्ति—विज्ञानमय कोष और सुषुप्ति का आनन्द—आनन्दमय कोष कहलाता है। ये पांचों जीव के स्वरूप को ढके हुए हैं; स्मृतियों व उपनिषदों में इसलिए इन्हें कोष (मियान) संज्ञा दी गई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विविष्टयै स्वाहा ॥८॥ कषोत्काय स्वाहा ॥९॥

उत्तिष्ठ पुरुष हरित लोहित पिङ्गलाक्षि
देहि देहि ददापयिता मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥१०॥

ओं स्वाहा[1] मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥११॥

अव्यक्तभावैरहङ्कारै-
र्ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥१२॥

---

९. (कषोत्काय) [नामरूपकर्म्मात्मक कार्यप्रपञ्चः कषः इति सायणाचार्यः] सृष्टि के आदि में जगत् के रचने में उत्कण्ठित परमात्मा के लिए० यह मेरी स्तुतिपरक क्रिया है ··· ।

१०. (उत्तिष्ठ पुरुष०) हे पुरुष ! शरीर में सोने वाले जीवात्मन् ! तू (उत्तिष्ठ) आलस्य प्रमादादि दोषों को छोड़कर परमात्मा के अनुग्रह-प्राप्ति के लिये उद्योगी बन और हे (हरित) सब प्रतिबन्धों [रुकावटों को] को दूर करने वाले ! (लोहित) रजोगुण के सम्बन्ध से रक्तिमा धारण करने वाले ! (पिङ्गलाक्षि) तमोगुण के सम्बन्ध से अपने ज्ञान को कलुषित करने वाले मेरे आत्मन् ! अपने ही लिये शुद्धि=प्राकृतिक-सम्बन्ध रूप शुद्धि को (देहि-देहि) दे-दे, अर्थात् विना विलम्ब के दे और (ददापयिता) लोगों के लिये यथार्थ ज्ञान का देने वाला हो; जिससे (मे) मुझ संन्यासी की अपनी चित्त-वृत्तियां (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हो जावें ।

११. (ओम्) ओम् निजनाम वाले परमात्मा की कृपा से मेरे (मनोवाक्०) मन, वाणी, शरीर और उन से क्रियमाण काम शुद्ध हों ।

१२. (अव्यक्तभावै···) जिनका स्वरूप प्रकट नहीं है, ऐसे अहङ्कार अभिमानादि दोषों से मुक्त होकर (ज्योतिः) प्रकाशमय हो जाऊं ।

---

१. तै. आ. १०।६१ के अनुसार पृथक् मन्त्र है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मा मे शुध्यताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥१३॥
अन्तरात्मा मे शुध्यताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥१४॥
परमात्मा मे शुध्यताम् ।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा* ॥१५॥[1]

[नवम विधि—पैंतीस घृताहुतियां]

पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से पैंतीस घृताहुति देवें—

ओमग्नये स्वाहा ॥१६॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥१७॥

---

१३. (आत्मा०) मेरा शरीर शुद्ध हो ।

१४. (अन्तरात्मा) मेरा आत्मा या अन्तःकरण शुद्ध वासना-रहित हो ।

१५. (परमात्मा) मेरे लिये परमात्मा प्रसन्न हो अपना शुद्ध स्वरूप प्रगट करे अथवा परमात्मा मेरे भोग-कर्म के उपरोक्त साधनों को पवित्र करें ।

१६. प्रकाश स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये सत्य क्रिया हो ।

१७. सब विद्वानों की कृपा की प्राप्ति के लिये मेरी यह संन्यासदीक्षा की सत्य-क्रिया हो ।

---

*(प्राणापान) इत्यादि से लेके (परमात्मा में शुध्यंताम्) इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासा के लिये उपदेश है अर्थात् जो संन्यासाश्रम ग्रहण करे, वह धर्माचरण सत्योपदेश योगाभ्यास शम दम शान्ति सुशीलतादि विद्याविज्ञानादि शुभ गुण कर्म स्वभावों से सहित होकर, परमात्मा को अपना सहायक मान कर अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर प्राण मन इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार से हटा, शुद्ध व्यवहार में चला के पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़ अन्य के दोष पढ़ाने और उपदेश से छुड़ा कर स्वयं आनन्दित होके सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे । द. स. ॥

१. द्र. तैत्ति. आर. प्र. १०, अनु ५१-६० एशियाटिक सोसाइटी बंगाल सं., तथा आनन्दाश्रम पूना सं. के परिशिष्ट में संगृहीत अ. ६५, ६६ क्रम-भेद से ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥१८॥ ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥१९॥
ओमच्युतक्षितये स्वाहा ॥२०॥ ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥२१॥
ओं धर्माय स्वाहा ॥२२॥ ओमधर्माय स्वाहा ॥२३॥
ओमद्भ्यः स्वाहा ॥२४॥ ओमोषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ॥२५॥
ओं रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा ॥२६॥ ओं गृह्याभ्यः स्वाहा ॥२७॥
ओमवसानेभ्यः स्वाहा ॥२८॥ ओमवसानपतिभ्यःस्वाहा ॥२९॥
ओं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥३०॥ ओं कामाय स्वाहा ॥३१॥

---

१८. (ध्रुवाय भूमाय) निश्चल और महान् सुखकारी परमात्मा के लिये वा नित्य सुखस्वरूप के लिये।

१९. स्थिर ज्ञान वाले ईश्वर के लिये।

२०. सर्वदा एक रस होकर जगत् में निवास करने वाले परमात्मा के लिये।

२१. इष्टसुख देने वाले प्रकाशक स्वरूप ईश्वर अथवा इष्टसाधक अग्नि के लिये।

२२. धर्म अर्थात् कर्त्तव्य-कर्म के लिये (स्वाहा) मेरा सत्प्रबल हो।

२३. अधर्म या अधर्मात्मा के नाश के लिये (स्वाहा) मेरा प्रयत्न हो।

२४. जलों के लिये।

२५. ओषधि और वनस्पति के लिये।

२६. क्रूर स्वभाव वालों और देवों [सज्जनों] के लिये।

२७. गृहोपयोगी पदार्थों के लिये।

२८. एकान्त स्थान अथवा मृत्यु के लिये।

२९. मृत्यु के स्वामी परमात्मा के लिये।

३०. सब प्राणियों के लिये।

३१. काम=इच्छा शक्ति के लिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओमन्तरिक्षाय स्वाहा ॥३२॥ ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥३३॥
ओं दिवे स्वाहा ॥३४॥ ओं सूर्याय स्वाहा ॥३५॥
ओं चन्द्रमसे स्वाहा ॥३६॥ ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥३७॥
ओमिन्द्राय स्वाहा ॥३८॥ ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥३९॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥४०॥ ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥४१॥[1]
ओं देवेभ्यः स्वाहा ॥४२॥ ओं परमेष्ठिने स्वाहा ॥४३॥
ओं तद् ब्रह्म ॥४४॥ ओं तद्वायुः ॥४५॥
ओं तदात्मा ॥४६॥ ओं तत्सत्यम् ॥४७॥

---

३२. अन्तरिक्षस्थ वस्तुओं के लिये।
३३. पृथिवीस्थ पदार्थों के लिये।
३४. द्युलोकस्थ प्रकाशक पदार्थों के लिये।
३५. सूर्य के लिये,
३६. चन्द्रमा के लिये,
३७. नक्षत्रों के लिये,
३८. विद्युत् के लिये,
३९. विद्वान् आचार्य के लिये,
४०. प्रजापालक राजा के लिये,
४१. सर्वज्ञ परमात्मा व चतुर्वेदवित् के लिये,
४२. विद्वानों के लिये,
४३. पवित्र-स्थल में स्थिति करने वाले युक्तात्माओं के लिये अथवा परमपद=मुक्तिधाम के अधिष्ठाता परमात्मा के लिये।
४४. वह प्रसिद्ध परमात्मा ब्रह्म पद वाच्य है (स्वाहा) उसी की स्तुति की चाहिये।
४५. वही वायुवत् बलवान् है।
४६. वही चराचर जगत् का आत्मा है।
४७. वही एकमात्र सत्य है।

---

१. द्र. तैत्ति. आ. १०।६७ पूर्वोक्त दोनों संस्करण।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं तत्सर्वम् ॥४८॥ ओं तत्पुरोर्नमः ॥४९॥

अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म त्वं प्रजापतिः। त्वं तदाप आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा* ॥५०॥[1]

[दशम विधि—क्षौरकर्म]

तदनन्तर संन्यास लेने वाला पुरुष अपने शिरपर पांच वा छः केशों को छोड़कर, [पृ० २०५-२०८ में चूड़ाकर्म में लिखे विधान से, दाढ़ी मूंछ केशलोमों का क्षौर करा, [यथावत् स्नान करे (सं. वि. ३४१)।

[एकादश विधि—शिरोऽभिषेक]

तदनन्तर अपने मुण्डित शिर पर पुरुषसूक्त[2] के मन्त्रों [का भाव समझ, उन] से एक सौ आठ वार अभिषेक करे (सं. वि. ३४१)।

---

४८. वही सर्व[3] है।

४९. उस महाशक्ति के लिये नमस्कार हो।

५०. वही परमात्मा (विश्वमूर्तिषु, भूतेषु) मूर्तिधारी सब प्राणियों वा भूतों में (गुहयाम्) प्राणियों की हृदय रूप गुहा में (अन्तः चरति) भीतर व्याप्त है। हे परमात्मन् ! (त्वम्) तू ही (यज्ञः···) यज्ञ, वषट्कार, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, प्रजापति, आपः, ज्योति, रस, अमृत ब्रह्म, भूः भुवः स्वः, ओम् ये सब नामों वाला है। ये सब नाम तुम्हारे ही गुणों का वर्णन करते हैं।

---

*ये सब 'प्राणापानव्यान०' आदि मन्त्र तैत्ति. आर. दशम प्रपा. अनुवाक ५१—६०, ६६—६८ तक हैं।

१. द्र. तैत्ति. आ. १०।६८ पूर्वोक्त दोनों संस्करण।

२. यस्मिन्सर्वं, यतः सर्वं, यः सर्वः सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः॥
महा. शान्ति, भीष्मस्तवस्तोत्रे॥

३. पुरुषसूक्त ऋ. १०।९०, सामवेद अरण्यकाण्ड ४, और अथर्व. १९।६ में है। यजुः अ. ३१ पुरुषाध्याय और तै. आ. ३।१२ पुरुषानुवाक कहाता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

यहां स्पष्ट निर्देश नहीं है कि किस वेद के पुरुष सूक्त से अभिषेक करे। सामान्यतः 'पुरुष सूक्त' कहने से वैदिकों में 'ऋग्वेदस्थ' पुरुषसूक्त का ग्रहण होता है, इसलिये यहां सम्भवतः ऋग्वेदस्थ पुरुष सूक्त अभिप्रेत हो, ऐसा हमारा विचार है। अतः हमने ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त के मन्त्र ही छापे हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं, शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ऋग्वेद १०।९० ॥

[द्वादश विधि—आचमन प्राणायाम]

पुनः 'अमृतोपस्तरण०' आदि से तीन आचमन पृ० ३० में लिखे प्रमाणे करके,

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ॥

इन प्राणायामों के मन्त्रों से विधिवत् योगशास्त्र की रीति से कम से कम तीन प्राणायाम करे (सं० वि० ३४१) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[त्रयोदश विधि—मनसा मन्त्र जाप]

पश्चात् हाथ जोड़, वेदी के सामने नेत्रोन्मीलनकर मन से निम्न छै मन्त्रों को जपे—

ओं ब्रह्मणे नमः ॥१॥ ओमिन्द्राय नमः ॥२॥

ओं सूर्याय नमः ॥३॥ ओं सोमाय नमः ॥३॥

ओमात्मने नमः ॥५॥ ओमन्तरात्मने नमः ॥६॥

[चतुर्दश विधि—चार आज्याहुति]

और फिर निम्न मन्त्रों से चार आज्याहुति देवे।

ओमात्मने स्वाहा ॥ ओमन्तरात्मने स्वाहा ॥

ओं परमात्मने स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥[1]

[पञ्चदश विधि—मधुपर्क]

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता संन्यास ग्रहण करने वाला पुरुष निम्न प्रकार से मधपर्क की क्रिया करे (सं० वि० ३४२)।

आचार्य या ऋत्विग् मधुपर्क का पात्र निम्न वचन बोल उसको देवे—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥[2]

---

१. मैं सर्व व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा व उसके वेदज्ञान को,

२. ऐश्वर्यशाली परमात्मा वा विद्युत् को,

३. तेजःस्वरूप परमात्मा वा सूर्य को।

४. शीतल गुणयुक्त परमात्मा व चन्द्रमा को।

५. आत्मा अर्थात् शरीर को।

६. अन्तरात्मा अर्थात् अन्तःकरण को (नमः) उन्नति के साधन प्राप्त करता हूं।

---

१. इन मन्त्रों के अर्थ पीछे आ गये हैं।

२. इस मन्त्र का अर्थ पृ. ३१० पर हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संन्यास ग्रहण करने वाला निम्न मन्त्र से ग्रहण करे—

ओं प्रतिगृणामि ॥*

निम्न मन्त्रस्थ वाक्य को बोल मधुपर्क को देखे—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥*

और निम्न मन्त्रा से मधुपर्क पात्र को वाम हस्त में लेवे—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृह्णामि ॥*

फिर निम्न मन्त्र को पढ़, दाहिने हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार विलोवे—

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ।*

और फिर उस मधुपर्क में से निम्न मन्त्रों से चारों दिशाओं में क्रमशः बैठे, वसु रुद्र आदित्य एवं विश्वेदेवों=अन्य विद्वानों के नाम पर छोड़ें या उन्हें देवे—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेणच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥*

इस मन्त्र से पूर्व दिशा में ।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥*

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में ।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥*

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में ।

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥*

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में ।

पुनः निम्न मन्त्रस्थ वाक्य बोल पात्र के मध्य में से मधुपर्क लेके ऊपर की ओर अर्थात् अपने से पूर्व संन्यासी बने या सामान्य जनों के निमित्त, तीन बार फैंके—

ओं भूतेभ्यस्त्वा प्रतिगृह्णामि ॥*

---

*इनके अर्थ क्रमशः पृष्ठ ३१०–३१२ देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांस के या अन्य पात्रों में धर, भूमि पर अपने सम्मुख तीनों पात्र रख, निम्न मन्त्र को बोल थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे--

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येण परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥*

यदि उन पात्रों में मधुपर्क शेष रहे, तो जल में डाल दे ।

[षोडश विधि–पुनः आचमन, प्राणायाम]

पुनः पूर्वोक्त प्रकार से तीन आचमन और विधिवत् कम से कम तीन प्राणायाम करे ।

[सप्तदश विधि–मानसिक मन्त्र जाप]

फिर निम्न मन्त्रों को मन से जपे—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥

ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॥

ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥[1]

---

१. जो (भूः) प्राणों का प्राण (सावित्रीं) सर्वोत्पादक और प्रकाशक परमात्मा है, उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं । वही ध्यान करने योग्य है । जो (भुवः) सुखदायक सर्वोत्पादक परमात्मा है, उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं । उस पवित्र कामना करने योग्य को उत्तम गुण कर्म

---

*इस मन्त्र का अर्थ पूर्व पृष्ठ ३१३ पर देखें ।

१. वेदारम्भ पृष्ठ २४२ में गायत्री मन्त्र=सावित्री मन्त्र का अर्थ दे दिया है । यहां संन्यास ग्रहण करने वाला पुरुष, 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' इन तीन व्याहृतियों में से एक-एक का उच्चारण सावित्री के एक-एक पाद के साथ क्रमशः उच्चारण करता हुआ, ईश्वर के आश्रय ध्यान और मनन करने की प्रतिज्ञा करे । अन्त में पूर्ण मन्त्र का एक साथ पाठ कर परमेश्वर के 'वरेण्य-मार्ग' को धारण कर, बुद्धि की प्रार्थना करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टादश विधि—आज्याहुति]

निम्न मन्त्रों से वेदी में आज्याहुति दे—

ओमग्नये स्वाहा ॥१॥ ओं भूः प्रजापतये स्वाहा ॥२॥
ओमिन्द्राय स्वाहा ॥३॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥४॥
ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥५॥ ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥६॥
ओं प्राणाय स्वाहा ॥७॥ ओमपानाय स्वाहा ॥८॥
ओ व्यानाय स्वाहा ॥९॥ ओमुदानाय स्वाहा ॥१०॥
ओं समानाय स्वाहा ॥११॥

[एकोनविंश विधि—यज्ञ की पूर्णाहुति]

निम्न मन्त्र से पूर्णाहुति करे—

ओं भूः स्वाहा ॥१॥

[विंश विधि—जलप्रमोचन द्वारा एषणात्रय का त्याग]

फिर निम्न वाक्य को बोल के सबके सामने जल को भूमि में छोड़ देवे—

के लिये धारण करता हूं। जो (स्वः) स्वयं सुख स्वरूप सर्वोत्पादक है, उसमें प्रविष्ट होता हूं। वही हमारी बुद्धि को उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरता है। जो प्राणों का प्राण दुःख हर्त्ता व सुख स्वरूप परमात्मा है, उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं। वही ऐश्वर्य का दाता कामना, और ध्यान करने योग्य, पवित्र, हमारी बुद्धि को अच्छे कामों में प्रेरणा करने वाला है। उसको मैं धारण करता हूं।

१-११. (अग्नये) अग्नि से लेकर= (समानाय) समान प्राण तक के सब पदार्थों से गुण ग्रहण करने के लिये (स्वाहा) मेरी यह संन्यासदीक्षा रूप सत्क्रिया है।

१. (भूः) प्राणों के प्राण ईश्वर के लिए (स्वाहा) मैं अपने को समर्पित करता हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति* ॥ श० कां १४।६।४।१ ॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता, मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु स्वाहा* ॥

[एकविंश विधि—जल में स्थित हो परमात्म-ध्यान]

पीछे नाभिमात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रह कर (सं० वि० ३४३)—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥

ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ॥

ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसेऽसावदोम् ॥[1]

इसका मन से जप करके प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके पूर्वोक्त (पुत्रैषणायाश्च०) इस समग्र कण्डिका को बोल के निम्न मन्त्र से जप करे—

ओं भूः संन्यस्तं मया ॥१॥

---

१. आज मैंने (भूः) प्राणों के प्राण 'ओम्' का ध्यान स्मरण करके 'भूलोक सम्बन्धी' सब मोह सम्बन्ध,

---

*पुत्रादि के मोह वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटाकर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं, वे हीं सब को सत्योपदेश से अभयदान देते हैं। अर्थात् दहने हाथ में जल ले के मैंने आज से पुत्रादि का तथा वित्त का मोह और लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझ से सब भूत प्राणीमात्र को अभय प्राप्त होवे, यह मेरी सत्य वाणी है ॥ द० स० ॥

१. 'परो रजसेऽसावदोम्' का अर्थ स्पष्ट नहीं। भाव ऐसा लगता है "तमसः परस्तात् 'ओम्' परमेश्वर संसार में जीवन क्रिया रहने तक के लिये हमारी दोषों पापों से रक्षा करे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भुवः संन्यस्तं मया ॥२॥
ओं स्वः संन्यस्तं मया ॥३॥

[द्वाविंश विधि—जलाञ्जली त्याग]

तत्पश्चात् जल से अञ्जली भर पूर्वाभिमुख होकर संन्यास लेने वाला कार्यकर्त्ता पुरुष निम्न वचन बोल,

ओम् अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥४।

निम्न मन्त्र से दोनों हाथ की अञ्जली को पूर्वदिशा में छोड़े—

येना सहस्रं वहासि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥५॥

अथर्व का. ९ । सू० ५ । मं. १७ ॥

---

२. (भुवः) दुःख विनाशक 'ओम्' का ध्यान स्मरण करके 'भुवर्लोक-सम्बन्धी' सब मोह सम्बन्ध और

३ (स्वः) सुखदाता 'ओम्' का ध्यान स्मरण करके 'स्वर्लोक-सम्बन्धी' सब मोह सम्बन्ध (संन्यस्तं) त्याग दिये हैं।

भूलोक=शरीर का अधोभाग। भुवर्लोक=मध्यभाग। स्वर्लोक=मस्तकभाग। अथवा भूः=अन्नमयकोषान्तर्वर्त्ती सप्तधातु की काया का मोह। भुवः=प्राणमय मनोमय कोष के प्रति मोह। स्वः=विज्ञानमय आनन्दमय कोष से सम्बन्ध अहंकार व ममत्व बुद्धि का भाव।

४. मेरे से सब प्राणियों को अभय प्राप्त हो, इसके लिये शुभ संकल्प करता हूं।

५. हे (अग्ने) अपने अनुग्रह से सबके उन्नायक तेजस्वी देव! (येन) अपने जिस सामर्थ्य व नियम से (सहस्रं) तू सब संसार को (आ वहसि) भली प्रकार उच्च अवस्था तक पहुंचाता है, (येन) जिससे (सर्ववेदसम्) तू सब पदार्थों को व ज्ञानों को धारण कराता है, (तेन) अपने उस सामर्थ्य व नियम से (देवेषु) विद्वानों में (स्वः गन्तवे) सुख प्राप्त कराने के लिए (इमं सर्ववेदसं-यज्ञं) मेरे इस गृहाश्रमस्थ पदार्थ मोह यज्ञोपवीत और शिखा आदि के त्याग रूप यज्ञ को (नः वह) हमारे लिए प्राप्त करा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[त्रयोविंश विधि—शिखा यज्ञोपवीत-मोचन]

इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिए जो पांच वा सात केश रक्खे थे, उनको एक एक उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अञ्जली भर निम्न मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलाञ्जली को जल में होम कर देवे (सं. वि. ३४५)।

ओमापो वै सर्वा देवताः स्वाहा ॥६॥

ओं भूः स्वाहा ॥७॥

[चतुर्विंश विधि—काषायवस्त्र व दण्ड-धारण]

उसके पश्चात् आचार्य शिष्य को जल से निकाल के काषाय वस्त्र की कौपीन कटिवस्त्र उपवस्त्र अङ्गोछा प्रीतिपूर्वक देवे।

तत्पश्चात् आचार्य दण्ड [व कमण्डलु] हाथ में ले के सामने खड़ा रहे, और संन्यास ग्रहण करने वाला, आचार्य के सामने हाथ जोड़, निम्न मन्त्र को बोल—

ओं ये मे दण्डः परापतद्वैहायसो भूम्याम्।
तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥८॥[1]

आचार्य के हाथ से दण्ड [व कमण्डलु] धारण करके आत्मा में आहवनियादि अग्नियों का आरोपण करे (सं० वि० ३४५)।

[पंचविंश विधि—आचार्य, ऋत्विगादि द्वारा मङ्गलकामना]*

पश्चात् आचार्य ऋत्विजादि विद्वान् निम्न मन्त्रों को बोल परमेश्वर का उपस्थान कर, संन्यासी बने पुरुष के लिए मंगल कामना करे।

६-७. (आपो०…) बाहर जल और अन्दर वीर्य शक्ति हमें प्रसन्नता और प्रकाश दें। (भूः) प्राणों से भी प्रिय परमेश्वर (स्वाहा) हमारी रक्षा का 'सुष्ठुक्रिया'=सुव्यवस्था करे।

---

१. मन्त्रार्थ द्र. पृष्ठ २४५ पर।

*यज्ञ समाप्ति पर सन्यास ग्रहण करने वाले पुरुष के लिये मंगल-कामना, आशीर्वाद के स्थान पर की जानी योग्य है। ऋषि ने संन्यास-संस्कार में अगले ग्यारह मन्त्रों को अर्थ सहित प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। समीचीन समझ कर हमने यहाँ मंगल कामना में इनका विनियोग किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शर्य्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महद्
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

ऋक् ९।११३।१-२ ॥

---

१. यह (वृत्रहा) अज्ञान के आवरण का नाश करनेहारा (इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी संन्यास लेने वाला पुरुष (शर्य्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) ज्ञान रस को व उत्तम मूल-फलों के रस को (पिबतु) पीवे। (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े (वीर्यम्) सामर्थ्य को (करिष्यन्) बढ़ाने की इच्छा करता हुआ (बलं दधानः) दिव्य बल को धारण करता हुआ (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये हे (इन्दो) चन्द्रमा के तुल्य सब को आनन्द करनेहारे पूर्ण विद्वान् तू संन्यास लेके सब पर (परि, स्रव) सत्योपदेश की वृष्टि कर अथवा (इन्दो) आनन्द सुधावर्षक परमेश्वर ! (इन्द्राय) आत्मैश्वर्ययुक्त इस संन्यासी पर अनुग्रह की वर्षा कर ॥१॥

२. हे (सोम) सोम्यगुणसम्पन्न (मीढ्वः) सत्य से सबके अन्तः-करण को सींचने हारे (दिशां पते) सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान देके पालन करनेहारे (इन्दो) शमादि गुण युक्त संन्यासिन् ! तू (ऋतवाकेन) यथार्थ बोलने (सत्येन) सत्य भाषण करने (श्रद्धया) सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और (तपसा) प्राणायाम योगाभ्यास से (आर्जीकात्) सरलता से (सुतः) निष्पन्न होता हुआ तू, अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को (आ, पवस्व) पवित्र कर और (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये (परि, स्रव) सब ओर से गमन कर। अथवा हे आनन्ददातः प्रभो ! इस संन्यासी को (परिस्रव) सब ओर से आप्लावित कर ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।

---

३. हे (ऋतद्युम्न) सत्य धन और सत्य कीर्तिवाले यतिवर (ऋतं, वदन्) पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ (सत्यकर्मन्) सत्य वेदोक्त कर्म वाले संन्यासिन् ! (सत्यं वदन्) सत्य बोलता हुआ, (श्रद्धाम् वदन्) सत्य धारण में प्रीति करने का उपदेश करता हुआ (सोम) सोम्यगुणसम्पन्न (राजन्) सब ओर से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले (सोम) योगैश्वर्ययुक्त (इन्दो) सबको आनन्ददायक संन्यासिन्! तू (धात्रा) सकल विश्व के धारक परमात्मा से अपने आत्मा का योग करके (परिष्कृतः) शुद्ध होता हुआ तू (इन्द्राय) योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिए (परि, स्रव) यथार्थ पुरुषार्थ कर ।

४. हे (छन्दस्याम्) स्वतन्त्रतायुक्त निर्दोष (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहते हुए (सोमेन) विद्या, योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से (आनन्दम्) सब के लिए आनन्द को (जनयन्) प्रगट करते हुए (इन्दो) आनन्दप्रद ! (पवमान्) पवित्रात्मन् ! पवित्र करने हारे संन्यासिन् ! (यत्र) जिस (सोमे) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा में (ब्रह्मा) चारों वेदों को जानने हारा विद्वान् (महीयते) महत्त्व को प्राप्त होकर सत्कार को प्राप्त होता है, जैसे (ग्राव्णा) मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है, वैसे तू सबको (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिए सब साधनों को (परि, स्रव) सब प्रकार से प्राप्त करा ॥४॥

५. हे (पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करने हारे पवित्रस्वरूप ! (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन् ! (यत्र) जहां तेरे स्वरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥५॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो
परि स्रव ॥७॥

में (अजस्रम्) निरन्तर व्यापक तेरा (ज्योतिः) तेज है, (यस्मिन्) जिस (लोके) ज्ञान से देखने योग्य तुझ में (स्वः) नित्य सुख (हितम्) स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते) जन्म मरण और (अक्षिते) नाश से रहित लोके द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप (मा) मुझ संन्यासी को (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्राप्ति के लिये (धेहि) कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपा भाव से (परि, स्रव) आनन्द की वर्षा कीजिये ॥५॥

६. हे (इन्दो) आनन्दप्रद परमात्मन् ! (यत्र) जिस तुझ में (वैवस्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) विराजमान है, (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है, (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारणरूप (यह्वतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणपद वायु है, (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष-प्राप्त अमरजीवी (कृधि) कीजिये । (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परि, स्रव) आर्द्र भाव से आप मुझ संन्यासी को प्राप्त हूजिए ॥६॥

७. हे (इन्दो) परमात्मन् । (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विचरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके) त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित (त्रिदिवे) तीन सूर्य विद्युत और भौम अग्नि से प्रकाशित सुख स्वरूप में (दिवः) कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले (लोकाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त (ज्योतिष्मन्तः) शुद्ध विज्ञानयुक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो
परि स्रव ॥८॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो
परि स्रव ॥९॥ ऋ. मं. ९ । सू. ११३ ॥

मुक्ति को प्राप्त सिद्ध पुरुष विचरते हैं, (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ संन्यासी को भी (अमृतम्) मोक्ष-प्राप्त (कृधि) कीजिए और (इन्द्राय) उस परम आनन्दैश्वर्य के लिए (परि,स्रव) कृपा से प्राप्त हूजिये ॥७॥

८. हे (इन्दो) निष्कामानन्दप्रद सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! (यत्र) जिस आप में (कामाः) सब कामना (निकामाः) और अभिलाषा छूट जाती हैं (च) और (यत्र) जिस आप में (ब्रध्नस्य) सबसे बड़े प्रकाशमान सूर्य का (विष्टपम्) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में (स्वधा) अपना ही धारण (च) और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है, (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ संन्यासी को (अमृतम्) प्राप्त-मुक्तिवाला (कृधि) कीजिए तथा (इन्द्राय) सब दुःख-विदारण के लिए मुझ पर (परि, स्रव) करुणा-वृत्ति कीजिए ।८॥

९. हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर ! (यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित है, (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती हैं, (तत्र) उसी अपने स्वरूप में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माम्) मुझ संन्यासी को (अमृतम्) जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्षप्राप्तयुक्त कि जिसके मुक्ति के समय के मध्य में संसार में नहीं आना पड़ता, वैसा (कृधि) कीजिए और इसी प्रकार सब जीवों को (परि, स्रव) सब ओर से प्राप्त हूजिए ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्य्यमजभर्त्तन ॥१०॥
ऋ. मं. १० । सू. ७२ । मं. ७ ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सं नमन्तु ॥११॥
अथर्व कां. १९ । सू. ४१ । मं. १ ॥

संन्यासी के कर्तव्य

इस प्रकार संन्यास ग्रहण करके पुरुष, सत्योपदेश के लिये सदा सर्वत्र विचारे। द्वन्द्वातीत हो, अधर्म का खण्डन धर्म का मण्डन सदा

---

१०. हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोगो ! तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आ सूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा हैं, वैसे उस को (आ, अजभर्त्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ। (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं, उनको सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो, यही तुम्हारा परम धर्म है ॥१०॥

११. हे विद्वान् संन्यासी पुरुषो ! (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) वेदार्थ विद्या के द्रष्टा आप्त धार्मिक पुरुषों ने (भद्रं इच्छन्तः) अभ्युदय-निःश्रेयस के कल्याण की इच्छा करते हुए (अग्रे) प्रथम (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ गुणों के सेवन रूप तप को यथावत् स्थिरता से प्राप्त होके (दीक्षां) ब्रह्मचर्य-वानप्रस्थ-संन्यास आश्रम ही दीक्षा को (उपनिषेदुः) प्राप्त होकर अनुष्ठान किया है। वैसे ही तुम भी तपः पूर्वक संन्यास आश्रम की दीक्षा को ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होवो। (ततः) तदनन्तर (राष्ट्रं) राज्य की इच्छा व रक्षा (बलं) बल-सामर्थ्य-प्रभाव (ओजः) पराक्रम (जातम्) उत्पन्न प्रसिद्ध प्राप्त हुए। (तत्= तथैव) वैसे ही (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के धारण-पालन के लिए (देवाः) सब विद्वान् लोग (उप, सं, नमन्तु) यत्न किया करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता रहे। ···जो वेद से विरुद्ध मतमतान्तर के ग्रन्थ बायबिल. कुरान, पुराण···कि जिनके पढ़ने सुनने से मनुष्य विषयी और पतित हो जाते हैं, उन सबका सदा निषेध करता रहे। ···वैदिक मत की उन्नति और वेदविरुद्ध पाखण्ड मतों के खण्डन करने में सदा तत्पर रहे। ···खण्डनीय कर्मों [मूर्ति-पूजा तीर्थ-भ्रमणादि] का खण्डन करना कभी न छोड़े। (सं. वि. ३५८-३६० का सार) ···अपने को ईश्वर ब्रह्म मानने वालों का भी खण्डन करता रहे। ···अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीता हुआ भोग कर शरीर छोड़ के सर्वानन्द मुक्त मोक्ष को प्राप्त होना, सन्यासियों के मुख्य कर्म हैं।

हे जगदीश्वर सर्वशक्तिमन् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव अजर अमर पवित्र परमात्मन्! आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के उन्हें परम सुख को प्राप्त कराते रहिये।

इति संन्याससंस्कारविधिः समाप्तः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अन्त्येष्टि-कर्म-विधिः

अन्त्येष्टि-कर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है, जिसके आगे उस शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध पुरुषमेध नरयाग पुरुषयाग और दाहकर्म[1] भी कहते हैं। शरीर का आरम्भ ऋतुदान और अन्त श्मशान [में जलाना] अर्थात् मृतक कर्म है (सं० वि० ३६०-३६१)।

(प्रश्न) जो गरुड़पुराण आदि में दशगात्र एकादशाह द्वादशाह सपिण्डी-कर्म मासिक वार्षिक गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं ?

(उत्तर) हां ! अवश्य मिथ्या है, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है, इसलिए अकर्त्तव्य है और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का, वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है।

(प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है ?

(उत्तर) यमालय अर्थात् अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है।

(प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में यमलोक लिखा है, वह झूठा है ?

(उत्तर) हां, अवश्य मिथ्या है। वेद के ज्ञान और उपदेश के न होने से जो गरुड़पुराण में यम की कल्पित कथा लिख रक्खी है वह सब मिथ्या ही है (सं० वि० ३६१-३६२)।

जब कोई मनुष्य मरे, तब [पृ. २२-२४ में लिखे प्रकारे दाहकर्म के लिये सुगन्धादि पदार्थ, घृत, समिधादि यथाविधि एकत्र कर]...

---

१. तुलना ऋषि यजुः भाष्य ३७।२ का भावार्थ। तथा द्र. स. प्र. १३ समु.। पृ. ६१८-६२१। २७वीं आयत की समीक्षा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदी बनाकर ... उस पर मुर्दे को धर कर · अग्नि को जलाकर चिता में प्रवेश कर घी का होम कर मुर्दे को सम्यक् रीति से जलावें। इस प्रकार दाह करने वालों को यज्ञकर्म के फल की प्राप्ति होती है। मुर्दे को न कभी भूमि में गाड़ें, न वन में छोड़ें, न जल में डुबावें [=बहावें]। क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है। इस से मृतक के सम्बन्धी महापाप को प्राप्त होते हैं। अतः विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है, अन्यथा नहीं (द्र० यजुः ऋषि भाष्य ३९।१) ॥*

प्राणान्त से पूर्व का कर्त्तव्य-कर्म

जब यह निश्चय हो जावे कि व्यक्ति की मृत्यु होने वाली है, तो धैर्य धर, उसके अत्यन्त निकटतम बन्धु बान्धव इष्ट मित्रों को इसकी सूचना दे देनी चाहिए।

मृत्यु होने से तत्काल पूर्व मृतप्राण व्यक्ति को चारपाई से नीचे उतारना, उस समय उसका बिछावन या उसके वस्त्र बदलना जरूरी नहीं। उचित यही कि यथापूर्व स्थिति में रहने दे। यदि घर के ऊपर की मंजिल में म्रियमाण व्यक्ति हो, तो भी झटपट नीचे लाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए ‡। उस समय उस प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होने देना चाहिए। यदि किसी गृह में अर्थी

---

*संन्यासी के मृत देह का क्या करें ?

मनुस्मृति के अनुसार संन्यासी को 'निरग्नि' कहा है। इसका अभिप्राय, इसका 'दाहकर्म' नहीं करना चाहिए, ऐसा समझ कर कई संन्यासी की मृतदेह को भूमि में दबा देते हैं। यह ठीक नहीं। 'निरग्नि' का अर्थ यज्ञ की अग्नि अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय दक्षिणाग्नि से रहित होता है, न कि 'चैत्याग्नि' या क्रव्यादग्नि से। इसलिए संन्यासी के शरीर को भी जलाना ही उत्तम है।

‡ भारतीय सभ्यता में बीमार होकर मरना बुरा समझा जाता है। कार्य करते हुए नीरोग रूप से अथवा युद्ध आदि में मरना श्रेष्ठ समझा जाता है। इसी कारण मरने से पूर्व चारपाई पर से नीचे उतार लेने का रिवाज प्रचलित हो गया है, पर यह आवश्यक नहीं, यही इसका तात्पर्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का ऊपर से नीचे उतारना असम्भव अथवा असुविधाजनक हो, तब मृत्यु पीछे यथोचित व्यवस्था करनी चाहिए।

मरने वाले के मुख में अन्त समय में यथोचित सुगन्धित शुद्ध पानी चमचे से डालते रहना अच्छा है। उस समय अवसर हो और व्यक्ति की इच्छा हो तो यजुर्वेद का पुरुष अध्याय या चालीसवां अध्याय [ईशावास्योपनिषद्] अथवा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ करना चाहिये।

[मृत्यु होने के पश्चात् के कर्त्तव्य-कर्म]

मृत्यु होते ही उसके बन्धु बान्धवों व परिचितों मित्रादिकों को को तत्काल सूचना देवें। ऐसा यत्न करें कि यथाशीघ्र 'मृतदेह=शव' को उठाया जा सके, क्योंकि प्राण निकलने के साथ ही 'देह' बिगड़ने लगती है और उसमें दुर्गन्ध उठने लगती है।

यदि रात्रि में किसी की मृत्यु हो, अथवा किसी कारण से शव को कुछ या अधिक काल तक रखना पड़े, तो उसके रखने का उचित प्रबन्ध करें।

मृत्यु होते ही शव को शय्या या चारपाई से पृथिवी पर उतार लें। भूमि पर चटाई दरी या चादर बिछा लें। दो तीन व्यक्ति मृत देह को उठाकर उस पर लिटा दें और फिर उस पर चादर डाल दें।

उस समय मृतक ने जो वस्त्र पहने हों, उन्हें उतार लें। उस बिछावन व वस्त्रों को किसी निर्धन को दे देवें।

भूमि पर लिटाते समय, उसके अंग ठीककर सीधा लिटावे। रस्सी या वस्त्र से दोनों पैरों को बांध दें। इसी प्रकार हाथ को भी सीधा कर के बांध दें, ताकि अङ्ग सिकुड़े न।

[शवयात्रा की व्यवस्था]

शवयात्रा से पूर्व ही, पृ. २० से २१ तक लिखे अन्त्येष्टि संस्कार के लिए आवश्यक सब सामान सिद्ध कर लें।

...यदि पुरुष [प्रेत] हो, तो पुरुष और स्त्री हो, तो स्त्रियां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसको स्नान करावें।[1] चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीव वस्त्र[2] धारण करावें[3] (सं० वि० ३६३)।

यदि 'शव पालकी' की व्यवस्था न हो, तो मजबूत बांस मंगा कर यथोचित 'अर्थी' जहां से मुर्दा उठाना हो, वहीं तय्यार कर लें। शरीर की लम्बाई से अर्थी कुछ बड़ी ही होनी चाहिए; इसलिए बांस शव से लम्बे मंगाने चाहिए। इसको मजबूती से बांध लें। अर्थी में ऊपर केले के पत्ते या मूंज अर्थात् कुश का आसन बिछा सकते हैं। उस पर शरीर की ऊंचाई के दुगुने से भी कुछ लम्बा वस्त्र ले, उसकी एक परत अर्थी पर बिछा, उस पर शव को लिटा, शेष वस्त्र से मृतदेह को ढ़क दें। इसे ही 'कफन' कहते हैं। फिर रस्सी से शव को अर्थी के साथ दृढ़ता से बांध-दे।[4]

...तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में ले जावे (सं० वि० ३६४)॥

[मृत्यु स्थल से श्मशान तक]

तत्पश्चात् अर्थी को, मृतक के निकटतम सम्बन्धी पहले कन्धा लगावें और फिर अन्य सम्बन्धी इष्ट मित्र उठाकर धीरे धीरे ले चलें। बीच बीच में कन्धे लगाने वाले बदलते रहें। श्मशान दूर होने पर अर्थी को या शवपालकी को गाड़ी पर ले जाना उचित है।

---

१. आर्यों में मृतक शरीर की शुद्धि के लिए 'पञ्चगव्य' से अर्थात् गोघृत, गोदधि, गोदुग्ध, गोमूत्र, गोमय की क्रमशः एक एक मात्रा बढ़ाते हुए स्नान करने का विधान है। (द्र. यमस्मृति)।

आजकल उत्तम सुगन्धित साबुन से स्नान करा सकते हैं।

२. दाह सवस्त्रक का ही करे, अवस्त्रक या नग्न का नहीं।

३. तदनन्तर [अर्थात् मृत्यु के पश्चात् स्नान से पूर्व] मृतक का केश दाढ़ी, मूंछ सब छेदन करा दे अर्थात् क्षौर करा दे।.....(सं. वि. प्रथम संस्करण)। परन्तु सम्प्रति यह कर्म प्रचलित नहीं है, वर्तमान सं, वि. में भी नहीं है।

४. सधवा स्त्री के शव पर भारत में सिन्दूर डाला जाता है और उसके मस्तक पर 'बिन्दी' लगाई जाती है।

किसी भी शव पर फूल चढ़ाना, मालएं रखना हमारी सम्मति में अवैदिक आचार है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि सम्भव हो, तो कुछ व्यक्ति उस समय वेदमन्त्रों का पाठ करते जावें; अथवा सब शान्तभाव से 'ओं क्रातो स्मर' बोलते श्मशान ले जावें।

[श्मशान में दहन की तैयारी]

यदि श्मशान में पुरानी वेदी बनी हुई न हो, तो नवीन वेदी भूमि में खोदे। वह श्मशान का स्थान वस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय [दक्षिण पूर्व] अथवा नैर्ऋत्य [दक्षिण पश्चिम] कोण में हो वहां भूमि को खोदे। मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा [दक्षिण] आग्नेय-कोण में रहें, शिर उत्तर-ईशान वा [उत्तर] वायव्य कोण में रहे।

मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे।

उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे, उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे। और [पैरों की ओर] नीची आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे (सं० वि० ३६४)।

उस वेदी में थोड़ा-थोड़ा जल छिटकावे। यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी कर दे। उसमें नीचे से आधी वेदी तक [पहले] लकड़ियां चिने, जैसे की भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमाकर लकड़ियां धरें, लकड़ियों के बीच मे थोड़ा-थोड़ा कपूर थोड़ी-थोड़ी दूर पर रक्खे। [इस प्रकार चिता तय्यार होने पर अर्थी के रस्सी के बन्धन काट दें। ऊपर की चादर या शाल उतार कर श्मशान-भृत्य को दे दें।] उस चित्ता के ऊपर मध्य में मृतक को को रक्खें अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिनें। वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने।

जब तक यह क्रिया होवे, तब तक अलग चूल्हा बना अग्नि जला घृत तपा और छानकर पात्रों में रक्खे। उसमें कस्तूरी आदि अर्थात् केसर, अगर, तगर, चन्दन, दही सब पदार्थ मिलावें। लम्बी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लम्बी लकड़ियों में चार चमसों को, चाहे वे लकड़ी के हों वा चाँदी सोने के अथवा लोहे के हों जिस चमसा में एक छटांक भर से अधिक और आधी छटांक भर से न्यून घृत न आवे, खूब दृढ़ बधन्नों से डण्डों के साथ बांधे (सं० वि० ३६५)।

[प्रथम विधि—अग्निप्रज्वालन]

तत्पश्चात् निकटतम सम्बन्धी, ज्येष्ठ पुत्र, पति या कोई मित्र, संन्यासी होने पर प्रधान शिष्य, घृत का दीपक करके, कपूर में लगा कर शिर से आरम्भ कर पाद पर्यन्त चारों ओर दांये हाथ परिक्रमा करते हुए मध्य-मध्य में अग्नि प्रवेश करावे* अग्नि प्रवेश कराके—

ओमग्नये स्वाहा॥ ओं सोमाय स्वाहा॥

---

१. (अग्नये)[1] पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक तीनों लोकों में स्थित 'अग्नि-विद्युत्-सूर्य' में व्याप्त प्राणशक्ति के लिये०···(सोमाय)[1] 'प्राण' धारण मूर्त्त रूप में परिवर्त्तित होने वाली 'रयि'—शक्ति के

---

* (क) मृतक का निकटतम या जो उसका उत्तराधिकारी वारिस हो, वही 'आग देने' अर्थात् दाह करने=अग्नि प्रवेश करने का अधिकारी होता है। जैसे पिता के लिए ज्येष्ठ पुत्र, अभावे नियत उत्तराधिकारी, पत्नी के लिए पति, अविवाहित कन्या व पुत्र के लिए पिता आदि।

(ख) शास्त्रों में विना मन्त्र के चिता में कपूरादि द्वारा अग्नि प्रवेश कराने का विधान पाया जाता है। क्योंकि स्थापित 'गार्हपत्य' अग्नि के कुण्ड में से ही 'अग्नि' लेकर उससे 'शरीरदाह' करना चाहिए। आज तक भी प्रायः एक मिट्टी के बर्त्तन में घर से शव के साथ साथ श्मशान तक अग्नि ले जाते हैं। यह 'गार्हपत्य-अग्नि' में से अग्नि ले जाने का विकृत रूप है।

दूसरे 'ओं भूर्भुवः स्वः। द्यौरिव भूम्ना०' इस यजुः ३१५ से 'अन्नाद-अग्नि' अर्थात् आहवनीय गार्हपत्य अग्नि का ही आधान किया जाता है; 'क्रव्याद-अग्नि' अर्थात् शवदाह के निमित्त अग्नि का नहीं। अन्त्येष्टि संस्कार ने शवपरिपाक की क्रिया करनी अभीष्ट है, जिसके लिए 'क्रव्याद-अग्नि' का मौनरूप से ही आधान करना होता है।

(ग) परन्तु दीपक से कर्पूर में अग्नि लगाते समय 'ओं भूर्भुवः स्वः' इसका उच्चारण करना चाहिए, ऐसा हमारा मत है।

१. अग्नीषोमात्मकं जगत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं लोकाय स्वाहा ॥ ओमनुमतये स्वाहा ॥
ओं स्वर्गाय स्वाहा ॥[1]

इन पांच मन्त्रों से आहुतियां देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवें—

[द्वितीय विधि—घृत व होम द्रव्य से आहुतियां]

तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक्-पृथक् खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से, मन्त्र के आरम्भ में 'ओम्' और अन्त में 'स्वाहा' बोलकर, आहुति देते जायं। जहां स्वाहा आवे वहां आहुति छोड़ देवें।

अथ वेदमन्त्राः

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥

लिये०··· (लोकाय)[2] प्राण-रयि के मिथुन से लोक=योनि-विशेष ग्रहण करने लिये०··· (अनुमतये) योनिविशेष धारण कर अर्थात् 'प्रजा' = पुरुष बन प्रपंच से अनुकूलता के लिये ० ... (स्वर्गाय लोकाय) इस प्रकार उत्तम सुख प्रापक लोक अर्थात् नरदेह प्राप्ति के लिये०...। (स्वाहा) हमारी यह सुष्ठुक्रिया व शुभालोचन है। भाव यह है कि "मृत-पुरुष का जीव, माया रूप में लगे प्राण के साथ, रयि= गर्भाशय में जा, शरीर को धारण करे; सृष्टि के अनुकूल रहे; नरदेह को प्राप्त करे, ऐसी प्रार्थना करते हैं।"

१. हे पुरुष! (धर्मणा) प्राकृत धर्म, सृष्टि-नियम तथा स्वकृत कर्म के अनुसार (चक्षुः) तेरा नेत्र=दर्शनशक्ति (सूर्यं) अपने कारणीभूत सूर्य को (गच्छतु) प्राप्त हो, (आत्मा) आत्मा (वातं) बाह्य धनञ्जय वायु को प्राप्त हो, और तू (द्यां) अन्तरिक्षस्थ योनियों को प्राप्त हो अथवा (पृथिवीं) पृथिवी लोक की योनियों को अथवा (अपः) जलों की योनियों को प्राप्त हो अथवा जहां (ते) तेरा ईश्वर द्वारा कर्मफल (हितं) रखा गया या निश्चित

---

१. आश्व. गृ. ४।३।२५, २६॥

२. प्रश्नोपनिषद् द्रष्टव्य है। उससे यह प्रजोत्पत्ति की प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है। अग्नि=प्राण। सोम=रयि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥२॥

हुआ हो वहां पर (शरीरैः) स्वकर्मानुकूल शरीर के अंगों को ग्रहण करके (ओषधीषु) ओषधियों में प्रतिष्ठित हो अर्थात् स्थावर वृक्षादि में जन्म ले।

२. हे जीव ! [शरीर उत्पन्न होने वाला होने से मरणधर्मा है और] तेरा शरीर से विलक्षण (भागः) जो अंश है वह (अजः) आजन्मा नित्य है। तू (तं) उस अपने स्वरूप=आत्मा को (तपसा) ज्ञानमय तप से (तपस्व) तेजस्वी कर, (ते) तेरे इस भाग को (शोचिः तपतु) शोधक ज्ञानाग्नि तपाये, तेरे उस जीवरूप भाग को (अर्चिः) ईश्वरीय प्रकाश प्रकाशित करे। हे (जातवेदः) कर्मों वा प्रज्ञा के ज्ञाता परमात्मन् ! तेरे अधीन (याः) जो (शिवाः) कल्याण करने वाली (तन्वः) मनुष्यों की सूक्ष्म तनुवें (=देहें) हैं (तेभिः) उन्हीं से (एनं) इस प्रेत जीव को (वह) देहान्तर में लेजा अर्थात् मनुष्य-योनि ही दे और (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (लोके) लोक को (उ) निश्चय से इसे प्राप्त करा।

हे अविनाशी पुरुष ! जो तुझ पुरुष को (अजः)[1] गति करने=आने जाने अर्थात् जीवन यात्रा का (भागः)[2] साधन भूत शरीररूपी भाग है, (तं) उसको (जातवेदः) सर्वत्र विद्यमान अग्नि तू (तपसा तपस्व) अपने ताप से जला दे; (तं ते) तेरे उस 'भोगायतन देह' को (शोचिः) तेरी शोधक शक्ति (तपतु) दोष रहित करदे, और तेरे उसको (अर्चिः) दाहक शक्ति (तपतु) भस्मीभूत कर दे। और हे जातवेद अग्नि ! (यास्ते शिवाः तन्वः) जो तेरी कल्याणकारिणी भूत तत्त्वों की विस्तारक शक्तियां हैं। (ताभिः) उनके द्वारा (एनं) इस जीव को (उ) निश्चय से (सुकृतां) सत्कर्मियों के (लोकं) लोक को (वह) ले चल। अर्थात् इसे पुण्य लोक=मोक्षधाम प्राप्त करा अथवा सुकृतियों का धाम=जन्म दिला कि जहां यह उत्तम कर्म करने वाला बने। प्रार्थना है कि इसका अगला जन्म, इस से अच्छा हो।

---

१. अजः=अजगतिक्षेपणयोः।

२. भागः=नानाकर्मफलों का भोक्ता, जीव, इति जयदेवः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑त॒श्चर॑ति स्व॒धाभिः॑ ।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ वेतु॒ शेषः॒ सं ग॑च्छतां त॒न्वा॑ जातवेदः॒ स्वाहा॑ ॥३
अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सम्प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च ।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्ह॑रसा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते॒ स्वाहा॑ ॥४॥
यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुनः॑ ।
कि॒याम्ब्वत्र॑ रोहतु पाकदू॒र्वा व्य॑ल्कशा॒ स्वाहा॑ ॥५॥

ऋ. मं. १० । सू. १६ । मं. ३, ४, ५, ७, १३ ॥

---

३. हे जन्मान्तर को प्राप्त कराने वाले परमात्मन् ! (यः) जिस जीव का शारीरिक भाग (ते आ+हुतः) तेरी नियम व्यवस्था के अनुकूल चिता में रखा हुआ है (अव) उस जीव की रक्षा कर, और (पितृभ्यः) माता पिता के संयोग से (पुनः सृज) फिर उत्पन्न कर; ताकि (शेषः) मृत्यु से बचा हुआ (आयुः वसानः) आयु को धारण करता हुआ (उपवेतु) 'हमारे समीप प्राप्त हो और हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थ मात्र के जानने वाले परमात्मन् (तन्वा संगच्छतां) सुन्दर शरीर के साथ यह जीव संगत हो अर्थात् यह जीव दीर्घ आयु वाला सुन्दर मानव देह धारण कर सुसन्तान के रूप में पुनः इस लोक में आये।

४. हे भौतिक अग्ने ! (अग्नेः) जीव के (वर्म) अन्नमय कोष अर्थात् शरीररूपी कवच को (गोभिः) ज्वालाओं अथवा गोविकार घृतादि पदार्थों के साथ (परि व्ययस्व) सब ओर से भस्मीभूत कर और (पीवसा) स्थूल मांसादि से (च) और (मेदसा) अस्थियों के अन्तर्वर्ती रस से (सं प्र ऊर्णुष्व) अपने आप को ढक, नहीं तो अपने (तेजसा) तेज से (धृष्णुः) दबाने वाला (जर्हृषाणः) घृतादि से बार-बार प्रसन्न जैसे होने वाला (दधृक्) प्रगल्भ (विधक्ष्यन्) विशेष कर जलाने वाला यह अग्नि शरीर को (परि अङ्खयाते) बहुत बार प्राप्त होगा अर्थात् यदि यह जीव सत्कर्मों से जीवन्मुक्त न हुआ तो बार-बार जन्मरण को प्राप्त होकर तुझ अग्नि की लपटों को प्राप्त होता रहेगा।

५. हे भौतिक-कव्याद अग्ने ! (त्वं) तूने (यं) जिस प्रेतात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परेयिवासं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥६॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः स्वाहा ॥७

के शरीर को (समदहः) अच्छे प्रकार दग्ध किया है (तं उ) उसको (पुनः निर्वापय) फिर शान्त कर अर्थात् परिमित अग्नि जलाना चाहिए जो नियत समय में शरीर को जलाकर शान्त कर दे। (अत्र) इस अन्त्येष्टि स्थान में (कियाम्बु रोहतु) कुछ जल छिड़का जाये (व्यल्कशा) विविध शाखावाली पकी हुई अथवा रोगनाशक फैलने वाली श्रेष्ठ दूर्वा=दूब पैदा हो।

६. हे जीवः! (प्रवतः) धर्मात्माओं को (महीः) सुखोचित भोग प्रदेशों में (अनु परेयिवांसं) क्रम से मरणान्तर प्राप्त कराने वाले (बहुभ्यः) बहुत जीवों के लिए सुख के (पन्थां) सन्मार्ग को (अनु पस्पशानं) बतलाने वाले (यमं) जन्ममरणादि द्वारा नियम में रखने वाले (जनानां राजानं) सब प्राणियों के शासक को (वैवस्वतं) सूर्यादि को ठीक गति में रखने वाले की (हविषा) भक्तिरूप पदार्थों से (दुवस्य) सेवा किया कर।

७. (प्रथमः) सब में मुख्य (यमः) परमात्मा (नः गातुं) हम प्रजाओं के शुभाशुभ कर्मों की गतियों को (विवेद) विशेषतः जानता है। अतिशय ज्ञान के सम्बन्ध से परमात्मा का (एषा गव्यूतिः) यह मार्ग, शुभाशुभ कर्म जानने का मार्ग (अप मर्तवा न उ) किसी से भी नहीं छिपाया जा सकता। (यत्र) जिस ईश्वर निर्दिष्ट मार्ग में (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पितर लोग (परेयुः) गये हैं (एना) इसी मार्ग से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुए हम सब प्राणी (पथ्याः स्वाः) अपने अनुकूल कर्मफलों को (अनु) पीछे से प्राप्त होते हैं।

भाव यह है कि जगन्नियन्ता प्रभु हमारे सब कर्मों को पहले ही से विशेष प्रकार से जानता है; कोई भी उसके इस जानने से कुछ छिपाकर रख नहीं सकता। जिस पितृयान=दक्षिणायन से हमारे पूर्वज पितरों ने गति की है, उसी मार्ग से हम सब देहधारी भी गति करने वाले बनें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥८

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ९

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य स्वाहा ॥१०॥

---

८. (मातली) यज्ञाग्नि (कव्यैः) अन्न रस घृतादि से, (यमः) अन्तरिक्षस्थ नियामक विद्युत् शक्ति (अंगिरोभिः) प्राण क्रियाओं से और (बृहस्पतिः) ज्ञानपूर्ण महती चैतन्य शक्तिः (ऋक्वभिः) ज्ञानपूर्ण चेष्टाओं से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता है, अनुकूल किया जाता है। (यांश्च देवा वावृधुः) जिनको विद्वान् लोग 'प्रसन्न करते हैं और (ये च देवान्) जो विद्वानों को प्रसन्न करते हैं, वे परस्पर सुखी रहते हैं। (अन्ये) उनमें से एक प्रकार के देवता लोग (स्वाहा) उत्तमवाणी और शुभदान सत्कार आदि से और (अन्ये) दूसरे (स्वधया) प्रदेय अन्न जलादि से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं।

९. हे इन्द्रियों के संयम करने वाले जीव ! कर्मों के फल भोगने और नवीन उत्तम कर्म करने लिए (हि) निश्चय से (इमं प्रस्तरं) इस विस्तीर्ण संसार को (आसीद) फिर अच्छे प्रकार प्राप्त हो (अङ्गिरोभिः) प्राण विद्या जानने वाले जगत् के (पितृभिः) रक्षक लोगों के साथ (संविदानः) मेल को प्राप्त होकर विचर। (त्वा) तुझ (कविशस्ताः) विद्वानों से प्रशंसित (मन्त्राः) वेदमन्त्र (आ वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों और (राजन्) सद्गुण से प्रकाशित! तू (एना हविषा) इन हवनीय पदार्थों व भक्ति त्याग से लोगों को (मादयस्व) प्रसन्न कर।

१०. हे संयमी प्रेतात्मा जीव ! पुनः तू (इह) इस संसार में (यज्ञेभिः अङ्गिरोभिः) यज्ञोपयोगी प्राण विद्या के सहायक (वैरूपैः) विविध प्रकार के पदार्थों के साथ आ और (मादयस्व) अपने कार्यों से प्राणियों को प्रसन्न कर, प्रशंसनीय नानाविध दिव्य यौगिक संस्कारों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥११

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥१२॥

से युक्त होकर इस धर्मक्षेत्र कर्मक्षेत्र में पुनः जन्म ले और अपने श्रेष्ठ कार्यों से सब को आनन्दित कर। (यः ते) जो तेरा (पिता) पालक है, उस (विवस्वन्तं) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा का मैं (हुवे) अपने मन में स्मरण करता हूं। वह परमात्मा (ते अस्मिन् यज्ञे) इस जीवन यज्ञ में (बर्हिषि) वृद्धियुक्त आसन पर, तेरे हृदय में (नि सद्य) विराजे और (आ) सब को हर्षित करे।

११. (यत्र) जिस धाम वा लोक में (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पिता पितामहादि व ऋषि देव पितर (परेयुः) गये हैं, (पूर्व्येभिः पथिभिः) अनादिकाल से प्रवृत्त व उपदिष्ट उन्हीं मार्गों से हे जीव ! (प्र एहि-प्र एहि) तू अच्छे प्रकार निरन्तर आगे बढ़ता जा। इस प्रकार (उभा) तू और तेरे पितर (राजाना) प्रकाशमान हुए हुए (स्वधया) शुद्ध अन्नादि दान वा ज्ञान से (मदन्ता) प्रसन्न होने वाले व दिव्य आनन्द का अनुभव करने वाले हों और तू (यमं वरुणं) न्यायकारी विश्वनियन्ता (देवं पश्यासि) परमात्म देव का दिव्य दर्शन साक्षात्कार कर।

१२. हे जीवः ! तू (पितृभिः) नाना माता-पिताओं से (संगच्छस्व) संगति कर अर्थात् इस शरीर को त्याग कर मातापिता के सम्बन्ध से पुनः नये शरीर को धारण कर। (यमेन संगच्छस्व) नियन्ता परमात्मा से सदा युक्त रह और (इष्टापूर्त्तेन) इष्ट व आपूर्त्त अर्थात् स्वार्थ-परार्थ के समन्वित (परमे व्योमन् संगच्छस्व) परमपद सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर। (अवद्यं हित्वाय) अपने पापकर्मों के फल भोगकर (पुनः अस्तं एहि) फिर आत्मा के आश्रयभूत शरीर को प्राप्त कर और (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी होकर (तन्वा) सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री व कुलवर्द्धक सन्तति से (संगच्छस्व) मेल कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥१३॥

यामय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा ॥१४॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे स्वाहा ॥१५॥

---

१३. हे जीव ! (अतः) इस जन्म से (अप इत) सम्बन्ध तोड़ दूर जाओ, (वि इत) कर्मानुसार विविध योनियों में चले जाओ, (वि सर्पत) इन्हीं में विशेष गति अर्थात् नये कर्मों को करते हुए व्यवहार करो। क्योंकि (पितरः) ज्ञानी पालक जनों ने (अस्मै) इस जीवित प्रजाजन के लिए ही (एतं लोकं) इस लोक को (अक्रन्) बनाया है, निश्चित किया है। (अस्मै) इसके लिए (यमः) नियन्ता परमेश्वर वा सूर्य (अहोभिः) दिवसों द्वारा (अद्भिः) जलों द्वारा (अक्तुभिः) रात्रियों द्वारा (व्यक्तं) विविध प्रकार से शोभित (अवसानं) आश्रय को (ददाति) होता है।

१४. हे जीवो ! (यमाय) मृत्यु नियन्ता परमात्मा की प्रसन्नता के लिए (सोमं सुनुत) सोम अर्थात् वीर्य को उत्पन्न किया करो, फिर (यमस्य) ईश्वराज्ञा-पालनार्थ (हविः जुहुत) हवनीय पदार्थों को अग्नि में छोड़ा करो (अग्निदूतः) हवनीय वस्तुओं को सर्वत्र पहुंचाने वाला अग्नि जिसका दूत है और (अरंकृतः) बहुत प्रकार से विधिवत् अलङ्कृत=सुकृत यह यज्ञ (ह) निश्चय रूप से (यमं) नियन्ता को ही (गच्छति) प्राप्त होता है। अथवा अन्तरिक्ष वायु की शुद्धि व पुष्टि के लिए सोम आदि ओषधियों का रस निकाल प्रचुर मात्रा में उससे सिक्त हव्य पदार्थ की आहुतियां दो। यह यज्ञ जिसका दूत अग्नि है (अरंकृतः) श्रद्धापूर्वक विधिवत् किया हुआ निश्चय से अन्तरिक्ष संचारी वायु को प्राप्त होता है।

१५. हे जीवो ! (यमाय) वायु-शोधन वा परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त (घृतवत् जुहोत) घृत मिश्रित हवनीय पदार्थों का हवन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥१६॥
ऋ. मं. १० । सू. १४ । मं. १-५, ७, ८, ९, १३, १४ ॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥१७॥
ऋ. मं. १० । सू. २० । मं. ९ ॥

वा सामर्थ्ययुक्त कर्मों को किया करो । और (प्र तिष्ठत) ईश्वर की उपासना व यज्ञ में सदा स्थिर रहो क्योंकि (देवेषु) सब देवों में (सः) वह यज्ञ वा ईश्वर ही (नः) हमें (प्रजीवसे) उत्तमरूप से जीवन के लिए (दीर्घायु.) दीर्घ आयु को (आ यमत्) प्रदान करता है, वायु की शुद्धि के लिए घृत सिञ्चित होम शाकल्य से यज्ञ करो और उसमें टिके रहो, ध्रुव आस्था रखो । इस प्रकार श्रद्धा ज्ञान पूर्वक किया यज्ञ निश्चय से प्रकृष्ट जीवन के लिए दीर्घायुष्य प्रदान करता है ।

१६. हे जीवो ! सब जगत् के (राज्ञे यमाय) व्यवस्थापक राजा परमात्मा की प्राप्ति के लिए (मधुमत्तम् हव्यं) अत्यन्त मधुर होम के योग्य पदार्थों को (जुहोतन) होमा) करो (पूर्वजेभ्यः) सृष्टि के आदि में उत्पन्न (पूर्वेभ्यः) हम सबसे पहले वर्तमान (पृथिकृद्भ्यः) सन्मार्ग के निरूपक (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिए (इदं नमः) यह यह हमारा प्रत्यक्ष रूप से अन्न वचनादि द्वारा सादर सत्कार हो ।

अथवा प्राणरूप वायु राजा की प्रसन्नता (शुद्धि) के लिए मधुमत्तम हव्य की यज्ञ में आहुति दो तथा सन्मार्गप्रणेता, सर्गादि में विद्यमान पूर्वज ऋषियों का स्मरण कर नमस्कार करो ।

१७. हे जीवो ! (यामः) प्राणी समुदाय जिसमें बैठ गति कर रहा है ऐसा देहरूप या संसार रूप रथ (कृष्णः) काला=तमोगुण-मय और (श्वेतः) श्वेत=सत्त्वगुणमय (अरुषः) प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित (ब्रध्नः) बहुत बड़ा (ऋजुः) धीरे-धीरे अथवा ऋजु=धर्म मार्ग पर चलने वाला और (शोणः) रक्त वर्ण=रजोगुणमय (यशस्वान्) ऐश्वर्य कीर्ति वाला है । इस (हिरण्यरूपं) सुवर्णादि से युक्त संसार रूप रथ या रमणीय हितकारी शरीर को (जनिता) सर्वोत्पादक परमात्मा ने ही (जजान) उत्पन्न किया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने सत्रह आज्य व शाकल्य की आहुति देकर निम्न मन्त्रों से उसी प्रकार घृत व शाकल्य की आहुति देवें—

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥

अग्नये स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥

वायवे स्वाहा ॥५॥ दिवे स्वाहा ॥६॥

सूर्याय स्वाहा ॥७॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥८॥

चन्द्राय स्वाहा ॥९॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

अद्भ्यः स्वाहा ॥११॥ वरुणाय स्वाहा ॥१२॥

नाभ्यै स्वाहा ॥१३॥ पूताय स्वाहा ॥१४॥

---

१. (प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः) जीव सहित प्राणों की सङ्गति के लिये०,

२. (पृथिव्यै) पृथ्वी के लिए० और,

३. (अग्नये) उसके मुख्य देवता पार्थिव अग्नि के लिये०,

४. (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये० और उसके,

५. (वायवे) मुख्य देवता वायु के लिये०,

६. (दिवे) आकाश के लिये० और उसके,

७. (सूर्याय) मुख्य देवता सूर्य के लिये०,

८. (दिग्भ्यः) दिशाओं प्रदिशाओं के लिये०,

९. (चन्द्राय) चन्द्रमा के लिये०,

१०. (नक्षत्रेभ्यः) स्वाति चित्रा आदि नक्षत्रों के लिये०,

११. (अद्भ्य.) जलों के लिये० और उसके,

१२. (वरुणाय) मुख्य देवता वरुण के लिये०,

१३. (नाभ्यै) गर्भादि के बन्धन स्थान नाभि के लिये०,

१४. (पूताय) पवित्र करने वाले पायूपस्थ के लिये०,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाचे स्वाहा ॥१५॥ प्राणाय स्वाहा ॥१६॥
प्राणाय स्वाहा ॥१७॥ चक्षुषे स्वाहा ॥१८॥
चक्षुषे स्वाहा ॥१९॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥२०॥
श्रोत्राय स्वाहा ॥२१॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥२२॥
लोमभ्यः स्वाहा ॥२२॥ त्वचे स्वाहा ॥२४॥
त्वचे स्वाहा ॥२५॥ लोहिताय स्वाहा ॥२६॥
लोहिताय स्वाहा ॥२७॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥२८॥
मेदोभ्यः स्वाहा ॥२९॥ माँसेभ्यः स्वाहा ॥३०॥

---

१५. (वाचे) वागिन्द्रिय के लिये०,

१६. (प्राणाय) विश्वप्राण वायु के लिये० तथा,

१७. (प्राणाय) पिण्ड-प्राण के लिये०,

१८. (चक्षुषे) देवहितकारी संसार की चक्षु सूर्य के लिये० तथा

१९. (चक्षुषे) चक्षु इन्द्रिय के लिये०,

२०. (श्रोत्राय) शब्दगुण के आश्रय आकाश के लिये०,

२१. (श्रोत्राय) श्रोत्रेन्द्रिय के लिये०,

२२. (लोमभ्यः) नख रोम आदि के उत्पादक मूल तत्त्व के लिये० तथा,

२३. (लोमभ्यः) देहस्थ नख रोम आदि के लिये०,

२४. (त्वचे) त्वचा के निर्मापक मूलतत्त्व के लिये० तथा,

२५. (त्वचे) शरीरस्थ त्वचा के लिये०,

२६. (लोहिताय) रुधिर के लिये० तथा,

२७. (लोहिताय) हृदयस्थ रक्त पिण्ड के लिये०,

२८. (मेदोभ्यः) चिकनी भीतरी धातुओं के लिये०,

२९. (मेदोभ्यः) सर्व शरीर को गीला करने वाले धातुओं के लिये०,

३०. (माँसेभ्यः) मांसों के निर्माता स्थूल तत्त्वों के लिये० तथा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मा॑ꣳसेभ्यः स्वाहा ॥३१॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥३२॥
स्नावभ्यः स्वाहा ॥३३॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥३४॥
अस्थभ्यः स्वाहा ॥३५॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥३६॥
मज्जभ्यः स्वाहा ॥३७॥ रेतसे स्वाहा ॥३८॥
पायवे स्वाहा ॥३९॥ आयासाय स्वाहा ॥४०॥
प्रायासाय स्वाहा ॥४१॥ संयासाय स्वाहा ॥४२॥
वियासाय स्वाहा ॥४३॥ उद्यासाय स्वाहा ॥४४॥

---

३१. (मा॑ꣳसेभ्यः) भीतरी मांसों के लिये०,

३२. (स्नावभ्यः) स्थूल नस नाड़ियों के लिये० तथा,

३३. (स्नावभ्यः) सूक्ष्म नस-नाड़ियों के लिये०,

३४. (अस्थभ्यः) कठिन हड्डियों के लिये० तथा,

३५. (अस्थभ्यः) पतली कोमल हड्डियों के लिये०,

३६. (मज्जभ्यः) बहिः मज्जाओं के लिये०,

३७. (मज्जभ्यः) अन्तः मज्जाओं के लिये०,

३८. (रेतसे) रजो वीर्य व इनके धारक योनि और लिङ्ग के लिये० तथा,

३९. (पायवे) गुदा के सब अवयवों के०,

४०. (आयासाय) [जन्मान्तर में] उद्यम अर्थात् अच्छी स्थिति लाभ के यत्न के लिये०,

४१. (प्रायासाय) विशेष उद्यम के लिये०,

४२. (संयासाय) सम्यक् यत्न के लिये०,

४३. (वियासाय) वस्तुओं की प्राप्ति के निमित्त विविध यत्न के लिये०,

४४. (उद्यासाय) उच्च स्थिति की प्राप्ति के निमित्त गति के लिये०,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुचे स्वाहा ॥४५॥ शोचते स्वाहा ॥४६॥
शोचमानाय स्वाहा ॥४७॥ शोकाय स्वाहा ॥४८॥
तपसे स्वाहा ॥४९॥ तप्यते स्वाहा ॥५०॥
तप्यमानाय स्वाहा ५१॥ तप्ताय स्वाहा ॥५२॥
घर्माय स्वाहा ॥५३॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥५४॥
प्रायश्चित्यै स्वाहा॥ ५५॥ भेषजाय स्वाहा ॥५६॥
यमाय स्वाहा ॥५७॥ अन्तकाय स्वाहा ॥५८॥

---

४५. (शुचे) स्वयं पवित्र के लिये०,

४६. (शोचते) शुद्धि या शोक करने वाले के लिये०,

४७. (शोचमानाय) विचार-प्रकाशक के अथवा शोकग्रस्त के लिये०,

४८. (शोकाय) जिसमें शोक करते हैं उसके लिये०,

४९. (तपसे) तपोमय जीवन व धर्मानुष्ठानार्थ क्लेश सहन के लिये०,

५०. (तप्यते) तपने अर्थात् सन्ताप प्राप्त होने वाले के लिये०,

५१. (तप्यमानाय) विशेष तप करते हुए के लिये०,

५२. (तप्ताय). तपे हुए के अर्थात् तप से शरीर को कृश करने वाले के लिये०,

५३. (घर्माय) दिन के होने के लिये०,

५४. (निष्कृत्यै) दूसरे से होने वाले कष्ट निवारण के लिये०,

५५. (प्रायश्चित्यै) स्वकृत पाप निवृत्ति के लिये०,

५६. (भेषजाय) सुख के लिये०,

५७. (यमाय) न्याय कर्त्ता परमात्मा व वायु के लिये०,

५८. (अन्तकाय) उत्पद्यमान पदार्थों के नाश कर्त्ता काल के लिये०,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्यवे स्वाहा ॥५९॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥६०॥
ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥६१॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥६२॥
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥६३॥

यजुः अ. ३९ । १-३; १०-१४ ॥

इन तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति चारों जने पृथक्-पृथक् देके निम्न मन्त्रों से आहुति देवें—

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥१॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥२॥

---

५९. (मृत्यवे) भौतिक शरीरों से जीवों के प्राण त्याग कराने वाले मृत्यु-समय के लिये०,

६० (ब्रह्मणे) परमात्मा वा वृद्धि के हेतुभूत तत्त्व के लिये०,

६१. (ब्रह्महत्यायै) ब्रह्म वेद व विद्वान् की हत्या निवारण के लिये०,

६२. (विश्वेभ्यो देवेभ्यः) सब देवताओं=दिव्य शक्तियों के लिये०,

६३. (द्यावापृथिवीभ्यां) सूर्यलोक और भूमिलोक अथवा पितृ-शक्ति व मातृशक्ति के लिये० ।

१ (सूर्यं चक्षुषा) हे जीव ! तू अपनी दर्शनशक्ति से सूर्यलोक को; अपने सप्राण आत्मा से अन्तरिक्षस्थ वायुलोक को तथा अपने कर्म की गतियों से द्युलोक और पृथिवीलोक को प्रयाण कर । यदि 'कर्मानुसार तेरा धाम' वनस्पति जगत् में नियत है, तो जलों को प्राप्त हो और पुनः मानव देहों को धारण कर जगत् में प्रतिष्ठित हो ।

२. (एकेभ्यः) किन्हीं किन्हीं तत्वों के लिये, उनकी रुचि के अनुसार (सोमः, पवते) सोमलता का रस दिया जाता है; (एके)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये चित्पूर्वे ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥३॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥४॥

ये युद्ध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥५॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥६॥

कोई (घृतम्) घी का (उपासते) उपभोग ग्रहण करते हैं और (येभ्यः) जिनके लिये (मधु) शहद आदि मिष्ठ पदार्थ (प्र, धावति) प्राप्त होता = रुचता है, (तान्, चित्, एव, अपि) उन्हीं को वैसा पदार्थ आहुति द्वारा ही (गच्छतात्) प्राप्त हो।

३. (ये, चित्) जो कोई (पूर्वे) पूर्वज (ऋतसाताः) सत्य का व्यवहार करने वाले हैं, (ऋतजाताः) यज्ञ करने वाले हैं (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले, प्रचार करने वाले हैं, ऐसे (तपस्वतः, ऋषीन्) तपस्वी ऋषियों को वा (तपोजान् अपि) उन तपस्वियों से उत्पादित लोकों को (यम) हे ईश्वर ! तेरी कृपा से इस आहुति का सुफल (गच्छतात्) प्राप्त हो।

४. (तपसा) अपने धर्मार्थ क्लेश सहन करने से (ये) जो (अनाधृष्याः) किसी से नहीं दबाये जा सकते, (ये) जो (तपसा) शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनरूप तप से (स्वर्ययुः) उत्तम लोकों को प्राप्त हुए (ये) जो (महः) बड़ा (तपः) तप (चक्रिरे) कर चुके हैं।

५. (ये, शूरासः) जो शूरवीर (प्रधनेषु) सङ्ग्रामों में (युध्यन्ते) लड़ाई करते हैं और (ये) जो (तनूत्यजः) शरीर छोड़ देते हैं (वा) अथवा (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) यज्ञादिकों में हजारों वस्तुओं का दान करने वाले वैश्य हैं।

६. हे (पृथिवि) पृथिवि ! (अस्मै) इस मृतकादि के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ७॥

यमः परोऽवरो विवस्वांस्ततः परं नाति पश्यामि किञ्चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वा ततान स्वाहा ॥

(अनृक्षराः) कण्टकादि रहित (निवेशनी) विस्तृत स्थान देने वाली (स्योना) सुख देने वाली ईश्वर करे कि (भव) हो और (अस्मै) इस जीव के लिये (सप्रथाः) विस्तीर्ण (शर्म) सुख को (यच्छ) दे अर्थात् मृतकादि के लिये विस्तृत और सब तरह अनुकूल पृथिवी होनी चाहिये ।

७. हे (जीवाः) जीवनसाधक प्राणो ! (इमम्) इस जीव के देह को (गृहेभ्यः) घरों में ही रहने के लिए अब तक कर्मानुसार (अप अरुधन्) तुम लोगों ने घेर रक्खा था; परन्तु अब यह (परिग्रामात् इतः) स्वकर्मानुसार समस्त ऐन्द्रिय जगत् को त्याग कर विदा हो चुका है अर्थात् यह कर्मानुसार मरण पा चुका है, यह लौट कर नहीं आ सकता (तत्) इस कारण से (निर्वहत) नये देह के लिये जीव को ले जाओ। जगन्नियन्ता परमात्मा का (मृत्युः, प्रचेताः, दूतः, आसीत्) मृत्यु ज्ञानी दूत है, उसने (पितृभ्यः) चन्द्रकिरणों में वा वायुमण्डल में जाने के लिए (असून्) इन शरीरस्थ प्राणों को (गमयांचकार) पृथक् कर दिया है ।

८. हे जीवो ! तुम ऐसा समझो कि—(यमः) सब जगत् को नियम में रखने वाला (परोवरः) बड़ों से भी बड़ा (विवस्वान्) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा है। (ततः, परं) उससे बड़ा (किंचन) किसी वस्तु को भी (न, अति, पश्यामि) मैं ठीक प्रकार से नहीं देखता हूं। अथवा उसका अतिक्रमण करने वाला, मैं किसी को नहीं देखता। (यमे) परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त ही (मे, अध्वरः) मेरा यज्ञादि परोपकारी कर्म (अधि, नि, विष्टः) स्थापित हुआ है और (भुवः) पृथिव्यादि मण्डल का जंजाल भी (विवस्वान्) परमात्मा ने ही (अनु, आ, ततान) अनुकूल रूप से अच्छे प्रकार विस्तृत किया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥९॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् स्वाहा ॥१०॥

अथर्व कां. १८ सू. २ । ७, १४-१७, १९, २७, ३२, ३३, ५६ ॥

इन दश मन्त्रों से चारों जने पृथक्-पृथक् दश आहुति देकर—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥ १ ॥

---

९. (अमृताम्) प्रलयकाल पर्यन्त नित्यरूप से रहने वाली सरण्यू—सूर्य की गति को (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के कार्य सम्पादनार्थ (सवर्णाम्, कृत्वा) एकसा स्वरूप वाली करके (अप, अगूहन्) हृदय में छिपा रक्खा है और उनको (विवस्वते अदधुः) सूर्य के आधीन किया है। (उत) और (यत् तत् आसीत्, सरण्यूः) जो वह प्रसिद्ध सूर्य की गति है, वही (अश्विनौ) प्राण अपान वायु को (अभरत्) पोषण करती है और (द्वा मिथुना) दो, दिन रात्रि आदि रूप जोड़ों को (अजहात्, उ) बना कर छोड़ती ही रहती हैं, अर्थात् दिन रात्रि की तरह, स्त्री और पुरुषों का प्रतिदिन वियोग और संयोग होता ही रहता है इससे शोक करना व्यर्थ है।

१०. हे जीव ! (ये, असुनीताय) तेरे प्राणों को त्याग कर चुकने वाले मृत शरीर को (वोढवे) वहन करने के लिए—सद्गति प्राप्त करने के लिए (इमौ, वह्नी) स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की अग्नियों को मैं (युनज्मि) नियुक्त करता हूं। (ताभ्याम्) इन दोनों वह्नियों के द्वारा तू अपने शरीर को (यमस्य, सादनम्) वायु-मण्डल के स्थान को (च) और (समितीः) श्रेष्ठ गतियों को (अव, गच्छतात्) प्राप्त हो।

१. (रयिमते) मूर्त्त रूप ग्रहण करने वाले 'रयि' तत्त्व से युक्त (अग्नये) प्राण अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे ।
यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥ २ ॥[1]
य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥
य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥
ख्यात्रे स्वाहा ॥ ६ ॥ अपाख्यात्रे स्वाहा ॥७ ॥
अभिलालपते स्वाहा ॥ ८ ॥

---

२. हे (पुरुषस्य, सयावरि) पुरुष के—सूक्ष्म शरीर विशिष्ट पुरुष के साथ जाने वाली कर्म संस्कार शक्ति ! (अघानि) पाप वासनाओं का (अपेत्) दूर करके ही हम अपना (मृज्महे) मार्जन= आत्म-शोधन करते हैं। ताकि (जरसः, पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (अत्र) इस संसार में या जीवन-कर्म में (यथा) जिस प्रकार से (नः) हमारे बीच में (अपरः) कोई पाप (न, आयति) न आवे; वैसे ही हम निष्पाप होने की प्रतिज्ञा करते हैं।

३. (ये) जो (एतस्य) इस मृत-पुरुष के लिए-शरीर के (पथः) मार्ग के (गोप्तारः) रक्षा करने वाले चन्द्र-किरण वायु आदि पदार्थ हैं, (तेभ्यः) उनके लिए।

४. जो इस मृतात्मा के लिङ्ग-शरीर के (रक्षितारः) रक्षा करने वाले ओषधि आदि पदार्थ हैं।

५. अथवा जो इस कर्मफल अथवा जीवन-मरण रूपी मार्ग के (अभि, रक्षितारः) सब प्रकार से रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुण, [गोपन, रक्षण, अभिरक्षण में अर्थ का सूक्ष्म भेद हैं।]

६. इसकी ख्याति के प्रकट या विफल करने वाले के लिये०।

७ (अपाख्यात्रे) उसकी अपकीर्त्ति के विनाश के लिए०।

८. (अभि, लालपते) स्वर्गीय विद्वान् सज्जनों के सम्बन्ध में, जीवों के सुकृत को अच्छे प्रकार कहने वाले के लिए०।

---

१. तै० आ० ६।१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपलालपते स्वाहा ॥ ९ ॥
अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥१०॥
यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥११॥
अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥[1]
आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता ।
आसीदताᳬसुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ।१३।
योऽस्य कौष्ठ्यजगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी ।
यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

---

९. (अप, लालपते) ईर्ष्यावश जीवों के सुकृत को न कहने वाले पुरुषों के सुधार के लिए० ।

१०. (कर्मकृते, अग्नये) इस अग्निहोत्रादि कार्य करने वाले क्रव्याद अग्नि के लिए० ।

११. (अत्र) यहां (यम्) जिस व्यक्ति या वस्तु को (न अधीमः) नहीं स्मरण करते हैं (तस्मै) उस वस्तु के लिए० ।

१२. (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अग्नि के लिए (सुवर्गाय, लोकाय) और उत्तम श्रेणी के पुरुषों के सुन्दर स्थान की प्राप्त्यर्थ० ।

१३. (यमः, ह, देवः) जगत् को नियम में रखने वाला प्रसिद्ध देव (सुमनाभिः ऊतिभिः) प्रशंसनीय रक्षाओं के साथ वा स्तुतियों से हमें (आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । (वा) और (इह) यहां--संसार में (प्र, यताभिः) वेदों में नियत मर्यादाओं से (अक्ता) सम्बद्ध हमारी जीवन यात्रा हो । (मम) मुझ यजमान के (सु, प्र, यते, ह बर्हिषि) अच्छे प्रकार नियमित और प्रसिद्ध विस्तीर्ण यज्ञों में (ऊर्जाय) अन्नादि की सिद्धि के लिये (जात्यै) उत्तम जाति जन्म मिलने के लिये (शत्रुहत्यै) कामादि शत्रुओं का नाश करने के लिए, (किए हुए उन यज्ञों में) स्त्री और पुरुष (आ, सीदताम्) ईश्वर करे कि श्रद्धा पूर्वक बैठा करें

१४. (यः) जो (एकः, इत्) एक अकेला ही (अस्य, पार्थिव-

---

१. तै० आ० ६।२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजाऽनपरोध्यः ।
येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५॥
हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान् हिरण्याक्षानयःशफान् ।
अश्वाननश्शतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥
यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत्
यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणाद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥

स्य, कौष्ठ्य-जगतः) इस समस्तपार्थिव चित्रविचित्र या अतुलित धनधान्य से युक्त चराचर जगत् का (वशी) वश में करने वाला है और (यः) जो (अनपरोध्यः, राजा) अद्वितीय अजय प्रकाशमान् राजा है, उसी (यमम्) नियामक परमात्मा के प्रति हे जीवगण ! (भङ्ग्यश्रवः) संङ्गीत-मय और श्रवणीय अथवा कर्णप्रिय व आत्मा को तृप्त करने वाले गीत विशेष का (गाय) गान किया करो ।

१५. जो सुन्दर प्रशंसा वाला अद्वितीय जगत् का राजा है, उस यम के गीत गाओ । (येन) जिस ईश्वर ने (आपः) जन्मों वा जगत् के सूक्ष्म कारण (नद्यः) नदियां (धन्वानि) जल-शून्य देश धारण कर रक्खे हैं और (येन) जिसने (दृढ़ा, पृथिवी) इस स्थूल पृथिवी को धारण किया है ।

१६. (यमः, राजा) जो जगत् का नियामक सर्वोपरि विराजमान परमात्मा है वही (अनःशतः) प्राणाधार असंख्य जलों का देने वाला हमें (दानम्) दान शक्ति को देवे; वही राजा (हिरण्यकक्ष्यान्) चमकीले प्रदेशों=कक्ष्यों वाले (सु, धुरान्) अच्छे धुरी वाले (हिरण्याक्षान्) सुन्दर-विशुद्ध 'अक्षों' वाले (अयःशफान्) लोहमय पदार्थ जिनमें गति के साधन शफ--खुर जैसे हैं, ऐसे (अश्वान्) वेग से चलने वाले पृथिव्यादि मण्डलों अथवा ऐसे लोक लोकान्तरों को (अभि, तिष्ठित) सब तरफ से धारण करके स्थित है ।

१७. (यमः) नियामक ईश्वर ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण कर रक्खा है और (यमः) यम ने ही (इदम् विश्वम् जगत्) यह सब जगत् धारण कर रक्खा है । (यमाय) यम के नियम के ही अनुकूल (सर्वम् इत्) सब सृष्टि में नियम (तस्थे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः ।
यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैक ऋषिर्विजानते स्वाहा ॥ १८ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
गायत्री त्रिष्टुप् छन्दाᳬसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥१९॥

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् ।
वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥

स्थित है; (यत्) और जो कुछ (प्राणत्, वायुरक्षितम्) चेष्टा करने वाला वायु से रक्षित है उसे भी धारण किया हुआ है।

१८. (यथा) जैसे (पञ्च) पञ्चमहाभूत पृथिव्यादि व पञ्च प्राण, पञ्चेन्द्रियां और (यथा) जैसे (षट्) छः ऋतुएं वसन्तादि व षड्रसों और (यथा) जैसे (पञ्चदश) पन्द्रह तिथियां तथा (ऋषयः) वसिष्ठादि सप्तर्षि मण्डल हैं, उस सब प्रकार को (सः) वह पुरुष (ब्रूयात्) कहने को समर्थ होगा (यः) जो कि (यमम्) ईश्वर व ईश्वरीय नियम को (विद्यात्) जानेगा, (यथा) जैसे कि (एकः, ऋषिः) एक ही सर्वज्ञ परमात्मा (वि, जानते) सब सृष्टि को अच्छी तरह जानता है । भाव यह है कि उस एक ऋषि ब्रह्म के अनन्तज्ञान व अनन्तसामर्थ्य का वह पुरुष ही बखान कर सकता है, जिसकी उसके सनातन नियमों के सम्भार का ज्ञान होता है।

१९. जीव (त्रिकद्रुकेभिः) त्रिकद्रुक नाम के यज्ञ विशेषों से अथवा आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रितापों को करने वाली ज्ञान-कर्म-उपासना की त्रयी से (षट् ऊर्वीः) छः बड़ी वस्तुओं को—अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधी, बल और सत्य वाणी, इन छः वस्तुओं को (पतति) अपने 'गुण कर्म स्वभावानुसार' प्राप्त होता है। (बृहत्) सबसे बड़ा—(एकम्, इत्) एक ब्रह्म ही है। (गायत्री त्रिष्टुप छन्दांसि) गायत्री त्रिष्टुप् आदि छन्द और (सर्वा, ता) सब जगत् की वस्तुयें (यमे, आहिता) उसी नियामक परमात्मा में स्थित हैं ।

२०. (पञ्चभिः मानवैः) मनुष्य सम्बन्धी पञ्च महाभूतों के संयोग वियोग से (अहरहः) प्रति दिन (गाम्, अश्वम्, पुरुषम्,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः ।
ये चेह सत्येनेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ॥
ते राजन्निह विविच्यन्तेऽथा यन्ति त्वामुप ।
देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणांश्चापचित्यति स्वाहा ॥२२॥
यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिवते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥[1]

जगत्) गो, घोड़े मनुष्य आदि रूप जगत् को (नयमानः) अवस्थान्तर को प्राप्त कराता हुआ (वैवस्वतः यमः) अन्धकार का नाशक, सृष्टि का नियामक ईश्वर (न, तृप्यति) कभी तृप्त नहीं होता, थकता नहीं।

२१. (वैवस्वते, यमे, राजनि) सूर्यादि लोकों के नियामक परमात्मा के राजा होते हुए ही (ये) जो (इह) इस संसार में (सत्येन, इच्छन्ति) सचाई के साथ अपने व्यवहारों की इच्छा करते हैं (च) और (ये) जो (अनृतवादिनः) झूठ बोलने वाले हैं अर्थात् जो सच और झूठ का जीवन बिताते हैं, (ते, जनाः) वे उभय प्रकार के पुरुष सुख और दुःख भोगने के लिए (वि, विच्यन्ते) यम ईश्वर के न्याय में पृथक् पृथक् किये जाते हैं अर्थात् जो जैसा कार्य करता है, वह वैसा ही फल ईश्वर की व्यवस्था से पाता है।

२२. हे (राजन्) काल अधिष्ठाता यम परमात्मन्। संसार में (ते) वे दोनों प्रकार के पुरुष धार्मिक और अधार्मिक (वि, विच्यन्ते) मरणानन्तर पृथक्-पृथक् किये जाते हैं। (ये, देवान्, नमस्यन्ति) जो जन धार्मिक विद्वानों को नमस्कारादि से सत्कृत करते हैं (च) और जो (ब्राह्मणान, अप, चित्यति) ब्रह्मज्ञानी देवताओं की श्रद्धा-पूर्वक सेवा करते हैं वे (त्वाम्, उप, यन्ति) तेरे सामीप्य को प्राप्त होते हैं। (अथा=अथा) और जो विरुद्धाचारी हैं, वे संसार चक्र में गिरते हैं। अदेव, अब्राह्मणों का सङ्ग करने वाले, निरन्तर संसार में भटकते रहते हैं।

२३. (यस्मिन्, सुपलाशे, वृक्षे) जिस सुन्दर ढाक-पत्र जैसे

---

१. तै० आ० ६।५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहꣳ रिषम् । एताꣳस्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४[1] ॥

यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः । यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूꣳषि कल्पयैषाꣳ स्वाहा ॥ २५ ॥

संसार-रूप वृक्ष में अर्थात् मायामय सुहावने संसार में [ऊपर से सुन्दर और भीतर से निःसार सुगन्धरहित नाशमान में] (देवैः) दिव्य भौतिक शक्तियों के साथ (यमः) परमात्मा ही (सम्, पिबते) सम्यग् तया प्रवृत्त है। (अत्र) इसी संसार में (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक (नः) हमारा (पिता) पितृ-तुल्य रक्षक (पुराणा) पुराणी अनादिकाल से प्रवृत्त सूर्यादि निर्माण की व जीवों के जन्म मरण ग्रहण करने की ही (अनु, वेनति) अनुकूलता से चलाये रहता है अर्थात् अनादिकाल से जीवों के सुख के लिए सृष्टि बनाता है। उसी के लिए (स्वाहा) धन्यवादपूर्वक सुहुत हो।

२४. ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेशः—हे जीवगण ! तुम्हारे कल्याण के लिए ही (पृथिवीम्) इस पृथिवी को (उत्, तभ्नोमि) अच्छी तरह प्रतिबद्ध किये हुए हूं। (त्वत्, परि) और तेरे ऊपर दृश्यमान (इमम् लोकम्) इस द्युलोक को भी (निदधत्) स्थापित करता हूं। (मा, उ, अहम्, रिषम्) मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता मेरी व्यवस्था में किसी का अकल्याण नहीं होता। (एताम्, स्थूणाम्) जगत् व्यवहाररूपी स्तम्भ को (ते, पितरः) तेरे समुदाय में जो विज्ञान प्रचारादि द्वारा संरक्षक हैं, वे अनुभवी वृद्ध पितर (धारयन्तु) धारण करें उठावें, चलावें। (अत्र) इस संसार में (ते) तेरे लिए (यमः) प्रजा को नियम में रखने वाला संयमी राजपुरुष (सादनात्) स्थिति करने के हेतु से स्थान को (प्रा, मिनोतु) परिमित करे--बनावे।

२५. (यथा) जैसे (अहानि) दिन के उपरान्त रात्रि और रात्रि के उपरान्त दिन (अनुपूर्वम्) अनुक्रम सिलसिलेवार से

---

१. तै० आ० ६।७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव ।
अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥[1]

इन मन्त्रों से घृत व शाकल्य की छब्बीस आहुतियों करके, संस्कार समाप्त करें।

(भवन्ति) होते रहते हैं और (यथा) जैसे (ऋतवः) बसन्तादि ऋतुयें (ऋतुभिः) उत्तरोतर ऋतुओं के साथ (क्लृप्ताः) सम्बद्ध होकर (यन्ति) नियम से आते जाते रहते हैं, वैसे ही हमारे में पिता से पुत्र, पुत्र से पैत्रादि उत्पन्न होते रहे। (धातः) हे सर्व-विधात्तः प्रभो ! (यथा) जिस प्रकार से कि (पूर्वे) पूर्व पुरुष पिता को (अपरः) दूसरा पुत्रादि (न, जहाति) नहीं छोड़ता है (एवं) ऐसे (एषाम्) इन सब प्राणियों के (आयूंषि) जीवनों को (कल्पय) समर्थ करो, बढ़ाओ।

२६. (अग्ने) हे अग्ने ! परमात्मन् ! (ते) तेरी इस पुण्य सृष्टि में (मर्त्यः) कोई भी मनुष्य (तनुवै) अपने शरीर के [पोषण व सुख के] लिये (क्रूरम्) प्राणघातक व्यापार हिंसायुक्त व्यवहार को (नहि चकार) न करे। (कपिः) बन्दर की तरह चिष्टा करने वाला यह रजोगुणी जीव (पुनः) विशेष कर (तेजनम्) अपने उत्साह को (बभस्ति) ऐसे दीप्त, प्रगट करता रहे, (गौः) गौ (इव) जैसे (जरायुः) जेर की उत्साह से रक्षा करती है, वैसे ही उत्साह से अपनी भी रक्षा करता रहे। (अग्ने) हे दोषनाशक पर-मात्मन् ! (नः) हमारे (अघम्) पाप दुर्व्यसन और दुःखों को कृपा कर (अप; शोशुचत्) हमसे पृथक् करके जला दीजिए। (रयिम्) हमारे धनों की (शुशुध्या) विशेष कर शुद्ध कीजिए। अर्थात् हम अधर्म से धन इकट्ठा न करें। (मृत्यवे) स्वकर्मानुसार होने वाले इस मृत्यु-प्राण-वियोग के लिये यह अन्तिम (स्वाहा) सुहुत है, सत्य वचन है।

---

१. तै० आ० ६।१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये सब (ओम् अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से लेके, (मृत्यवे स्वाहा) मन्त्र तक एक सौ इक्कीस आहुति हुई; अर्थात् चार जनों की मिल के चार सौ चौरासी, और जो दो जने आहुति देवें, तो दो सौ बयालिस, आहुतियां हुई (सं. वि. ३७३)।

यदि घृत विशेष हो, तो पुनः इन्हीं एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायं, यावत् शरीर भस्म न हो जाय।

[तृतीय विधि—सद्गति के लिये प्रार्थना]

आहुतियां देना समाप्त होने पर, सब सम्बन्धी और इष्ट-मित्र, वहीं श्मशान में कहीं एकत्र होकर सब जीवों के नियामक 'यम' नाम वाले परमेश्वर से मृत पुरुष के जीवात्मा के लिये सद्गति की प्रार्थना करें।

[चतुर्थ विधि—स्नान, मृत्युस्थान पर यज्ञ]

जब शरीर भस्म हो जावे, पुनः सब जने वस्त्र प्रक्षालन व स्नान करके लौट जायं। पश्चात् जिस घर में मृत्यु हुआ हो, उसके घर की मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि करके उस दिन और दूसरे दिन यज्ञ करें। पृष्ठ ३२-९४ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ करके, इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहां अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहां 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके, सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत व शाकल्य की आहुति घर में देवें कि जिससे मृतक का वायु घर से निकल जाय; शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्न रहे। यदि उस दिन रात्रि हो जाय, तो थोड़ी-सी आहुतियां देकर दूसरे दिन प्रातः काल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुति देवें—

[पंचम विधि—अस्थिचयन, भस्म-प्रवाह]*

तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो, तब मृतक का पुत्र तथा कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठा के एक शुद्ध वस्त्र में

*कई स्थानों पर अस्थि संचय कर, एक घड़े में रखकर कहीं भूमि में गाड़ देते हैं। कहीं कहीं पर पास की नदी में बहा देते हैं। परन्तु कई लोग इस विचार से कि 'जितने वर्ष तक मृतक की अस्थियां गंगा या ऐसी ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें एकत्रित कर उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख देवे [अन्यथा नदी में प्रवाहित कर दें[1] या किसी खेत में डाल दें]। बस इसके आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि पूर्व (भस्मान्तꣳ शरीरम्)[2] यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन के पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है। हां! यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते-जी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेदविद्या वेदोक्त धर्म का प्रचार अनाथपालन वेदोक्त धर्मोपदेश प्रवृत्ति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है।

जो मनुष्य=अन्त्येष्टि-कर्म-विधि करते हैं, वे सब [प्राणियों] के मङ्गल देने वाले होते हैं। सब काल में इस प्रकार शरीर को [विधिवत्] जला के सब सुख की उन्नति करनी चाहिये। (द्र. यजुः ऋषि भाष्य ३९।१३)। जो लोग सुगन्धि युक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को विधिपूर्वक जलाते हैं, वे पुण्यसेवी होते हैं (द्र. यजुः ऋ. भा.), वे पशु प्रजा धनधान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं। (द्र. यजुः ऋ. भा. ३१।४)॥

इति अन्त्येष्टि संस्कारविधिः समाप्तः॥

किसी अन्य पवित्र नदी में पड़ी रहेंगी, उतने वर्षों तक वह स्वर्ग में रहेगा··· बड़े कष्ट उठाकर बहुत व्यय कर गंगा आदि नदी में डालने जाते हैं। यह सब वेद विरुद्ध तर्क प्रतिकूल होने से त्याज्य है। गंगा आदि नदी में अस्थि डालना निरर्थक अनावश्यक और अपव्यय कराने वाला होने से अकर्त्तव्य है।

अस्थि संचय का नाम 'फूल चुनना' भी है।

'अस्थि संचय' और 'जल में डालना' आश्वा. गृ. सू. अ. ४, क. ५, सू. ४।५, के अनुसार है। यजुः ५।५७, में भी अस्थि संचय करना लिखा है। बोधा. गृ. सू. पितृमेध प्र. २, ख. १० में लिखा है कि 'अस्थि संचय' के समय अस्थि को उठाकर दूध में धोकर घर में डाले। पश्चात् उन्हें कुम्भ में डाल किसी नदी व समुद्र के जल में बहा देवे या गढ़े में गाड़ देवे।

१. उस समय निम्न यजुः १२।३५,३८ मन्त्र पढ़ें—

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत यस्मै तत्स्योने कृणुध्वं सुरभाऽउ लोके।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वनत्॥
प्रसह्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥

२. यजु. ४०।१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट

[अन्तिमशोकदिवस विधि व उत्तराधिकारग्रहण (पगड़ी की) विधि]

यद्यपि ऋषि दयानन्द ने 'दाहकर्म और अस्थिचयन से पृथक् मृतक के लिए दूसरा कोई भी कर्म-कर्त्तव्य नहीं' ऐसा लिखा है, तथापि प्रायः सभी गृहों में कुछ न कुछ कर्त्तव्य किया जाता है। चौथे, सातवें, ग्यारहवें या तेरहवें दिन अन्तिम शोक दिवस [=उठावा] या पगड़ी की रसम अवश्य मनायी जाती है। इसलिये उसकी विधि का निर्देश करते हैं।

ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी द्वारा उस परिवार का उत्तर-दायित्व जिस दिन ग्रहण करना हो अर्थात् 'पगड़ी की रसम' जिस दिन करनी हो. उस दिन तक आगे लिखे प्रकारे गृह पर यज्ञ करें।

जिस स्थान पर मृतक का देहावसान हुआ हो, उसको ओषध मिले पानी से धोना चाहिए। यदि किसी संक्रामक रोग से प्राणान्त हुआ हो, तो घर में सफेदी कर लेनी चाहिये।

अस्थि-चयन के बाद से प्रतिदिन यथाविधि यज्ञ करें। स्वस्ति-वाचन शान्तिकरण के मन्त्रों से विशेष आहुतियाँ दें। अथवा चारों वेदों से कई सूक्त या अध्याय चुनकर प्रतिदिन उन मन्त्रों से आह-तियां दे और उनका मनन करें। यथाः—ऋग्वेद का श्रद्धासूक्त १०।१५१; अथर्व वेद से उच्छिष्ट व ओदन व केन सूक्त; यजुः से पुरुषाध्याय ४१; ४०वाँ (ईशोपनिषद्) आदि-आदि। यही सर्वो-त्तम है।

अन्यथा, ईशोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, कठोपनिषद्, मुण्डको-पनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् का यज्ञ के पश्चात् पाठ व मनन कर सकते हैं।

प्रतिदिन यज्ञ समाप्ति सामवेदोक्त महावामदेव्यगान से करें।

१. अन्तिम शोक दिवस

जिस दिन यह 'शोक दिवस' अन्तिम रूप में मनाना हो, उस अन्तिम दिन निम्न मन्त्रों से भी विशेष आहुति दें—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳ स्मर ॥१॥
यजुः ४०।१५ ॥

ओं विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृ चक्षसम् ॥२॥ यजुः ३०।४ ॥

---

१. हे मनुष्यो ! यह आत्मा (वायुः) एक अन्य योनि से दूसरे में गति करने वाला, (अनिलम्) अपार्थिव=अभौतिक (अमृतं) अमृत=नित्य अविनाशी तत्त्व है और (शरीरं भस्मान्तम्) और उसका यह शीर्ण=नष्ट होने वाला सुखादि का आश्रय [=भोगायतन] शरीर, अन्त में भस्म हो जाने वाला है, ऐसा जानो ।

भावार्थः—मनुष्य को [यह जानना] चाहिये कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है. [तदनुसार ही अगली योनि मिलती हैं] और शरीर से आत्मा का पृथक् होना [निश्चित] होता है । इस शरीर को जलाने पर्यन्त क्रिया करें । जलाने [के] पश्चात् शरीर का कोई [अन्य प्रकार का] संस्कार [अथवा कर्म] न करें । वर्त्तमान समय [अर्थात् जन] में एक परमेश्वर की ही आज्ञा का पालन उपासना और अपने सामकर्म को बढ़ाया करें । किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता, ऐसा मानकर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रभीति किया करें (द्र. ऋषि दया. भाष्य) ।

२. हे मनुष्यो ! तुम सब (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) अद्भुत (राधसः) धन के (विभक्तारं) कर्मानुसार जीवात्माओं को फल देने के निमित्त उनके 'जाति-आयु-भोग' के विभाग करने वाले जिसका जैसा जितना कर्म [=पाप या पुण्य], वैसा उतना फल [=सुख दुःख] —न अधिक न न्यून—देने वाले (सवितारं) सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करने वाले (नृचक्षसम्) मनुष्यों के अन्तर्यामि—स्वरूप से शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों के द्रष्टा या सब मनुष्यों जीवन-मरण की देखभाल करने वाले परमात्मा को (हवामहे) आओ मिलकर प्रशंसा करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञ समाप्ति पर, सब जने यजमान को निम्न मन्त्र से सान्त्वना दे अपने-अपने घरों को जावें—

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥३॥
यजुः ४०।२ ॥

२. उत्तराधिकार ग्रहण

ऊपर लिखे प्रकार सब यज्ञ विधि करते हुए जो अन्तिम दिन हो, उसी दिन वह विधि करना चाहिये ।

---

३. मनुष्य को चाहिये कि वह (इह) इस संसार में शरीर से समर्थ होकर (कर्माणि) धर्म युक्त श्रेष्ठतम निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुवा ही (शतं समाः) सौ वर्ष पर्यन्त (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे। हे मनुष्य ! (एवं) इस प्रकार धर्मयुक्त निष्काम कर्म में प्रवर्त्तमान (त्वयि नरे) तुझ व्यवहारों को चलाने हारे मनुष्य में (कर्म न लिप्यते) अधर्म युक्त [सकाम] कर्म नहीं लिप्त होता। (इतः अन्यथा न अस्ति) इससे भिन्न 'कर्मलेप से छूटने' का कोई दूसरा प्रकार नहीं अथवा इस उत्तम कर्म से कुछ भी (अन्यथा) उलटा अर्थात् दुःख नहीं होता।* अथवा जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं कि तू सौ वर्ष तक कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा कर (प्र. क.) दुःख व आलस्य को छोड़ परमात्मा और उसकी आज्ञा को मान अशुभ कर्मों को छोड़ते, शुभ कर्मों को करते हुए……अल्प मृत्यु को हटा, युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवे। जैसे-जैसे मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं, वैसे-वैसे ही पाप कर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती है और विद्या, अवस्था [=आयु] और सुशीलता बढ़ती है। (द्र. ऋषिभाष्य यजुः ४०।२)। इसलिये तुम स्त्री पुरुष सदा पुरुषार्थी होकर उत्तमकर्मों से अपनी और दूसरों की सदा उन्नति किया करो (सं. वि. २४१)।

---

*ऋषि कृत यजुः ४०।२ तथा सं. वि. पृ. २४१ में मन्त्रार्थ द्र. है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्व प्रथम पृ. २८ से १०६ तक लिखे प्रमाणे अंगस्पर्श-आचमन, ऋत्विग्वरण से लेकर……आघारावाज्यभागाहुति चार पर्यन्त सब क्रिया यथा विधि करें—

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की दो आहुति दें—

ओं वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳ स्मर ॥१॥
यजु: ४०।१५ ॥

ओं विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नु चक्षसम् ॥२॥ यजु: ३०।४ ॥

तत्पश्चात् पुरोहित उस वंश के सब सगे सम्बन्धियों को सम्बोधित करके निम्न मन्त्र पढ़े । इसका भाव भी समझा दे ।

ओं संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥३॥
ऋक् १०।१९१।२ ॥

उत्तराधिकार प्रदान

तत्पश्चात् पुरोहित निम्न मन्त्र से उसके ज्येष्ठ-पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित करे—

तेन त्वाऽभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥१॥

तत्पश्चात् जो सगे-सम्बन्धी मामा आदि वस्त्र पगड़ी लाये हों, उनको पुरोहित निम्न मन्त्र से दिलवावे—

---

३. "जैसे तुम्हारे पूर्वज, सम्यग् ज्ञान वाले, विद्वान् मिलकर अपने अपने भाग=उत्तरदायित्व को निभाते रहे हैं; वैसे ही धर्माधर्म, प्रियाप्रिय, सत्यासत्य, भक्ष्याभक्ष्य, हेयाहेय एवं गम्यागम्य को भली प्रकार जानने वाले तुम्हारे मन [भी एक दूसरे से अविरोधी होकर धर्माचरण व शिष्टाचरण में सम्मत होवें] । तुम एक जैसा चलन रक्खो और एक जैसी बात करो ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

येनेन्द्राय बृहस्पति र्वासः पर्यदधादमृतम् ।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥२॥

निम्न मन्त्र से ग्रहण करे—

या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ।
ता अहं प्रति गृह्णामि यशसा च भगेन ॥३॥

निम्न मन्त्र से धोती पायजामा कमीज-कुर्ता धारण करे—

परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥४॥

निम्न मन्त्र से उष्णीष अर्थात् पगड़ी-टोपी धारण करें—

बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि ।
तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥५॥

पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र कहे; पुरोहित कहलावे—

यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥१॥
पार. २।६।२१ ॥

सु नावमा रुहेयमस्रवन्ती मनासगम् ।
शतारित्रां स्वस्तये ॥२॥ यजुः २१।७ ॥

---

१. हे सज्जनो ! मुझे पृथिवी और आकाश में यश मिले; धनी और बुद्धिमान् मेरा यशोगान करें; जो भी दान करूं, उससे मुझे यश और ऐश्वर्य मिले। इस प्रकार मुझे यश ही यश मिले।

२. हे सज्जनो ! परमात्मा के अनुग्रह, आपके मार्गप्रदर्शन से और अपने पुरुषार्थ से मैं (स्वस्तये) सुस्थिति के लिये (अस्रवन्तीं) दोष रहित अथवा हानि न देने वाली (अनागसं) पाप रहित (शतारित्राम्) पार करने के सैकड़ों साधनों वाली (सुनावम्) इस गृहस्थी की अच्छी नाव पर (आरुहेयम्) चढ़ूं। मैं आज से परिवार का उत्तरदायित्व स्वीकार करता हूं।

१, २, ३, ४, ५ इनके अर्थ क्रमशः द्र. पृ. २५९, २६४, २६३, २६६, २६४

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एमं पन्थानमरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन्वरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥३॥
अथर्व १४।२।२८ ॥

यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन्कर्मणि वृत्रहन् ।
तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं स्वाहा ॥४॥

सम्पत्ति र्भूतिर्भूमिर्वृष्टि र्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ
श्रीः प्रजामिहाववतु स्वाहा ॥५॥ पार. २।१७ ॥

ओं अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना

---

३. हे सज्जनों ! हम (सुगं) सुगम् (स्वस्ति वाहनम्) कल्याण पहुंचाने वाले अर्थात् योगक्षेमवाही (एमं पन्थानं) इस गृहस्थी के मार्ग पर (अरुक्षाम) चढ़ें। (यस्मिन् वीरो न रिष्यति) जिसमें वीर-पुत्र कभी दुःख नहीं उठाते और (अन्येषां विन्दते वसु) अपने पर आश्रित अन्य स्त्री पुत्रादि के निमित्त, जीवन के सब साधन प्राप्त करता है।

४. हे (वृत्रहन्) जीवन की उन्नति के अवरोधक विघ्नों के नाशक परमात्मन् ! (अस्मिन् कर्मणि) इस परिवार के भार लेने रूप कर्म में (यन्मे किंचित् उपेप्सितं) जो कुछ मुझे प्राप्त करना हो, (तन्मे जीवतः शरदः शतं सर्वं समृध्यतां) वह सब सौ वर्ष तक के जीवन वाले मेरे लिये समृद्ध हो।

५. (सम्पत्तिः) मेरा सम्पादन (भूतिः) ऐश्वर्य (भूमिः) जमीन जायदाद (वृष्टिः) वृष्टि (ज्यैष्ठ्यं) आयु की प्रतिष्ठा (श्रैष्ठ्यं) गुणों द्वारा महत्त्व (श्रीः) यशः व शोभा ये सब (प्रजां) मेरे सन्तान, बन्धु बान्धव व गवादि पशु, की (इह अवतु) इस जीवन में, घर में रक्षा करें।

६. हे (गृहपते अग्ने !) संसार रूपी घर के पालनहारे उन्नायक परमेश्वर ! तू (सुगृहपतिः) ब्रह्माण्ड वा जीवों के निवासार्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः। अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्ते ॥६॥ यजुः २।२७ ॥

ओं अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ॥७॥ यजुः २।२८ ॥

पश्चात् सामान्य प्रकरण पृ. १०९ में लिखे प्रमाणे 'त्वन्नो अग्ने .....' आदि से घृत और शाकल्य की अष्टाज्याहुतियां 'सर्वं वै०...' से पूर्णाहुति और वाम देव्यगान करके यज्ञ समाप्त करें।

यज्ञ समाप्ति पर, सब जये यजमान को निम्न मन्त्र से सान्त्वना दे अपने-अपने घरों को जावें—

बने गृह शरीरों के उत्तमता से पालन करने वाले हों। (त्वया) गृहपतिना अहं भूयासं) उस तुझ उक्त गुण वाले आपके साथ मैं भी सुगृहपति होऊं। हे परमेश्वर! और (मया गृहपतिना त्वं सुगृह-पतिः भूयाः) मुझ श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाले 'गृहपति' के साथ तू भी 'सुगृहपति' हो। (नौ) हम स्त्रीपुरुषों के (गार्हपत्यानि) गृहस्थी के व्यवहार (अस्थूरि सन्तु) अनिन्दित अविलम्ब सिद्ध हों। मैं पुरुषार्थ करता हुआ (सूर्यस्य आवृतं) सूर्य लोक के निमित्त से सिद्ध हुए रात्रि दिनों को (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (अन्वावर्त्ते) वर्त्तूं।

७. हे (व्रतपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे! (अग्ने) सत्य स्वरूप परमेश्वर! आपने जो कृपा करके (मे) मेरे लिये (व्रतं) यह परिवार के भार उठाने रूप व्रत (अराधि) अच्छे प्रकार सिद्ध किया है, (इदमहं) उसको (अचारिषं) मैंने किया है; (तद्, अशकम्) उसे करने में मैं समर्थ होऊं। (य एव अस्ति) जो भी, जैसा भी मैं हूं, (सोऽस्मि) हे परमात्मन्! तुम्हारे समक्ष हूं। आप अनुग्रह कीजिये कि जैसा भी मैं हूं, वैसा ही इस व्रत को निभाने में समर्थ होऊं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥३॥

यजुः ४०।२ ॥

इति परिशिष्ट-अन्त्येष्टिसंस्कारविधिः समाप्तः

अथ पुनर्विवाह-संस्कार विधि एवं नियोग-कर्म विधि

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग [=सहशयन] न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये; किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों [अर्थात् द्विजों] में·····क्षतयोनि स्त्री व क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये।*·····[सन्तान न होने की दशा में यदि ऐसे] स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना चाहें····· [तो] कुल की परम्परा रखने के लिये अपने स्वजाति [अर्थात् स्ववर्ण] का लड़का गोद ले [लेवे उससे कुल चलेगा।] ···और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें, तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें। (सं. प्र. ४ समु.)।

'नियोग' उसको कहते हैं, जिससे विधवा स्त्री और मृतस्त्रीक पुरुष, ये दोनों नियोग करके [अर्थात् प्रजनन कर्म मात्र में नियुक्त होकर] सन्तानों को उत्पन्न करते हैं। नियोग करने में ऐसा नियम है कि स्त्री व पुरुष में से एक के मर जाने पर वा उनमें किसी प्रकार का स्थिर रोग हो जाय वा नपुंसक बन्ध्यादोष पड़ जाय और उनकी युवावस्था [अर्थात् सन्तानोत्पादन योग्य दशा] हो तथा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो, तो इन अवस्थाओं में उनका इसी प्रकार के किन्हीं स्त्री पुरुष से नियोग होना चाहिये (ऋ. वे. भा. भू के आधार पर)।

---

*वर्त्तमान में आर्यसमाज ने 'पुनर्विवाह' को द्विजों के लिये भी मान्य कर लिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसमें यह नियम होना चाहिये कि द्विजों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में···सन्तानों के लिये नियोग होना और शूद्रकुल में पुनर्विवाह मरण पर्यन्त के लिये होना चाहिये।

माता, गुरुपत्नी, भगिनी. कन्या, पुत्रवधू आदि के साथ नियोग करने का सर्वथा निषेध है (ऋ. वे. भा. भू.)।

·····विवाह और नियोग के नियम एक से [नहीं हैं]। ····· कुछ थोड़ा-सा भेद है। [वह] यह कि 'विवाहित स्त्री पुरुष' एक पति और एक ही स्त्री मिल के दश सन्तान [तक] उपस्थित कर सकते हैं और 'नियुक्त स्त्री पुरुष' दो वा चार से अधिक सन्तानोत्पति नहीं कर सकते।

[इसमें यह बात जाननी योग्य है कि] जैसा कुमार-कुमारी ही का विवाह होता है, वैसे जिस [पुरुष] की स्त्री व [जिस स्त्री का] पुरुष मर जाता है, उन्हीं [अर्थात् विधुर विधवा] का नियोग होता है, कुमार-कुमारी का नहीं।

·····द्विजों में स्त्री पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं। कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष का और मृतस्त्रीक [अर्थात् विधुर] के साथ कुमारी का विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ, [साधारणतः] पुरुष विवाह नहीं किया चाहता, वैसे ही एक वार विवाह व स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कोई कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा, तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये। (सं. प्र. ४ समु.)।

इसकी यह व्यवस्था है कि विवाहित पति के मरने वा [स्थिर] रोगी होने से दूसरे पुरुष के साथ सन्तानों के अभाव में नियोग करें तथा दूसरे के भी मरण वा रोगी होने के अनन्तर तीसरे के साथ करले। इसी प्रकार दशवें तक करने की आज्ञा है। परन्तु एक काल में एक ही वीर्यदाता पति रहे, दूसरा नहीं। इसी प्रकार पुरुष के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये भी विवाहित स्त्री के मर जाने [वा स्थिर रोगी होने से] विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वह भी रोगी हो वा मर जाय, तो सन्तानोत्पत्ति के लिये दशम स्त्री पर्यन्त नियोग कर लेवे (ऋ. वे. भू. नियोग-नियम)।

जैसे 'विवाहित स्त्री पुरुष' सदा संग में रहते हैं, वैसे 'नियुक्त स्त्री पुरुष' का व्यवहार नहीं [होता]। किन्तु विना ऋतुदान के समय वे एकत्र न हों। जो स्त्री अपने [कुल परम्परा के रक्षण के निमित्त सन्तान के] लिये नियोग करे, तो भी दूसरा गर्भ रहे, उसी दिन से [उन] स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट [जाना चाहिये] और जो पुरुष अपने लिये करे, तो भी [जिस दिन से] दूसरा गर्भ रहे, उसी दिन से [उन] स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट [जाना चाहिये[। (ऋ. सं. प्र. ४ समु. तुलना ऋ. वे. भू.)।

परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों [=विधुरों] के लिये सन्तान [उत्पन्न] कर सकती है और [वैसे ही] एक [विधुर अर्थात्] मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर [नियोग विधि से] दश-दश सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है। .....ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री-पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें (सं. प्र. ४ समु.)।

.....जैसे दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ [नियम से अर्थात्] शास्त्रोक विधि पूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार वा पाप लज्जा नहीं होती, वैसे ही वेदशास्त्रोक्त [नियमपूर्वक] नियोग में [भी] व्यभिचार पाप लज्जा न मानना चाहिये।.....

व्यभिचार और कुकर्म रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें, वे विवाह व नियोग भी न करें, तो ठीक [=सर्वोत्तम] है। परन्तु जो ऐसे नहीं है, उनका [सामान्य दशा में] विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये।...

जैसे प्रसिद्धि से [अर्थात् बन्धु-बाधव इष्ट मित्रों के समक्ष] विवाह [होता है] वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग [भी होना चाहिये]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे विवाह में भद्रपुरुषों की अनुमति और कन्या व वर की प्रसन्नता होती है, वैसे नियोग में भी [होना चाहिये] । (सं. प्रः ४ समु. तुलना ऋ. वे. भू.) ।

……नियोग अपने वर्ण में होना चाहिय……वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष के साथ, अर्थात् वैश्या स्त्री, वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; क्षत्रिया स्त्री, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; ब्राह्मण स्त्री ब्राह्मण के [ही] साथ नियोग कर सकती है (सं. प्र. ४ समु.) ।

जो इस नियम को तोड़े, उसको द्विज कुल से अलग करके शूद्र कुल में रख दिया जाना चाहिये (ऋ. वे. भू.) ।

……स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह व नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना ।

पुनर्विवाह संस्कार-विधि

१. यदि स्त्री पुरुष दोनों में से कोई एक अब तक अविवाहित हो, तो उनका विवाह पूर्ववत् यथाविधि ही होना चाहिये ।

२. यदि दोनों ही पूर्व विवाहित हों, तो विवाह की सम्पूर्ण विधियां करानी आवश्यक नहीं । निम्न लिखे प्रमाणे 'पुनर्विवाह संस्कार' करावें—

[प्रथम विधि—मधुपर्क-विधि]

पुनर्विवाह का निश्चय हो जाने पर, जिस स्थान पर संस्कार कराने का निश्चय हो, वहां दोनों के पारिवारिक जनों वा इष्ट मित्रों की उपस्थिति में नीचे लिखे प्रमाणे मधुपर्क की विधि करें—

स्त्री वा कार्यकर्त्ता निम्न वाक्य कहें—

साधु भवान् आस्ताम् अर्चयिष्यामो भवन्तम् ।

पुरुष निम्न वचन बोलकर स्वीकृति देवे—

ओम् अर्चय ।

तत्पश्चात् पुरुष निर्दिष्ट आसन पर बैठ जावे ।

स्त्री हाथ में आचमन के लिये पात्र में जल लेकर बोले—

ओम् आचमनीयमाचमनीयमाचनीयं प्रतिगृह्यातम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष निम्न वचन से उसे ग्रहण करे—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

पश्चात् निम्न मन्त्र से तीन वार आचमन करे—

ओम् आ मागन् यशसा सꣳ सृज वर्चसा ।

तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ।

पार. गृ, १।३।१५ ।।

तत्पश्चात् स्त्री मधुपर्क का पात्र हाथ में लेकर निम्न वाक्य से प्रार्थना करे—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।

पुरुष निम्न वचन से मधुपर्क का पात्र ग्रहण करे--

ओं प्रतिगृह्णामि ।

तत्पश्चात् मधुपर्क के पात्र को हाथ में लेकर निम्न मन्त्र से तीन बार प्राशन करे—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम् ।

तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि । पार. गृ. १।३।२० ।।

मधुपर्क का भक्षण करके हाथ धोकर उत्तर क्रिया करे ।

[द्वितीय विधि—स्वयं वरण=पारस्परिक स्वीकृति]

इस समय वधूवर दोनों आपने-सामने बैठे ।

तत्पश्चात् पुरोहित वधू से निम्न मन्त्र बुलवावें—

ओम् अपश्यं त्वा मनसो चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ।।१।।*

ऋक् १०।१८३।१ ।।

---

*अर्थ पूर्व पृष्ठ २८३ पर देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वर से निम्न मन्त्र बुलवावे—

ओम् अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥[1]

ऋक् १०।१८३।२ ॥

[तृतीय विधि—वस्त्रपरिवर्तन]

पश्चात् दोनों परस्पर एक दूसरे को वस्त्र देवें। वर निम्न मन्त्र से वधू को साड़ी चोली आदि देवे—

ओं त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥[2]

अथर्व १४।१।५३ ॥

उसी प्रकार स्त्री भी वर को उत्तम वस्त्र अधोवस्त्र उत्तरीय वस्त्र आदि निम्न मन्त्र से देवे—

ओम् अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्त्तयाश्च न ॥

अथर्व ७।३७।१ ॥

इस प्रकार दोनों वस्त्र परिवर्त्तन करके मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए आवें और वर वधू यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करके, पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठे और दोनों यज्ञ आरम्भ करें।

---

१. हे पुरुष ! मैं (मम अनुजातेन वाससा) अपने द्वारा बनाये हुए वस्त्र से (त्वां अपिदधामि) तुझे भली प्रकार आच्छादित करती हूं। (यथा) ताकि तू (मम केवलः असः) अकेला मेरा ही होवे (न अन्यासां) दूसरी स्त्रियों का नहीं (च) और तू (न कीर्तयाः) किसी अन्य स्त्री की प्रशंसा न करे।

---

१. अर्थ पूर्व पृष्ठ २८४ पर देखें।

२. अर्थ पूर्व पृष्ठ ३४३ पर देखें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—यज्ञ का आरम्भ]

पश्चात् पृष्ठ ३० से १०८ पृष्ठ तक लिखे प्रमाणे अङ्गस्पर्श, आचमन और अग्न्याधान से लेकर व्याहृति आहुति पर्यन्त विधि करके 'त्वं ना अग्ने'...आदि आठ मन्त्रों (पृष्ठ ११४-१२०) से अष्ट आज्याहुति वर वधू देवें तत्पश्चात् पूर्व सुवासिता स्त्री अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण कन्धे पर स्पर्श करे और निम्न पांच आज्याहुति देवें—

ओं भूर्भुव स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ॥ आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम १॥[1]

ओं भूर्भुव स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥२॥[1]

ओं भूर्भुव स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ३॥[2]

ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९—२१ ॥

ओं भूर्भुव स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥४॥[3]

ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद् दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये इमं न मम ॥५॥[4]

ऋक् ५।३।२ ॥

---

१. अर्थ पूर्व पृष्ठ १११ । २. अर्थ पूर्व पृष्ठ ११२ ।
३. अर्थ पूर्व पृष्ठ ११२ । ४. अर्थ पूर्व पृष्ठ ३२३ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पंचम विधि—घृत शाकल्य की विशेष आहुतियां]

पश्चात् दोनों निम्न मन्त्रों से घृत वा शाकल्य की विशेष आहुतियां देवें—

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमं स्वाहा ॥१॥[1]

उदीर्ष्व नार्य्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसं बभूथ स्वाहा ॥२॥[2]
ऋक् १०।१८।८ (स. प्र. ऋ. वे. भू.) ॥

---

२. (इयं) यह स्त्री (पतिकामा) पति की अभिलाषा से (आ अगन्) मुझ तक [मेरे पास] आई है; (जनिकामः, अहं) और सन्तानाभिलाषी मैं 'नियुक्त पति' (आगमम्) वेदी पर या इसके पास आया हूं। (यथा) जैसे गर्जन करता हुआ मेघ भूमि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार (भगेन सह) वीर्य के साथ मैं इसके लिये आया हूं।

२. हे (नारी) विधवा स्त्री ! (उदीर्ष्व) उठ, इस बात का विचार और निश्चय रख (एतं गतासुम्) इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्) जीते हुये दूसरे पति को (उदेहि) जो तेरी इच्छा हो, तो प्राप्त हो और (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा, तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी, तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। (अभि-सम्-बभूथ) इस प्रकार नियोग से अपने-अपने सन्तानों को उत्पन्न करके दोनों सदा सुखी रहो।

विधवा स्त्री·····नियोग करके सन्तानों को प्राप्त हो। नहीं

---

१. 'एयमागन्०' से लेकर 'जनियन्ति०'·····तक 'स्वाहा' पद मन्त्र गत नहीं हैं।

२. द्र. प्रमाणसहस्री गुजराती पृष्ठ ६३, हिन्दी संस्करण पृष्ठ १११।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा स्वाहा ॥४॥

ऋक् १०।८५।४० स. प्र.+ऋ. वे. भू. ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनु पालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि स्वाहा ॥५॥

अथर्व १८।३।१ ॥*

तो ब्रह्मचर्याश्रम में स्थिर होकर कन्या और स्त्रियों को पढ़ाया कर और जो नियोग धर्म में स्थिर हो, तो जब तक मरण न हो तब तक ईश्वर का ध्यान और सत्य धर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो. ·····[तो सन्तान के लिये ही] 'दिधिषोः'=दूसरे पति की सेवा='सेवन' किया कर, वह तेरी सेवा=सेवन किया करे; [विषयभोग के लिये नहीं]। (ऋ. वे. भा. भू.)।

४. हे स्त्री ! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है, उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुण युक्त होने से सोम कहाता है और जो दूसरा नियोग से (विविदे) प्राप्त होता है, वह (गन्धर्वः) एक स्त्री से संभोग करने से, गन्धर्व संज्ञक अर्थात् भोग में अभिज्ञ होता है और जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् नियोग से तीसरा पति होता है, वह (अग्निः) अत्युष्णतायुक्त होने से अग्नि संज्ञक अर्थात् तेजस्वी अधिक उमर वाला होता है और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से ले के ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे सब (मनुष्यजाः) मनुष्य नाम से कहाते हैं क्योंकि वे मध्यम होते हैं।

५. इस मन्त्र में स्त्री और पुरुष को परमेश्वर आज्ञा देता है कि—(इयं नारी) यह विधवा नारी (प्रेतं [विहाय]) अपने मृत पति को छोड़ कर (पतिलोकं वृणाना) पति लोक को चुनती हुई अर्थात् पति सुख की इच्छा करके नियोग किया चाहे, तो (मर्त्य) हे मनुष्य ! (त्वा उप निपद्यते) वह 'पूर्व पति मर जाने के अनन्तर तुझ 'दूसरे पति' को नियोग विधान के अनुसार प्राप्त हो वह जो (पुराणं धर्मं अनुपालयन्ती)* सनातन नियोग धर्म का पालन करने

---

*'प्राचीन नियम के अनुसार'···द्र. प्रमाणसहस्त्री गुजराती पृष्ठ ६३, हिन्दी पृष्ठ १११।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अदे॑वृघ्न्यपा॑तिघ्नी॒ हैधि॑ शि॒वा प॒शुभ्यः॑ सु॒यमा॑ सु॒वर्चाः॑ ।
प्र॒जाव॑ती वीर॒सूर्दे॑वृ॒कामा॒ स्योने॑मग्निं गार्ह॑पत्यं सपर्य॒ स्वाहा॑ ॥६॥
अथर्व १४।२।१८ । स. प्र.+ऋ. वे. भू. ॥

सोमो॑ वधू॒युर॑भवद॒श्विना॑स्तामु॒भा व॒रा ।
सूर्यां॑ यत्पत्ये॒ शंस॑न्तीं॒ मन॑सा सवि॒तादा॑द॒दात् स्वाहा॑ ॥७॥
ऋक् १०।८५।९ ॥

वाली स्त्री है, (तस्यै) उस विधवा स्त्री के लिये (इह) इस जीवन में (प्रजां धेहि) प्रजोत्पत्ति कर (द्रविणं च) और इसके निमित्त वीर्यदान कर, जिससे वह प्रजा से युक्त होके आनन्द में रहे।

स्त्री के लिये भी इसी प्रकार आज्ञा है कि जब किसी [समान वर्ण] पुरुष की स्त्री मर जाय और वह सन्तानोत्पत्ति किया चाहे, तब स्त्री भी उस पुरुष के साथ नियोग करके उसको प्रजायुक्त कर दे (ऋ. वे. भू.)।

६. हे विधवा स्त्री ! (अपतिघ्नी) तू विवाहित पति और देवर को सुख देने वाली हो, किन्तु उनका अप्रिय किसी प्रकार से मत कर। वे भी तेरा अप्रिय न करें और तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) घर के पशु आदि सब प्राणियों के लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमाः) जितेन्द्रिय होकर अच्छे प्रकार धर्म-युक्त चेष्टा नियमों व कार्यों में चलने वाली (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त उत्तम तेजवाली (प्रजावती) उत्तम पुत्र-पौत्रादि से युक्त (वीरसूः) वीर पुत्रों को जननेहारी (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली अर्थात् विवाहित पति न रहने, उसके रोगी व नपुंसक होने पर, दूसरे पुरुष से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करने वाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर की प्राप्ति करके (एधि) बढ़ और (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र अर्थात् घर के कामों को (सपर्य) सदा प्रीति से सेवन किया कर।

७. (सोमः) सुकुमार शुभगुणयुक्त (वधूयुः) वधू अर्थात् सन्तान का भार उठाने योग्य, स्त्री की कामना करनेहारा पति तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत्तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनां स्वाहा ८॥
अथर्व १८।३।३ ॥

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु स्वाहा ९
अथर्व १४।२।७५ ॥

पति की कामना करनेहारी बधू (अश्विना) दोनों परस्पर व्याप्त मनों वाले (अभवत्) होवें और (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (अस्ताम्) होवें। ऐसी (यत्) जो (सूर्याम्) सूर्य की किरणवत् सौन्दर्य गुणयुक्त (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुण कीर्त्तन करने वाली वधू है, उसको पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री (सविता) सकल जगत् का उत्पादक परमात्मा (ददात्) नियुक्त कर देता है अर्थात् दोनों पुनः सम्बन्ध करते हैं।

८. (युवतिं) सन्तानोत्पादन में योग्य युवती नारी को (मृतेभ्यः) मृत व्यक्तियों से पृथक् करके (जीवां नीयमानां) जीवित अवस्था में लायी जाती हुई और (परिणीयमानां) विवाह कराई जाती हुई को (अपश्यं) मैंने देखा है; (यत्) जो कि (अन्धेन तमसा) शोकजन्य अन्धकार से (प्रावृता आसीत्) घिरी हुई थी। (एतां) इस विधवा नारी को (प्राक्तः) पहले दुःख की दशा से (अपाचीं) इस पिछली सुख शान्ति की दशा में (अनयम्) 'पुनर्विवाह करके' मैं ले आया हूं।

९. हे स्त्री ! तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घकाल गृहाश्रम में जीने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धियुक्त (बुध्यमाना) सज्ञान होकर (गृहान्) मेरे घर को (गच्छ) प्राप्त हो और (गृहपत्नी) मुझ घर के स्वामी की स्त्री बनकर (यथा) जैसे (ते) तेरा (दीर्घम्) दीर्घकाल पर्यन्त (आयुः) जीवन (असः) होवे, वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्टज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान। इस अपनी आशा को (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देने हारा परमात्मा (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे; जिससे तू और मैं सदा उन्नतिशील होकर आनन्द में रहें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु स्वाहा ॥१०॥
अथर्व १४।२।१३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद्वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः स्वाहा ११
अथर्व १४।२।१४ ॥

[षष्ठ विधि—पाणि-ग्रहण व मङ्गल-प्रदक्षिणा]

उक्त प्रकार होम करके वर आसन से उठ अपने दक्षिण बाजू में पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वाम हस्त से वधू का दाहिना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उठावे और फिर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली अंगुष्ठ सहित चत्ती ग्रहण करके पाणिग्रहण के निम्न छः मन्त्रों को बोले—

---

१०. (शिवा) कल्याणकारिणी (इयं नारी) यह नारी (अस्तं) गृह में=प्राजापत्यधर्म के आश्रय में (आ+अगत्) फिर विधि पूर्वक आ गई है। (धाता) विश्वविधाता परमात्मा ने (अस्यै) इस नारी के लिये (इमं लोकं) यह गृहस्थ लोक (दिदेश) निर्दिष्ट किया है। (ताम्) उस इस नारी को (अर्यमा) आर्य मन वाला (भगः) ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्रीः, ज्ञान, वैराग्य रूप षट्-सम्पत्ति से युक्त (प्रजापतिः) प्रजापालक पति और (अश्विनौ) माता-पिता दोनों (प्रजया वर्धयन्तु) प्रजा=सन्तान द्वारा बढ़ावें।

११. (आत्मन्वती) आत्मगौरवशालिनी (उर्वरा) प्रजनन में समर्थ (इयं नारी [आ अगन्) यह नारी फिर विधिपूर्वक आई है; (तस्यां अस्यां) उन शक्तियों से सम्पन्न इस नारी में (नरः) हे नरो ! वीर्याधान करो। (सा) ऐसी वह नारी (ऋषभस्य) श्रेष्ठ समर्थ पुरुष के (दुग्धं रेतः) शुद्ध श्वेत वर्ण वीर्य को अथवा उत्पादन-सामर्थ्य द्वारा स्त्री स्तनों में दुग्ध लाने वाले वीर्य को (बिभ्रती) धारण-पोषण करती हुई (वक्षणाभ्यः) अपनी कोख=पेट या वक्षी से (वः) तुम्हारे लिये (प्रजां जनयत्) सन्तान को जन्म देवे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥[1]

अथर्व १४।१।५० ॥

वधू-वर प्रतिज्ञा करें—'हम दोनों एक दूसरे से सन्तान प्राप्त करने रूप सौभाग्य के लिये परस्पर हस्तग्रहण करते हैं। ऐश्वर्य-शाली, न्यायकारी, जगदुत्पादक, जगत् धर्त्ता परमात्मा और विद्वानों ने हमको परस्पर एक दूसरे के लिये सन्तानोत्पत्ति करने को नियुक्त कर दिया है। परमात्मा और विद्वान् हम दोनों के बीच साक्षी हैं कि हम दोनों व्यभिचारादि दोषरहित होके·····धर्म से पुत्रों को उत्पन्न करके उनको सुशिक्षित करेंगे·····; ·····[नियोग के] इन नियमों का ठीक-ठीक पालन करेंगे' [ऋः वे. भू. के आधार पर]।

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥२

अथर्व १४।१।४८ ॥

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव ॥३॥[1]

अथर्व १४।१।५१ ॥

---

१. अर्थ ऊपर 'प्रतिज्ञा' में देखें।

२. (येन) जिस उद्देश्य से (अग्निः) सूर्य रूप अग्नि ने (अस्याः भूम्याः) इस पृथिवी के (दक्षिणं हस्तं जग्राह) दक्षिण हाथ अर्थात् अन्नोत्पत्ति रूप दक्षिणा देने वाले आधार को ग्रहण किया है, (तेन) उसी उद्देश्य से हे नारि ! मैं (ते हस्तं गृह्णामि) तेरे दाहिने हाथ को ग्रहण करता हूं। (मया सह) मेरे साथ रहते अर्थात् मेरे से सहवास से (च) और (प्रजया) प्रजा पशु सन्तान के निमित्त से (च) और (धनेन) धन की दृष्टि से तू (मा व्यथिष्ठाः) कभी व्यथा=परेशानी को मत प्राप्त हो।

३. हे नारी ! ऐश्वर्ययुक्त, धर्ममार्ग में प्रेरक मैंने तेरा हाथ

---

१. विस्तृत अर्थ पूर्व पृष्ठ ३४१, ३४२ पर देखें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मह्येयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादात् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति संजीव शरदः शतम् ॥४॥[1]
अथर्व १४।१।५२ ॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥५॥[1]
ऋक् १०।८५।३८ ॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥६॥
अथर्व १८।३।४ ॥

ग्रहण किया है। तू धर्म से मेरी 'पत्नी'=धर्मानुसार प्रीतिपूर्वक मेरा पालन करने वाली और मैं तेरे गृहाश्रम का स्वामी हूं।

४. सब जगत् के पालक परमात्मा ने जिस तुझ को मुझे दिया है, वह यह तू मेरे पोषण करने योग्य होवे। हे प्रजावति! तू मुझ पति के साथ सौ बरस शान्तिपूर्वक जी।

५. हे गार्हपत्याग्ने! तुम्हारे सम्पादन के लिये ही पहले इस उत्पत्ति सामर्थ्य वाली नारी का स्वीकार किया गया था। हे गृहस्थ यज्ञ के अग्नि देव! इस जनन धर्म वाली स्त्री को सन्तान सहित कालान्तर में गन्धर्व सोमरूप अन्य नियुक्त पतियों के लिये दीजिये।

६. हे (अघ्न्ये) अहिंसनीय स्त्री! (जीव लोकं प्रजानती) जीवित मनुष्यों की अवस्था को प्रकृष्टता से जानने वाली और (देवानां पन्थाम् अनु संचरन्ती) विद्वानों के मार्ग का अनुसरण करने वाली तू है। और (अयं) यह पुनर्विवाहेच्छु पुरुष (ते गोपतिः) तेरा 'वृषा'=वीर्य सींचने में समर्थ पति है अथवा तेरे शरीर का स्वामी है, (तं जुषस्व) उसका प्रीतिपूर्वक सेवन कर; (एनं) इसको (स्वर्गं लोकं) सुखप्रापक लोक=गृहाश्रम में (अधिरोहय) चढ़ा=प्राप्त करा।

---

१. विस्तृत अर्थ क्रमशः पूर्व पृष्ठ ३४२, ३४९ पर देखें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् पुरुष स्त्री की हस्तञ्जली पकड़ के उठावे और यज्ञ-कुण्ड की चार प्रदक्षिणा करें। दोनों यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, निम्न मन्त्र से प्रतिज्ञा करें—

ओम् अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनवायहै ॥१॥ अथर्व १४।२।७१॥

यज्ञवेदी की चार प्रदक्षिणा व प्रतिज्ञा किये पश्चात् दोनों यज्ञ-कुण्ड के पश्चिमभाग में पूर्वाभिमुख थोड़ी देर खड़े रहें।

ग्रन्थि-बन्धन

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुरुष के उपवस्त्र के साथ स्त्री के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देवें—

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥२॥
अथर्व १४।२।७०॥

---

१. हे वधू! (अहम् अमः अस्मि) मैं ज्ञानवान् हूं। (सा त्वं) तू भी वैसे ही ज्ञानवती है। (अहं साम अस्मि) मैं सामवेद के तुल्य प्रशंसित हूं; हे वधू! (त्वं ऋक्) तू ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है। (अहं द्यौः) मैं वर्षा करनेहारे सूर्य के समान 'वृषा' हूं और (पृथिवी त्वं) तू पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने वाली है। आओ (तौ इह) हम दोनों यहां (संभवाव) परस्पर सम्बन्ध करें और (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (आ प्रजनयावहै) 'दश सन्तान तक' उत्पन्न करें।

२. हे नारि! (पृथिव्याः पयसा) पृथिवी के सारभूत अन्नादि के द्वारा और (औषधीनां पयसा) औषधियों के सारभूत रसादि द्वारा (त्वा संनह्यामि) तुझे अपने साथ बांधता हूं और (प्रजया धनेन च) प्रजा द्वारा और धन के द्वारा तुझे अपने साथ बांधता हूं। (संनद्धा सा) इस प्रकार मेरे साथ बन्धी वह तू (इमं) इस (वाजं) बलकारी अन्न को या वेगवान् बल सामर्थ्य को अथवा बलशाली सन्तान को (आ+सनुहि) मुझे प्राप्त करा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सप्तम विधि—सप्तपदी]

तत्पश्चात् सप्तपदी विधि का आरम्भ करें। दोनों जने आसन पर से उठ के, वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावे। वर के दक्षिण बाजू वधू रहे। पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप-समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें। तत्पश्चात् पुरुष—

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम ॥

ऐसा बोल के बधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देवे और निम्न मन्त्र बोल के अपने साथ स्त्री को लेकर ईशान दिशा में एक पग चले और चलावे—

ओम् इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव ॥१॥[1]
इससे एक ॥

ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव०[2] **॥२॥** इस वचन से दूसरा ॥
ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ॥३॥ इससे तीसरा ॥
ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव० ॥४॥ इससे चौथा ॥
ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव० ॥५॥ इससे पांचवा ॥
ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव० ॥६॥ इससे छठा और
ओं सखे सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव ॥७॥

इससे सांतवा पग चलावे, तत्पश्चात् दोनों गांठ बांधे हुए शुभासन पर यथापूर्व बैठें। पुरुष के दक्षिण बाजू स्त्री बैठे।

[अष्टम विधि—हृदयस्पर्श]

तत्पश्चात् पुरुष स्त्री के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ लेके उससे वधू का हृदय स्पर्श करे और स्त्री भी सामने से अपने दक्षिण हाथ से पुरुष के हृदय का स्पर्श करे। दोनों निम्न मन्त्र को बोलें—

---

१. इन मन्त्रों का अर्थ पूर्व पृष्ठ ३५२, ३५३ पर देखें।
२. आगे सर्वत्र 'सा मामनुव्रता भव' बोलें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं मम व्रतं ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥*

[नवम विधि—यज्ञ-समाप्ति]

तत्पश्चात् समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर पृष्ठ ३६१ से ३६२ तक लिखे प्रमाणे आहुतियां देवे—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदं न मम ॥२॥

गो० गृ० प्र० १ । खं० ८ । सू० २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥४॥

ओम् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥

स्थलीपाक की आहुतियां

ओम् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम ।

ओम् अनुमतये स्वाहा ॥ इदमनुमतये—इदन्न मम ।

---

*हे सज्जनों ! हम दोनों अपने हृदयों को एक व्रत में धारण करते हैं; हम दोनों के चित्त सदा परस्पर अनुकूल रहें, एक दूसरे की बात एकाग्र मन से सुना करें; परमात्मा हम दोनों को मिलाय रक्खे ।

---

*विस्तृत अर्थ पूर्व पृष्ठ ३५४, ३५५ पर देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

आश्व० गृह्य०

पश्चात् पृष्ठ १२२ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्य गान करें।

[दशम विधि—आशीर्वाद]

पश्चात् कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर दोनों अवलोकन करें और हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र बोल आशीर्वाद की प्रार्थना करें—

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीमस्तु मा विद्विषावहै ॥१॥[1]

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥२॥[2]

और सब जने निम्न मन्त्र बोल आशीर्वाद दें—

ओं समितꣳ संकल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू ।
सुमनस्यमानौ इषमूर्जमभि संवसानौ ॥३॥[3]

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥८॥

ऋक् १०।८५।४२ ॥

---

८. हे स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (इहैव) इस गृहाश्रम के शुभ व्यवहारों में (स्तम्) तत्पर रहो । (मा वि यौष्टम्) सन्तानोत्पादन के कर्म से वियुक्त मत होओ । (विश्वमायुर्व्यश्नुतम्)

---

१. मन्त्रार्थ पूर्व पृष्ठ ३५५-३५६ । २. मन्त्रार्थ पूर्व पृष्ठ ३१९ ।
३. मन्त्रार्थ पूर्व पृष्ठ ३५६ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ नियोगविधिः

'नियोग' की अनुमति के निर्धारित नियमों के अनुसार, अमुक 'स्त्री' का अमुक 'पुरुष' से नियोग होने का निश्चय हो जाने पर, जिस दिन नियोग करना हो, उस दिन प्रातः या सायं यज्ञ की सब सामग्री एकत्रित कर दोनों पक्षों के बन्धु-बान्धव इष्ट-मित्र यज्ञ मण्डप में एकत्रित होवें। ऋत्विग् आदि सब यथास्थान बैठें।

[प्रथम विधि—अनुज्ञा-ग्रहण]

सर्व प्रथम स्त्री पुरुष दोनों निम्न मन्त्र से सब वृद्धों अर्थात् बड़ों को हाथ जोड़कर नमस्कार कर उन से नियोग की अनुज्ञा प्राप्त करें—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥१॥[1]

पश्चात् पुरोहित निम्न दो मन्त्र बुलवाकर उपस्थित सज्जनों द्वारा उन्हें नियोग की अनुज्ञा दिलवावें—

ऋतुगामी होके वीर्य का अधिक नाश न कर अर्थात् संमय-पूर्वक सन्तानों की उत्पत्ति करके सौ वर्ष की सम्पूर्ण आयु को सुख से भोगो। पूर्वोक्त धर्म रीति से (पुत्रैः) पुत्र और (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुये (स्वे गृहे) अपने घर में (मोदमानौ) आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वास करो।

१. हे उपस्थित विद्वान् सज्जनो! आप निश्चय करके जानें कि हम सन्तानोत्पत्ति के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं। हमारे हृदय जल की तरह शान्त और मिले रहेंगे। (मातरिश्वा) प्राणवायु, (धाता) धारक रजोवीर्य सामर्थ्य और (देष्ट्री) धर्म की दिशा दिखाने वाली विवेक शक्ति (नौ) हम दोनों को इस नियोग कर्म के लिये (दधातु) परस्पर धारण करावें, मिलावें।

---

१. विस्तृत अर्थ पृष्ठ ३१९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥२॥
अथर्व १०।१।३१ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ।३
अथर्व १४।२।३७ ॥

पारस्परिक अनुज्ञा

यदि पति की जीवित अवस्था में किसी कारण से नियोग आवश्यक हो, तो निम्न मन्त्र से पति पत्नी को नियोग की अनुज्ञा दें—

---

२. (ऋतोद्येषु) ऋत्वनुकूल किये जाने वाले व्यवहारों में (ऋतं वदन्तौ) सत्य न्याय धर्म की बात कहते हुए (युवम्) तुम दोनों स्त्री पुरुष (समृद्धं) जन सामर्थ्य से समृद्ध (भगं संभरतं) गर्भाशय में वीर्याधान करो अर्थात् उचित गर्भस्थापन करो। हे (ब्रह्मणस्पते) सर्वज्ञ परमात्मन्! अपने अनुग्रह से (अस्यै पतिं रोचय) इस नारी के लिये इस नियुक्त पति को अनुकूल कर, ताकि (संभलः) संभाल रखने वाला यह पुरुष (एताम्) इस नारी के प्रति हमेशा (चारु=चारु यथा स्यात्तथा) सुन्दर मीठी (वाचं वदतु) बात किया करे।

३. हे स्त्री-पुरुषो! तुम (पितरौ) सन्तानों के जनक (ऋत्विये) ऋतु समय में सन्तानों को (संसृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो। (माता) जननी (च) और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्य को मिला कर गर्भाधान करनेहारे (भवाथः) हूजिये। हे पुरुष! (एनाम्) इस (योषाम्) स्त्री को (मर्यः इव) प्राप्त होने वाले पति के समान (अधिरोहय) सन्तानों से बढ़ा और दोनों (इह) इस जीवन में मिल के अपने-अपने लिये (प्रजाम्) प्रजा को (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो; (पुष्यतम्) पालन-पोषण करो और पुरुषार्थ से (रयिम्) धन को प्राप्त होओ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ॥[1] ऋक् १०।१०।१० ॥

जब पति सन्तानोत्पत्ति में [नपुंसकत्व वा रोगादि से] असमर्थ होवे, तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे (सुभगे !) सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) भिन्न दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर। क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे पति से नियोग करके अपने विवाहित पति के लिये सन्तानोत्पत्ति करे। परन्तु अपने विवाहित महाशय पति की सेवा में यथापूर्व ही तत्पर रहे।

वैसे ही स्त्री भी जब [वन्ध्यात्व वा] रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो, तब अपने पति को आज्ञा देवें कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड़कर दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये (स. प्र. ४ समु.)।

[द्वितीय विधि—वस्त्र-आदान प्रदान]

निम्नलिखित के मन्त्र को पढ़कर नियुक्त पुरुष स्त्री को वस्त्र देवे[2]—

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया ॥१॥[3]
अथर्व १४।१।५३ ॥

---

१. हे (शुभे) नियोग के पुराण-धर्म को पालने वाली शुभे ! ज्ञानी और विद्वानों के निर्देशानुसार, शिल्पकार ने (कं वासः) जल की

---

१. यदि नियोग करने वाले स्त्री-पुरुष मृतस्त्रीक व विधवा हों, तो ऊपर लिखित मन्त्र के उच्चारण की आवश्यकता नहीं। तुलना ऋक् १०।८५।२१, २२ ॥

२. जहां-जहां नियोग या 'पुनः सम्बन्ध' की रसम है वहां इसे 'चादर-ओढ़ाना चादर डालना' कहते हैं।

३. पृ० ३१७ में निर्दिष्ट 'ओं या अकृन्तन्०...' अथर्व १४।१।१५ से भी यह विधि कराई जा सकती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके, स्त्री भी नियुक्त पुरुष को उसी प्रकार एक वस्त्र देवे—

ओम् अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्त्तयाश्चन ॥

अथर्व ७।३७।१ ॥

[तृतीय विधि—यज्ञारम्भ]

तत्पश्चात् सामान्य प्रकरण में पृष्ठ २६ से १०६ लिखे प्रमाणे आघारावाज्याहुति चार पर्यन्त यज्ञ करें। स्त्री पुरुष के दक्षिण बाजू रहे।

[चतुर्थ विधि—प्रधान-होम]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत और शाकल्य की विशेष आहुतियां दोनों देवें--

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा ॥१॥

ऋक् १०।८५।४५, ऋ० वे० भू०+स० प्र० ।

तरह सुख शान्ति देने वाला वस्त्र तैयार किया है। सूर्य के (सूर्या इव) उषा को शोभा से ढापने की तरह (भाः) ऐश्वर्य सम्पन्न मैं नियुक्त पति और (सविता) इसका जनक दोनों इस नारी को (तेन) उस महावस्त्र से तथा (प्रजया) सन्तान से समृद्ध रक्खेगें।

२. हे पुरुष ! (मनु+जातेन) मन से बनाये (मम वाससा) अपने वस्त्र से (त्वा अभिदधामि) मैं तुझे ढापती हूं। (यथा) जिससे कि तू (केवलः मम असः) केवल मेरा ही हो। (अन्यासां) अन्य स्त्रियों के विषय में (न चन कीर्त्तयाः) कभी बात भी न किया करे अर्थात् दूसरी स्त्री का नाम तक भी न ले।

१. हे (मीढ्वः इन्द्र) वीर्य को सींचने में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को वीर्यदान दे के श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। विवाहित वा नियोजित स्त्री में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस वेद की आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करे। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत से दुःख पाते हैं।

फिर नियुक्त पति ब्राह्मण वर्ण का हो, तो वह कहे—

*सुवर्णं हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै ब्रह्मणे तेजसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवाविश्वा स्पृधो अभिमातीर्जयेम स्वाहा २
तैत्ति० आर० प्रपा० ६ अनु० १॥

और नियुक्त पति क्षत्रिय वर्ण का हो, तो कहे—

धनुर्हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै क्षत्रायौजसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वास्पृधो अभिमातीर्जयेम स्वाहा ३
तैत्ति० आर० प्रपा० ६ अनु० १॥

दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर अधिक नहीं। और ग्याहरवीं स्त्री को मान। हे स्त्री! इसी प्रकार तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश संन्तान तक उत्पन्न कर और ग्याहरवें पति को समझ अर्थात् एक तो उनमें प्रथम विवाहित और दशपर्यन्त नियोग के पति कर (ऋ. वे. भू.+स. प्र.)। इसी प्रकार उनमें प्रथम विवाहित स्त्री और दश पर्यन्त नियोग स्त्री पुरुष करे, अधिक नहीं।

२. हे स्त्री! श्री के लिए, ब्रह्म, तेज और बल के लिए, (मृतस्य हस्तात्) अपने मृत पति के हाथ से (सुवर्णं आददाना) सुवर्ण ग्रहण करती हुई सुखदात्री तू (अत्र एव) इस लोक में और (वयं विश्वास्पृधः) सब को पराजित करने में समर्थ हम (अभिमातीः जयेम) जीवन सङ्घर्ष में विरोधियों को मिलकर जीतें।

३. हे स्त्री, श्री, क्षत्र, तेज, ओज और बल के लिए, अपने मृत पति के हाथ से धनुष को ग्रहण करती हुई सुखदात्री तू इस लोक में

---

*'सुवर्ण० ...' 'धनुः०...' और 'मणि०...' इन तीनों का पुनर्विवाह में विनियोग 'श्रीप्रमाणसहस्री' ग्रन्थ पृष्ठ ६२ [संवत् १९४३ से पूर्व रचित] में माना गया है। यह गुजराती भाषा में है। इसका हिन्दी अनुवाद भी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और नियुक्त पति वैश्य वर्ण का हो, तो कहे—

मणिं हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै विशे पुष्ट्यै बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वास्पृधो अभिभातीर्जयेम स्वाहा ४

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह स्वाहा ५

अथर्व १४।२।३२ ॥

कुहस्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ स्वाहा ६

ऋक् १०।४०।२ स० प्र०+ऋ० वे० भू० ।

और सब को पराजित करने में समर्थ हम जीवन संघर्ष में विरोधियों को मिलकर जीतें ।

४. हे स्त्री ! श्री के लिए, जनता, पुष्टि और बल के लिए, अपने मृत पति के हाथ से 'मणि' ग्रहण करती और अपने सुख पूर्वक दिन काटती हुई तू और सबको पराजित करने में समर्थ हम जीवन-संघर्ष में विरोधियों को मिलकर जीतें ।

५. हे सौभाग्यप्रदे ! (नारि) तू जैसे (इह) इस गृहाश्रम में (अग्रे) प्रथम (देवाः) विद्वान् लोग (पत्नीः) उत्तम स्त्रियों को (न्यपद्यन्त) प्राप्त होते हैं और (तनूभिः) शरीरों से (तन्वः) शरीरों को (समस्पृशन्त) स्पर्श करते हैं, वैसे (विश्वरूपा) विविध सुन्दर रूप को धारण करनेहारी (महित्वा) सत्कार को प्राप्त हो के (सूर्येव) सूर्य की कान्ति के समान (पत्या) अपने नियुक्त पति के साथ मिल के (प्रजावती) प्रजा को प्राप्त होने हारी (सम्भव) अच्छे प्रकार हो ।

६. हे (अश्विनौ) विवाहित [नियोगेच्छु] स्त्री पुरुषो ! जैसे (देवरं विधवा इव) 'देवर' को विधवा और (योषा मर्यं न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर 'दशसन्तान तक' (आ—कृणुते) सब प्रकार से सन्तान को उत्पन्न करती है, वैसे ही तुम दोनों स्त्री-पुरुष (कुहस्विद्दोषा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

...विधवा का जो दूसरा पति होता है, चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला कोई पुरुष हो अर्थात् जिससे स्त्री नियोग करे, उसी का नाम 'देवर' है (स० प्र० ४ समु.)।

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि स्वाहा।
अथर्व १४।२।३१॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः स्वाहा॥८
अथर्व १४।२।३८॥

कहां रात्रि और (कुह वस्तः) कहां दिन में निवास किया था? (कुहाभिपित्वम्) कहां तुमने अन्न वस्त्र धन आदि पदार्थों की प्राप्ति (करतः) की और (कुहोषतुः) कहां तुम 'स्थिर रूप से' वास करते थे? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयन स्थान कहां है? तथा कौन वा किस देश के रहने वाले हो?

इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में भी स्त्री पुरुष संग ही में रहें और विवाहित पति के समान, नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। (ऋ. सं. प्र. ४ समु.+ ऋ. वे. भू.)।

७. हे वरानने! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित होकर (तल्पम्) पर्यंक पर (आ रोह) चढ़ के शयन कर और (इह) इस गृह में स्थिर रह कर अपने लिये और (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां जनय) प्रजा को उत्पन्न कर। (सुबुधा) सुन्दर ज्ञानी (बुध्यमाना) उत्तम शिक्षा को प्राप्त (इन्द्राणीव) सूर्य की कान्ति के समान तू (उषसः) उषः काल की (अग्र) पहिली (ज्योतिः) ज्योति के तुल्य (प्रति जागरासि) प्रत्यक्ष सब कामों में जागती रह।

८. हे (पूषन्) वंशपोषक पुरुष! (यस्याम्) जिसमें (मनुष्याः) मनुष्य लोग (बीजम्) बीज-वीर्य को (वपन्ति) बोते हैं: (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरु)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चोन्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन स्वाहा ॥८॥

अथर्व १४।२।२९ ॥

ओं परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे स्वाहा ॥९॥

अथर्व ६।८१।२ ॥

ओं यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति स्वाहा ॥१०॥

अथर्व ६।८१।३ ॥

अपनी ऊरु को सुन्दरता से (विश्रयाति) विशेषकर आश्रय करती है या फैलाती है, (यस्याम्) जिसमें (उशन्तः) सन्तानों की कामना करते हुये हम (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करते हैं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करनेहारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये (एरयस्व) प्रेम से प्रेरणा कर अर्थात् इससे अपने और स्त्री के लिये सन्तान पैदा कर।

८. (या) जो (दुर्हार्दः)* दुःख का हरण करने वाली (युवतयः) जवान स्त्रियां (च) और (याः) जो (इह) इस स्थान में (जरतीः) अनुभवी, वृद्ध स्त्रियां होवें, वे (अपि) भी (अस्यै) इस स्त्री को (नु) शीघ्र (वर्चः) तेज (सं दत्त) देवें (अथ) इसके पश्चात् (अस्तम्) अपने-अपने घर को (विपरेतन) चली जावें। अर्थात् अपना अनुमोदन व मंगलभाव देकर ही वापिस जावें।

९. हे (परिहस्त) हाथ को ग्रहण कर हाथ का सहारा देने वाले नियुक्त पुरुष! (गर्भाय धातवे) गर्भ के धारण कराने के लिये ही (योनिं) स्त्री योनि का (वि धारय) विनियोग कर। और (मर्यादे) हे सन्तानोत्पादन की मर्यादा में बन्धी स्त्री! (त्वं) तू (पुत्रम् आ धेहि) गर्भस्थ सन्तान को भली प्रकार से पुष्ट कर और (तं) उसको (आगमे) प्रसवोचित समय आने पर (आगमय) उत्पन्न कर।

१०. (पुत्रकाम्या) उत्तम सन्तान की कामना करने वाली

---

*दुर्हार्दः=दुःहृत=दुःख का हरण करने वाली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पञ्चम विधि—यज्ञ-समाप्ति]

तत्पश्चात् समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर 'पुनर्विवाह-संस्कार' में उल्लिखित नवम विधि पृष्ठ ४७२ से पृष्ठ ४७३ तक के अनुसार आहुतियां देकर यज्ञविधि समाप्त करें।

[षष्ठ विधि—मङ्गल-कामना]

तत्पश्चात् कार्यार्थ आये लोगों की ओर दोनों अवलोकन करें और हाथ जोड़ निम्न मन्त्र बोलें—

ओम् अमोऽहमस्मि सा त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह संभवाव प्रजामाजनयावहै ॥

मैं प्राणशक्ति सम्पन्न ज्ञानवान् हूं, वह तू रयिशक्ति सम्पन्न ज्ञानवती है। मैं वर्षा करनेहारे सूर्य के समान हूं, तू अग्नि की धारक पृथिवी के समान 'गर्भ' को धारण करने वाली है, हम दोनों यहां परस्पर इकट्ठे हों और [दश] सन्तान [तक] उत्पन्न करें।

और सब जने निम्न मन्त्र से मङ्गल-कामना करें—

ओं प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥*

अथर्व १४।२।३९ ॥

(अदितिः) सन्तानोत्पादन में 'अखण्डित शक्ति' वाली स्त्री ने (यं परिहस्तं) जिस हाथ का सहारा देने वाले पुरुष को (अबिभः) धारण या स्वीकार किया है, (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमात्मा (तं) उस पति को (अबध्नात्) इस स्त्री के साथ नियोग के लिये नियमबद्ध करे, जिससे वह नियुक्त स्त्री (पुत्रं जनाद् इति) अपने और उस पुरुष के लिये सन्तान को उत्पन्न करे।

*(मोदमानौ) प्रसन्नता-पूर्वक एक दूसरे के साथ रहते तुम दोनों (इह) यहां (प्रजां कृण्वाथाम्) अपने-अपने लिये सन्तान को उत्पन्न करो। (सविता) सर्वोत्पादक परमपिता (वां) तुम दोनों की (आयुः) आयु को (दीर्घं कृणोतु) दीर्घ करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ शालाकर्म-विधिः

'शाला' उसको कहते हैं, जो मनुष्य और पश्वादि के रहने अथवा पदार्थ रखने के अर्थ गृह वा स्थान विशेष बनाते हैं (सं० वि० २७५)। मनुष्यों के निवास व अन्य लौकिक नाना व्यवहार साधने के लिये स्थान विशेष बनाये जाते हैं। निवास के निमित्त 'गृह', विद्याध्ययन व अन्वेषणादि के निमित्त **'कलाशाला' 'महा-विद्यालय' 'ग्रन्थालय'** आदि पूजा व धर्म-कर्म के निमित्त **'मन्दिर'** आदि, जन सामान्य के विश्राम व सामाजिक कर्म आदि के निमित्त **'धर्मशाला' 'विवाह स्थल', 'नगर-भवन** [=टाऊन हाल] **'प्रपा'** [प्याऊ] **'चिकित्सालय'** आदि, खान-पान, आमोद-प्रमोद आदि के निमित्त **'भोजनालय'** [होटल] **'विश्रान्तिगृह' 'नाट्य-भवन'** आदि, राज्य-शासनादि कर्मों के निमित्त **'सचिवालय' 'विधानसौध' 'संसद्-भवन'** आदि और इसी प्रकार नाना प्रकार के व्यापारादि के निमित्त **'कारखाना' 'दुकान' 'औषधालय'** आदि विविध शालायें बनाई जाती हैं। शालानिर्माण से सम्बद्ध दो प्रकार के कर्म होते हैं। प्रथम प्रारम्भ करते समय **'शिलान्यास-पद्धति'** और द्वितीय शाला बन जाने पर **'गृह-प्रतिष्ठा व गृह-प्रवेश विधि'** दोनों विधियां आगे लिखी जाती हैं (ग्र० क०)।

शिलान्यास-विधि

[प्रथम विधि—यज्ञ आरम्भ]

जिस दिन शाला का निर्माण प्रारम्भ करना हो, उस दिन सर्व प्रथम 'शिलान्यास' या 'शिलास्थापन' करना-कराना चाहिये। उस दिन प्रातः सूर्योदय के समय, उस स्थल पर यज्ञ-मण्डप करके, पृष्ठ २५ से पृष्ठ १०६ तक लिखे प्रमाणे सामान्य प्रकरणोक्त, **संकल्प-पाठ, ऋत्विग्वरण** से लेकर **आघारावाज्यभागाहुति** पर्यन्त सब विधि करें। यजमान सपत्नीक यज्ञ में वेदी पर पश्चिम-दिशा में पूर्वाभिमुख बैठे। पत्नी पति के दक्षिण में बैठे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय विधि—शिलान्यास या शिलारोहण]

पश्चात् निम्न मन्त्र से एक आहुति देकर—

ओम् अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥[1]

कार्यकर्त्ता गृहपति इष्टमित्र बन्धुबान्धवों के सहित जहां शिला =पत्थर रखना हो, वहां आवे और सर्वप्रथम उस स्थान के मूल में शुद्ध-जल या नारियल के जल से नीचे लिखे चार मन्त्रों से सेचन करे--

ओम् इमामुछ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्द्धारां प्रतरणीं वसूनाम् ।
इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुछ्रयमाणा ॥३॥[2]

इस मन्त्र से पूर्व भाग में,

अश्वाती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ।
आ त्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥२॥[3]

इस मन्त्र से दक्षिण भाग में,

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह ।
आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरुप ।
क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥३॥[4]

इस मन्त्र से पश्चिम भाग में और—

अश्वावद् गोमदूर्ज्जस्वत् पर्णं वनस्पतेरिव ।
अभि नः पूर्यताꣳ रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥४॥[5]

इस मन्त्र से उत्तर भाग के सामने जल छिड़कावे । पश्चात् घर के बड़े=पितृजन भी वहां जलसेचन करे—

पश्चात् उस स्थान विशेष पर, स्वयं यजमान [अथवा शिलान्यास करने वाला पुरुष] पहले सीमेण्ट-रेत-रोड़ी या चूना रोड़ी मिला पदार्थ वहां डाले । फिर यदि, ऐसी पेटिका बनी हो, जिसमें

---

१. पार० गृह्य ३।४।३ ॥
२. पार० गृह्य ३।४।४ ॥
२. पार० गृह्य ३।४।४ ॥
४. पार० गृह्य ३।४।४ ॥
५. पार० गृह्य ३।४।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदचतुष्टय आदि बन्द किये गये हों तथा गृह-परिचय पत्रिका वा परिवार-चित्र हों, उसको उस स्थान पर रक्खें। यह पेटिका अच्छी तरह से बन्द होनी चाहिये, ताकि उसके अन्दर जल या वायु का प्रवेश सर्वथा न हो सके। पश्चात् उस पर पुनः सीमेण्ट-रेता-रोड़ी मिश्रित माल डालें। पश्चात् निम्न मन्त्र से 'भूमि-पूजन' करें—

ओं स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी ॥१॥

यजुः ३५।२१ ॥

पश्चात् निम्न मन्त्र बोल कर, शिलान्यास करें—

ओं स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥२॥

अथर्व १४।१।४७ ॥

[तृतीय विधि—परमेश्वर-उपस्थान]

तत्पश्चात् यजमान परमेश्वर से प्रार्थना करे—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वता इमे शालामिमां ध्रुवां कुरु ॥३॥[1]

---

१. हे पृथिवि ! तू हमारे लिये सुखदा, कष्टशून्य और आश्रय-रूप हो।

२. हे भूमिमातः ! (ते देव्याः पृथिव्याः) तुझ दिव्य गुणमयी पृथिवी की (उपस्थे) गोद में (प्रजायै) अपने सन्तानों अथवा प्रजा-पथ के निमित्त (स्योनं ध्रुवं अश्मानं) सुख-विश्रान्ति के दाता, दृढ़ पत्थर को (धारयामि) स्थापित करता हूं। (अनुमाद्या) जीवन में मस्ती लाने वाली (सुवर्चाः) वर्चस्विनी तू (तम् आतिष्ठ) इस शिला पर अपने को भली प्रकार स्थापित रख। सर्वोत्पादक परमात्मा व सूर्य तेरी आयु को [इस शाला के साथ] लम्बा करे।

३. हे परमेश्वर ! जैसे (द्यौः) सूर्य (ध्रुवा) सदा अविकृत प्रवाह रूप से बनी रहती है; जैसे पृथिवी अपने स्वरूप में तथा धुरी पर स्थिर है; जैसे सब जगत् प्रवाहरूप में स्थिर है, जैसे ये पहाड़ अपनी

---

१. यह ऊहित पाठ-युक्त मन्त्र है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—प्रधान-होम]

पश्चात् सब जने यज्ञ स्थान पर आकर यथापूर्व बैठ जावें और समिधाओं से अग्नि प्रदीपन कर निम्न मन्त्रों से घृत व स्थाली-पाक की आहुति देवें—

ओम् उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि स्वाहा ॥१॥[1]

ओं हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले स्वाहा ॥२॥[1]

स्थिति में स्थिर हैं; वैसे ही मेरी शाला को भी स्थिर करो अर्थात् हे परम मंगलमय प्रभो ! ऐसी आप कृपा कीजिये की मेरी शाला स्थिर रहे ।

१. मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई किसी प्रकार का घर बनावे, तो वह (उपमिताम्) सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त (प्रतिमिताम्) प्रतिमान अर्थात् एक द्वार के सामने दूसरा द्वार कोणे और कक्षा भी सम्मुख हों ऐसी (अथो) और (परिमिताम्) चारों ओर के परिमाण से सम-चौरस शाला बनावें (उत) और (शालायाः विश्व-वारायाः) जिस घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों, (नद्धानि) उसके बन्धन और चिनाई दृढ़ हों । हे मनुष्यो ! ऐसी शाला को (विचृतामसि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित अर्थात् बन्धनयुक्त तुम चिनवाओ ।

२. उस घर में एक (हविर्धानम्) होम करने के पदार्थ रखने का स्थान (अग्निशालम्) अग्निहोत्र या रसोई का स्थान (पत्नीनाम् सदनम्) स्त्रियों के रहने का स्थान (सदः) बैठक और (देवानां) पुरुषों और विद्वानों के रहने, बैठने, मेल मिलाप करने और सभा का (सदः) स्थान अर्थात् पुस्तकालय तथा स्नान भोजन ध्यान आदि का भी पृथक्-पृथक् एक-एक स्थान बनावे । (देवि शाले) हे दिव्य कमनीय शाले ! (असि) इस प्रकार से निर्मित तू सुखदायक होती है ।

---

१. अथर्व ९।३।१, ७ ॥ 'स्वाहा' मन्त्रगत पाठ नहीं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Sri Sri Ma Anandamayi Charitable Trust, Varanasi. Gyaan Kosha

ओम् अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम् । यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै स्वाहा ॥३॥

ओम् ऊर्जस्वती पृथिव्यां निर्मिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः स्वाहा ॥४॥[1]

ओं ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः स्वाहा ॥५॥[1]

---

४. उस शाला में (अन्तरा) भिन्न-भिन्न (पृथिवीम्) शुद्ध भूमि अर्थात् चारों ओर स्थान शुद्ध हों (च) और (द्याम्) जिस में सूर्य का प्रतिभास आवे वैसी प्रकाशस्वरूप शाला बनावे; (च) और (यत्) जो (व्यचः) उस की व्याप्ति अर्थात् विस्तार है; (तेन) उसी से युक्त (इमाम्) इस (शालाम्) घर को हे स्त्री ! (ते) तेरे लिये बनवाता हूं। तू इस में निवास कर और मैं भी (प्रतिगृह्णामि) निवास के लिये इस को ग्रहण करता हूं। (यत्) जो उसके बीच में (अन्तरिक्षम्) पुष्कल अवकाश अर्थात् प्राङ्गण और (रजसः) उस घर का (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त लम्बी ऊंची छत्त अथवा बरसाती और (उदरम्) भीतर का प्रसार विस्तारयुक्त होवे (तत्) उस को (शेवधिभ्यः) सुख के आधाररूप अनेक कक्षाओं के से सुशोभित (अहम्) मैं (कृण्वे) बनवाता हूं। (तेन) उस पूर्वोक्त लक्षण से युक्त (शालाम्) शाला को (तस्मै) उस गृहाश्रम के सब व्यवहारों के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

५. (ऊर्जस्वती) बहुत बलारोग्य पराक्रम को बढ़ानेवाली और धन धान्य से पूरित (पयस्वती) जल दूध रसादि से परिपूर्ण (पृथिव्याम्) पृथिवी में (मिता) परिमाण युक्त (निर्मिता) निर्मित की हुई (विश्वान्नं बिभ्रती) संपूर्ण अन्नादि ऐश्वर्य को धारण करती हुई हे शाले ! तू (प्रतिगृह्णतः) इसको निवास के लिये ग्रहण करने हारों को रोगादि से (मा, हिंसीः) पीड़ित न कर।

५. (कविभिः) उत्तम विद्वान् शिल्पियों द्वारा (मिताम्) प्रमाण-

---

१. अथर्व ९।३।१६, १९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भइवा शये स्वाहा ॥६॥[1]

युक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी (निमिताम्) बनाई हुई (शालाम्) शाला को और (ब्रह्मणा) चारों वेदों के जाननेहारे विद्वान् द्वारा (निमिताम्) बनाई (शालाम्) सब ऋतुओं में सुख देनेहारी शाला को प्राप्त होकर रहनेवालों की (अमृतौ) स्वरूप से नाश रहित (इन्द्राग्नी) वायु और पावक(रक्षताम्) रक्षा करें अर्थात् चारों ओर का शुद्ध वायु आ के अशुद्ध वायु को निकालता रहे और जिस में सुगन्ध्यादि घृत को होम किया जाय, वह दुर्गन्ध को निकाल सुगन्ध को स्थापन करे। वह ऐसा जो (सोम्यम्) ऐश्वर्य आरोग्य दाता सर्वदा सुखदायक (सदः) रहने के लिये उत्तम घर है, उसी को निवास के लिये ग्रहण करे ।

६. हे मनुष्यो ! (या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक ओर पूर्व पश्चिम में एक-एक शालायुक्त घर अथवा (चतुष्पक्षा) जिसके पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर में एक-एक शाला और इनके मध्य में पांचवीं बड़ी शाला वा (षट्पक्षा) एक बीच में बनी शाला और दो-दो पूर्व पश्चिम तथा एक-एक उत्तर दक्षिण में शाला हों (या) जो ऐसी शाला (निमीयते) बनाई जाती है वह उत्तम होती है और इस से भी जो (अष्टापक्षाम्) चारों ओर दो-दो शाला और उन के बीच में एक नवमी शाला हो अथवा (दशपक्षाम्) जिस के मध्य में दो शाला और उनके चारों दिशाओं में दो-दो शाला हों उस (मानस्य) परिमाण के योग से बनाई हुई (शालाम्) शाला को जैसे (पत्नीं) पत्नी को प्राप्त होके (अग्निः) अग्निमय आर्त्तव और वीर्य (गर्भ इव) गर्भरूप होके (आशये) गर्भाशय में ठहरता है, वैसे ही बनाकर गृहस्थों को रहना चाहिये। यदि वह सभा का स्थान हो, तो बाहर की ओर चारों ओर द्वारों में कपाट और मध्य में गोल-गोल स्तम्भे बनाकर चारों ओर खुला बनाना चाहिये कि जिस के कपाट खोलने से चारों ओर का वायु उस में आवे और सब घरों के चारों ओर वायु आनेके लिये अवकाश तथा वृक्ष फल और पुष्करणी कुण्ड भी होने चाहियें, वैसे घरों में सब लोग रहें ।

---

१. अथर्व ९।३।२१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः स्वाहा ॥७॥[1]

ओं मा नः पाशं प्रतिमुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि स्वाहा ॥८॥[1]

[पंचम विधि–विशेष आहुतियां]

पश्चात् व्याहृति की चार आहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदं न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे–इदं न मम ॥

---

७. (प्रतीचीनः) सदा पूर्वाभिमुख जो गृह (प्रतीचीम्) पश्चिम द्वार से रक्षण युक्त (अहिंसतीम्) हिंसादि दोष रहित अर्थात् पश्चिम द्वार के सम्मुख पूर्व द्वार हो, जिसमें ऐसी (हि) निश्चय कर (अन्तः) इसके बीच में (अग्निः) अग्नि का घर (च) और (आपः) जल का स्थान (ऋतस्य) और सत्य के ध्यान के लिये एक स्थान (प्रथमा) प्रथम (द्वाः) द्वार हैं। हे शाले! मैं (त्वा) ऐसी तुझ उस शाला को (प्रैमि) प्रकर्षता से प्राप्त होता हूं।

८. हे शिल्पि-लोगो! जैसे (नः) हमारी यह शाला अर्थात् गृह (पाशम्) बन्धन को (मा, प्रतिमुचः) कभी न छोड़े और जिस में (गुरुर्भारः) बड़ा भार (लघुर्भव) छोटा होवे, वैसी बनाओ। (शाले त्वा) ऐसी उस तुझ शाला को (यत्रकामम्) जहां जैसी कामना हो, वहां वैसी हम लोग (वधूमिव) स्त्री के समान (भरामसि) स्वीकार करते हैं,[2] वैसे तुम भी ग्रहण करो।

---

१. अथर्व ९।३।२२, २४ ॥

२. 'भरामसि' का दूसरा अर्थ 'दूसरे स्थान पर ले जाते हैं' भी है। इस सूक्त के १७वें मन्त्र में शाला का विशेषण 'पद्वती' (पैरों वाली) भी है और इसी पक्ष में 'गुरुर्भारो लघुर्भव' कथन युक्त होता है। अर्थात् इस मन्त्र से गतिशील एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकने योग्य शाला बनाने का भी विधान है। ऐसा समझना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदं न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥

ये चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत् होमाहुति एक दें—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

आश्व० गृह्य०

पश्चात् प्राजापत्याहुति मन्त्र को मन में बोल के दें—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।

पश्चात् मङ्गल अष्टाज्याहुति दें—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥२॥ ऋ० ४ । १ । ४, ५ ॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।

त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥ ऋ० १ । २४ । ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः —इदन्न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५।१।११ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदन्न मम ७॥ ऋक् १।३४।१५ ॥

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम ॥८॥

यजु० अ० ५। मं० ३।

षष्ठ विधि—पूर्णाहुति, यज्ञसमाप्ति]

पुनः निम्न मन्त्र से तीन पूर्णाहुति यथाविधि देवें—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

पश्चात् पृष्ठ १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त वामदेव्य गान करके, विद्वान् ऋत्विग् पुरोहित का उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करे। पश्चात् जो इष्ट-मित्र बन्धु-बान्धव आये हों, उनको भी सत्कारपूर्वक विदा करें।

मंगलकामना

जाते समय सब सज्जन निम्न मन्त्रों से यजमान के लिये मंगलकामना करें—

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।

यजमान की गृहसम्बन्धी सब कामनायें सत्य सिद्ध हों।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वादमानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! इस यजमान के लिये उत्तम धन, चातुर्य की बुद्धि, सौभाग्य, धनों की वृद्धि, उत्तम आरोग्य, मधुरवाणी और अच्छे दिन अपनी कृपा से प्राप्त करा ।

गृहप्रवेश-संस्कार

पूर्वोक्त मन्त्रों के प्रमाणों के अनुसार जब शाला या घर बन चुके, तब प्रवेश करते समय क्या-क्या विधि करना, सो नीचे लिखे प्रमाणे जानो ।

तब [सबसे प्रथम] घर की शुद्धि-सफाई अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं में बाहरले द्वारों में चार वेदी और एक वेदी घर के मध्य में बनावे । अथवा तांबे का एक कुण्ड ले लेवे कि जिससे सब ठिकाने एक कुण्ड ही में काम हो जावे । गृहप्रवेश से सम्बद्ध सब प्रकार की सामग्री पृष्ठ १९-२० में लिखे प्रमाणे संग्रह कर प्रथम दिन रख लेवे । जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन में गृहप्रतिष्ठा अर्थात् नये घर में प्रवेश करे (सं० वि० २८१ के अनुसार) ।

गृह प्रवेश संस्कार के कराने के लिये यह विशेष है कि 'ऋत्विज् होता अध्वर्यु और ब्रह्मा' चारों गृहस्थ धार्मिक विद्वानों का वरण करना चाहिये । उनके लिये पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे नियत आसनों पर चारों ऋत्विग् पुरुषों को बैठावे और गृहपति अपनी पत्नी सहित पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठे । पत्नी पति के दक्षिण बाजू बैठे । ऐसे ही घरके मध्य में बनी वेदी के चारों ओर भी दूसरे आसन बिछा रखे ।

[प्रथम विधि—ध्वजस्थापन, गृहप्रवेश]

पश्चात् निष्क्रम्यद्वार, जिस द्वार से मुख्यतः निकलना और प्रवेश करना होवे अर्थात् जो मुख्य द्वार हो, उस के समीप ब्रह्मा सहित यजमान बाहर ठहर कर—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥१॥[1]

इस से एक आहुति देकर, ध्वजा का स्तम्भ जिसमें [अ ो-] ध्वजा लगाई हो, खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर वैसी ही चार ध्वजा खड़ी करे। तथा कार्यकर्त्ता गृहपति स्तम्भ खड़ा कर के उसके मूल में शुद्ध जल या नारियल के जल से सेचन करे, जिससे वह दृढ़ जमी रहे।

पुनः द्वार के सामने बाहर जाकर निम्न चार मन्त्रों से—

ओम् इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्द्धारां प्रतरणीं वसूनाम्।
इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षयमाणा ॥२॥[2]

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने,

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय।
आ त्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥३॥[3]

इस मन्त्र से दक्षिण द्वार के सामने,

---

१. (अच्युताय) न गिरने वाले स्थिर (भौमाय) भूमि में गड़े ध्वज के [रक्षण के] लिये (स्वाहा) हमारी यह सुष्ठु क्रिया और सत्य संकल्प है।

२. मैं (इमां) इस (भुवनस्य नाभिं) 'वसुधैव कुटुम्बकं' अर्थात् पृथिवी की केन्द्ररूप (वसोर्धारां) धनधान्य से भरी धारा और (प्रतरणीं वसूनां) जीवनवास की आधारभूत वस्तुओं को देने वाली शाला को (उत्+श्रयामि) अपना आश्रय बनाता हूं। (इहैव) यहीं पर मैं (ध्रुवां शालां) ध्रुव शाला [=मजबूत घर] को (निमिनोमि) बनाता हूं। (घृतं उक्षयमाणा) मेरे पोषण के लिये घृतादि [द्रव्यसमुदाय] को सींचती=देती हुई यह शाला (क्षेमे तिष्ठतु) स्वयं भी क्षेम में अर्थात् विघ्न-बाधाओं से रहित स्थिति में खड़ी रहे।

३. हे शाले! (महते सौभगाय) इस गृहपति यजमान के महान् सौभाग्यवर्धन के लिये अर्थात् सर्वविध अभ्युदय के लिये तू

---

१. पार० गृह्य ३।४।३ ॥ २. पार० गृह्य ३।४।४ ॥
३. पार० गृह्य ३।४।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह ।
आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरुप ।
क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥४॥[1]

इस मन्त्र से पश्चिम द्वार के सामने और

(अश्वावती) घोड़े आदि वाहक पशुओं से भरी हुई (गोमती) दूध देने वाले गवादि से युक्त और (सूनृतावती) सद् व्यवहार युक्त होती हुई (उच्छ्रयस्व) उत्तम आश्रय वाली बन अर्थात् तुझ में घोड़े, गाय आदि पशु सदा रहें और तेरे भीतर कभी कोई असत्य व्यवहार= निन्द्य कर्म न हो। (त्वा आ) तेरी ओर आवे [प्रसन्नता से] (अक्रान्दतु) आक्रन्दन करता हुआ अर्थात् उल्लासभरा बच्चा और दौड़ती (वाश्यमानाः) बोलती-चिल्लाती=रम्भाती (धेनवः गावः) दूध देने वाली गौवें आवें। अर्थात् इस घर में बच्चों की किलकारियां व गवादि का रम्भाणा सदा होता रहे।

४. (त्वा आ) तेरे पास आवे (तरुणः कुमारः) तरुण कुमार, (आ) आवे तेरी ओर (जगदैः सह) रम्भाने की ध्वनियों के साथ (वत्सः) छोटा बछड़ा या चीखों के साथ छोटा बच्चा। (त्वा आ) तेरे चारों ओर रहें (आदध्नः परिस्रुतः) दूध-दही पूर्ण व चुआने वाला (कुम्भः) घड़ों का ढेर (कलसैः) धन-धान्य भरे कलशों से युक्त रहे। (उप) तेरे अन्दर (बृहती) बड़े ज्ञान वाली (सुवासाः) उत्तम वस्त्रादि से सुभूषित (क्षेमस्य पत्नीः) सबके 'क्षेम' का पालन करने वाली गृहलक्ष्मी। हे (सुभगे) सौभाग्यवर्षिणि शाले! तू (नः) हम सबके लिये (सुवीर्यं रयिं) सामर्थ्य=प्रभावोत्पादक व प्रतिपालक धनैश्वर्य को (धेहि) धारण करा। भाव यह है कि घर किशोर बालक, छोटे बच्चे खेलें; भरे हुए पानी के घड़े और अच्छे वस्त्र धारे सबकी क्षेमकारिणी गृहपत्नी दूध-दही के कलश लिये आवे। इस सौभाग्य-कारिणी शाला से हमें बलशाली धन की प्राप्ति होती रहे। अथवा.....यह शाला (उप कलशैः) दूध-दही के घड़ों से भरी रहे, (क्षेमस्य पत्नी) सब के क्षेम का ध्यान रखने वाली हो, (बृहती) सब को बढ़ाने वाली हो और (सुवासाः) उत्तम रंगों से रंगी व अलंकृत पर्दों से सुभूषित=वेलफर्निश्ड हो।

---

१. पार० गृह्य ३।४।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अश्वावद् गोमदूर्जस्वत् पर्णं वनस्पतेरिव ।
अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥५॥[1]

इस मन्त्र से उत्तर द्वार के सामने जल छिटकावे ।

तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदली स्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगा के पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन् ! प्रविशामि ॥६॥[2]

ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्मा—

वरं भवान् प्रविशतु ॥७॥[3]

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से—

ओम् ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ॥८॥[4]

इस वाक्य को बोल कर भीतर प्रवेश करे । उस समय

---

५. (अश्वावत्) अश्वादि वाहनों से युक्त (ऊर्जस्वत्) सर्वविध शक्ति सामर्थ्ययुक्त (इदं) यह घर (वसानः) सबको आश्रय देता व (अनुश्रेयः) सब के श्रेय के अनुकूल हुआ (नः) हमें (रयिः अभि पूर्यतां) इस प्रकार चारों ओर से धन देवे, (वनस्पतेः इव पर्णं) जैसे वृक्ष के पत्ते में रस सब ओर से आता है ।

६. हे ब्रह्मन् ! [आपकी अनुज्ञा हो, तो] मैं घर में प्रवेश करता हूं ।

७. (वरं) बड़ी अच्छी बात है, आप प्रसन्नता से प्रवेश करें ।

८. मैं [गृह में प्रवेश करता हुआ] (ऋचं) प्रशंसा [=नेकनामी=यशोगाथा] को प्राप्त कर रहा हूं;[5] (शिवं) सुख-शान्ति को प्राप्त हो रहा हूं ।[6]

---

१. पार० गृह्य ३।४।४ ॥ २. द्र० पार० गृह्य ३।४।५ ॥
३. द्र० पार० गृह्य ३।४।६ ॥ ४. ब्रह्मणानुज्ञातः । पार० गृह्य ३।४।६ ॥
५. द्र० ऋषि दयानन्द कृत ऋग्भाष्य ५।६।५ ॥ सब ओर मेरी प्रशंसा हो रही है ।
६. द्र० ऋषि दयानन्द कृत ऋग्भाष्य १।३।१ तथा १।१८७।३ ॥ शिव इति सुखनाम निघ० ३।६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[द्वितीय विधि—यज्ञ प्रारम्भ]

'सुगन्धमिश्रित घृतपात्र' को भी गृहपति प्रवेश के समय साथ लावे। और पृ० २६ से पृ० १०९ पर लिखे प्रमाणे सब विधियां, आचमन अङ्गस्पर्श.....आग्न्याधान से लेके स्विष्टकृत् आहुति पर्यन्त सब विधि, चारों दिशाओं में निर्मित द्वारस्थ वेदियों में करें।

[तृतीय विधि—चतुर्दिक् कुण्डों में विशेष आहुतियां]

पश्चात् पूर्व दिशा द्वारस्थ कुण्ड में निम्न दो मन्त्रों से,

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥१॥

निम्न दो मन्त्रों से दक्षिण द्वारस्थ वेदी में,

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥२॥

निम्न दो मन्त्रों से पश्चिम द्वारस्थ वेदी में—

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥३॥

निम्न दो मन्त्रों से उत्तर दिशा द्वारस्थ कुण्ड में दो आज्याहुति देवे—

---

१. (शालायः) इस शाला की (प्राच्यादिशः) पूर्व दिशा की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो और (स्वाहा) प्रशंसा हो। इस पूर्व दिशा के (स्वाह्येभ्यः) प्रशंसनीय, पूजनीय व सद्व्यवहार योग्य (देवेभ्यः) देवों के लिये (स्वाहा) यह आहुति समर्पित है। भाव यह है कि इस शाला की पूर्व दिशा में महिमा बढ़ाने के लिये हम सुष्ठु क्रिया करें।

२. .....दक्षिण दिशा की०.....दक्षिणदिशास्थ.....देवों०।

३. .....पश्चिम दिशा की०.....पश्चिमदिशास्थ...देवों०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥४॥

पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जाके स्व-स्व दिशा में यजमान और सब ऋत्विक् बैठ के निम्न छ मन्त्रों से मध्य वेदी में छ आज्याहुति देवें—

ओं ध्रुवायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥५॥

ओम् ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥६॥

ओं दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ।
ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥७॥[1]

[चतुर्थ विधि—कलश-स्थापन]

पुनः पूर्व दिशास्थ द्वारस्थ वेदी में अग्नि को प्रज्वलित करके ब्रह्मा तथा होता आदि के लिये पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा, उसी

---

४. ……उत्तर दिशा की०……उत्तर दिशास्थ…देवों के० ।

५. ……ध्रुवा अर्थात् पाताल दिशा की०……ध्रुवा दिशास्थ देवों के०…… ।

६. …… ऊर्ध्वा अर्थात् ऊपर दिशा की०……ऊर्ध्वा दिशास्थ देवों के०…… ।

७. इस शाला की (दिशः दिशः) सब दिशाओं की महिमा बढ़ाने के लिये हम (नमः) अन्न=दान व देवों का सत्कार करें; (स्वाहा) सद् व्यवहार करें। सब दिशाओं में वर्त्तमान पूजनीय आप्त धर्मात्मा परोपकारी विद्वानों के लिये (स्वाहा) सदा सुवचन और सत्क्रिया करें व समर्पण करें।

---

१. ये सब मन्त्र अथर्व० ९।३।२५-३१ तक द्रष्टव्य हैं। वेद में 'स्वाह्येभ्यः' पर्यन्त एक मन्त्र है। उसके यहां दो-दो विभाग किए हैं। 'स्वाहा' पद मन्त्र से बहिर्भूत है। 'स्वाह्येभ्यः' में स्वरभेद उसके कारण किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदी के उत्तर भाग में एक कलश स्थापन कर, स्थालीपाक को भी समीप रक्खे।

[पञ्चम विधि—गृह मध्यशाला में विशेष यज्ञ]

पुनः 'मुख्य प्रवेशद्वार' से पृथक् जो निष्क्रमण द्वार हो, उस निष्क्रमणद्वार के समीप सपत्नीक जा, वहां ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति, मध्यशाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठके, संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान, जिसमें कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्र में लेके सब ऋत्वजों के सामने एक-एक पात्र भर के रक्खे और निम्न चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देवें—

ओं वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा १॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व स्वाहा २॥

---

१. हे (वास्तोः) निवास कराने वाले गृह के (पते) स्वामी गृहस्थ यजमान! (अस्मान्) हम लोगों को (प्रति जानीहि) प्रत्येक अर्थात् एक-एक करके जानो अर्थात् एक-एक का [उनके 'गुण कर्म स्वभाव रुचि' के अनुसार] ध्यान रख। (नः) हमारे लिये (सु+आवेशः) सुखपूर्वक=सुगम सब ओर से प्रवेश देने वाले अर्थात् जिसके शासन में गृह के सब सदस्यों का घर में प्रवेश निर्भय होता है, ऐसा (अनमीवः) कष्ट न देने वाला अथवा रोगादि से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो। (यत्) जिस कारण व कामना से जहां हम (त्वा) तुझे (ईमहे) प्राप्त हों, (तत् नः प्रति जुषस्व) उसको हमारे प्रति प्रदान कर। (नः) हम लोगों के (द्विपदे) दोपाये भृत्य-पुत्रादि जनों के लिये और (चतुष्पदे) चौपाये गाय अश्व आदि के लिये (शं भव) सुख कल्याणकारी हो।

२. हे (इन्दो वास्तोष्पते!) आनन्द देने वाले गृहपते! तू (प्रतरणः) प्रकृष्टता से दुःखों संकटों से तारने वाला और (गोभिः अश्वेभिः) गौ व घोड़े आदि से (गयस्फानः) गय अर्थात् घर व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ३॥
ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० १-३ ॥[1]

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥४॥
ऋ० मं० ७ । सू० ५५ । मं० १ ॥[1]

जीवन की वृद्धि करने वाला होकर (नः एधि) हमें प्राप्त हो। (ते सख्ये) तेरी मित्रता में हम (अजरासः स्याम) कभी जीर्ण-शीर्ण न होने वाले अर्थात् सदा उत्साह व बल से युक्त होवें। तू (नः) हमें (पिता इव पुत्रान् जुषस्व) पिता जैसे पुत्रों को सेवता है, वैसे सेवो। अर्थात् जैसा पिता पुत्रों की रक्षा करता है, वैसे ही हमारी प्रीति-पूर्वक रक्षा कर।

३. हे वास्तोष्पते ! हम (ते) तेरी (शग्मया संसदा) सुखरूप संगत=सहवास से अथवा सुखदायिनी स्थिति और (रण्वया गातु-मत्या) रमणीय जीवन व्यवहार से (सक्षीमहि) सदा सम्बन्ध करें। (क्षेमे) क्षेम अर्थात् निवास व रक्षण में (उत) और (योगे) अप्राप्त वस्तु के प्राप्त कराने रूप व्यवहार में (नः वरं पाहि) हमारी भली प्रकार अर्थात् पूरी रक्षा करो। हे विद्वानो ! (यूयं) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखादिकों अथवा सुस्थिति प्रापक साधनों द्वारा (सदा नः पात) सदैव हम लोगों की रक्षा करो।

४. हे वास्तोष्पते ! (विश्वा रूपाणि) घर में नाना प्रकार के रूपों=व्यवस्थाओं=क्रमों को (आविशन्) पूरी तरह से प्रवेश कराते हुए अर्थात् घर की सब प्रकार की व्यवस्था करते हुए तू (अमीव+हा) रोग हरने वाला (सखा) मित्र और (सु+शेवः) सुन्दर सुखों का दाता बनकर (नः एधि) हमें प्राप्त हो अर्थात् हमारे साथ रह।

---

१. 'स्वाहा' पद मन्त्र से बहिर्भूत है। उसके योग से अन्तिम अक्षर में स्वर भेद होता है, तदनुसार यहां कर दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[षष्ठ विधि—स्थालीपाक आहुतियां]

जो स्थालीपाक अर्थात् भात बनाया हो उसको दूसरे कांसे के पात्र में लेके उस पर यथायोग्य घृत सेचन करके अपने-अपने सामने रक्खे और पृथक्-पृथक् थोड़ा-थोड़ा लेकर निम्न छ मन्त्रों से उसकी छ आहुति देवें।

ओम् अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वांश्च देवानुपह्वये ।
सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥१॥

सर्पदेवजनान्त्सर्वान् हिमवन्तं सुदर्शनम् ।
वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह ।
एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥२॥

पूर्वाह्णमपराह्णं चोभे मध्यन्दिना सह ।
प्रदोषमर्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम् ।
एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥३॥

ओं कर्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन् ।
एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥४॥

---

१. मैं अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, सरस्वती, वाजी इन सब देवों [दिव्य भौतिक शक्तियों] का स्मरण करता हूं। ये सब (मे वास्तु) मेरे घर को (वाजिनः) अन्न-धन-बल से (स्वाहा) प्रशंसनीय बनावें।

२. सब (सर्पदेवजनान्) विषविद्या-शास्त्रियों (सुदर्शनं हिमवन्तं) सुदर्शन जलचिकित्सक, वसु, रुद्र, आदित्य, ईशान सबको (जगदैः सह) इनकी विद्या-वाणियों के साथ मैं प्राप्त करूं अर्थात् इनका लाभ मिले। ये सब मेरे घर को धन-अन्न-बल से युक्त करें।

३. प्रातःकाल, सायंकाल, मध्याह्न, तीसरे पहर, सूर्यास्त की वेला तथा अर्धरात्रि (च) और (व्युष्टां देवीं महापथाम्) प्रकाशमयी देवी उषा, ये सब मुझे क्रम से प्राप्त हों……। अर्थात् सब समयों में मेरे घर में सुख-समृद्धि बनी रहे।

४. घर के बनाने वाले (कर्त्तारं) राजमिस्त्री मजदूर (विक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह ।
एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥५॥

स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती ।
सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥६॥[1]

[सप्तम विधि—'पत्र-तृण-गोमय-मधु-यव मिश्रित' पदार्थ से चतुर्दिक् प्रोक्षण]

कांस्यपात्र, उदुम्बर=गूलर और पलाश के पत्ते, शाड्वल=तृणविशेष[2], गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को लेके उन सब वस्तुओं को मिलाकर, गृहपति वेदी से उठकर बाहर जाकर—

त्तारं) सजाने वाले, रङ्ग करने वाले व माली आदि (विश्वकर्माणं) नक्शानवीस ठेकेदार आदि यावन्मात्र शिल्पी (च) और (वनस्पतीन् ओषधीन्) वनौषधियां, इन सब की मुझें प्राप्ति हों०··· ।

५. (धातारं) रक्षक पोलिस सैनिक आदि को (विधातारं) व्यवस्था के सम्पादक नीति मर्यादा के रक्षक [विधायक] आदि को (च) और (निधीनां च पतिं सह) धनैश्वर्य के स्वामी के साथ अन्य शासकवर्ग को, इन सब को०··· ।

६. (ब्रह्मप्रजापती) वीर्य और प्राण मुझे (इदं) पद (स्योनं शिवं) सुख मङ्गलकारी=अमन-चैन देने वाले (वास्तु) घर को (दत्तं) देवें और (सर्वाः देवताः) सब दिव्य शक्तियां=इन्द्रिय भी इस घर को सुख-शान्ति देने वाला बनावें। अथवा (ब्रह्मप्रजापती) ज्ञान व जीवनी शक्ति तथा स्वदेवता मेरे घर को सुख-शान्तिमय बनाने की कृपा करें।

---

१. पार. गृह्य ३।४।८ ॥

२. शाड्वल का अभिप्राय ही 'तृणविशेष' से प्रकट किया है। पारस्कर ८।४।९ की व्याख्या में शाड्वल का अर्थ 'दूर्वा' अर्थात् 'दूब' किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे संधौ गोपायेताम् ॥१॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे संधौ गोपायेताम् ॥२॥

इस से दक्षिण द्वार

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे संधौ गोपायेताम् ॥३॥

इस से पश्चिम द्वार और

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे संधौ गोपायेताम् ॥४॥[1]

इस से उत्तर द्वार के समीप उन को बखेरे और जल-प्रोक्षण भी करें।

---

१. हे यजमान गृहपते ! इस घर की (पूर्वे सन्धौ) पूर्व दिशा में (त्वा) तुझे (श्रीश्च यशश्च) 'श्री'[2] और 'यश'।

२. (दक्षिणे सन्धौ) दक्षिण दिशा में तुझे 'यज्ञ' और 'दक्षिणा'।

३. (पश्चिमे सन्धौ) पश्चिम दिशा में तुझे 'अन्न' और (ब्राह्मणः) ब्रह्मनिष्ठ याजक स्वाध्यायशील परोपकारी गृहाश्रमी विद्वान् अथवा जङ्गल में पढ़ाने और योगाभ्यास करानेहारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् गृहस्थ या वानप्रस्थ व वनवासी तथा ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी [स. वि. ३३६]०[3]...और।

४. (उत्तरे सन्धौ) उत्तर दिशा में तुझे (ऊर्क्) बल-पराक्रम[4]

---

१. पार० गृह्य ३।४।१०-१३ ॥

२. 'श्री' पद के अर्थ धन शोभा—ऋक् ५।५६।६, राज्य लक्ष्मी—यजुः २०।७२ तथा लक्ष्मी, भोग—ऋक् १।४३।७ होते हैं। 'श्री' उस प्रकार के ऐश्वर्य को कहते हैं, जो मनुष्य के जीवन का 'आश्रय'=आधार है। बैंक में जमा धन या किराये पर उठाये मकान 'श्रीः' नहीं।

३. 'ब्राह्मण' पद का अर्थ नवसमाज की वर्णव्यवस्थान्तर्गत 'ब्राह्मण' यह सर्व विदित है। इस पद का अर्थ 'संन्यासी', ऋषि दयानन्द ने सं० वि० पृष्ठ ३५८ पर किया है। 'ब्राह्मण' का अर्थ 'ब्रह्म जानाति' अर्थात् ब्रह्मवित् ब्रह्मवेत्ता यह होता है। इससे ब्रह्म के अन्वेषण में रत योगाभ्यासी... वानप्रस्थ [सं० वि० ३१८] यह अर्थ भी किया है।

'ब्रह्म नयती' ति ब्राह्मणः। (ऐतरेये)।

४. द्र० यजुः का ऋषिभाष्य १७।१ तथा ४।१० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अष्टम विधि—परमेश्वर का उपस्थान]

*अग्निः केताऽऽआदित्यः सुकेता, तौ प्रपद्ये, ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥१॥

इस से पूर्व दिशा में पूर्वभिमुख हो परमात्मा का उपस्थान करके,

अथवा अन्नप्रद शिल्पविद्या और (सूनृता) सुष्ठु यथार्थ ज्ञान वाली वाणी अर्थात् प्रियसत्य प्रकाशिका वाणी[1] (गोपायेताम्) रक्षा करें।

भाव यह है कि (क) "पूर्व दिशा में इस घर की श्री व यश द्वारा, दक्षिण दिशा में यज्ञ व दक्षिणा द्वारा, पश्चिम दिशा में अन्न व ब्राह्मण [=अतिथि] द्वारा और उत्तर दिशा में बल और सत्य-व्यवहार द्वारा रक्षा होती रहे।" (ख) इस घर में पूर्व द्वार से श्रीमन्त व यशोवन्त लोग, दक्षिण द्वार से यज्ञकर्त्ता व दक्षिणावान् पुरुष, पश्चिम द्वार से अन्नदाता कृषक व विद्वान् अतिथि और उत्तर द्वार से पराक्रमी वीर व वाणी-चतुर अर्थात् गाने-बजाने वाले कलाकार सदा आते रहें और उस घर की नीति-मर्यादा के पालक-पोषक बनें।"

१. (अग्निः केता) अग्रनायक गृहस्थ-ज्ञानी अथवा भूमि पर आश्रय देने वाला पार्थिव अग्नि=तथा (आदित्यः सुकेता) आदित्य ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता संन्यासी अथवा शरीर में प्राण धारण कराने वाला सूर्य है। (तौ प्रपद्ये) मैं गृहपति दोनों का सेवन करता हूं। (ताभ्यां नमः) इन दोनों ज्ञानी-विज्ञानी को मैं अन्न व सत्कार द्वारा नमस्कार करता हूं। (तौ) वे दोनों (मा पुरस्तात्) घर के सामने की ओर से मेरी रक्षा करें।

---

*'केता च सुकेता०...' से लेकर 'अस्वप्नश्च मा...' पार० गृह्य सू० ३।४।१४-१७ तक के वचनों को हमने परिवर्तित किया है। इतना कि इनमें से जो 'व्याख्यान मिश्रित' पद थे (द्र० रा० ला० क० ट्र० सं० वि० पृष्ठ २८८ टि० ३) उन्हें निकाल दिया। भाव में न अपूर्णता आई है और न कुछ नवीन भावों का प्रवेश हुआ है। विनियोग शुद्धता के लिये ऐसा किया है।

१. द्र० ऋग् का ऋषिभाष्य ऋक् १।८।८; १।१३५।७; ६।४८।२०; ७।३७।३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

*अहः गोपायमानं रात्री रक्षमाणा, ते प्रपद्ये, ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥२॥

इस से दक्षिण द्वार के सामने दक्षिणाभिमुख होके जगदीश का उपस्थान करके,

*अन्नं दीदिविः प्राणो जागृविः, तौ प्रपद्ये, ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चात् गोपायेताम् ॥३॥

इस से पश्चिम द्वार के सामने पश्चिमाभिमुख होके, सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके,

*चन्द्रमा अस्वप्नो वायुरनवद्राणः, तौ प्रपद्ये, ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेताम् ॥४॥

---

२. (अहः) दिन गोपायमान=पोषण करता हुआ और (रात्री) रात रक्षमाणा=रक्षण करती हुई है। (ते) इन दोनों को प्राप्त होता हूं। इन दोनों समयों का (नमः) सदुपयोग करता हूं। वे दोनों दाहिनी ओर से०…।

३. (अन्नं) अन्न अर्थात् धान्य शाक ओषधि वनस्पति आदि (दीदिविः) शारीरिक तेजोत्पादक है और (प्राणः) प्राणशक्ति (जागृविः) चैतन्यदायक अर्थात् स्फूर्तिदायक है।०……पिछली ओर से०……।

४. (चन्द्रमा) चन्द्रमा [भोग व रति का कारण होने से] (अस्वप्नः) मानों अनिद्रा है, स्त्री-पुरुषों को सोने नहीं देता और (वायुः) अन्तरिक्षस्थ वायु [आनन्द-विहार का कारण होने से] (अनवद्राणः=न+अव+द्राणः) मानो जागरण है, अथवा चन्द्रमा का प्रकाश और वायु की गतिशीलता दोनों, जागृति के कारण हैं। भाव यह है कि गृहपति के लिये आराम के समय भी जागरूकता व सावधानता की आवश्यकता है, ताकि चौरादि से रक्षण होता रहे।० ….. बाईं ओर से०……

---

*पाठ के लिये देखो पृष्ठ ५०३ की * चिह्नाङ्कित टिप्पणी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्मस्थूणाराजꣳ [1]श्रीसूर्यामहोरात्रे द्वारफलके। इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह। यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणः साधुसंमतः[2]। त्वा शाले [नमोऽस्तु] सखायोऽरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः॥[3]

---

५. (धर्मस्थूणाराजं)[4] धर्मरूपी [आधार] स्तम्भ या धन से विराजित मुख्य द्वार को (श्रीसूर्यां) 'श्री' रूपी उषा के प्रकाश को, (अहोरात्रे द्वारफलके) रात और दिन रूप दो द्वार पटों को तथा (इन्द्रस्य गृहाः) वृष्टि[4] के घर अर्थात् जिन पर ऋत्वनुसार वर्षा होती है अथवा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यशाली गृहपति के (वसुमन्तः वरूथिनः)[4] धनधान्य युक्त व अङ्गारगुप्ति[5] अथवा बचाऊ जङ्गलों[6] से सुसज्जित जो (गृहाः) घर हैं, (तान्) इन सब को (प्रजया पशुभिः सहः) बाल-बच्चों, इष्ट-मित्रों व गवादि पशुओं के साथ और (यत् किञ्चित्) जो कुछ (मे उपहूतः अस्ति) मेरे पास

---

१. 'श्रीसूर्याम्' के स्थान पर, माघ संवत् १९७३ में स्वामी-यन्त्रालय, मेरठ द्वारा प्रकाशित तथा बाम्बे मैशिन प्रेस, लाहौर से राजाराम शास्त्री द्वारा प्रकाशित पारस्कर गृह्य सूत्र की प्रतियों व अन्य प्रतियों में 'श्रीस्तूपं' पाठ है। अर्थ-क्रम को देखते हुये 'श्रीस्तूप' पाठ ज्यादा समीचीन है। स्तूप का अर्थ है—'कुछ रखने का स्थान या टीला, ढेर'। श्रीस्तूपं=श्री रूप धान्यादि रखने के ढेर को।

२. पार० गृह्य ३।४।१८ में 'सर्वगणसखायसाधुसंवृतः' पाठ मिलता है। ब्लूमफील्ड ने 'सर्वगणः सखायः साधुसंवृतः' पाठ उद्धृत किया है। पारस्कर का मुद्रित पाठ अशुद्ध है, यह एक-पद पक्ष में 'सखाय' शब्द से ही स्पष्ट है। हमने पाठ को यथासंभव शोधा है।

३. पार० गृह्य ३।४।१८ में 'श्रीस्तूपमहोरात्रे' पाठ हैं।

४. इन अर्थों के लिये, द्र० आप्ट का संस्कृत-हिन्दी कोष (सन् १९६६)।

५. अङ्गर गुप्ति=अग्नि प्रमाद से रक्षित किये जाने योग्य साधनों से युक्त=फायरप्रूफ।

६. जङ्गलों=वाल्कनी, मुण्डेर अथवा घर के चारों ओर की प्रहरी या दीवार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इससे उत्तर दिशा में उत्तराभिमुख खड़े रहके, सर्वाधिष्ठाता परमात्मा का उपस्थान करें।

[नवम विधि—विशेष आहुतियां, यज्ञ-समाप्ति पूर्णाहुति][1]

पश्चात् मध्यशाला में जो वेदी हो, वहां आकर समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर, पूर्वोक्त शिलान्यास-विधि में पृष्ठ ४९०-४९१ पर लिखित 'ओं त्वं नो०…' की आष्टाज्याहुति देकर—

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥

से तीन पूर्णाहुति दें, पृष्ठ १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करके, सुपात्र वेदवित् धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन करा, यथायोग्य सत्कार करके ऋत्विजों को दक्षिणा दे, पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नतापूर्वक विदा करें और वे जाते समय गृहपति और गृहपत्नी आदि को—

सर्वे भवन्तोऽत्राऽऽनन्दिताः सदा भूयासुः ।
स्वर्यन्तु यजमानाः ॥

आप यहां 'अभ्युदय और निःश्रेयस' को प्राप्त करें।

संगृहीत है (सर्वगणः) जो मेरा 'कुल' है (साधुसंमतः) और साधुजनों के पसन्द का है, इन सबके साथ (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं। (शाले तां त्वा) हे शाले! उस ऐसी तुझको मेरा नमस्कार है। हे परमात्मन्! तेरे अनुग्रह और हमारे पुरुषार्थ से (नः गृहाः= गृहस्थाः सदस्याः स्त्रियो वा) हमारे परिवार के जन व स्त्री मण्डल सब (सर्वतः) सब ओर से, पूर्णतः (सखायः) परस्पर मित्रभावयुक्त व (अरिष्टवीराः)[2] हिंसारहित वीर सन्तानों वाले अर्थात् परस्पर हिंसायुक्त कलह-विवाद का व्यवहार न करने वाले वीर पुत्रों से युक्त (सन्तु) होवें।

---

१. ऋषि दयानन्द ने इस 'शाला-कर्म'=गृहप्रवेश में यज्ञ की समापन-विधि का उल्लेख नहीं किया। हमने अन्य संस्कारों की तरह इसका भी विधान कर दिया है। यज्ञयागादि की सामान्य विधि के अनुसार स्थालीपाकाहुतियों के पश्चात् यज्ञ-समाप्ति यथाविधि होनी ही चाहिये।

२. द्र० ऋषिकृत ऋग्भाष्य १।११४।३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥

ऋक् ७।५५।५ ॥

इस घर में माता, पिता, कुत्ता व रखवारा, घर वालों का बड़ा रक्षक बुजुर्ग सब सम्बन्धी जन और अड़ोस-पड़ोस के जन सुख की नींद सोवें।

इस प्रकार आशीर्वाद दे के, अपने-अपने घर को जावें।

इस प्रकार गृहादि की रचना करके गृहाश्रम में जो अपने-अपने वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य-कर्म हैं, उन-उन को यथावत् करे।

उपवन बाग-बगीचास्थापन विधि

इसी प्रकार आराम अर्थात् उपवन बाग-बगीचे, आदि की भी प्रतिष्ठा करें। इसमें इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु बगीचे को जावे, उसी ओर होम करे कि जिसका सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे। यदि उसमें घर बना हो, तो शाला के समान उसकी भी प्रतिष्ठा करे।

प्रपा-स्थापन-विधि

शास्त्रों में 'इष्ट' और 'पूर्त्त' दो प्रकार के धार्मिक-परोपकार के वैदिक कृत्य माने गये हैं। इनमें 'अग्निहोत्र, तप, सत्याचरण, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, आतिथ्य तथा बलिवैश्वदेव में सब 'इष्ट' और वापी-कूप-तड़ाग-देवतायतन-धर्मशालादि का स्थापन' 'पूर्त्त' कहाता है।[1]

---

२. द्र०, मदनमोहन विद्यासागर कृत 'पञ्चमहायज्ञप्रदीप' पृष्ठ १८५-१८७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[प्रथम विधि—यज्ञ-आरम्भ]

जब प्रपा अर्थात् प्याऊ और इसी प्रकार वापी-कूप-तड़ाग तैयार हो चुके, तब यज्ञ की सब सामग्री, यज्ञसमिधा, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, घृत होमशाकल्यादि संग्रह कर रख लेवें। जिस दिन प्रतिष्ठापक यजमान का चित्त प्रसन्न हो और सब इष्ट-मित्र, बन्धु-जनों को आने की सुविधा का दिन हो, उसी शुभ दिन 'प्रपा' का उद्घाटन करें।

सर्व प्रथम पृ० २५ से पृष्ठ १२० पर्यन्त सामान्य प्रकरणोक्त **'संकल्प-पाठ, ऋत्विग्वरण'** से लेकर **'ओं त्वं नो०…'** की अष्टाज्या-हुति पर्यन्त सब विधि करें।

[द्वितीय विधि—प्रधान-होम]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व होमशाकल्य की आहुति देवें—

ओम् ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निर्मिता मिता।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः स्वाहा ॥१॥[1]

ओं मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः स्वाहा ॥२॥[2]

ओम् अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः स्वाहा ॥३॥[3]

---

३. जिस व्यवहार में (गावः) सूर्य की किरणें जिन दिव्य गुण युक्त जलों को समुद्र व नदियों से पीती हैं, उन जलों को (नः हविः) हम सब को उपयोग के (कर्त्वं=कर्त्तुम्) करने के लिये या उनके द्वारा पदार्थों को उत्पन्न कर के लिये अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूं।

---

१. मन्त्रार्थ द्र. पृ. ४८७ शिलान्यास पद्धति में।

२. मन्त्रार्थ द्र० ३१० ॥ ३. ऋक् १।२३।१८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।
देवा भवत वाजिनः स्वाहा ॥४॥

ओम् आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे स्वाहा ॥५॥

ओम् आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा स्वाहा ॥६॥[1]

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे स्वाहा ॥७॥

ओं यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः स्वाहा ॥८॥[2]

ओं तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः स्वाहा ॥९॥[3]

---

४. जलों के अन्दर अमृत अर्थात् जीवनरस है और जलों में भेषज अर्थात् रोगनिवारक रस है। इसको जान (अपां प्रशस्तये) जलों द्वारा अपनी उत्तमता के लिये अथवा क्रियाकुशलता से इनका प्रयोग करने के लिये, हे विद्वानों! तुम वेगवान् अर्थात् उत्सुक बनो अथवा उत्तम-श्रेष्ठ ज्ञान वाले होवो।

५. हे जलों! [मेरे शरीर में] ऐसा भेषज=रोगनिरोधक रस भर दो, जो कि मेरे शरीर के लिये (वरूथं) दृढ़ कवच हो; जिससे कि मैं चिरकाल तक सूर्य-दर्शन करता रहूं; दीर्घजीवी बनूं।

६. आज हमने जलों का अनुकूल प्रयोग किया है। इनके आनन्ददायक रस की अच्छे प्रकार प्राप्ति की है; रसपान किया है। जल से मिले हुए हे विद्युत्! मुझे भली प्रकार से प्रादीप्त हो और मुझे (वर्चसा) तेज व दीप्ति से युक्त कर।

---

१. ऋक् १।२३।१९, २१, २३॥ २. यजुः ३६।१४, १५॥
३. यजुः ३६।१६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् आपः शिवः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमा-
स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजं स्वाहा ॥१०॥[1]

ओं समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः स्वाहा ॥११॥[2]

[तृतीय विधि—यज्ञ समाप्ति]

तत्पश्चात् 'ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा' से तीन पूर्णाहुति दे, सामवेदोक्त महावामदेव्यगान पृष्ठ १२२-१२३ लिखे प्रमाणे करें।

[चतुर्थ विधि—उद्घाटन]

तत्पश्चात् गृहपति-यजमान उद्घाटनकर्त्ता व ब्रह्मा सहित, 'प्रपा' के उस पार्श्व में जावे, जिस पर पानी पिलाने का प्रबन्ध हो। सब इष्ट-मित्र बन्धुजन भी साथ जावें।

ओम् अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥

कहकर उद्घाटनकर्त्ता ध्वजारोहण करे। कार्यकर्त्ता यजमान समीप में जलसेचन करे। पश्चात् यजमान या उद्घाटन कर्त्ता

---

१०. जो जल कल्याणकारी हैं, अत्यन्त अभ्युदायकारी हैं; शान्ति पहुंचाने वाले हैं, अधिक शान्तिदायक हैं, वे तुझ यजमान के लिये (भेषजं कृण्वन्तु) रोगनिवारक बनें।

११. हे मनुष्य! तुम्हारा जलपान स्नानादि का व्यवहार एकसा हो, तुम्हारा भोजन साथ हुआ करे, तुम्हें एक जैसे अश्वादि यान से युक्त करता हूं। चारों ओर से धुरे अर्थात् नालरूप काष्ठ में लगे चक्र के ऊरों की तरह तुम सब समान गति स्थिति वाले हुए (अग्नि सपर्यत) भौतिक, अग्नि या परमात्मा का सेवन करो अथवा अग्नि आदि के सेवन में धर्मयुक्त कर्मों को करते हुए एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो।[3]

---

१. द्र० पार० गृह्य १।८।५ ॥ २. अथर्व ३।३०।६ ॥
३. द्र० संस्कार विधि पृ० २३६। रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्क०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे ब्रह्मन् ! उद्घाटयामि ॥

ऐसा वचन कहे। और ब्रह्मा

वरं भवान् उद्घाटयतु ॥

इस वचन से अनुज्ञा देवे। ब्रह्मा की अनुमति से

ओम् ऋचं प्रपद्ये, शिवं प्रपद्ये, जीवनं प्रपद्ये ॥

मैं ज्ञान रस को प्राप्त करूं; कल्याण को प्राप्त करूं; जीवन रस को प्राप्त करूं।

इस वचन को बोलकर उद्घाटन करे; स्वयं सबको पानी पिलावे। सब जन निम्न मन्त्र को बोलते हुए जल-पान करें

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पतिये।

शँय्योरभि स्रवन्तु नः ॥

शान्तिदायक होवें, हमारे अभीष्टों की पूर्त्ति और पालन के लिये ये दिव्य गुण युक्त जल और दुःखशमन व रोगनिवारण के लिये चारों ओर बरसते रहें अर्थात् सदा प्राप्त होता रहे।

सभी उपस्थित जन प्रपा बनाने वाले का

भद्रमस्तु, कल्याणमस्तु।

कह कर धन्यवाद करें और प्रपा बनाने वाला सब उपस्थित जनों को सम्मान सहित विदा करे।

विद्यालय धर्मशाला आदि स्थापन-कार्य

कार्यकुशल विद्वान् गृहस्थ पुरोहित को चाहिये कि पूर्वोक्त प्रकार से ही इन कार्यों के लिये शालाओं आदि की प्रतिष्ठा=स्थापन उद्घाटन के अवसर पर यज्ञ-कर्म करावें। इसमें इतना विशेष है कि—

विद्यालय का उद्घाटन होने पर निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां देवें—

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।

यज्ञं वष्टु धियावसुः स्वाहा ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती स्वाहा ॥२॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति स्वाहा ॥३॥

ऋक् १।३।१०, ११, १२ ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥४॥

यजुः ३२।१४ ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥५॥ यजुः ३६।३ ॥

धर्मशाला की प्रतिष्ठा के अवसर पर निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां देवें—

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर स्वाहा ॥१॥
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते स्वाहा ॥२॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि स्वाहा ॥३
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति स्वाहा ॥४॥

ऋक् १०।१९१।१-४ ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः स्वाहा ॥५॥

अथर्व ३।३०।६ ॥

॥ इति शाला-कर्म-विधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायश्चित्त-विधि या शुद्धि-संस्कार-विधि

कुछ आवश्यक बातें

१. प्रायश्चित व शुद्धि

ओम् उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवादेवा जीवयथा पुनः ॥१॥[1]

ओं दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै ।
यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥२॥[2]

महाभारतकाल अर्थात् आज से लगभग पांच सहस्र वर्ष पूर्व विश्व में एक 'वेदमत' को छोड़कर कोई दूसरा मत नहीं था। पवित्र भूमि भारतवर्ष विश्व की प्राचीन सभ्यता-संस्कृतियों का केन्द्र था। मानवजाति मतमतान्तर व नाना सम्प्रदायों के भार से उन्मुक्त थी। कालचक्र व देशस्थिति के प्रभाव से 'वेदमत' ही नाना शाखाओं, मतमतान्तरों व नाना सम्प्रदायों के रूप में विकसित हो गया। भारत भूमि के निवासी भी हिन्दु, मुहम्मदी व ईसाई इन

---

१. हे विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! सत्यधर्म से पतित मनुष्य को पुनः अभ्युदय निःश्रेयस मार्ग पर आगे बढ़ाओ। अपराध व पाप [से नैतिक मृत्यु को प्राप्त] करने वाले को पुनः नव जीवन प्रदान करो।

२. हे आप्त पुरुषो ! तुम सब, दिव्य कर्मों के लिये तथा विद्वानों द्वारा परस्पर सङ्गत होकर करने योग्य व्यवस्था कार्य के के लिये सब को शुद्ध करो। यदि तुम्हारे में से कोई अशुद्धाचरणी पाप से मार खा गये हैं, तो उनको भी [प्रायश्चित करा] शुद्ध निर्दोष करता हूं।

---

१. ऋक् १०।१३७।१ ॥ २. यजुः १-१३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीन मतों में बंट गये। हिन्दुओं के निम्न वर्गों के लोग ईसाई व मुहम्मदी मत को ग्रहण करने लगे।

उस समय [१९वीं शती ई० सन्] ऋषि दयानन्द ने कहा कि जब तक मत-मतान्तरों के झगड़े नहीं मिटते तब तक सुख-शान्ति नहीं हो सकती। मत-मतान्तरों के भेद मिटाकर एक 'वेदमत' की स्थापना के लिये 'आर्येतरों' या अहिन्दुओं को पुनः 'वेदमत' की दीक्षा देना आवश्यक था। इसी का प्रचलित नाम 'शुद्धि-पद्धति' है। इससे आर्यमत से पतितों को पुनः 'आर्यमत' में दीक्षित किया जाता है। उन से प्रायश्चित करा लिया जाता है।

आर्य विचारों के अनुसार मनुष्य तीन प्रकार से पतित होता है। **प्रथम प्रकार**—'धृति क्षमा दम अस्तेय शौच इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध [और अहिंसा[1]]' ये जो मानवो के=सामाजिक धर्म हैं, इनके पालन न करने से। **द्वितीय प्रकार**—समाज के बनाने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये जो चार वर्ण हैं, इनके लिये 'नियत-कर्म' हैं। अपने लिये जो 'नियतकर्म' हैं, उनका त्याग कर दूसरे वर्ण का कर्म स्वीकार करने से। **तृतीय प्रकार**—जाति धर्मों के त्याग करने या 'प्रचलित रीति रिवाजों' को भङ्ग करने से।

पहले दो प्रकार से पतितों के लिए स्मृतियों में नाना प्रकार के प्रायश्चित्तों के विधान लिखें हैं। तीसरे प्रकार से जो आर्य [हिन्दु] पतित होता था उसके लिये, सिवा इसके कि वह वेदमत को छोड़ ईसाई या मुसलमान हो जावे, अन्य कोई मार्ग नहीं रहा था। आर्य जाति ने बहुत समय तक इन पतितों के उद्धार की तरफ ध्यान नहीं दिया। इन जातिबहिष्कृतों के उद्धार के लिये-कोई मार्ग नहीं खुला था, कोई 'वैधानिक पद्धति' भी नहीं थी। ऋषि दयानन्द ने उनको पुनः वेदमत में लाने का अर्थात् उनकी शुद्धि का मार्ग खोल दिया। तदनुसार जो भारतीय आर्य [—हिन्दु], ईसाई व मुलमान बने थे, न केवल वे वापिस 'वेदमत' में आने लगे, अपितु अभारतीय मूल वाले मुसलमान, ईसाई व यहूदी भी आर्य मत ग्रहण करने लगे।

---

१. दशलक्षण वाले (मनु० ६।९३) धर्म में अहिंसा को सम्मिलित करने के लिये देखो सं० वि० पृष्ठ ३०६, स० प्र० प्रथम सं० पृष्ठ १६९, सं० वि० प्रथम सं० पृष्ठ १३७, पूना-प्रवचन पृष्ठ १४ (रा० ला० क० ट्र० सं०)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मतमतान्तर व नाना सम्प्रदायों के भेद को मिटाकर सबको वेदानुमोदित एक मानव-संस्कृति व मानव-सभ्यता के झण्डे के नीचे लाना मानव-जाति का उद्धार है; विश्व में शान्ति व्यवस्था लाने का सर्वोत्तम उपाय है।

आगे उस संस्कार पद्धति का वर्णन है, जिसके द्वारा कोई भी पुरुष 'आर्य' [—हिन्दू] संघ में पुनः प्रविष्ट हो सकता है। पहले उस प्रायश्चित विधि का निर्देश किया जावेगा, जो सामासिक व सामाजिक दोष के निवारणार्थ कर्त्तव्य है।

२. प्रायश्चित्त-विधि

धर्माचरण सम्बन्धी वैयक्तिक दोष व पाप हो जाने पर, जैसे असत्य भाषण चोरी आदि व 'काम क्रोध लोभ मोह' सम्बन्धी दोष हो जाने पर तथा वर्णानुकूल नियत-कर्म न कर अन्य वर्ण के कर्म करने पर, जैसे अध्यापकी के साथ-साथ कोई वैश्य-कर्य करने पर माने जाने वाले सामाजिक दोंष हो जाने पर, उससे मन पर पड़े दुष्प्रभाव को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये।

उसके लिये सन्ध्या व अग्निहोत्र करते समय प्रतिदिन

१. पृ० ८७ से पृ० ९१ तक लिखे 'शिवसंकल्प' के मन्त्रों का वार-वार अर्थपूर्वक जप करना चाहिये।

२. निम्न मन्त्रों से पाप को दूर करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये—

ओं परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः १
अथर्व ६।४५।१॥

---

१. हे मन के पाप! तू परे चले जा; तू (अशस्तानि) निन्दित विषयों को क्यों पसन्द करता है? तू दूर चला जा, मैं तुझे नहीं चाहता। [नागरिक जीवन से दूर] तू वृक्षों को वनों को प्राप्त हो। मेरा मन तो अपने स्त्री पुत्रादिकों में तथा गवादि पशुओं की सेवा में लगा रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥२॥[1] यजुः ३०।३ ॥

ओम्, अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥३॥[2]
यजुः ४०।१६ ॥

आर्यमत प्रवेश अर्थात् शुद्धि-संस्कार-विधि[3]

३. संस्कार के विना शुद्धि

१. जो 'शुद्धि-संस्कार-विधि' यहां दी गई है, वह देश-काल के अनुकूल परिस्थिति में ही करनी चाहिये। प्रतिकूल दशा में बाह्य व्यापार को संक्षिप्त करके 'गायत्री-मन्त्र' से या 'ओंकारध्वनिप्रकाशक शङ्खध्वनि' से अथवा 'ओं३म्' कहलवाकर गायत्री का उपदेश देने मात्र से या [कइयों के मतानुसार] आचमन कराने मात्र से शुद्धि कर देनी चाहिये। यदि शुद्धि कराने वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक हो, या कई ग्रामों के मनुष्य मिलकर एक साथ शुद्ध होना चाहें तो बुद्धिमान् पुरोहित को देश कालानुसार यथोचित व्यवस्था कर लेनी चाहिये[4] यज्ञोपवीत के अधिकारियों को यज्ञोपवीत अवश्य दे देना चाहिये।

---

१. अर्थ पूर्व पृष्ठ ३२ पर। २. अर्थ पूर्व पृष्ठ ३९ पर।

३. श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी सभा [गुरुकुल-भूमि वृन्दावन, उत्तर प्रदेश] ने जो विधि आर्य-विद्वानों से निर्माण कराई थी, मुख्यतः उसी आधार पर यह पद्धति हमने संकलित की है।

पद्धति का प्रकाशन 'शुद्धि-स्मृति' तथा 'शुद्धिसंस्कार पद्धति' नामक ग्रन्थों में हुआ है। हमने दोनों से लाभ उठाया है।

४. देशकालवयःशक्ति पापं चावेक्ष्य यत्नतः।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्यात्तन्न चोक्ता न निष्कृतिः ॥
वसि० स्मृ० ३।२८४ ॥

देशकाल आयु शक्ति और शुद्ध होने वाले व्यक्ति के पाप की मात्रा को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२. यदि कभी कोई अत्यन्त आवश्यक अवसर आ जावे, तो इस पद्धति को बुद्धिमान् आचार्य अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षिप्त तथा परिवर्त्तित भी कर सकता है। परन्तु ऐसा संक्षेप व परिवर्त्तन करने के लिये कोई अपवादरूप से अत्यन्त आवश्यक अवसर ही होना चाहिये, साधारण तौर पर सबको इसी के अनुसार शुद्धि-संस्कार करना कराना चाहिये।

यज्ञ-दक्षिणा व आभ्यागत-सत्कार

यज्ञ के आदि या समाप्ति पर यजमान (शुद्ध होने वाले व्यक्ति) का कर्त्तव्य है कि वह शुद्धि संस्कार कराने वाले आचार्य या पुरोहित को उचित द्रव्य, वस्त्रदानादि से सम्मानित करे।[1] अनन्तर संस्कार में आयें बन्धु-बान्धवों का आप सत्कार करे और उपस्थित जनता शुद्ध हुए व्यक्ति के हाथ से कोई मिष्टान्न तथा पेय पदार्थ अवश्य ग्रहण करे।[2] सबके लिये भोजन का प्रबन्ध हो सके तो अत्युत्तम है। परन्तु यह अनिवार्य नहीं है, गृहस्थिति के अनुसार ही इसका विधान है।

जाकर स्थिति के अनुसार यथोचित शुद्धि-संस्कार की व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

आपत्काले तु संप्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचरेत्॥

पार० स्मृ० ७।४३॥

आपत्तिकाल में शौचाशौच [यज्ञ यज्ञादि बाह्याचार] का विशेष विचार न करके शुद्धि कर लेना ही श्रेयस्कर है। पश्चात् स्थिति अनुकूल होने पर शुद्धि संस्कार समारोह [रूपी सामाजिक धर्म को] अच्छी तरह से करे।

१. संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्चदक्षिणा।
दातव्यं शुद्धिमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकाञ्चनम्॥

दे० स्मृ० १३॥

२. तदासौ तु कुटुम्बानां पंक्तिमाप्नोति नान्यथा॥

दे० स्मृ० १४॥

सर्वाणि ज्ञातिकर्माणि यथापूर्वं समाचरेत्॥ मनु० ११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[प्रथमविधि-क्रिया आरम्भ]

१. शुद्धि-प्रार्थना-पत्र

जिस 'आर्येतर [हिन्दु या आर्य-भिन्न]' व्यक्ति की शुद्धि [करके आर्य या हिन्दु बनाना] अभीष्ट हो, उससे संस्कार करने से पहले एक लिखित प्रार्थना-पत्र जो इस विधि के अन्त में दिया है, अवश्य ले लेना चाहिये।

२. उपवास

प्रार्थनापत्र भर देने के पश्चात्, शुद्ध होने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह, जिस तिथि को शुद्ध होने का निश्चय करे, उससे पूर्व एक दो या तीन दिवस उपवास अवश्य करे। यदि किसी कारण-वश निराहार उपवास करने में समर्थ न हो, तो थोड़ा दुग्धाहार या हल्का फलाहार उस समय कर लेवे। उपवास के समय एकान्त स्थान में बैठ-कर 'ओ३म्' जो कि ईश्वर का निज-नाम है, का अर्थ की भावना के सहित मानसिक जाप करे उस समय 'आत्म-चिन्तन' तथा 'परमात्म-चिन्तन' के अतिरिक्त कोई कार्य न करे। धार्मिक, जीवन को ऊंचा उठाने वाले उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अनुशीलन भी करे। किसी से भी अधिक व्यर्थ सम्भाषण न करे। सबसे उत्तम तो यह है कि इस काल में सर्वथा मौन ही रहे और अपने हृदय में उत्साह तथा प्रसन्नता का संचार करे।

३. क्षौरकर्म

यज्ञ-सम्बन्धी सब तय्यारी तथा अन्य प्रकार की सब आवश्यक व्यवस्था हो जाने के पश्चात् जिस [हिन्दू या आर्येतर जो कि वैदिक धर्म में अब तक विश्वास नहीं रखता था, ऐसे] पुरुष व स्त्री ने [आर्य-समाज या आर्य-जाति 'हिन्दु कही जाने वाली जाति के जिस किसी सम्प्रदाय में प्रविष्ट होने के लिये] शुद्ध होना हो, वह सिर पर शिखा के बाल छोड़कर अपने-अपने देश में प्रचलित रीति से हजामत[1] कराके [यदि स्त्री हो तो क्षौर न करावे] सब भली-भांति

---

१. गुह्यकक्षशिरोभ्रूणां कर्त्तव्यं केशवापनम्।

"शुद्धि के समय, गुह्यांगों, बगलों, सिर और भ्रू के बालों को काटना चाहिये।" दे० स्मृ० २३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्नान करके [स्त्री हो तो सिर रहित या जैसे सुविधा हो स्नान करे], स्वच्छ नये वस्त्रों को धारण करके वेदी=शुद्धि-शाला पर जाकर उपस्थित अभ्यागत वृन्द को हाथ जोड़कर नमस्ते करे। सबसे पूर्व पृ० २६ से २९ तक लिखे प्रमाणे संकल्प व ऋत्विग्वरण करे।

४. प्रश्नोत्तर

तत्पश्चात् पुरोहित शुद्ध होने वाले व्यक्ति को यज्ञवेदी के पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख बैठावें और उससे पूछे—

किमर्थमत्रागतोऽसि भो ! आयुष्मन् ?

किमर्थमत्रागताऽसि ओ आयुष्मति।

यहां किस लिये पधारे हैं ?

शुद्ध होने वाला व्यक्ति निम्न उत्तर दे—

अमुक* नामाहं शुद्ध्यर्थमत्रागतोऽस्मि भगवन् ?

अमुकनाम्नी अहं शुद्ध्यर्थमत्रागताऽस्मि भगवन् ?

'भगवन्' मैं शुद्ध होने=मत परिवर्तन कराने के लिये आपकी सेवा में उपस्थित हुआ/हुई हूं।'

५. अपना परिचय तथा शुद्ध होने का कारण निर्देश

तदनन्तर अपना पूरा नाम, अपने पिता-पितामह का नाम, अपनी पूर्वजाति व मत का नाम, अपने व्यवसाय का निर्देश, अपने ग्राम डाकखाना और जिले का पता तथा वंश परिचय संक्षिप्त रूप में सब के सामने कहे। साथ ही अपने शुद्ध होने के कारण को स्पष्ट शब्दों में निस्संकोच बतलावे।

कुक्षिगुह्यशिरःश्मश्रुभ्रूलोमपरिकृन्तनम्।
प्राहृत्य पाणिपादानां नखलोम ततः शुचिः ॥ देव० स्मृ० ५३ ॥

बगल, गुह्य स्थान, सिर, दाढ़ी, मूंछ, भौं के सम्पूर्ण बाल कटवाने चाहिये। साथ ही, हाथ और पांव के नाखून और बाल भी कटवाने चाहिये। तब शुद्धि करे।

*'अमुकनामा' के स्थान पर शुद्ध्यर्थी अपना नाम बोले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६. शुद्धि-स्वीकृति

पश्चात् शुद्धि संस्कार कर्त्ता उपस्थित जनसमूह के समक्ष उसके प्रार्थना पत्र को पढ़कर सुनावे और उनसे पूछे—

"क्या इस व्यक्ति को शुद्ध करके सत्य-सनातन वैदिक धर्म में दीक्षित कर लिया जावे ?"

उपस्थित-जनता की ओर से यह उत्तर मिलने पर कि "हां ! इनको शुद्ध करके वैदिक धर्म में प्रविष्ट कर लिया जावे" आगे शुद्धि संस्कार प्रारम्भ करे।

[द्वितीय विधि—शुद्धि के निमित्त देवप्रार्थना]

पुरोहित नीचे लिखे मन्त्रों का शुद्धि प्रार्थी व्यक्ति से उच्चारण कराके देव प्रार्थना करावे। मन्त्रों का अर्थ भी संक्षेप से समझा देवे।

मन्त्रों को बोलते समय शुद्धि-प्रार्थी के ऊपर कुछ जल के छींटे भी देते जावें। वे मन्त्र ये हैं—

ओं पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥१॥
ओं पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँऽरनु ॥२॥

---

१. पुनन्तु मा देवजनाः—हे दिव्यगुण युक्त विद्वान् पुरुषो ! आप सच्चे हृदय से मेरी बुद्धियों और कर्मों को पवित्र कीजिये। संसार के समस्त प्राणी अर्थात् स्त्री पुरुष आप की कृपा से मुझे पवित्र करें; शुद्ध समझें। हे ज्ञानी आचार्य तथा सर्वज्ञ प्रभु ! आप भी इन सब के सामने मुझे शुद्ध कीजिए।

२. पवित्रेण पुनीहि—हे शुभ-गुण युक्त तथा ज्ञान के प्रकाशक आचार्य और भगवान् ! स्वयं, ज्ञान तथा सदाचार से स्वयं अति-दीप्यमान होते हुए अपने सामर्थ्य तथा पवित्र कर्म से मुझे पवित्र कीजिये। मुझे ज्ञान के द्वारा शुभ कर्म करने का सामर्थ्य प्रदान कीजिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तमन्त॒रा ।
ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु मा ॥३॥
ओं पव॑मान॒ः सोऽअ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणिः ।
यः पोता॒ स पु॑नातु मा ॥४॥[1]

[तृतीय विधि—आचमन]

पश्चात् निम्न मन्त्र से तीन आचमन करावें—

ओम् इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हताव॒द्यं च॒ मलं॑ च॒ यत् ।
यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पेऽअ॑भी॒रुण॑म् ।
आपो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सः॒ पव॑मानश्च मुञ्चतु ॥१॥

यजुः ६।१७ ॥

---

३. (यत्ते पवित्रम्) अपने सद् ज्ञान से मानव जाति को आगे ले जाने वाले हे तेजस्वी आचार्य ! अग्नि की ज्वाला के तुल्य प्रकाश देने वाली आपकी बुद्धि के अन्दर जो शुद्ध वेद का ज्ञान भरा हुआ है, उस का उपदेश देकर मुझे शुद्ध बनाइये ताकि अपना आचरण वेदानुकूल बना सकूं ।

४. (पवमानः) जो स्वभाव से दूसरों को पवित्र करने वाला तथा स्वयं पवित्र स्वरूप है, सब कुछ जानने वाला है, वह प्रभु मुझे पवित्र करे ।

१. हे (आपः) जलो व सर्वविद्या में व्यापक विद्वान् लोगो ! मेरे में (यत् अवद्यं च मलं च) जो निन्द्य कर्म व अविद्यारूपी मल है, (इदं प्रवहतां) उसको दूर बहा दीजिये । (यत् च अनृतम् अभिदुद्रोह) जो मैं झूठमूठ किसी से द्रोह=वैर करता होऊं और (अभीरूणं) निर्भय निरापराधी पुरुष को अथवा निर्भय-निस्संकोच हो जो मैं (क्षेपे) कोसता हूं, उलाहने या गाली देता हूं, (तस्मात् एनसः) उक्त दोष, पाप से (आपः) हे जलो व आप्त पुरुषो ! आप मुझे अलग रखो (च) और (पवमानः) पवित्र वातावरण व परमात्मा (मुञ्चतु) उस पाप से पृथक् रक्खे, छुड़ावे ।

---

१. यजुः १९।३९-४२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् आपोऽअस्मान्मातरः शुन्धयन्तु विश्वꣳहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि ॥२॥ यजुः ४।२ ॥

[चतुर्थ विधि—यज्ञोपवीत धारण][1]

तत्पश्चात् पुरोहित निम्न मन्त्र से यज्ञोपवीत के अधिकारी शुद्धिप्रार्थी के बाये कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से सिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि प्रदेश तक यज्ञोपवीत धारण करावे—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

---

२. (आपः मातरः) माता के समान पोषक जल अथवा जीवनमार्ग निर्माण करने वाले आप्त जन हमें शरीर व आचार में पवित्र करें। वे दिव्य-गुणयुक्त जल व विद्वान् सब (रिप्रं) मल या पाप को धो कर बहाते हैं। और (आपः उत्) इन जनों व आप्त विद्वान् से (शुचिः) (शुद्ध) व (आपूतः) सर्वप्रकार से पवित्र किया हुआ (एमि) मैं यहां उपस्थित हुआ हूं। यह मेरा (तनूः) शरीर व जीवन (दीक्षातपसोः) दीक्षा=सत्य वेद-मत के व्रतधारण व तपः =उसकी साधना का (असि=अस्ति) आधार है।

---

१. प्रायश्चित्तविनीते तु तदा तेषां कलेवरे ।
कर्त्तव्यः सूत्रसंस्कारो मेखलादण्डवर्जितः ॥मनुः॥

प्रायश्चित्त के पश्चात् मेखला और दण्ड को छोड़ कर यज्ञोपवीत धारण करावे।

तेषां स्वयमेव शुद्धिमिच्छतां प्रायश्चित्तानन्तरमुपनयनम् ॥
आप० १।१।१ ॥

जो स्वयमेव अपनी इच्छा से शुद्ध होना चाहें उनको प्रायश्चित कराकर शुद्ध कर देना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीते नोपनह्याभि ॥१॥[1]
सत्यधर्माय दृष्टये ॥२॥[2]

[पंचम विधि—प्रणव तथा गायत्री-मन्त्रोपदेश]

साथ ही प्रणव व गायत्री मन्त्र का उच्चारण करा पृ० २४१ से पृ० २४२ तक लिखे प्रमाणे अर्थ भी संक्षेप से सुना दे।

[षष्ठ विधि—नाम-परिवर्तन]

पश्चात् यदि शुद्धयर्थी का नाम परिवर्त्तन करना अवाश्यक समझें, तो नाम परिवर्त्तन करा दें।

[सप्तम विधि—यज्ञ-आरम्भ]

पश्चात् पृ० २९ से पृ० १२० तक लिखे प्रमाणे आचमन-अङ्गस्पर्श से लेकर 'त्वं नो अग्ने०…' की अष्टाज्याहुति पर्यन्त सब विधि करें।

[अष्टम विधि—प्रधान-होम]

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत व शाकल्य की आहुति दिलवावें—

ओं यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः स्वाहा ॥१॥

---

२. हे महाशय! यह यज्ञोपवीत व्रत बन्ध=दीक्षा का चिह्न है। (यज्ञस्य कृते) इस सामाजिक कृत्य के लिये०… (सत्यधर्माय) सत्य सनातन वेद धर्म के अनुष्ठान के लिये और (दृष्टये) परमात्म-दर्शन के लिये तुझे इससे आर्यमतावलम्बियों के समीप बांधता हूं।

१. हे विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो! हम ईश्वर वेद और धर्म के विषय में उत्तम विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का जो अनादर और अपराध करें, अग्नि के तुल्य तेजस्वी, ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और प्रतापी राजा, उस सब प्रकार के अपराध और पाप से हम को पृथक् रखे।

---

१. विस्तृत अर्थ द्र० पृ० २२०-२२१।

२. यजुर्वेद काण्वसंहिता अध्याय ४०।१५वें मन्त्र का उत्तरार्ध। प्रायश्चित्त या शुद्धिकार्य में इसका विनियोग सर्वथा समीचीन व प्रेरणाप्रद है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यदि दिवा यदि नक्तमेनांꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः स्वाहा ॥२॥

ओं यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳ हसः स्वाहा ॥३॥

ओं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि
तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥४॥[1]

---

२. यदि दिन के समय में या रात्रिकाल में हमसे कोई पाप हो जावे, तो भी अपने ज्ञान से वायु के समान सब जगह पहुंच जाने वाला, व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर, आप्त आचार्य एवं बलशाली राजा उस अपराध से और अन्य सब प्रकार के पाप से हमको मुक्त करे।

३. यदि जागते और यदि सोते में भी हम पाप करें, तो सूर्य के समान प्रत्येक पदार्थों को विशुद्ध करने वाला तेजस्वी परमेश्वर, प्रकाशक विद्वान् और राजा उस पाप से और समस्त प्रकार के पाप से हमें छुड़ावे।

४. हम जो पाप ग्राम में या जंगल में [अर्थात् किसी के सामने अथवा एकान्त में], जो पाप सभा में और जो चित्त चक्षु आदि इन्द्रियों में परदूषण परस्त्री दर्शनादि [अर्थात् समाज सम्बन्धी तथा व्यक्ति सम्बन्धी व्यवहार में], जो पाप शूद्र या सेवक जन पर और जो स्वामी अथवा वैश्य के प्रति [दीन हीन दरिद्र व्यक्ति अथवा धनी मानी सज्जन से दुर्व्यवहार रूप से] और जो अपराध किसी भी [आत्मीय निकट वर्ती बाधु-बान्धव] स्त्री या पुरुष कर्त्तव्य पालन या व्रतपालन के भंग करने में करें [अर्थात् उनसे छल कपट आदि के रूप में दुर्व्यवहार करें] उस अपराध का हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू नाश करने वाला हो।

---

१. यजुः २०।१४-१७। 'स्वाहा' मन्त्रगत पाठ नहीं है। तुलना अथर्व ६।११४ तथा अथर्व ६।११५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपरोक्त मन्त्रों के पश्चात् यदि कोई जन्म से वेद-विरोधी न हो, किसी कारणवश पतित [वेद-विरोधी ईसाई, यवन आदि मत में प्रविष्ट] हो गया हो, और वैदिक धर्मिओं में प्रविष्ट होना चाहे, तो उससे संस्कार-कर्त्ता निम्नलिखित दो मन्त्रों का उच्चारण कराके एक-एक मन्त्र से एक-एक आहुति घृत व शाकल्य की दिलावे—

ओं यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः स्वाहा ॥१॥[1]
ओं यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो ।
यत्स्वपन्तः सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु स्वाहा ॥२॥[1]

[नवम विधि—सत्यव्रत ग्रहण अर्थात् व्रताहुति]

पश्चात् निम्न मन्त्र से घृत व शाकल्य की आहुति दिलावें—

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥१॥ यजुः १।५ ॥[1]

---

५. हम सब जब ज्ञानवान् होकर और विना जाने हुए पाप या अपराध करें, हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग एक मत होकर प्रीति के साथ उस पाप-समुदाय से हमको पृथक् करो, छुड़ाओ ।

६. जानते हुए या सोते हुए हम लोग जो कुछ चक्षु मन और वाणी से पाप करें उन सब ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के गृहीत ज्ञानों और किये कामों को हम सब का प्रेरक आत्मा या विद्वान् पुरुष अपनी धारणा मनन विवेक शक्ति से पवित्र करे ।

१. हे व्रतों के पालक विद्वद्गण या परमेश्वर ! मैं व्रत का संकल्प लूंगा । उसको करने में आपके अनुग्रह व अपने पुरुषार्थ से समर्थ होऊं । मेरा यह व्रत संकल्प सिद्ध होवे । (इदं) यह मेरा संकल्प है कि मैं 'अनृत' [झूठ, असन्मार्ग अवैदिक मत, अधर्म] से 'सत्य' [सच, सन्मार्ग, वैदिकमत धर्म……] को प्राप्त होता हूं ।

---

१. अथर्व ६।११५।१ तथा अथर्व ६।९६।३ ॥ 'स्वाहा' मन्त्रगत पाठ नहीं ।

२. कई विद्वानों के मत में पृष्ठ २२४-२२५ पर लिखे प्रमाणे पञ्च-व्रताहुतियां देनी चाहिये । मन्त्र और उनके अर्थ वहीं देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[दशम विधि—यज्ञ-समाप्ति][1]

पश्चात् यदि प्रातःकाल शुद्धि-संस्कार हो, तो निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की आहुति देवें—

ओं सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१॥
ओं सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥४॥[2]

और यदि संस्कार सायंकाल हो, तो निम्न से घृत व शाकल्य आहुति देवें

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

तीसरा मन्त्र मन में उच्चारण करके आहुति दें।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥ यजु० अ० ३ म० ९, १० ॥

॥ दोनों काल के मन्त्र ॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः साय आठ आहुति देनी चाहिए—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदं न मम ॥१॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदं न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम ३

---

१. आर्यजीवन के निर्माण की आधारशिला 'पञ्चमहायज्ञ' है। उनमें भी सन्ध्या व अग्निहोत्र मुख्य हैं। 'गायत्री' सन्ध्या ही है। दूसरे अग्निहोत्र को सिखाने के उद्देश्य से इस संस्कार का अन्त अग्निहोत्र की आहुतियों से किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम ॥४॥
ओम् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥
यजुः अ० ३२ मं० १४ ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रन्तन्न आ सुव स्वाहा ॥७॥ यजुः अ० ३० । मं० ३ ॥

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥
यजुः अ० ४० । मं० १६ ॥

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥

पश्चात् पृ० १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान कर, शुद्धार्थी धार्मिक गृहस्थ विद्वान् ऋत्विग् को प्रमाण कर वस्त्रदान-दक्षिणा से उसका यथायोग्य सत्कार करे। फिर अन्य उपस्थित सज्जनों को व इष्ट-मित्र बन्धु-बान्धवों को भी नमस्कार कर उनका भी यथायोग्य सत्कार करे। सबको चाहिये कि वे आगे से उसके साथ सदा और सर्वथा धर्मानुसार प्रीतिपूर्वक [समादर-समानता का] व्यवहार करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धि-प्रार्थना-पत्र

ओं दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै । यजुः १।१३।।

१. हे आर्य विद्वानो ! दिव्य सत्कर्म तथा श्रेष्ठ परोपकाररूपी यज्ञ करने के लिये मेरी शुद्धि कीजिए।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ।। यजुः १९।३९।।

२. हे विद्वान् पुरुषो ! मुझे शुद्ध करो। विज्ञान और प्रीति से मेरी बुद्धियों को पवित्र करो। संसार के समस्त प्राणियो ! मुझ को पवित्र जीवन दो। (जातवेदः) हे वेदों के प्रचारक आचार्य तथा अणु-अणु में व्याप्त समस्त संसार के संचालक अग्रेणी प्रभु ! मुझे शुद्ध-पवित्र करो।।"

सेवा में—

श्रीमान् मन्त्री जी !

श्रीमन् ! (या भगवन् !)

मैं.....नामवाला,.....का पुत्र, ...स्थान का वासी, आर्यवैदिक-धर्म को निर्दोष सर्वश्रेष्ठ बुद्धि-युक्त तथा सर्व प्राचीन सत्य सनातनधर्म मानता व समझता हुआ हृदय की स्वतः प्रेरणा से प्रसन्नतापूर्वक, विना किसी लोभ भय व दबाव से, सर्वान्तर्यामी प्रभु को साक्षी रखकर स्वयं तथा परिवार सहित शुद्ध होकर आर्य-हिन्दु संघ में आना चाहता हूं। कृपया मेरा शुद्धि-संस्कार कराकर मुझे आर्य-वैदिकधर्म में दीक्षित कर अनुगृहीत कीजिये।

तिथि.....

वार.....

विनीत प्रार्थी

.....

हस्ताक्षर उपस्थित प्रतिष्ठित व्यक्तियों के

हस्ताक्षर मंत्री.....

हस्ताक्षरप्रधान.....

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ वर्धापन-संस्कार-विधिः

अर्थात्

जन्म-दिवस-विधिः

प्राचीनकाल से आर्यों में अपने महापुरुषों के जन्म-दिवस मनाने की प्रथा है । इससे उनके उत्तम गुणों को अपने जीवन में धारण कर अपने दोषों का त्याग करने की प्रेरणा मिलती है ।

आज-कल अपने सन्तानों का जन्म दिवस मनाने की प्रथा चल पड़ी हैं । यद्यपि गृह्यसूत्रों में कहीं-कहीं जन्म-दिवस मनाने का संकेत भी मिलता है, तथापि वर्त्तमान में यह प्रथा पाश्चात्य जीवन विधान का अनुकरण है । अपने सन्तानों में उत्तम संस्कारों का समावेश कराने के लिये उनके जन्म-दिवस को आर्यों की प्रथानुसार यथाविधि यज्ञ करके मनाना चाहिये । उस दिन पाश्चात्य-सभ्यता के ढंग पर वर्ष की संख्यानुसार मोमबत्तियां जला, उन्हें फूंक मार बुझा, जन्म-दिवस मनाना अनार्य रीति है । आर्यों की रीति **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** अर्थात् **अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने की है, अग्नि को बुझाने की नहीं** । अतः उचित यह है कि उस दिन यज्ञवेदी के पास वर्ष संख्यानुसार घृतदीप जलावें ।

इसी प्रकार, यदि परिपक्व आयु के स्त्री-पुरुष अपना जन्म-दिवस मनाना चाहें, तो उन्हें उस-दिन अपने गत जीवन पर दृष्टि-पात करके अपने गुण-अवगुण व उपलब्धि-अनुपलब्धि [हानि-लाभ] पर विचार करना चाहिये और भविष्य में अभ्युदय की प्राप्ति के लिये शुभ संकल्प कर, उन्नायक परमात्मा से 'श्रद्धा, मेधा, यश, प्रज्ञा, आयु और बल' की प्रार्थना करनी चाहिये । इससे उनका वैयक्तिक जीवन नवीन उत्साह से पूरित होगा और सामाजिक जीवन में पार-स्परिक-सम्बन्ध मधुर होगें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[प्रथम विधि—यज्ञ-क्रिया आरम्भ, ऋत्विग्वरण]

जिस दिन सन्तान का व अपना का जन्म हुआ हो, उस दिन सन्तान का पिता यज्ञवेदी पर पूर्वाभिमुख अपने दाहिने भाग में पत्नी को बैठाकर अपनी पत्नी के दक्षिण भाग में सन्तान को बैठाये। अपना जन्म-दिन हो, तो भी पत्नी को दक्षिण बाजू ही बैठाये। इससे पूर्व सन्तान को स्नान कराकर स्वच्छ स्वदेशी शुभ्र वस्त्र पहनावे, गले में माला डाले तथा मस्तक पर चन्दन लगावे। स्वयं भी ऐसा करे, करावे। विधिवत् हवन कुण्ड तथा मण्डप एवं यज्ञवेदी को सजावे। कम से कम एक ऋत्विक् को आचार्य या ब्रह्मा के रूप में यथाविधि वरण करे।

[द्वितीय विधि—संकल्प व सामान्य यज्ञ]

संकल्प बालक के लिए—

अद्य·····अमुकदेशे अमुककाले अस्य कुमारस्य कुमारिकायाः वा कफवातपित्त-द्वन्द्वज-ज्वराऽऽन्तुकव्याधि-शिरोनेत्रदन्तस्कन्धोरूद-रपाणिपादादिशरीरावयवपीडाभिनिवृत्यर्थम्, अल्पायुषो निवृत्त्यर्थम्, वपुः सम्पुष्ट्यर्थम्, पुष्टि-बुद्धि-कान्ति-कीर्ति-नैरोग्य-दीर्घायुष्याद्यर्थं वर्धापनाख्यं कर्म वृतैर्ऋत्विग्भिः वृतेन ब्रह्मणा वा करिष्ये।

(स्वजन्म-दिन का संकल्प)

अद्य·····आत्मनो दीर्घायुस्तेजोवृद्धिद्वारा कीर्ति-कान्ति-बल-नैरोग्य-प्राप्त्यर्थं स्वजन्मदिने निजं वर्धापनाख्यं कर्म अमुकस्मिन् देशे अमुककाले विधास्ये·····।

तत्पश्चात् यदि बालक बालिका का उपवीत हो चुके हो, तो उनका और अपना जन्म-दिन[1] हो, तो वह व्यक्ति सबसे पूर्व पृष्ठ २२० में लिखे प्रमाणे नवीन यज्ञोपवीत धारण करें-करावें।

---

१. आर्यज्योतिष् की गणनानुसार नक्षत्र के आधार पर जन्म-दिवस का निश्चय होता हैं। जिस मास में, जिस नक्षत्र में किसी का जन्म हुआ हो, अग्रिम वर्ष उसी मास में वही नक्षत्र जिस दिन होता है, वही 'जन्मदिन' उस व्यक्ति का माना जाता है अर्थात् चान्द्र तिथ्यनुसार जन्म-दिवस मनाना चाहिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् पृ. २९ से पृ. १२० तक लिखे प्रमाणे आचमन अङ्गस्पर्श से लेकर···चार आघारावाज्यभागाहुति 'त्वं नो अग्ने···' आदि से अष्टाज्याहुति पर्यन्त सब विधि करें।

स्विष्टकृत् व होमशाकल्य की विशेष आहुति, यदि सन्तान उपनीत हो, तो उससे स्वयं दिलावे। यदि सन्तान छोटा हो, तो विशेष, शाकल्य, खीर या स्थालीपाक मीठा भात मोदक आदि जो तैयार किया हो, बालक का हस्त-स्पर्श करा कर, उसके पिता से उसकी आहुति दिलवावें। आगे भी यज्ञ करते समय ऐसा ही करें-करावें।

[तृतीय विधि---परमेश्वर का उपस्थान]

(यह तृतीय विधि की क्रिया प्रौढ़ जनों के निमित्त है।)

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से दीर्घायु की कामना करें—

ओम् उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
आगन्म विभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

अथर्व ७।३२।१ ॥

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥२॥

अथर्व ७।३३।१ ॥

[तृतीय विधि—सन्तान के कानों में जप]

तत्पश्चात् सन्तान का पिता सन्तान के दक्षिण कान में मुख लगा निम्न मन्त्र बोले—

---

१. सर्वदा प्रिय, सदा क्रियाशील अर्थात् नित्य लाभकारी, सदा संयोग-वियोग व आदान-प्रदान करने वाले और अन्न व भक्ति की आहुति से शक्ति को बढ़ाने वाले परमात्मा व जाठर अग्नि को नमस्कार व अन्न देते हुए उसके पास रहें। अग्नि मेरी आयु लम्बी करे।

२. प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान रूप शरीर व्यापी मरुत अथवा शुद्ध वायु, मन वा सूर्य, बुद्धि व आत्मा और प्राण अग्नि और परमात्मा मुझे प्रजा व धन से पूर्णतया सींच दें, आप्लावित कर दें, मेरी आयु को बढ़ावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती ।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥१॥
आश्व. गृ. १।१५।२॥

ओम् अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन
त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥२॥
ओं सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन० ॥३॥
ओं ब्रह्माऽऽयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥४॥
ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥५॥
ओम् ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥६॥
ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥७॥
ओं यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥८॥
ओं समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥९॥ पार. गृ. १।१६।६ ॥

[चतुर्थ विधि—तिथि-नक्षत्राहुतियां]

तत्पश्चात् पृ. १८२, १८४ में लिखे प्रमाणे, जिस तिथि, जिस नक्षत्र में 'संस्कार्य' का जन्म हुआ हो, उस तिथि से एक, उस तिथि के देवता के नाम से दूसरी, नक्षत्र से तीसरी और नक्षत्र के देवता के नाम से चौथी आहुति घृत से दिलावें ।[1]

---

१. आदरणीय डा० हरिदत्त शास्त्री, एम० ए० पी-एच० डी०, त्रयोदशतीर्थ, व्याकरणवेदान्त-आयुर्वेदाचार्य ने अपने "वैदिक-वर्धापन-विधि" नामक पुस्तक में अधिक आहुतियां देना लिखा है । (पृ० ५)

फिर जन्म के नक्षत्र की आहुति देवें । फिर नक्षत्र देवता, तिथि देवता, अहो-रात्र, अर्ध-मास [=पक्ष], मास, ऋतु, वर्ष, अयन इनके नाम की आहुति देवें । उदाहरणार्थ यदि किसी का जन्म पुष्य-नक्षत्र, अश्विनी-देवता, चतुर्थी-तिथि, रविवार, शुक्ल-पक्ष, वैशाख-ऋतु, दुन्दुभि-वर्ष, उत्तरायण, में हुआ है, तो—

ओं पुष्याय स्वाहा ॥ ओम् अश्विनीभ्यां स्वाहा ॥ ओं चतुर्थ्यै

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पञ्चम विधि—घृत व शाकल्य की आहुतियां

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की आहुतियां देवें—

ओम् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो ऽअपरीतासऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे स्वाहा ॥१॥[1]

ओं देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां ँ रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानां ँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न ऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे स्वाहा ॥२॥[1]

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः स्वाहा ॥३॥[1] यजुः २५।१४, १५, २१ ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ४[2]॥

यजुः ३६।२४ ॥

स्वाहा ॥ ओं गन्धर्वाय स्वाहा ॥ ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ओं वैशाखाय स्वाहा ॥ ओं शुक्लपक्षाय स्वाहा ॥ ओं वसन्ताय स्वाहा ॥ ओं दुन्दुभये स्वाहा ॥ ओम् उत्तरायणाय स्वाहा ॥ इस प्रकार आहुति दें।

आगे उसी पुस्तक के पृष्ठ ६ पर 'नवग्रहों' का नाम लेकर इसी प्रकार आहुतियां देने का विधान किया है। जो पौराणिक परम्परानुसार होने से त्याज्य है।

उक्त पुस्तक में नवग्रहाहुतियों के आगे "कालाय स्वाहा ॥ युगाय स्वाहा ॥ संवत्सराय स्वाहा ॥···महामृत्युञ्जयाय स्वाहा ॥" ये चार आहुतियां भी लिखी हैं। चाहें तो इसी टिप्पणी के सं० १ की आहुतियों में इन्हें भी जोड़ सकते हैं। वैसे इनकी विशेष आवश्यकता नहीं है।

१. अर्थ द्र० क्रमशः पृष्ठ ६३, ६५, ६८। २. अर्थ द्र० २२९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[षष्ठ विधि—स्थालीपाक की आहुतियां]

तत्पश्चात् स्थालीपाक की अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा व विश्वेदेवों के नाम की आहुतियां दें—

ओम् अग्नऽआयूꣳषि पवसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥१॥[1]

यजुः ३५।१६ व यजुः १९।३८ ॥

ओम् आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्स्वाहा ॥२॥[2] यजुः ३५।१७ ॥

ओं नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्। भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः स्वाहा ॥३॥ अथर्व ७।८१।२ ॥

---

२. हे आयुष्मान् अग्ने! परमात्मन्! तू अन्न व भक्ति से बढ़ा हुआ, तेज व शक्ति का प्रतीक तथा तेज व शक्ति का आदिमूल अर्थात् कारण रूप (एधि) हमें प्राप्त हो। तू (गव्यं मधु चारु घृतं) गौ के शक्तिवर्धक सुस्वादु घृत को पीकर अथवा विद्या वाणी द्वारा उत्पन्न मधु चारु तेजस् को धारण करके, पिता जिस प्रकार पुत्रों की रक्षा करता है, उस प्रकार इन सबकी (स्वाहा) उत्तम प्रकार से ज्ञान पूर्वक सब प्रकार से रक्षा कर।

३. हे चन्द्रमा! प्रगट होता हुआ तू सदा नया ही नया लगता है। दिनों का तू ज्ञापक=निर्देशक है, उषाओं से पहले आता है और उगता हुआ तू सब दिव्य शक्तियों व इन्द्रियों को उन के उपभोग का विशेष भाग प्रदान करता है। जिस प्रकार हे चन्द्र! तू सबको दीर्घ आयु (तिरसे) देता है, उसी प्रकार हमें भी प्रदान कर।

---

१. अथर्व द्र० पृ० १११। यजुः १२।७ का भी विनियोग कर सकते हैं।

२. तुलना—अथर्व २।१३।१॥ जरा पाठभेद है। पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्, पाठ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् स्वाहा ॥४॥

ओम् उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि स्वाहा ॥५॥

ऋक् १०।१८६।१, २ ॥

ओम् आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै । रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायं स्वाहा ॥६॥ अथर्व २।२९।२ ॥

ओम् एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतं स्वाहा ॥७॥

अथर्व २।१३।४ ॥

---

४. प्राण वायु अर्थात् वायुवत् सर्व गति प्रदाता परमात्मा, हमारे हृदय में शामक सुखकारी भेषज के सदृश चारों ओर से बहे, पूरी तरह से विराजमान हो और हमारे आयुओं को बढ़ावें ।

५. हे प्राणवायो ! अथवा जगदाधार प्राणदाता परमेश्वर ! (उत) निश्चय से तुम ही हमारे पालक-पोषक हो, और भरण करने वाले हो और हमारे हितचिन्तक मित्र हो । ऐसा वह तू हमारे पर जीवन वृद्धि के लिये अपना अनुग्रह कर ।

६. हे सब पदार्थों में विद्यमान अग्ने ! व विद्यमान होकर प्राणियों को जानने वाले परमेश्वर ! इस यजमान व संस्कार्य को आयु प्रदान कर । सृष्टि की रचना करने वाले जगदीश्वर ! इसके साथ पुत्र पौत्रादि सन्तान अथवा इष्टमित्रादि अथवा मानव प्रजा का अधिक सम्बन्ध कर । हे सूर्य ! अथवा प्रेरक सर्वेश्वर ! इसे (रायः) धन वा भोग (पोषं) और उससे जीवन शक्ति वा पोषण प्रदान कर, ताकि तेरा यह पुत्र या सेवक भक्त सौ वर्ष तक जीवे ।

७. हे बालक ! अथवा यज्ञ-प्रार्थना करने वाले ! तू (एहि अश्मानं) संघर्ष व नवजीवन में प्रवेशकर । और (आ+ तिष्ठ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[सप्तम विधि—प्रौढ़जनों का विशेष यज्ञ]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से प्रौढ़जन घृत व शाकल्य की आहुतियां दें—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषं स्वाहा ॥१॥[1]

ओं[2] सं मा सिञ्चन्त्वादित्याः सं मा सिञ्चन्त्वग्नयः ।
इन्द्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥२॥

ओं सं मा सिञ्चन्त्वरुषः समर्का ऋषयश्च ये ।
पूषा समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥३॥

ओं सं मा सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चतु या दिशः ।
अन्तरिक्षं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥४॥

इस जीवन व्रत पर=जमकर आरूढ़ हो । तेरा शरीर व जीवन शिला के समान दृढ़ हो । समस्त भौतिक दिव्य शक्तियां तेरी आयु को सौ वर्षों की करें ।

१. जो (जमदग्नेः) यज्ञ यागादि सत्कर्म रत पुरुष के तथा मन्त्र-द्रष्टा अथवा सूक्ष्म ज्ञान के पालक पुरुष के सम्बन्ध की जो तिगुनी अर्थात् तीन सौ बरसी आयु है और आप्त धार्मिक परोपकारी विद्वानों में जो तीन सौ बरसी आयु है, वैसी वह तीन सौ बरसी आयु परमात्मा की कृपा व आप सज्जनों की शुभकामनाओं से हमें प्राप्त हो ।

२-८. (आदित्याः) सूर्य की किरणें (अग्नयः) पार्थिव पांच भौतिक पदार्थों में विद्यमान अग्नियां (इन्द्रः) अन्तरिक्षस्थ वायु व विद्युत्.....॥२॥ (अरुषः) शमदमादि से शान्तस्वरूप (अर्काः) पूजनीय (ऋषयः) मन्त्रद्रष्टा ऋषिलोग (पूषा) पोषक राजा .....॥३॥ पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्षस्थ [सब पदार्थ.....

---

१. यजुः ३।६२ ॥ २. पैप्पलाद शाखा अथर्व ६।१८।२, ३, ५-९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं सं मा सिञ्चन्तु प्रदिशः सं मा सिञ्चन्तु या दिशः ।
आशाः समस्मान् सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥५॥
ओं सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः सं मा सिञ्चन्त्वोषधीः ।
सोमः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥५॥
ओं सं मा सिञ्चन्तु नद्यः सं मा सिञ्चन्तु सिन्धवः ।
समुद्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥७॥
ओं सं मा सिञ्चन्त्वापः सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः ।
सत्यं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥८॥

[अष्टम विधि—यज्ञ-समाप्ति]

तत्पश्चात् दैनिक-अग्निहोत्रविधि प्रायश्चित्त-विधि में पृष्ठ ५२६-५२७ में लिखे प्रमाणे करके भोजन दान-दक्षिणा पूर्वक यज्ञ समाप्त करें।

[नवम विधि—आशीर्वाद]

तत्पश्चात् ऋत्विग् को दक्षिणा देकर, कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को यथायोग्य आदर-सत्कार करके विदा करें। सब लोग जाते समय निम्न मन्त्रों से बालक अथवा स्व-जन्मदिवस मनाने वाले को आशीर्वाद दें—

॥४॥] दिशायें प्रदिशायें व आशायें=देश-विदेश-चतुर्दिक्०—॥५॥ खेतियां, औषधियां, और [इनका राजा] चन्द्रमा वा वर्षा जल०—॥६॥ नदियां झीलें, समुद्र०—॥७॥ [वापी कूप तड़ाग के] जल, किसान और सत्य०—ये सब पदार्थ[1] हमें सन्तान अथवा इष्ट मित्रादि से, धनधान्यादि से सींचे-बढ़ावें और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥८॥

---

१. 'आदित्याः' से लेकर 'सत्य' पर्यन्त शब्दों के अर्थ परमेश्वर परक व उसकी शक्तियों परक अर्थ भी होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥१॥[1]

साग्रं वर्षशतं जीव पिब खाद च मोद च ।[2]
आयुर्बलं यशः प्रज्ञां प्राप्नुयाः शुभसम्पदाम् ॥२॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ३॥[3]

पश्चात् यजमान और उपस्थित सज्जन सब मिल कर परमात्मा से प्रार्थना करें—

आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पौषैरभि नः सचन्ताम् ।

परमात्मा के अनुग्रह से हम सबके लिये आयु, सन्तति, धन और और पुष्टि प्राप्त होवे ।

॥ इति वर्धापन-संस्कार-विधिः समाप्तः ॥

---

१. हे बालक/बालिके व यजमान ! तू वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, सौ शरद ऋतु, हेमन्त ऋतुओं और वसन्त ऋतुओं तक जी । विद्युत् व अग्नि अथवा ऐश्वर्य शाली सर्वज्ञ परमात्मा, सूर्य अथवा सबका प्रकाशक-उत्पादक परमात्मा और लोक लोकान्तरों का धारक अथवा उनका स्वामी परमात्मा (शतायुषा हविषा) सौ वर्ष आयु की साधन भूत भोगसामग्री से (इमं) इसको (शतं पुनः दुः) एक सौ वर्ष परिमित आयु निश्चय ही से बार-बार प्रदान करें ।

२. सौ बरस जी, खा पी मौज कर, आयु बल यश प्रज्ञा और शुभसम्पदा को प्राप्त कर ।

३. हे सर्वेश्वर ! इसके लिये सर्वोत्तम (द्रविणानि) धन-बल-ज्ञान वीर्य को धारण कराओ, दक्षपुरुष की चेतना-सावधानता, सौभाग्य, ऐश्वर्यों की वृद्धि, शरीरों की नीरोगता, जीवन व्यवहारों की निर्विघ्नता, वाणी की मधुरता और दिनों का सुदिनत्व प्रदान कर ।

---

१. ऋक् १०।१६१।४ ॥ तुलना करो—अथर्व ३।११।४ ॥
२. ऋक् खिलभाग ४।७।७ का पूर्वार्ध ॥ ३. ऋक् २।२१।६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवाह-दिवस-पद्धतिः

जिस दिन विवाह-दिवस मनाना निश्चय किया हो, इससे पूर्व दिन यज्ञ की सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है। सर्वप्रथम निम्न मन्त्र से सुगन्धित द्रव्य शरीर पर मल शुद्ध जल से स्नान करें—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय।[1]

स्नान, से पूर्व पति क्षौरकर्म, लोम नख आदि वपन करा लेवे; पत्नी भी नख कटवा लेवे। पश्चात् दोनों अपने-अपने देश की सुन्दर वेश-भूषा में यज्ञवेदी पर पूर्वाभिमुख बैठें। पत्नी, पति के दक्षिण बाजू बैठे।

पश्चात् ऋत्विग्वरण कर, यज्ञ से पूर्व दोनों नवीन यज्ञोपवीत धारण करें और फिर परस्पर दोनों एक दूसरे के कण्ठ में सुगन्धित पुष्पमाला पहिनावें।

[प्रथम विधि—यज्ञ आरम्भ]

पश्चात् पृ० २६ से पृ० १२० के तक लिखे प्रमाणे 'ओं त्वं नो अग्ने···०' तक की सब विधि करें।

[द्वितीय विधि—प्रधान होम की विशेष आहुतियां]

१. पंच आज्याहुतियां

पश्चात् पृ० ३२३ पर लिखे प्रमाणे 'ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०···'—'ओं भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा०···' इन पांच मन्त्रों से आज्याहुति देवें। इस समय पत्नी अपने दक्षिण हाथ को पति के दक्षिण स्कन्धे पर रक्खे।

---

१. अर्थ द्र० पृ० २५९, २९५ पर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२. राष्ट्रभृत्

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां पति घृत से और पत्नी होम द्रव्य से दोनों जने देवें।

ओं ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च स्वाहा ॥१॥[1]

ओं पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च स्वाहा ॥२॥[1]

ओम् अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ स्वाहा ॥३॥[2]

---

१. हे गृहस्थो! तुमको योग्य है कि तुम ब्रह्मभाव व ब्रह्मकुल, क्षत्रभाव व क्षत्रियकुल, राष्ट्र और उसका न्याय से पालन, प्रजा, (त्विषिः) तेज, आरोग्य, यश, (वर्चः) विद्या का आदान-प्रदान और (द्रविणं) द्रव्योपार्जन और धर्मयुक्त परोपकार में व्यय करने आदि कर्मों को सदा किया करो।

२. हे गृहस्थो! उत्तम जल व दूध का सेवन, घृत दूध मधु आदि का सेवन, यव चावल आदि अन्न और (अन्नाद्यं) से संस्कृत उत्तम संस्कार मनुष्य के लिये भक्ष्य पदार्थ और दाल शाक कढ़ी आदि, ऋत =यथार्थ ग्रहण, सत्य, स्वाध्याय यज्ञादि इष्ट, धर्म-परोपकारार्थ विद्यालय जलाशय आदि बनवाना (प्रजा) सन्तानोत्पादन, पालन, उन्नति करना-कराना (पशवश्च) गाय आदि पशुओं का पालन व उन्नति सदा किया करो।

३. पुष्टि कारक पदार्थों अथवा घी दूध से और राष्ट्र के साथ सब प्रकार से गृहस्थ जन फले-फूलें। ये दोनों स्त्री पुरुष (सहस्र-वर्चसा) अनेक विधि बल देने वाले (रय्या) धनैश्वर्य से (अनुपक्षितौ) कभी दरिद्र न हों अर्थात् इनके घर में कभी इनका अभाव न हो।

---

१. अथर्व १२।५।८, १०॥ 'स्वाहा' मन्त्रान्तर्गत पद नहीं। यहां 'इदं मे ब्रह्म च क्षत्र···० मनुः ३२।२६ तथा 'ब्रह्म क्षत्रं पवते०·····' यजुः १९।५॥ तथा 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च०···' मन्त्र भी पढ़ सकते हैं।

२. अथर्व ६।७८।२॥ 'स्वाहा' पद मन्त्रान्तर्गत पद नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. दम्पती मङ्गल-होम

ओं तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धतां स्वाहा ॥४॥

ओं त्वष्टा जाया म जनयत् त्वष्टास्मै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वां स्वाहा ॥५॥

सं वः पृच्यन्तां तन्वः१ सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् स्वाहा ॥६॥

अथर्व ६।७४।१ ॥

ओम् इदꣳहविः प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳसर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ।

---

४. उस (भूतेन हविषा) परिपक्व अन्न भोग से यह पति बार-बार पुष्ट हो और (यां जायां) जिस पत्नी का इसके साथ (आ अवाक्षुः) विवाह हुआ है उसको भी उस हवि के (रसेन) रस से बढ़ावे अर्थात् पति अपनी स्त्री को भी वही पुष्टिकारक अन्न खिलावे जिससे वह स्वयं पुष्ट होता है।

५. सृष्टि-कर्त्ता परमात्मा ने उत्पादन सामर्थ्य से युक्त स्त्री को बनाया है और स्त्री के लिये हे पुरुष! तुझ 'पति' को उत्पन्न किया है। वह परमात्मा तुम दोनों को हजारों वर्षों तक का दीर्घ जीवन प्रदान करे।

६. हे गृहस्थो! तुम्हारे शरीर परस्पर प्रेम से सम्यक् प्रकार से मिला करें। परस्पर मनः सम्पर्क ठीक हो और (व्रता उ सम्) तुम्हारे व्रत=जीवन व्यवहार भी मिलकर हुआ करें। तुमको (अयं ब्रह्मणस्पतिः) यह ज्ञानी पुरुष या सर्वज्ञ परमात्मा और (भगः) ऐश्वर्यशाली राजा व परमात्मा (सम् अजीगमत्) सदा मिलाये रक्खे।

७. यह दश प्राणों से युक्त, सब अङ्गों में व्याप्त, उत्पादक (हविः) रजोवीर्य रूप हवि, मेरी सुस्थिति के लिये हो। और यह अपने देश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त स्वाहा ॥७॥ यजुः १९।४८ ॥

४. पितृमेध-होम

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वं स्वाहा ॥८॥[1]

ओं पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै स्वाहा ॥९॥[1]

में बल धारक, प्रजा देने वाला, प्राण तथा इन्द्रियों का बलदाता, लोक स्थिति स्थापक और अभय देने हारा हो। (अग्निः) परमात्मा मेरे लिये बहुत सी प्रजा करे। और हमारे में अन्न, पुष्टिकारक दुग्धादि पदार्थ और (रेतः) वीर्यसामर्थ्य धारण करावे।

८. अपने शरीर के धारण पोषण मात्र के लिये ही 'अन्न' धन, वस्त्र' ग्रहण करने वाले [वानप्रस्थ] पितरों, [संन्यासी] पितामहों और [सौवर्षी] प्रपितामहों के लिये जीवन पोषणार्थ सत्कार पूर्वक अन्नादि का प्रबन्ध करते हैं। ये सब इसे स्वीकार करें। ये निश्चिन्त प्रसन्न रहें; तृप्त सन्तुष्ट रहें। हे पितरो! आप अपने आचरणों व ज्ञान-अनुभव-उपदेश से हमें शुद्ध-पवित्र आचरण वाला बनाओ।

९. ये शान्त तेजस्वी ज्ञानी [पचास पचपन वर्षी वानप्रस्थ] पितर, [पचहत्तर वर्षी संन्यासी] पितामह और [शतवर्षी] प्रपितामह जन हमें (पुनन्तु) पवित्र करें अर्थात् निन्दनीय असत् आचार से छुड़ाकर प्रशंसनीय शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करावें। हम ऐसे 'पवित्र शतायुषी' जीवन से युक्त सारी उमर भोगें।

---

१. यजुः १९।३६, ३७ ॥ 'स्वाहा' पद मन्त्रान्तर्गत नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५. विश्व-मङ्गल-होम

ओं स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यं स्वाहा ॥१०॥ अथर्व १।३१।४॥

[तृतीय विधि—पति-पत्नी द्वारा प्रतिज्ञाहुतियां]

पति द्वारा—

ओं ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतं स्वाहा ॥१॥[1]

पत्नी द्वारा—

ओम् इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतं स्वाहा ॥२॥[2]

[चतुर्थ विधि—यज्ञ-समाप्ति मङ्गल-कामना]

तत्पश्चात् 'प्रायश्चित्त विधि' में पृ० ५२६-५२७ पर लिखे

---

१०. हे मंगलमय कल्याण करने वाले परमात्मन्! तेरे अनुग्रह से हमारे, माता, पिता, गवादि पशु, सब जगत् और पुरुषो=प्राणियों के लिये सुख और शान्ति प्राप्त हो। हमारा यह गृहाश्रम का संसार और समस्त संसार (प्रभूतं) उत्तम विभूति से युक्त एवं (सुविदत्रं) उत्तम ज्ञान अनुभवों से सम्पन्न हो। (ज्योक् एव) चिरकाल तक हम सूर्य का दर्शन करते रहें अर्थात् प्रकाश व आनन्द-युक्त जीवन भोगें।

१. यह देवी मेरे से सदा पोषित रहे। हे प्रजावति! पत्नी! परमेश्वर ने तुझे मुझे सौंपा है। तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जी।

२. मेल के बीजों को [गृहस्थ क्षेत्र में गिराती] बोती हुई यह स्त्री कहती है कि मेरा पति दीर्घायु होवे और सौ वर्ष तक जीवे।

---

१. अथर्व १४।१।५२॥ २. अथर्व १४।२।६३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रमाणे दैनिक अग्निहोत्र विधि एवं भोजन दान-दक्षिणा पूर्वक यज्ञ की समाप्ति करें ।

जाते समय सब जनें यजमान दम्पती के लिये निम्न शुभ कामनायें प्रकट करें—

ओं स्योनाद् योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥१॥[1]

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यऽश्नुताम् ॥२॥[1]

॥ इति विवाह-दिवस-पद्धतिः समाप्ता ॥

---

१. हे स्त्री पुरुषो! तुम सुख से इस घर के आश्रय में एक दूसरे को समझते हुए, हास्य और आमोद (अठखेलियां) करते हुए, प्रेम से सदा प्रसन्न, सदाचारी व कार्य-कुशल, उत्तम सन्तान युक्त, सुन्दर घर वाले हो (जीवौ) जीवन को सार्थक करने वाले होवो, सुन्दर प्रकाश युक्त उषाओं को पार करते रहो. चिरायु बनो ।

२. हे सर्वेश्वर! इस संसार में इन दोनों जाया व पति को चकवा चकवी के समान एक दूसरे के प्रति प्रेम बद्ध कर । सन्तति सुख से युक्त दोनों सौ वर्ष की पूर्ण आयु को भोगें ।

---

१. अथर्व १४।२।४३, ६४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आयुष्काम-पद्धतिः

जीवन के द्वितीय भाग अर्थात् गृहस्थ के बाद पुराने युग में 'द्विज' वानप्रस्थ ग्रहण कर 'तपः-स्वाध्याय' का जीवन तथा इसके पश्चात् सर्वसङ्ग का परित्याग कर 'सत्योपदेशक-परिव्राजक' का जीवन बिताते थे, अब वैसा नहीं है।

कई जन इस आयु (उत्तरार्ध) में तथा कतिपय जीवन के पूर्वार्ध में भी दुश्चिकित्स्य अथवा में दीर्घ रोगी हो जाते हैं। इस समय वे स्वयं या उनकी सन्तान उनकी **'नीरोगता और दीर्घायुष्य'** की कामना से यज्ञ कराते हैं। इस अवसर तथा वृद्ध-जनों के जन्म-दिवस पर पढ़े जाने के लिये कुछ विशेष मन्त्र नीचे दिये जाते हैं। यज्ञ-सामान्य रीति से ही करना चाहिये। इसके दो भेद हैं। प्रथम दीर्घ-रोगी होते हुए भी यजमान स्वयं यज्ञ करने में समर्थ हो और दूसरा अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण होने से स्वयं यज्ञ में उपस्थित न हो सके। द्वितीय स्थिति में उसके निकटवर्ती सम्बन्धी यज्ञ-कर्म करावें। यदि रोगी स्वयं यज्ञ में बैठने में समर्थ हो तो जन्म-दिवस-पद्धति पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों के अतिरिक्त निम्न मन्त्रों से दीर्घायुष्य की कामना के लिये आहुतियां दें—

ओं पश्येम शरदः शतं स्वाहा ॥१॥

ओं जीवेम शरदः शतं स्वाहा ॥२॥

ओं बुध्येम शरदः शतं स्वाहा ॥३॥

ओम् ऐहेम शरदः शतं स्वाहा ॥४॥

ओं पूषेम शरदः शतं स्वाहा ॥५॥

ओं भवेम शरदः शतं स्वाहा ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूयेम शुरदः शतं स्वाहा ॥७॥

ओं भूयसीः शुरदः शतं स्वाहा ॥८॥[1]

रोग से पीड़ित व्यक्ति निम्न मन्त्रों से आहुतियां देता हुआ पूर्ण आयु तक जीने का सुदृढ़ सकल्प अपने मन में धारण करे—

ओं जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं स्वाहा ॥१॥

ओं उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं स्वाहा ॥२॥

ओं संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं स्वाहा ॥३॥

ओं जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं स्वाहा ॥४॥

अथर्व १९।६९।१-४ ॥

१-८. हे प्राणदाता सर्वजीवन परमात्मन् ! हम तेरी कृपा और अपने विवेकशील पुरुषार्थ से सौ वर्ष तक देखते रहें, जीते रहें, समझते रहें [बुद्धि स्वभाव न बिगड़े[2]], उन्नति करते रहें, पुष्ट होते रहें, अविचलित बने रहें, [धन-धान्य] प्राप्त करते रहें वा [3]शुद्ध सदाचारी रहें। सौ से अधिक वर्षों तक भी हम देखें, जीवें, समझें, आगे बढ़ें, पुष्ट हों, स्थिर समर्थ बने रहें, और सदा धन-धान्य हमें प्राप्त होता रहे।

१-४. हे जनो ! और आप्त जनो ! आप जीवन अर्थात् प्राण धारण कराने में समर्थ हो; जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ हो। मैं और भी अधिक जीवन धारण करूं। आप भली प्रकार जीवनप्रद हो; मैं उत्तम रीति से जीवन धारण करूं। तुम जीवन तत्त्व को प्राप्त करा देने वाले हो; मैं जीता रहूं और सम्पूर्ण आयु सुख-पूर्वक जीवित रहूं।

---

१. अथर्व १९।६७।१-८ ॥

२. प्रायः वार्धक्य में सठियाने लगते हैं।

३. भू=प्राप्तौ चुरादि। भू=शुद्धौ आशीर्लिङ् छान्दसं रूपम्, इति क्षेमकरणाः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासं स्वाहा ॥१॥ अथर्व १९।७०।१ ॥

यदि रोगी स्वयं उपस्थित न हो सकता हो तो उसके सम्बन्धी-जन निम्न मन्त्रों से स्थलीपाक की चार आज्याहुति दें—

ओम् उत्क्रामातः पुरुष मावं पत्थामृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः । माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः स्वाहा ॥२॥ अथर्व ८।१।४ ।

ओम् उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि । आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि स्वाहा ॥३॥ अथर्व ८।१।६ ॥

---

१. हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! व वायो ! तू हमें जीवन धारण करा। हे सूर्य, सबके प्रेरक आदित्य ! और हे विद्वद्गण ! पृथिवी अग्नि विद्युत् आदि पदार्थो ! आप सब भी मुझे जीवन प्रदान करो। मैं जीता रहूं और सम्पूर्ण आयु सुखपूर्वक जीवित रहूं।

२. हे रोगी (पुरुष) देह-पुरी में वसने वाले पुरुष ! इस दशा या अविद्या से (उत्काम) ऊपर उठ। (मा अव पत्थाः) नीचे की ओर न गिर। मृत्यु के (पड्वीशं) पद-बन्धनों को छुड़ाता हुआ, इस जीवन से तथा अग्नि और सूर्य के दर्शन से (मा च्छित्थाः) छिन्न=पृथक्=वियुक्त मत हो। और

३. हे पुरुष ! तेरी जीवन में उन्नति अभ्युदय हो; तेरा पतन अवनति न हो। [परमात्मा कहता है कि] तेरे जीवन को मैं (दक्षताति बल तेज क्रिया से युक्त करता हूं। तू इस (अमृतं रथं) अमृत रूप सौ वर्ष के जीवन से युक्त रमण साधन अर्थात् भोगायतन शरीर रथ को निश्चयपूर्वक सुख से चढ़ या धारण किये रख, ताकि तू इस प्रकार (जिर्विः[1]) सुजीवनयुक्त वृद्ध होकर (विदथं आ वदासि) अपने जीवन के ज्ञानमय अनुभव को भली प्रकार सर्वत्र कह सके।

---

१. ऋग्वेद तु 'जिव्रिः' (ऋक् १।१८०।५)। ऋक् १।११०।८ तथा ४।१८।२ में ऋषि दयानन्द ने इस पद का अर्थ क्रमशः 'सुजीवनयुक्त' तथा 'दृढ़जीवन' किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः स्वाहा ॥४॥ यजुः २५।२२ ॥

ओं मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः स्वाहा ॥५॥[1]

पश्चात् दोनों अवस्था वाला रोगी यजमान परमेश्वर का उपस्थान कर अपने शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य वृद्धि की कामना करे—

---

४. हे देव विद्वानों ! (अन्ति=अन्तिके) आप के सङ्ग से वह स्थिति प्राप्त हो, जिसमें सौ वर्ष का (इत् नु) ही जीवन कम से कम हमारे शरीरों की वृद्धावस्था को बनावे। अर्थात् विद्वानों के सत्सङ्ग से हम सौ वर्ष के स्वस्थ वृद्ध हों। जब पुत्र लोग (पितरः) आगे बच्चों के पिता व वृद्ध तथा कुटुम्बियों के पालक (भवन्ति) हो जाते हैं, तब तक (नः गन्तोः आयुः) हमारे गुजरने वाले जीवन की आयु को मध्य में विनष्ट मत करो।

५. रोग-दुःख-विपत्ति से व उसके भय से मुक्त होने का उपदेश करते हैं। हे पुरुष डर मत, तू मरेगा नहीं; तुझको मैं आचार्य या वैद्य वृद्धावस्था तक जीवन बिताने में समर्थ करता हूं ।।···यह शरीर कभी किसी से हार न मानने वाला दिव्य शक्तियों का प्रियतम लोक है।···(सः च) वह जो तू इस देह से असंग=भिन्न है, उस तुझको हम बार-बार स्मरण कराते हैं=चेताते हैं कि बुढ़ापे से पहिले मत मर; मरने से मत डर।

---

१. अथर्व ५।३०।८ का पूर्वार्ध, अथर्व ५।३०।१७ की दो पंक्तियां। प्रभावी विनियोग के लिये एक मन्त्र का रूप दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं वर्च आ धेहि मे तन्वा ३ सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥५॥
अथर्व १९।३७।२ ॥

ओम् अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ॥६॥ ऋक् १०।४८।५ ॥

तत्पश्चात् 'प्रायश्चित्त विधि' पृ० ५२६-५२७ में लिखे प्रमाणे दैनिक अग्निहोत्र विधि से यज्ञ समाप्त करें।

अन्त में यजमान सब सज्जनों सें दुःख रोग विमुक्ति के लिये निम्न मन्त्रों से आशीर्वाद मांगें—

ओं सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः। पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥१॥ अथर्व २०।९१।११ ॥

---

५. हे परमात्मन् ! मेरे शरीर में वर्चस्व, सहन-शक्ति, ओजः, जीवनशक्ति और बल धारण करा। तुझको मैं इन्द्रियों के सामर्थ्य के लिये, चेष्टा के लिये, वीर्य सम्पादन के लिये स्वीकार करता हूं।

६. मैं (इन्द्रः) इन्द्रियों [रूपी धन] का अधिष्ठाता हूं, ऐश्वर्य सम्पन्न हूं। (धनं न इत्) धनको कभी हार नहीं सकता। इसीलिये मृत्यु (की दाढ़) के नीचे कभी अपने को नहीं रख सकता।

१. हे विद्वानों ! सज्जन शुभचिन्तकों ! आप लोग दीर्घायुष्य धारण के लिये सत्य आशीर्वाद दीजिये, आप अपने (एभिः) ज्ञानों व अनुभवों व जीवन व्यवहारों से (कीरिं चित् हि) कीर्त्तन कर्त्ता अर्थात् प्रेमीभक्त की सदा रक्षा करते हो। आपके सत्याशीषों से सब (मृधः) मारक दुःखदायिनी आपत्तियां पीछे बहुत दूर हो जावें। हे (रोदसी) द्यौ और पृथिवी के समान परस्परोपकारक स्त्री पुरुषो ! देवियो-भद्रपुरुषो ! (इन्वे) सत्यार्थ कहे ज्ञानों-व दिये अन्नों द्वारा (विश्वं तत्) मेरी इस सब प्रार्थना को श्रवण करो। अथवा मेरी इस प्रार्थना को भूमि आकाश में स्थित सब प्राणी सुनें, सुनकर पूरी करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपस्थित सब जने यजमान के उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की कामना निम्न मन्त्रों से करें—

ओम् अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं देयस्वोदितो३यमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुजरसो शतहायन आत्मता भुजमश्नुताम् ॥२
अथर्व ८।२।८ ॥

ओम् आयुष्यऽमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥३॥
अथर्व २।२९।१ ॥

ओम् अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् । दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥४॥ अथर्व ८।५।२१ ॥

---

२. हे मृत्यो ! मृत्यु व्यवस्थापक परमात्मन् ! इसको तू शान्ति-सान्त्वना के वचन=धैर्य का उपदेश कह दे। इस पर दया कर, ताकि यह पुरुष (उदितः एतु) दुःख-विपत्ति से ऊपर उठे अर्थात् अभ्युदय को प्राप्त हुआ जीवन-पथ पर आवे और पीड़ारहित सब अङ्गों से पूर्ण अर्थात् हृष्ट-पुष्ट, उत्तम ज्ञान व श्रवण शक्ति से युक्त होकर (जरसां शतहायनः) बुढ़ापे तक के सौ वर्षों से युक्त होकर (आत्मना) अपनी शक्ति से पुरुषार्थ से, देह से (भुजं) अपने योग्य =कर्मफल को भोगें।

३. इस पुरुष को·····अग्नि व नायक परमात्मा, सूर्य व सर्वोत्पादक परमात्मा और वायु व वेदवाणी का आदिमूल परमेश्वर (आयुष्यं वर्चः) दीर्घायु प्रापक तेज धारण करावें।

४. इसमें ऐश्वर्यशाली परमात्मा (नृम्णं) मर्दानगी अथवा सब मनुष्यों का अधिमत धन-बल-सुख रखे और हे दिव्यशक्तियों ! तुम अपने गुणों के साथ इसमें प्रविष्ट हो जाओ; (यथा) ताकि यह सौ वर्ष दीर्घ जीवन के लिये वृद्धावस्था तक आयुष्मान् हो जीता रह सके।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोगी पुरुष का चिकित्सक अथवा यज्ञ द्वारा रोगनिवृत्ति कराने हारा पुरोहित यजमान को निम्न मन्त्र द्वारा विश्वास दिलावे कि अब तुम मृत्यु को प्राप्त न होवोगे—

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥१॥ अथर्व ३।११।४ ॥

अन्त में यज्ञ में सम्मिलित हुए व्यक्तियों और ऋत्विजों को यथाशक्ति भोजन-दान-दक्षिणा आदि देकर विदा करे।

॥ इति आयुष्काम-पद्धतिः समाप्ता ॥

---

१. हे यजमान ! तू शरीर-मन-मस्तिष्क तथा जीवन में बढ़ता हुआ सौ शरद् ऋतु पर्यन्त, सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त और सौ बसन्त ऋतु पर्यन्त जीता रह। ऐश्वर्यशाली, सर्वज्ञ, सबका प्रकाशक-उत्पादक और लोक लोकान्तरों का स्वामी परमात्मा तुझे सौ वर्ष का जीवन दे। [परमात्मा कहता है कि] मैं इस पुरुष को सौ वर्ष की आयु प्राप्त कराने वाली साधन सामग्री से 'रोग-मृत्यु-दोष' से खींच बाहर ले आया हूं; मैंने उभार लिया है, अब तुम मृत्यु को प्राप्त न होवोगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वातन्त्र्य-दिवसोत्सव-विधिः

वेद की दृष्टि में 'पृथिवी' सबकी माता है और सब स्त्री-पुरुष उसके 'पुत्र' हैं। इसलिये 'वसुधैव कुटुम्बकं' कह सबको 'वैश्वानर' =विश्वनागरिक बनने का उपदेश आर्य-नीति शास्त्रकारों ने दिया है। वेद की भाषा में—

ओं तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥१॥ ऋक् १०।५३।६ ॥

भूमण्डल के समस्त राष्ट्रों के नागरिकों को अपने-अपने स्वातन्त्र्य-दिवस पर 'मनुर्भव' का संकल्प करना चाहिये।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से 'अखण्ड स्वतन्त्र जीवन का संकल्प करना चाहिये—

ओं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२॥ यजुः ३६।२४ ॥

---

१. हे प्रिय विश्वनागरिक! इस चहल-पहल वाले विश्व में [स्वतन्त्रता से] अपनी करनी करता हुआ, तू प्रकाश का अनुसरण कर। [स्वतन्त्र] बुद्धि से आविष्कृत ज्योतिर्मय-मार्गों की रक्षा कर। निरन्तर कार्य व्यस्त जनों के उलझन रहित कर्मों-व्यवहारों को आगे चला। मनुष्य बन और दिव्य जन=आर्य-सन्तान को उत्पन्न कर। इस प्रकार कहा है।

२. हम स्वतन्त्र भाषण का अधिकार रखते हुए सौ वर्ष तक अदीन=स्वतन्त्र रहें और पुनर्जन्म के सौ बरस भी ऐसे स्वतन्त्र ही बतायें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ॒ज्ये॒ष्ठासो॒ अक॑निष्ठास ए॒ते सं भ्रात॑रो वावृधुः सौभ॑गाय ॥३॥

ऋक् ५।६०।५ ॥

समानी प्रपा सह वो ऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥४॥

अथर्व ३।३०।६ ॥

यज्ञ मण्डप पर उपस्थित सब जनों से पुरोहित या कोई विद्वान् यह संकल्प करावे ।

पश्चात् पृ० ३० से १०८ तक लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सब क्रिया यथाविधि करें ।

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की विशेष आहुतियां—

स॒त्यं बृ॒हदृ॒तमु॒ग्रं दी॒क्षा तपो॒ ब्रह्म॑ य॒ज्ञः पृ॑थि॒वीं धार॑यन्ति । सा नो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य॒ पत्न्यु॒रुं लो॒कं पृ॑थि॒वी नः॑ कृणोतु॒ स्वाहा॑ ॥१॥ अथर्व १२।१।१ ॥

---

३. कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं । ऐसे ये राष्ट्रवासी सब जन परम्पर भाई-भाई बनें राष्ट्र के सौभाग्य के लिये मिलकर उन्नति का प्रयत्न करते रहें ।

४. तुम सब नागरिकों के अन्न-पान का समान अधिकार हो । तुम्हें राष्ट्र-अभ्युदय के उत्तरदायित्व में समान अवसर दिया जाता है । सब ऐसे मिलकर तेजस्वी अग्रनायक की पूजा करो, जैसे अरे पहिये की नाभि के चारों ओर जुड़ जाते हैं ।

१. (सत्यं) सत्ता अर्थात् यथार्थ स्थिति, 'होने' की स्वीकृति, फिर (बृहत्) आगे बढ़ना, वृद्धि (ऋतं) उसके लिये न्याय व्यवहार (उग्रं) उग्र भावना (दीक्षा) दीक्षा या संकल्प (तपः) उसके लिये द्वन्द्व-सहन की क्षमता (ब्रह्म) ज्ञान विवेक, सदसत् विवेक और (यज्ञः) सत्कार-संगति-दानात्मक सत्कर्म ये आठ गुण (पृथिवीं) विश्वराज्य का धारण करते हैं अर्थात् आर्यों के चक्रवर्त्ती साम्राज्य के संस्थापक हैं, प्रतिष्ठापक हैं । वह पृथिवी [मण्डल पर फैली शासन व्यवस्था] हमारे अतीत व भविष्य तथा वर्त्तमान की पालिका है । वह हमारे फूलने-फलने को विस्तृत स्थान [क्षेत्र=स्कोप] बनावे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनाऽस्मै भव सूपवञ्चना । माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि स्वाहा ॥२

ऋक् १०।१८।११ ॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यं स्वाहा ॥३॥ अथर्व १२।१।१६ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् । सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती स्वाहा ॥४॥ अथर्व १२।१।४५ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि

---

२. हे पृथिवि! (उच्छ्वञ्चस्व) मार्ग खुला करो, (मा निबाधथाः) किसी को बाधा मत करो, रोक मत लगाओ। सब स्वतन्त्रता से बिना रोक-टोक के सर्वत्र आ जा सकें। इस नागरिक के लिये (सूपायना) जीवन-यापन के अन्न-वस्त्र-आश्रय रूप उत्तम करने वाली और उत्तम कल्पना अर्थात् आश्वासन देने वाली हो। हे भूमे! जैसे माता पुत्र को अपने (सिचा) आंचल से रक्षित रखती है, वैसे तू इसकी सब ओर से सुरक्षा कर।

३. वे सब हमारी प्रजायें मिलकर पूर्णता प्राप्त अर्थात् अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। हे पृथिवि! मुझको वाणी की मिठास दे [ताकि मैं किसी की निन्दा न करूं]।

४. (विवाचसं) विविध भाषा भाषी (नानाधर्माणं) भिन्न गुण कर्म स्वभाव रुचि के कारण नाना प्रकार के अपने लिये 'नियत-कर्मों' को करने वाले (जनं) जनगण को बहुत प्रकार से एक ही घर में रहने के समान धारण करने वाली स्थिर पृथिवी धनैश्वर्य की सहस्र-धारायें मेरे लिये दुहे, जैसे शान्त दुधारी गो-माता वत्स के लिये दूध की धारा बहाती है।

५. हे पृथिवि! (ते उपस्थाः) तेरी गोद, आश्रय स्थान और तुम्हारे द्वारा उत्पादित सब पदार्थ हम सबके लिये, दुःख बाधा न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

प्रसूताः । दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम स्वाहा ॥५॥ अथर्व १४।१।६२ ॥

स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः स्वाहा ॥६॥ ऋक् १।२२।१५ ॥

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्त्स्वाहा ॥७॥
अथर्व ३।२४।३ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति स्वाहा ॥८॥
अथर्व १२।१।१५ ॥

देने वाले, रोग रहित हों । हमारी आयु दीर्घ होवे । (प्रतिबुध्यमानाः) तेरे प्रति अपने कर्त्तव्य व अधिकारों के प्रति जागृत हम तेरे लिये अपनी बलि देने वाले होवें ।

६. हे पृथिवि ! हमारे लिये तू सुखदात्री निष्कंटक और आश्रय-दात्री हो । हमें (सप्रथः) कीर्त्तियुक्त (शर्म) सुख (आ यच्छ) भली प्रकार दे ।

७. जो [राष्ट्र की] इन पांच दिशाओं में (पञ्च कृष्टयः) पांच प्रकार के उद्यमशील, कष्ट-जीवी, पसीनाखींच काम करने वाले मनुष्य हैं, वे सब वृष्टि से नदी के बढ़ने की तरह इस संसार में शारीरिक सामाजिक उन्नति को प्राप्त करें ।

८. तुझसे उत्पन्न हुए सब नश्वर पदार्थ व मरणधर्मा प्राणी तुझ पर विचरते हैं, तू दोपाये व चौपाये का भरण-पोषण करती है । हे पृथिवि ! जिन मर्त्यों पर उदीयमान सूर्य अपनी किरणों से जीवन दायिनी अमर ज्योति फैलाता है, वे पञ्च मानव [=ज्ञानव्रती, रक्षणव्रती, धनव्रती और श्रमव्रती तथा अव्रती मनुष्य भी] तेरे ही हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचं स्वाहा ॥९॥
यजुः १८।४८ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु स्वाहा ॥१०॥
अथर्व १९।१५।६ ॥

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः स्वाहा ॥११॥
यजुः ३६।२२ ॥

यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय ।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतं स्वाहा ॥१२ अथर्व १०।७।३१ ॥

---

९. हमारे, विद्या, कला, सभ्यता संस्कृति से सम्बद्ध [ब्राह्मण] जनों में [राष्ट्रोन्नति के प्रति] (रुचं) उल्लास उत्साह रुचि भरो; शासनाधिकारी [क्षत्रिय—] जनों में, अन्नादि से प्रजापालन करने वाले कृषक-व्यापारी [वैश्य—] जनों में और श्रमिक [शूद्र—] जनों में अपने-अपने नियत-कर्म के प्रति 'रुचि' धारण कराओ। मुझमें भी (रुचा) इस प्रकार के कर्त्तव्यपालन से उत्पन्न तेजस्विता से अपने कर्त्तव्य के प्रति तेज पैदा करो।

१०. हमें (मित्रात्) मित्र या मित्र-राष्ट्र से, (अमित्रात्) विरोधी या शत्रुराष्ट्र से, (ज्ञातात्) साक्षात् सम्बद्ध से और (परोक्षात्) परोक्ष अर्थात् अज्ञात से अभय मिले। इस प्रकार रात्रि और दिन के समय निर्भय होकर रहें, इस प्रकार सब दिशायें अर्थात् सब दिशा में रहने वाले हमारे मित्र बनकर रहें।

११. हे शासक! जहां-जहां पर तुम जन-कल्याण के लिये योजनायें बनाते हो, वहां-वहां से हमें अभयदान दो। हमारी प्रजा और पशुओं के लिये शान्तिदायक अभय दान कर।

१२. (अजः) भिन्न-भिन्न देहों में आवागमन [—अज गति-क्षेपणयोः] करने वाले पर स्वभावतः अजन्मा (=अ+जनी प्रादुर्भावे]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ यद् वामीयचक्षसा मित्रा वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥१३॥

ऋक् ५।६६।६ ॥

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् । शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यं स्वाहा ॥१४॥

ऋक् १।८०।१ ॥

पुरुष जब पहले-पहल (संबभूव) स्त्री-पुरुष रूप में मिलकर इस सृष्टि में आया, तब से ही वह निश्चय से 'स्वराज्य' अर्थात् अपने 'स्व+तन्त्र' के चलाने के लिये प्रयत्न करता है; जिस स्वराज्य से कि दूसरा कोई श्रेष्ठ नहीं होता। जीव क्योंकि कर्म करने में स्वतन्त्र है, इस लिये वह स्वभावतः 'स्वराज्य'='स्वशासन' चाहता है, जिससे उत्तम कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

१३. हे (ईयचक्षसा मित्र) अन्तर्ज्ञान की दृष्टि रखने वाले परस्पर मिले स्त्री-पुरुषो! (वाम्) तुम दोनों तथा हम सब ज्ञानी लोग मिलकर (व्यचिष्ठे) व्यापक दृष्टि रखने वाले अथवा अत्यन्त विस्तृत और (बहुपाय्ये) बहुजन पालित या सर्वजन पालक (स्वराज्ये) स्वराज्य में (आयतेमहि) उत्तम प्रकार से सब की शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति अथवा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करें।

१४. (स्वराज्यं अनु अर्चन्) स्वराज्य की अर्चना अर्थात् वृद्धि वर्धमान करता हुआ हे (शविष्ठ वज्रिन्) शक्तिशाली (वज्र सदृश) शत्रुनाशक पुरुष! अपने ओज=प्रभाव से इस पृथिवी के (अहिं) दुःखग्रस्त करने वाले अथवा सर्पसदृश कुटिलाचारी विरोधी को (निः शश) सर्वथा दण्डित कर, परास्त कर; (इत्था) इस प्रकार जैसे कि (मदे सोमे) आनन्द-दायक शान्ति-वर्धक राज्य-शासन होने में निश्चय पूर्वक (ब्रह्मा वर्धनं चकार) राष्ट्र का बड़ा ज्ञानी पुरुष राष्ट्रोत्थान का उपदेश करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्यारुज स्वाहा ॥१५॥ ऋक् १।१०२।४ ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत स्वाहा ॥१६॥
अथर्व ११।१०।१ ॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः स्वाहा ॥१७॥
अथर्व ११।१०।७ ॥

---

१५. हे ऐश्वर्य-सम्पन्न प्रभो ! राष्ट्रपते ! तेरे साथ युक्त होकर (वृतं) बाधाओं के चक्र, आवरण पर हम विजय प्राप्त करें। (भरे-भरे) प्रत्येक अवसर पर हमारे भाग=अधिकार की रक्षा कर। हे शासक ! हमारे लिये (वरिवः) धन को सुगमता से प्राप्त होने वाला कर और शत्रुओं के (वृष्ण्या) बल-प्रभाव को (प्र रुज) पूरी तरह से नष्ट भ्रष्ट करदे।

१६. हे (उदाराः) अभ्युदय की कामना करने वालो ! या ऊपर उठने की इच्छा वाले नागरिको ! उठो। झण्डों को लेकर उन्नति (=मार्च) के लिये संनद्ध हो जाओ। (सर्पाः) भगोड़ों (इतरजनाः) राष्ट्र के नागरिक होकर भी अपने को पराया समझने वाले मनुष्यों (रक्षांसि) रक्षा के नाम पर भक्षण करने वाले खाऊ-पीऊ अधिकारी जनों और (अमित्रान्) राष्ट्रविरोधी विचार व कर्म रखने वाले जनों पर (अनुधावत) धावा करो, उनका पीछा कर उनका दमन करो।

१७. [शत्रु सेना तथा राष्ट्र-विरोधी गण] (धूमाक्षी) धूंवे की आंख वाली हो अर्थात् जिसे कुछ न सूझे ऐसी हो तितर बितर हो जावे; कान दबाकर चीखने लगे। अपनी सेना के द्वारा (त्रिषन्धेः) जल भूमि आकाश तीनों केन्द्रों पर से तीनों स्थानों पर चलने वाले वज्र से (जिते) शत्रु के जीत लेने पर [राष्ट्र में सर्वत्र] अपने राष्ट्र के झण्डे फहराये जावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबल-धन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः स्वाहा ॥१८॥

अथर्व ३।१९।७ ॥

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि । एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः स्वाहा १९॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् । सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र स्वाहा ॥२०

अथर्व ८।४।२२ ॥

---

१८. हे (नरः) नेता लोगो ! (प्र इत) आगे बढ़ो, जीतो, तुम्हारी बाहु प्रचण्ड होवें । हे तीक्ष्णास्त्र व तेज शास्त्रधारी वीरो ! हे दृढ़ भुजाओं वाले वीरो ! शत्रुओं को (अ+बलधन्वनः) निर्बल अस्त्र वाले अथवा निश्शस्त्र कर तथा (अबलान्) अशक्त करके (हत) मार कर भगा दो ।

१९. मैं राष्ट्र पुरोहित ! इन नागरिकों के शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करता हूं । इनके राष्ट्र को उत्तम वीर सैनिकों से युक्त करके बढ़ाता हूं । इनका (क्षत्रं) शौर्य (अजरम् अस्तु) कभी जीर्ण न हो ऐसा और चित्त (जिष्णु) सदा जीतने की चाह वाला होवे, ऐसा करता हूं । सब देव=प्रगतिशील शक्तियां इस राष्ट्र की रक्षा करें ।

२०. हे पुरुष ! नागरिक ! उल्लू के स्वभाव अर्थात् अन्धकार में लुके छिपे काम करने के व्यवहार को, (ख) भेड़िये के स्वभाव अर्थात् क्रूरता के व्यवहार को (ग) कुत्ते के स्वभाव अर्थात् आपस में लड़ने तथा खुशामद करने के व्यवहार को, (घ) चिड़िया के स्वभाव अधिक काम-वासना के व्यवहार को (ङ) गरुड़ के स्वभाव अर्थात् गर्व-अहंकार के व्यवहार को और (च) गीध के स्वभाव अर्थात् दूसरे के माल पर लोभ दृष्टि के व्यवहार को (जहि) सर्वहित व परहित दोनों के लिये छोड़ दे, नाश कर । (इन्द्र) हे ऐश्वर्याभिलाषिन् ! शासक ! (रक्षः) इन घातक खाऊ-पीऊ व्यक्तियों को पत्थर समान कठोर साधन से मसल दे ।

राष्ट्र के आभ्युदय के लिये इनका दमन आवश्यक है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य स्वाहा ॥२१॥
ऋक् १।३६।१५ ॥

रक्षा मा किर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो माऽवीनां वृक ईशत स्वाहा ॥२२॥
अथर्व १९।४७।६ ॥

ओम् अभि त्यं देव ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसव ँ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा आदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणीहि स्वाहा ॥२३॥
यजुः ४।२५ ॥

---

२१. हे विशेष प्रकाशमान् ! बलवान् ! नेता ! हमें (रक्षसः) रक्षा के नाम से खा जाने वालों से (धूर्त्तेरराव्णः) धूर्त्त स्वार्थियों से (जिघांसतः) हत्यारे और (रीषतः) रीस करने वाले अर्थात् विरोधियों से हमारी रक्षा करो ।

२२. हमारी रक्षा करो कि (किः) कोई पाप-प्रशंसक, दुराचारी, और (गवां) गाय, भूमि, विद्या आदि की चोरी करने वाला हम पर शासन न करे । (अवीनां) बकरियों, रक्षकदलों या गरीबों पर (वृकः) भक्षक भेड़िया स्वभाव वाला कभी स्वामी न बने, अर्थात् गरीब प्रजा का संहार शोषण करने वाला कभी बड़ा अधिकारी न बने ।

२३. यह नागरिक संकल्प मन्त्र है ।··· (ओण्यो) स्त्री-पुरुष दोनों के संसारों के समान रूप से निर्मापक, सुखदाता भविष्य द्रष्टा शासक का अभिनन्दन करता हूं । जिस उत्तम प्रज्ञा व कर्मयुक्त हिरण्यपाणि शासक ने कृपा और सुख को स्थापित किया है । हे राष्ट्रपते ! तुझे प्रजाओं के लिये चुना है । प्रजा तुझे समर्थन दें अथवा प्रजा तेरे आधार पर जीवें और तू सर्वदा प्रजाओं के अनुकूल रह उनको जीवन दे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थालीपाक की विशेष आहुतियां

ओम् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् हि स्वाहा ॥१॥

यजुः अ० १ । मं० १ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे स्वाहा ॥२

यजुः ४०।२ ॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्य-

---

१. हे विश्व ब्रह्माण्ड के शासक परमात्मन् ! सब प्राणी 'अन्न' और 'बल' के निमित्त हैं। देव सविता सबको आगे बढ़ावे। संसार की शारीरिक आत्मिक सामाजिक उन्नति करने रूप उत्तम कर्मों के लिये फैलो। दुधारु नीरोग सुपुष्ट अवध्य गौवें ही [राष्ट्र के] ऐश्वर्य का भाग होती हैं अर्थात् 'दूसरे का अधिकार छीनने, शोषण करने वाला' और पाप कर्मों को प्रोत्साहन देने तथा प्रशंसा करने वाला जन तुम्हारा शासक न बने। गोपति, अर्थात् किसान की स्थिर सम्पत्ति बहुत से गौ बैल हों। हे सर्वरक्षक प्रभो ! इस यजमान के पशुओं की रक्षा कीजिये।

२. इस (राष्ट्र) जीवन में अपने-अपने नियत कर्त्तव्य कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीवन-यापन की इच्छा करनी चाहिये। (एवं त्वयि) यही तेरे लिये एक मार्ग है, (इतः अन्यथा नास्ति) इससे दूसरा कोई मार्ग नहीं। नियत कर्त्तव्य कर्म करते रहने से मनुष्य में कभी दोष नहीं आता। भाव यह है कि बिना कर्म किये फल भोग उचित नहीं।

३. जुआ मत खेल, निश्चय से खेती कर। अपने [पसीने की कमाई के धन को] बहुत समझकर इसी से आनन्द-भोग कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवि-तायमर्यः स्वाहा ॥३॥ ऋक् १०।३४।१३ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन्त्स्वाहा ॥४॥ अथर्व ३।१७।२ ॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय स्वाहा ॥५॥
अथर्व ३।१७।६ ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः स्वाहा ॥६॥ ऋक् १।१३।९ ॥

(कितव) हे जुए-बाज ! सट्टे-बाज ! घर या राष्ट्र में [जहां खेती की कमाई होती है] वहां घर या राष्ट्र में (गावः) गवादि पशु धन स्थिर रहता है; वहीं (जाया) गृहलक्ष्मी स्त्री सुखी रहती है (अयं अर्यः सविता) यह श्रेष्ठ-व्यापारी पुरुष जो उत्पादन कार्य में लगा है, (तत्) यह रहस्य (मे विचष्टे) मुझे बताता है ।

४. हे (विराजः) राष्ट्र-जीवन को विशेष विविध शोभा देने वाले किसानो ! हलों को जोतों; जुवों को फैलाओ (कृते योनौ) लकीरें बनाकर यहां बीज बोओ । हमारी (श्नुष्टिः) अन्न की उपज भरपूर होवे और (सृण्यः) दरांती-हंसुएं पके अन्न के (नेदीय आयवन्) अधिक समीप जावें अर्थात् काटने के लिये ऊपर पड़े ।

५. हमारे राष्ट्र के (वाहाः) वाहक बैल अश्वादि पशु (नरः) किसान आदि जनता (शुनं) सुख से रहें । हल सुख से जोते जावें (वर-त्रा) हलकी रस्सियां सुख से बान्धी जावें । (अष्ट्रा) चाबुक (शुनं उदिंगय) सुख पूर्वक चलाये जावें ।

६. प्रत्येक जन के लिये उसकी (इडा) भाषा (सरस्वती) सभ्यता, देव ऋषि पितृ परम्परागत आचार-विचार और (मही)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु स्वाहा ॥७

ऋक् ७।२।८ ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥८॥

यजु ३२।१६ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना स्वाहा ॥९॥

भूमि ये तीन देवतायें कल्याण करने वाली हुआ करती हैं। इसलिये ये तीनों देवियां [प्रत्येक नागरिक के] (बर्हिः) अन्तः-करण=हृदय मन्दिर में (अस्त्रिधः) अविस्मृत हुई विराजें।

७. भारती अर्थात् भूमि पर रहने वाली जनता के साथ भारती अर्थात् भरण पोषण करने वाली [मातृ—] भूमि, (देवैर्मनुष्येभिः इडा) आप्त धार्मिक परोपकारी मनुष्यों के साथ [मातृ—] भाषा और (सारस्वतेभिः सरस्वती) विद्या-भक्तों के साथ [मातृ—] सभ्यता ये तीनों देवियां (सजोषाः) एक दूसरे का प्रीतिपूर्वक सेवन करती हुई अर्थात् परस्पर समन्वित सहयुक्त होती हुई (अर्वाक्) हमारे पास आकर (इदं बर्हिः आ सदन्तु) अन्तःकरण में स्थित हों।

८. प्रत्येक विश्व-नागरिक संकल्प करे—यह मेरा 'ब्रह्मबल' अर्थात् ज्ञानशक्ति और 'क्षत्रबल' अर्थात् क्षात्रशक्ति, दोनों (श्रियं अश्नुताम्) शोभा को=नेकनामी को प्राप्त हों और सज्जन आप्त-धार्मिक विद्वान् मुझ में इस (उत्तमां श्रियं) ब्राह्मतेज व क्षात्रतेज दोनों की समन्वित श्रेष्ठ शोभा को धारण करावें। (तस्यै ते) तुझ उस इस 'उत्तम श्री' [की प्राप्ति] के लिये (स्वाहा) सुप्रयत्न करता हूं, प्रशंसावचन=नमोवाक कहता हूं।

९. मैं तो (तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं) उसी को पुण्यलोक=सुराष्ट्र व दर्शनीय जनसमाज मानता हूं, जहां 'ब्रह्म' शक्ति व 'क्षत्र' शक्ति दोनों (सम्यञ्चौ) समन्वित सुसंगठित हो एक साथ चलते हैं और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते स्वाहा ॥१०॥
यजुः २०।२५, २६ ॥

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः स्वाहा ॥११॥ ऋक् ९।६३।५ ॥

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय । अहमपो अनयं वावशानां मम देवासो अनु केतमायन्त्स्वाहा ॥१२॥
ऋक् ४।२६।२ ॥

जहां विद्वान् अधिकारी शासकगण (अग्निना) अपने नायक के साथ एकमत हो व्यवहार करते हैं ।

१०. मैं तो उसे ही सुराष्ट्र या भाग्यवती जनता मानता हूं, जहां के (इन्द्रः) मुख्यशासक सभापति या राष्ट्रपति अथवा प्रधानमन्त्री और (वायुः) सेनापति दोनों परस्पर अनुकूल हो एक साथ व्यवहार करते हैं और जहां किसी भी प्रकार का अभाव, अर्थात् ज्ञानाभाव, सुरक्षाभाव, अन्न-धनाभाव व श्रमाभाव नहीं होता । जहां अकाल, दुर्भिक्ष, अज्ञान आदि का अभाव है, वहीं उत्तम राष्ट्र है ।

११. (अप्तुरः) व्यापक-कर्म करने वाले हम वैश्वानर जन,= (इन्द्रं) सब प्रकार के ऐश्वर्यों व आत्मशक्ति को बढ़ाते हुए (ख) सब संसार को आर्य अर्थात् स्वयं कृषि द्वारा प्रगतिशील बनाते हुए और (ग) (अराव्णः) शोषकों अपकारियों व हिंसकों, दुष्कृतों को (अपघ्नन्तः) परे हटाते हुए व विनष्ट करते हुए, [सबकी शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करें] ।

१२. हे मनुष्यो ! (अहं) सबका धारण, उत्पादन व पोषण करने वाले मुझ परमात्मा ने (आर्याय) धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाले द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य और शूद्र अर्थात् श्रमिक वर्ग के लिये (भूमिः) भूमि दी है; (दाशुषे मर्त्याय) आप्त परोपकारी दानी मनुष्य के लिये (वृष्टिं) वर्षा दी है । मैं इन्हीं के लिये जलों, वायुओं व प्राणों को आगे ले जाता हूं । (वावशानाः) सब सुखों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु स्वाहा ॥१३॥
अथर्व १२।१।२२ ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु स्वाहा ॥१४॥ अथर्व १२।१।४१ ॥

ओं यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥१५॥
अथर्व १२।१।४८ ॥

कामना करने वाले (देवासः) सज्जन (केतं) सृष्टिनियम के (अनु आयन्) अनुसार व्यवहार करते, अनुकूल चलते हैं।

१३. .....इस भूमि पर (मर्त्याः) मरणधर्मा सामान्य जन और (मनुष्याः) मननशील विशेष जन दोनों (स्व+धया) अन्न से और धारणाशक्ति से जीवन चलाते हैं। इस प्रकार की यह हमारी (पृथिवी) व्यापक क्षेत्र वाली (भूमिः) भूमि जीवनी शक्ति और दीर्घ आयु देवे; वृद्धावस्था भोगने तक दीर्घजीवी करे।

१४. जिस पर प्रसन्न मन आमोदी जन नाचते-गाते हैं; जिस पर मनुष्य युद्ध [=संघर्ष, प्रतियोगिता] करते हैं और जिस पर [जय का] नगाड़ा बजता है, वह भूमि हमारे [देश के अन्तः बाह्य] शत्रुओं को परे धकेले; मुझे शत्रुरहित करे।

१५. जिसमें जौ गेहूं और अन्न हैं; ये पांच प्रकार की खेतियां [=फल, सब्जी, अन्न धान्य, औषधि-वनस्पति. तृणादि] जिसकी हैं; वर्षा से प्रसन्न उल्लसित और मेघ द्वारा पालित [=पोषित] भूमि के लिये नमस्कार हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये ग्रामाः यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते स्वाहा ॥१६॥
अथर्व १२।१।५६ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्यां स्वाहा ॥१७॥
अथर्व १२।१।६३ ॥

तत्पश्चात् प्रायश्चित्त-विधि में पृ० ५२६-५२७ लिखे प्रमाणे दैनिक-अग्निहोत्र-विधि से यज्ञ समाप्त करें।

सम्मिलित प्रार्थना

ओं द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥१॥[1]

ओ गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ॥२॥[2]

ओं समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥३॥[3]

ओम् आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४॥[3]

---

१६. हे मातृभूमि ! ग्राम, शहर, जंगल, सभा में, अपने सहकार संघों में समितियों में तेरी प्रशंसा के गीत गावें।

१७. हे मातः भूमे ! भद्रता अर्थात् कल्याण अवस्था से मुझे सुप्रतिष्ठित नागरिक बनाओ। हे काव्यरसयुक्त मातृभूमे ! तू प्रकाश से सम्बन्ध रखती हुई मुझे सम्पत्ति और ऐश्वर्य से भर दे।

१-४. हे भगवन् आपके अनुग्रह से हमारे दो पैर वाले नर और चौपाये पशु सभी रोग रहित हों। हमारा गौ आदि पशु धन और उत्तम प्रजा हों, शरीर नीरोग बलवान् हो। हम सब प्रकार गौ-अश्व-प्रजा और धनों से सम्पन्न हों और पशु-गृह-धन और प्रजा द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों। हम और हमारा राष्ट्र सदा उन्नत होवे, निर्धनता, दरिद्रता, आलस्य, प्रमाद, भीरुता को कभी प्राप्त न हों।

---

१. यजुः १२।९५ ॥ २. अथर्व ९।४।२० ॥ ३. अथर्व ७।८१।५, ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Gyaan Kosha

राष्ट्रिय प्रार्थना

ओंम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्, आ राष्ट्रे राजन्युः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्, वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजुः २२।२२ ॥

ब्रह्मन् ! सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरि-दल विनाशकारी ॥

होवें दुधारु गौएं, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥

बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवे।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवे ॥

फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

हे ईश ! सब सुखी हों, कोई न हो दुखारी।
होवें नीरोग भगवन्, धनधान्य के भण्डारी ॥

सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में जीवधारी ॥

सबका भला करो भगवान्, अन्न-वस्त्र-गृह मिले समान[1]।
सबको दो वेदों का ज्ञान, सबका सब विधि हो कल्याण ॥

---

१. यह आधी पंक्ति ग्रन्थकर्त्ता द्वारा यहां रक्खी गई हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्व-सङ्गठन की प्रार्थना

ओं सं समिद् युवसे, वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे, स नो वसून्या भर ॥१॥

हे प्रभु तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को ।
वेद सब गाते यही हैं कीजिये धन वृष्टि को ॥

संगच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे, सं जानाना उपासते ॥२॥

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो ।
पूर्वजों की भांति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब नेक हों ॥

समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सु सहासति ॥४॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा ॥

झण्डावन्दन विधिः

तत्पश्चात् अपने-अपने राष्ट्र के ध्वज को फहराना चाहिये और अपने-अपने राष्ट्र का ध्वजगीत सम्मिलित गाना चाहिये ।

इसके साथ ही, प्रत्येक आर्य समुदायको

जयति ओम् ध्वज व्योम विहारी

यह गीत अवश्य गाना चाहिये और ओम्-ध्वज भी फहराना चाहिये ।

॥ इति स्वातन्त्र्यदिवसोत्सव-विधिः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पक्षेष्टिः-दर्श-पौर्णमास-यज्ञ-पद्धतिः

.....जिसके घर में अभाग्य से [प्रतिदिन] अग्निहोत्र न होता हो, (सं. वि. २६२), वह पक्षयज्ञ[1] [=पक्षयाग] अर्थात् पौर्णमासी और अमावस्या के दिन नैत्यिक-अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् [अर्थात् दैनिक-हवन करके] स्थालीपाक की (सं. वि. २७२) विशेष आहुतियां दें।[2]

उस दिन यथाविधि पृ. ३० से १०६ तक लिखे प्रमाणे आचमन अंगस्पर्श, ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, यथायोग्य करके, अग्न्याधान, त्रिसमिदाधान, पञ्चाज्याहुतियां, वेदी के चारों ओर जलसेचन कर, आघारावाज्य भागाहुति दें,

१—दर्शेष्टि (अमावस्या-यज्ञ) विधिः

पूर्व की सब विधि करके अमावास्या की स्थालीपाक की तीन विशेष आहुतियां निम्न मन्त्रों से दें—

---

१. कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की अमावस्या और पूर्णमासी के दिन होने वाले यज्ञ पाक्षिक-यज्ञ कहाते हैं, जिनके नाम क्रमशः दर्शेष्टि और पौर्णमासेष्टि भी हैं। अमावस्या को दर्श भी कहते हैं। अतः अमावस्या के दिन होने वाला यज्ञ 'दर्श-याग या दर्शेष्टि' नाम से प्रसिद्ध है।

२. यद्यपि ऋषि दयानन्द ने किन्हीं वेद-मन्त्रों से आहुति देने का उल्लेख नहीं किया, तथापि हमने यहां अथर्व ७।७९ तथा अथर्व ७।८० दो सूक्तों के मन्त्रों से आहुतियों का विधान किया है। इन दोनों सूक्तों का दर्श व पौर्णमास यज्ञों में विनियोग समीचीन व उपयोगी है। बढ़ते-बढ़ते मनुष्य षोडशकला मय [प्रश्नोपनिषद्] पूर्ण-पुरुष [=उत्तम-जन] बन सकता है और घटते-घटते 'अन्धने तमसावृतलोके' [ईशोपनिषद्] जन्म लेता है, ऐसी प्रेरणा पूर्णिमा व अमावस्या से मनुष्य प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रतिमास चन्द्र से प्रेरणा लेनी चाहिये। सूर्य से प्रेरणा-ग्रहण करने का त्यौहार 'मकर-संक्रान्ति' का पर्व अर्थात् सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश का दिन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओम् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥२॥

ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

घृत की चार व्याहृति आहुतियां निम्न मन्त्रों से दें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदं न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदं न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम ॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत वा शाकल्य की विशेष आहुतियां दें—

ओं यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा । तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरं स्वाहा ॥१॥

ओम् अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे । मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे स्वाहा ॥२॥

---

१. हे अमावस्ये ! तेरी महिमा से भली प्रकार एकत्र-वास करने वाले भौतिक देव जो अपने-अपने कर्त्तृत्व का भाग पूर्ण करते हैं, उससे हमारे यज्ञ को पूर्ण कर । हे सबको वरने योग्य उत्तम भाग्यवती देवी ! उत्तम रक्षक बल युक्त धन हमें दो । सब देव जो हमारा भाग्य बनाते है, वह हमें प्राप्त हों; उससे हमारा यज्ञ पूर्ण होवे । हमें ऐसा सुवीर-प्रभावी धन प्राप्त होवे ।

२. मैं ही अमावस्या अर्थात् सहवास कराने हारी हूं । मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम्·आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वसुवेशयन्ती। अमावस्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् स्वाहा ॥३॥

ओम् अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥४॥

२. पौर्णमासेष्टि-विधिः

पूर्णिमा के दिन निम्नलिखित मन्त्रों से तीन आहुतियां स्थाली-पाक की दें—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥

इच्छा करते हुए ये पुण्य-कर्म जन मेरे आश्रय से रहते हैं। साध्य अर्थात् साधना में लगे और इन्द्र अर्थात् परमात्मा को श्रेष्ठ मानने वाले विद्वान् लोग सब दोनों प्रकार के ज्ञान-योगी व कर्म-योगी देव मुझ में आकर मिलते हैं।

३. सब वस्तुओंको मिलानेवाली, पुष्टिकारक और बलवर्धक, अन्नरस या धन देने वाली रात्री अर्थात् रमणीय वेला आ गई है। अमावस्या के लिए हम हवन से यजन करें। क्योंकि वह अन्नरस देने वाली, दूध के पुष्टिकारक पदार्थों के साथ हमारे पास आ गई है।

अमावस्या के दिन यथायोग्य ओषधियों वनस्पतियों से यज्ञ करने से अन्न, धन और दुग्ध आदि सब पदार्थों की प्राप्ति होती है।

४. हे अमावस्ये! तेरे से भिन्न इन सब रूपों को शक्तिमान् होकर कोई नहीं बना सकता। जो-जो कामना करते हुए, हम तेरा यजन करें, वह-वह कामना हमारी पूर्ण हो और हम सकल धन सम्पत्ति के स्वामी बनें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥२॥

ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

तत्पश्चात् चार व्याहृति आहुति घृत की दें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय—इदन्न ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥४॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की विशेष आहुतियां दें—

ओं पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय । तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम स्वाहा ॥१॥

ओं वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीं स्वाहा ॥२॥

---

१. पीछे से परिपूर्ण और आगे से भी पूर्ण, बीच में से भी परिपूर्ण पूर्णिमा प्रकट हुई है। उसमें देवों का सहवास करते हुए हम सब महिमा भाव से स्वर्ग के पृष्ठ पर अर्थात् सुख के ऊपर इच्छानुसार आनन्द का उपभोग करें।

सब प्रकार ज्योत्स्ना से परिपूर्ण चन्द्रमा के होने से पौर्णमासी को पूर्णिमा कहते हैं। इस समय जो लोग देवों की संगति करते हैं, वे अपनी महिमा से सर्वविध सुख को प्राप्त करते हैं।

२. सुखवर्षक अन्नवान् पौर्णमास का हम यजन करते हैं। वह हम सबको अक्षय और अविनाशी धनैश्वर्य भोग देवें।

पौर्णमास बल और अन्न से युक्त होता हैं, इस लिए उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥३॥

ओं पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीद्धृदां रात्रीणामतिशर्वरेषु । ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः स्वाहा ॥४॥ अथर्व ७।८०।१, २, ३, ४ ॥

समय यजन करने वाले को इस पूर्णिमा-यज्ञ से अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

३. हे सब प्रजा के पालिके पूर्णिमे ! तुझ से भिन्न दूसरा कोई सर्वव्यापक सर्वसामर्थ्यवान् होकर इस समस्त जगत् को रूपों= दृश्यों को बनाने हारा नहीं है। जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होके हम तेरा यजन करें, वह-वह कामना हमारी सिद्ध हो और हम धनैश्वर्य के स्वामी बनें।

यहां पूर्णिमा को 'प्रजापति' कहा है। वह परमात्मा ही सर्व-जगत् का निर्माता और विधाता है। उसके यजन-पूजन से हमारी सब प्रकार की शुभ कामनाएं पूर्ण होती हैं और सब प्रकार की ऐश्वर्य-सम्पत्ति भी उसी की कृपा से प्राप्त होती है।

४. पूर्णिमा दिनों में तथा रात्रियों के गहन-अन्धकार में प्रथम अर्थात् मुख्यतः पूजनीय है। हे वन्दनीय ! जो जन तुझे यज्ञ द्वारा पूजते हैं, वे ये सत्कर्मी लोग स्वर्ग की पीठ पर प्रविष्ट होते हैं अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करते हैं।

पूर्णिमा दिन में और रात्रि में पूजने योग्य है। हे पूर्णिमा ! तेरे शुभ प्रकाश में हम यजन करते हैं, हमें स्वर्ग धाम में प्रवेश प्राप्त होवे।*

---

*शास्त्रों में दर्श-पौर्णमास दोनों यज्ञों की महिमा का वर्णन उपलब्ध है। यजुर्वेद के प्रथम तथा द्वितीय अध्याय भी इसी यज्ञ के अध्याय हैं। अथर्व-वेद काण्ड ७ सूक्त ७९ तथा ८० इन दोनों से यज्ञ का विधान ऊपर बताया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् प्रातः कालीन और सायं-कालीन दैनिक अग्निहोत्र की आहुति देकर यज्ञ समाप्त करें।

यदि बृहद्यज्ञ करना हो, तो 'ओं सूर्यो ज्योतिः...' से आहुति देने से पूर्व पृ. १०६ से १२० तक लिखे प्रमाणे सब विधि करके, पश्चात् दैनिक हवन करें।

॥ इति पक्षेष्टि (दर्श-पौर्णमासेष्टि) पद्धतिः समाप्ता ॥

है। अन्य शास्त्रों से इसके महत्त्व के उदाहरण नीचे देते हैं—

१. सुवर्गाय हि वै लोकाय दर्शपूर्णमासौ इज्येते ॥

तै० सं० २।२।५ ॥

स्वर्ग-लोक की प्राप्ति के लिए ही निश्चय दर्श और पूर्णमास दोनों यज्ञ किए जाते हैं।

२. एते वै संवत्सरस्य चक्षुषी यद् दर्शपूर्णमासौ। एष वै देवयानः पन्थाः यद् दर्शपूर्णमासौ। न अमावस्यायां पौर्णमासायां च स्त्रियम् उपेयात् ॥ तै० सं० २।५।६ ॥

यह निश्चय संवत्सर की आंखें हैं, जो दर्श (अमावस्या) और पूर्णमास है। यही निस्संदेह देवयान मार्ग है, जो दर्शपौर्णमास हैं। इस लिए न दर्श (अमावस्या) और न पूर्णमास (पूर्णिमा) के दिन स्त्री के पास जाए।

३. यो विद्वान् अग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां च यजते, मासि-मासि हि एव अस्य अश्वमेधेन इष्टं भवति। एतद् उ ह अस्य अग्निहोत्रं च दर्शपूर्णमासौ च अश्वमेधम् अभिसम्पद्यते ॥

शत० १५।२५।५ ॥

वह जो विद्वान् नित्य अग्निहोत्र करता है और दर्शपूर्णमास दोनों इष्टियों से यज्ञ करता है, मास-मास में निस्संदेह मानों उसका प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ किया गया सा हो जाता है, यही निश्चय करके उसके किये प्रसिद्ध अग्निहोत्र और दर्शपौर्णमास दोनों मानों, अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नव-संवत्सरेष्टिः—नववर्षोत्सव-विधिः

[चैत्र शुक्ला प्रतिपदा अथवा मेष-सङ्क्रान्ति]

आर्य ज्योतिषियों की गणना के अनुसार इस सृष्टि का आरम्भ सूर्योदय के समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था।[२] सृष्टि का प्रथम मास वैदिक संज्ञा के अनुसार [यजुः १३।१२५] 'मधु-मास' कहलाता था। कालान्तर में चान्द्र गणना के अनुसार वही 'चैत्र-मास' कहलाया। यही वसन्त अर्थात् आनन्दपूर्वक बसने की ऋतु है। सृष्टि जीवों के वास, भोग और कर्म के लिये रची जाती है। इसलिये मानव उत्पत्ति से पूर्व सब वसनीय ओषधि वनस्पत्यादि वस्तुओं का विकास आवश्यक है। अतः सृष्टि का प्रारम्भ वसन्त से मानते है। चैत्र और वैशाख वसन्त ऋतु के दो मास हैं।

तभी से सृष्टि संवत् का प्रचलन आर्यावर्त्त देश में है और आज तक भी संकल्प में उसका पाठ होता है। इसी वर्ष से सब

---

१. जिन प्रदेशों में नव-संवत्सर का आरम्भ दीपावली के अनन्तर माना जाता है, उन प्रदेशों में कार्तिक शु० १ को यह पर्व मनाना चाहिये।

२. चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्योदये सति॥

आर्य-ज्योतिष-शास्त्र के प्रमाणिक-ग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' में लिखा हैं—

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारं प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रकृतिः॥

लंका-नगर में सूर्योदय के समय, उसी के बाद अर्थात् रविवार को, चैत्रमास शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में 'दिन-मास-वर्ष-युग' सभी एक साथ प्रचलित हुए। इसी समम से ब्राह्म-दिन, सृष्टि-संवत्, वैवस्वतादि मन्वन्तरगणना, सत्य-त्रेता-द्वापर-कलियुगों के संवत् [प्रसिद्ध कलिसंवत्], वैक्रम संवत् आदि की गणना की जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार की काल गणना का प्रारम्भ होता है। आज फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी शुक्रवार शिवरात्रि २०२६ तक इस सृष्टि को उत्पन्न हुए १९७२९४९०७० अर्थात् एक अरब सन्तानवे करोड़ उनतीस लाख उनचास हजार सत्तर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

जिन प्रान्तों में सौर-संवत् प्रचलित है, वहां मेष-संक्रान्ति के दिन और जिन प्रदेशों में चान्द्र-संवत्सर का व्यवहार है, वहां चैत्र सुदी प्रतिपदा को यह पर्व मनाना चाहिये।

पद्धति

प्रातः काल गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के पश्चात् परिवार के सब जने नवीन शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहिने। पश्चात् यजमान सपरिवार सामान्य प्रकरणोक्त पृष्ठ २४ से पृष्ठ १२० तक तक लिखे प्रमाण (ओं त्व न्नो०.....) की अष्टाज्याहुति पर्यन्त सब विधि करके निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां घृत व शाकल्य की दें—

ओं संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्ताम् मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता ँ संवसरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सञ्चाञ्च प्र च सारया। सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद स्वाहा ॥१॥

यजुः २७।४५॥

---

१. हे काल, तुम्हीं समस्त प्राणि-समुदाय को अपने गर्भ में सुख पूर्वक बसाते हो। तुम्हारी उषायें अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु तथा वर्ष सब समृद्ध रहें तथा अपने प्राण से समस्त प्राणियों को समर्थ बनावें। हे शरीर व मन की शक्ति को पूर्ण करने वाले काल! तुम अपनी शक्तियाँ हमारी प्रगति के लिए प्रसारित करो और हे प्राणमय! तुम स्थिर रह हमें प्राणमय बनाओ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोका ँ संवत्सराय पर्या-यिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायाति-ष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरा ँ संवत्सराय पलिक्नीमृभु-भ्योऽजिनसन्ध ँ साध्येभ्यश्चर्मम्नं स्वाहा ॥२॥ यजुः ३०।१५ ॥

ओं द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्टिर्न चलाचलासः स्वाहा ॥३॥ ऋक् १।१६४।४८ ॥

ओं सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः स्वाहा ४॥

ओं द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः स्वाहा ॥५॥

---

२. हे काल-राजन् ! तुम अपने राष्ट्र में अच्छे अनुशासन के लिए न्यायाधीशों, समृद्धि के लिए विद्वानों, सुखपूर्वक निवास के लिए कालानुसार परिवर्तनों, तथा वर्ष में उन्नति के लिए अनेक प्रगतिमय योजनाओं का निर्माण करो और देशद्रोही व्यक्ति को बाहर करदो।

३. यह काल चक्र जिसमें बारह मास रूपी बारह खण्ड, शरद्, वर्षा व ग्रीष्म रूप तीन ऋतुओं की तीन नाभियां व अहोरात्र रूपी तीन सौ साठ अरे लगे हुए हैं. निरन्तर चलता रहता है।

४. यह अजर व अहिंसक काल रथ [जिसमें सारे लोक व प्राणी स्थित हैं] एक चक्र का बना हुआ है। यह चक्र तीन [शरद्, ग्रीष्म व वर्षा रूपी] नाभियों का बना हुआ है। इसको सूर्य रूपी एक घोड़ा खींच रहा है और उसकी सात किरणें इस रथ में रस्सी के समान बंधी हुई हैं।

५. यह परमात्मा का चक्र निरन्तर चल रहा है। यह कभी जीर्ण नहीं होता। यह बारह मास रूपी बारह अरों का बना हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितं स्वाहा ॥६॥

ओं पञ्चारे चक्रे परिवर्त्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः स्वाहा ॥७॥

ओं सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा स्वाहा ॥८॥ ऋक् १।१६४।२, ११, १२, १३, १४ ॥

हे प्रकाश ! इसमें तेरे सात सौ बीस पुत्र [अर्थात् तीन सौ साठ दिन व तीन सौ साठ रातें] जोड़ा बनाकर रह रहें हैं।

६. कुछ विद्वान् समस्त प्रजा के पालक इस संवत्सर को, जिसके (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और शिशिर रूपी) पांच पाद हैं तथा बारह मास रूपी बारह विविध आकार हैं, द्युलोक के परम प्रकाश में वर्त्तमान बताते हैं। कुछ दूसरे विद्वान् सर्वद्रष्टा इस संवत्सर को छः ऋतुओं के अरों से जुड़ा हुआ सूर्याश्व से खिचे जाते हुए रथ का चक्र बताते हैं।

७. इस सर्वदा परिवर्त्तमान (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद शिशिर रूपी) पांच अरों से बने हुए काल-चक्र में सारे भुवन स्थित हैं। इतने बड़े भार के होने पर भी इस चक्र की न तो कभी कीली ही गरम होती है और न उसकी नाभि ही टूटती है।

८. सृष्टि दशा में इस चक्र को सूर्य की सातों रश्मियां व तीन ऋतुएं खींचती हैं। यह चक्र बिना जीर्ण हुए आगे बढ़ता चला जाता है। इसकी उठी हुई धूल से सूर्य की ज्योति भी ढक जाती है। इस चक्र पर ही समस्त भुवन स्थित हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपास्महे । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज स्वाहा ॥९॥

अथर्व ३।१०।३ ॥

ओं यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः । अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदुनेनाति तराणि मृत्युं स्वाहा ॥१०॥ अथर्व ४।३५।४ ॥

तत्पश्चात् पक्षेष्टि-विधि पृष्ठ ५७४ में लिखे प्रमाणे यज्ञ समाप्त करें।

पश्चात् मध्याह्न में सब जने एकत्र प्रीतिपूर्वक सात्विक भोजन करें, तथा अपने आश्रित भृत्य आदिकों को भी अन्न वस्त्रादि से सत्कृत करें।

सामाजिक कृत्य

अपराह्न में सब आर्य पुरुष किसी सामाजिक स्थान पर या मन्दिर आदि धार्मिक स्थानों में एकत्र हो ज्ञान गोष्ठी, अध्यात्मचर्चा, पारस्परिक मंगल कामना, सामूहिक क्रीड़ा व आमोद-प्रमोद के कृत्य करें। इस दिन प्रत्येक व्यक्ति को अपने आगामी वर्ष को उन्नति का संकल्प भी करना चाहिये।

॥ इति नवसंवत्सरेष्टि-विधिः समाप्तः ॥

९: हे रात्रि ! तुम संवत्सर की प्रतिमा हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम हमारी समस्त सन्तानों को दीर्घायु व ऐश्वर्यमय बनाओ।

१०. हे सर्वनियन्ता सुखप्रदातः प्रभो ! तुम्हीं सब के तृप्तिकारक हो। तुम्हीं ने तीस दिन रूपी अरों से बने हुए मास और बारह मास रूपी अरों से बने हुए संवत्सर को बनाया है। प्रभो ! यह संवत्सर मुझे मृत्यु की ओर खींचता चला जाता है, परन्तु मैं आपका आश्रय लेकर उसको भी पारकर जाऊं। क्योंकि दिन और रात्रि बहुत घूमने और भटकने पर भी आपको न पा सके। मैं भी त्रिकाल से परे आपको पाकर अमर हो जाऊंगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपाकर्म-पद्धतिः

(श्रावणी-रक्षाबन्धन)

श्रावणी [तथा रक्षाबन्धन] का पर्व श्रावण मास[1] की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। इस पर्व के दो रूप लोक में आजकल प्रचलित हैं। प्रथम रूप वह है जिसमें सनातन वेदानुयायी विद्वान् कर्मकाण्डी इस दिन प्रातः नदी तालाब आदि पर जाकर स्नान पञ्च-गव्य का प्राशन ऋषितर्पण और यज्ञोपवीत का परिवर्तन करते हैं, जिस का कुछ परिमार्जित रूप आजकल आर्य-समाज में यज्ञ-रूप में प्रचलित है। इसका दूसरा रूप वह है, जिसमें बहन-भाई को और ब्राह्मण अपने यजमानों को राखी बांधता है। सम्प्रति लोक में यह द्वितीय रूप ही अधिक प्रसिद्ध है।

मनुस्मृति और गृह्य सूत्रों के अनुसार श्रावणी का कर्म उपाकर्म कहाता है। इस कर्म के अनुसार श्रावणी की पूर्णिमा से वेद के स्वाध्याय का विशेष उपकर्म किया जाता था। यह स्वाध्याय निरन्तर

---

१. श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधिः।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत, मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।
पुष्ये तु छन्दसां कुर्यात् बहिरुत्सर्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते, पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥

मनु ४।९४-९५॥

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य श्रावणी या भाद्रपदी पूर्णमासी के दिन यथाविधि उपाकर्म अर्थात् यज्ञ के साथ यज्ञोपवीत धारण करके श्रावण शुक्ल पूर्णमासी से माघ शुक्ल प्रतिपदा तक अर्थात् साढ़े पांच मास तक छन्द अर्थात् वेद के स्वाध्याय का व्रत धारण करे और पुष्य नक्षत्र वाली [=पौषी] पूर्णमासी में अथवा माघ शुक्ला प्रतिपदा के दिन पूर्वाह्ण में मध्याह्न से पूर्व ग्राम या बसति से बाहर जाकर व्रत का विसर्जन करे [और यथापूर्व जीवन-व्यवहार रक्खे]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साढ़े चार मास तक चलता था। तदनन्तर पौष मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को इस कर्म का उत्सर्जन (समाप्ति) होता था।[1]

मनुस्मृति और गृह्यसूत्रों के अनुसार उपाकर्म के तीन काल हैं—श्रावणी पूर्णिमा, श्रावण शुक्ला पञ्चमी और भाद्री पूर्णिमा और उपाकर्म के तीन कालों के आधार पर ही उत्सर्जन के काल में भी भेद होता है। आजकल भी कुछ वैदिक पुरुष श्रावणी-पूर्णिमा को उपाकर्म करते हैं, तो कुछ विद्वान् श्रावण शुक्ला पञ्चमी को। इसी उपाकर्म के कारण यह पञ्चमी ऋषि-पञ्चमी भी कहाती है।

उक्त समय में उपाकर्म करने का कारण

उपाकर्म का काल वह है, जब कृषि बहुल भारतवर्ष का कृषक-वर्ग खेती की बुआई से मुक्त हो जाता है, वर्षा के कारण खेतों को पानी देने की चिन्ता भी नहीं होती; इसलिये वे कृषि कर्म से प्रायः निश्चिन्त होते हैं। प्राचीन काल में यातायात साधनों की अल्पता के कारण वर्षा ऋतु में वैश्य जन भी व्यापार कर्म के लिये बाहर नहीं जाते थे, वर्त्तमान में भी वर्षा ऋतु में व्यापार कुछ कम ही होता हैं। क्षत्रिय-जन भी वर्षा ऋतु के कारण युद्ध से प्रायः उपरत रहते थे। वानप्रस्थ और संन्यासी भी वर्षा के कारण भिक्षाचर्या में विघ्न होने से जङ्गलों व एकान्त स्थानों का परित्याग करके ग्रामों और नगरों में आ जाते थे। इस प्रकार इस चार मास के काल में प्रायः सभी को अपने 'नियतकर्मों' से कुछ अवकाश प्राप्त होने से, यह काल विशेष रूप से प्राचीन धर्म-शास्त्रियों द्वारा वेद के-स्वाध्याय के लिये नियत किया गया था। इस प्रकार इस समय द्विज अर्थात् सभी जन अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार वेद के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने में प्रवृत्त हो जाते थे।

इस प्राचीन प्रथा के विकृत रूप में अब भी प्रायः ग्रामों में अध्यात्म प्रवचन और महाभारत व भागवत की कथायें होती है। जैन-साधु आज भी इन महीनों में ग्राम वा नगरी में विशेष रूप से एक स्थान पर रहकर कथा वार्ता करते हैं। इसे चातुर्मास्य करना कहा जाता है।

---

१. नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरस्सु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्त-प्रस्रवणेषु च ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आज प्राचीन परिपाटियों का उच्छेद हो जाने से 'उपाकर्म' भी लगभग समाप्त हो गया है। केवल प्राचीन पद्धति के स्मरण रूप में श्रावणी-पूर्णिमा के दिन वैदिक-जन कुछ वेद-पाठ कर लेते हैं और उसी दिन उत्सर्जन भी कर देते हैं। इसी के अनुरूप आर्य-समाज में भी आज के दिन विशेष हवन अर्थात् बृहत् हवन कर लिया जाता है; उसमें चारों वेदों के कुछ मन्त्रों से विशेष आहुतियां दे दी जाती हैं तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करते और उपाकर्म समाप्त समझा जाता है।

इतना वैशिष्ट्य अवश्य है कि श्रावणी-पर्व से लेकर कृष्ण-जन्माष्टमी तक 'वेद-प्रचार सप्ताह' मनाया जाता है; जिसमें प्रायः वेद के सम्बन्ध में चर्चा व गोष्ठी होती है।

श्रीमती सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा [दयानन्द भवन नई दिल्ली] से स्वीकृत पं० भवानीप्रसाद द्वारा कल्पित **आर्य-पर्व-पद्धति** के अनुसार उपाकर्म की संक्षिप्त पद्धति कुछ परिवर्धित रूप में लिखते हैं—

उपाकर्म-पद्धति

प्रातःकाल स्नान से निवृत्त होकर, सब जने यज्ञ मण्डप में यथा-स्थान बैठ, सर्वप्रथम सन्ध्या करें। पश्चात् यथाविधि पृष्ठ २४ से पृष्ठ ९४ तक लिखे प्रमाणे आचमन अंगस्पर्श ऋत्विग्-वरण करें।

पश्चात् आचार्य व ऋत्विग् निम्न मन्त्रों से सबको नवीन यज्ञोपवीत धारण करावें:—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।
आयुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥२॥

यदि किसी बालक को जनेऊ दिलाना हो, या किसी ने प्रथम वार यज्ञोपवीत धारण करना हो, तो पुरोहित उससे प्रथम निम्न वचन बुलवावे—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ब्रह्मचर्यमागाम् । ब्रह्मचार्यसानि ।[1] उप मा नयत्व ॥

ऋ०—को नामासि ?

यज०—···नामास्मि ।

पश्चात् उपरोक्त 'ओं यज्ञोपवीतं०·····'इससे यज्ञोपवीत लेने वाले के बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे और उसे गायत्री मन्त्र [यजु:३६।३] का वेदारम्भ संस्कार में लिखे प्रमाणे उपदेश अवश्य कर देवें ।

तत्पश्चात् पृ० ९४ से पृ० १२० तक लिखे प्रमाणे अग्न्याधानसे लेकर 'ओं त्वं नो०·····' की अष्टाज्याहुति पर्यन्त करके निम्न मन्त्रों से घृत शाकल्य की विशेष आहुतियां दें—

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥१॥

ओं छन्दोभ्यः स्वाहा ॥२॥

ओं सावित्र्यै स्वाहा ॥३॥

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥४॥

ओं श्रद्धायै स्वाहा ॥५॥

ओं मेधायै स्वाहा ॥६॥

---

१. ज्ञान के आदि मूल ब्रह्म की स्तुति और ज्ञान की प्राप्ति के लिये संकल्प करता हूं ।

२. वेदों की रक्षा व प्रचार के लिये सत्प्रयत्न करता हूं ।

३. गुरु मन्त्रानुसार बुद्धि प्राप्ति के लिए व्रत ग्रहण करता हूं ।

४. ज्ञान की प्राप्ति व प्रचार के लिए अपने को समर्पित करता हूं ।

५. मैं अपने में परमात्मा के सत्य ज्ञान के प्रति श्रद्धा का आधान करता हूं ।

६. मैं मेधा-बुद्धि की प्राप्ति का सुयत्न करूंगा ।

---

१. पृष्ठ २२० तथा पृष्ठ २२६ में लिखे पार० २।२।६ तथा मं० ब्रा० १।६।१६ दोनों को मिलाकर 'एक क्रिया' कल्पित की है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं प्रज्ञायै स्वाहा ॥७॥

ओं धारणायै स्वाहा ॥८॥

ओं सदसस्पतये स्वाहा ॥९॥

ओं अनुमतये स्वाहा ॥१०॥

ओं छन्दोभ्य स्वाहा ॥११॥

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१२॥

तत्पश्चात् निम्न लिखे प्रमाणे पांच सत्यव्रताहुतियां पुरोहित सबसे दिलवावें—

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥१॥

ओं वायो व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं वायवे, इदन्न मम ॥२॥

ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥३॥

ओं चन्द्र व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥४॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये, इदन्न मम ॥५॥[1]

---

७. मैं प्रज्ञा [प्रकृष्ट ज्ञान] प्राप्ति के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हूं ।

८. मैं सृष्टि नियमों के ज्ञान की आरम्भ शक्ति को प्राप्त करूंगा ।

९. मैं परमात्मप्राप्ति के लिये सत् प्रयत्न करूंगा ।

१०. मैं परमात्मा के अनुग्रह व पारस्परिक सामाजिक अनुकूलता के लिये संकल्प करता हूं ।

११. मैं वेदों की रक्षा के लिये जीवन दान करूंगा ।

१२. मैं ऋषियों के लिये प्रशंसा वचन कहता हूं ।

---

१. अर्थ पूर्व पृष्ठ २२४-२२५ पर देखें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत व शाकल्य की चार आहुतियां दें।

ओं वृतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते स्वाहा ॥१॥[1]

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहं स्वाहा ॥२॥
यजुः अ. २०। मं० २४॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥३॥[2]

ओं मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥४॥[2]

तत्पश्चात् ऋग्वेद के निम्न लिखित ग्यारह मन्त्रों से आहुति दें—

बृहस्पतेः प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।

---

१. 'सत्यव्रत' से मनुष्य दीक्षा को प्राप्त करता है। दीक्षा से दक्षिणा=प्रतिष्ठायुक्त लक्ष्मी मिलती है। यह दक्षिणा श्रद्धा प्राप्त कराती है और श्रद्धा=सत्यधारण में दृढ़ विश्वास से सत्य की प्राप्ति होती है।

१४. (वरुणः) दुःख-निवारक परमात्मा (प्रजापतिः अग्निः) सर्वरक्षक ज्ञान स्वरूप परमात्मा मुझे मेधा=प्रज्ञा दे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (वायुः) सर्वव्यापक (धाता) सबका धारक-पोषक परमेश्वर (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा मुझे मेधा=प्रज्ञा प्रदान करे।

१. वाणियों ज्ञानों में श्रेष्ठ, प्रथम, सृष्टि के समस्त पदार्थों के

---

१. यजुः १९।३०। २. यजुः ३२।१४ १५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः
स्वाहा ॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि
स्वाहा ॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तमान्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते
स्वाहा ॥३॥

उतं त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः
स्वाहा ॥४॥

नामों की धारक निर्दुष्ट 'वेदवाणी' जो प्रलयकाल में रहस्यमय व परमात्मा में थी, सर्वप्रथम ऋषियों की हृद्-गुहा में प्रकट हुई।

२. छलनी से छने हुए सत्तू के समान निर्दुष्ट वाणी को जो व्यक्ति बोलते हैं, उनकी वाणी में भद्र लक्ष्मी निहित होती है और वे ही सुन्दर मित्र बन सकते हैं।

३. विद्वान् लोग सत्कर्मों व सदाचरणों से तथा विद्वान् गुरु की सेवा से वाणी की उत्कृष्टता को और ऋषियों की वाणी के ज्ञान को प्राप्त करते हैं। उसकी रक्षा करने वाले उसको नाना रूपों में प्रतिपादित करते हैं और उस विद्वान् की सातों दिशायें स्तुति करती हैं।

४. कुछ व्यक्ति देखते हुए भी नहीं देखते=समझते। कुछ सुनते हुए भी इसको नहीं सुनते=समझते। पर जो इसे अच्छी तरह जानते हैं, उनके लिए, कामनी या स्नेह-पूर्णा पत्नी जिस प्रकार पति को पूर्ण समर्पण कर देती है वैसे अपने को समर्पित कर देती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पां स्वाहा ॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति । यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थां स्वाहा ॥६॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः । आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे स्वाहा ॥७॥

ह्रदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः । अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्युत्वे स्वाहा ॥८॥

---

५. जो व्यक्ति इस वाणी की मित्रता प्राप्त कर लेता है, उसकी समृद्धि और वृद्धि होती है। आपत्समय में भी वह वाणी उसकी रक्षा करती है। इसके विपरीत जो फल और पुष्प शून्य अर्थात् अविकसित व निष्प्रयोजन वाणी को सुनता समझता है, वह भ्रम से मानों दूधरहित गौ की सेवा करता है।

६. जो इस ऐसे मित्र को छोड़ देता है, उसकी वाणी में कोई ऐश्वर्य=प्रभाव नहीं होता। वह जो कुछ सुनता है, व्यर्थ सुनता है। वह सत्कर्म व पुण्य के मार्ग को नहीं जानता।

७. एक सी आंखों और एक से कानों वाले व्यक्ति भी मानसिक-प्रगति में समान नहीं होते। कुछ उस ज्ञान सरोवर में घुटनों तक ही डूब पाते हैं, कुछ कमर तक। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो उस ज्ञान सरोवर में अच्छी तरह नहाये हुए प्रतीत होते हैं।

८. उपासना से मन की गतियों के तीव्र करने पर जब समान ज्ञान वाले ब्रह्म की प्राप्ति के अभिलाषी विद्वान् मिलकर सङ्गति व यज्ञ करते हैं, तब वे ही उस उन्नति के शिखर को प्राप्त होते हैं, शेष तो भटकते रहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः स्वाहा ॥९॥

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः। किल्विषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय स्वाहा ॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः स्वाहा ॥१०॥ ऋक् १०।७१।१-११ ॥

इन आहुतियों के पीछे निम्न मन्त्र से यजमान व गृहपति आहुति देवें। मन्त्र सब बोलें।

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ॥१॥
सनिं मेधामयासिष ९ स्वाहा ॥२॥ यजुः ३२।१३॥

इसके पीछे सब उपस्थित पारिवारिक जन पलाश की तीन-तीन हरी अथवा शुष्क समिधाओं को घी में भिगोकर गायत्री मन्त्र से तीन आहुतियां देवें—

---

९. ये जो मनुष्य न तो कुछ प्रगति करते हैं और न मार्ग से दूर होते हैं, वे न तो ब्रह्माभिलाषी विद्वान् ही हैं और न अज्ञानी। वे यथार्थ न जानने वाले अधकचरे व्यक्ति इस वाणी को पाकर पाप-बुद्धि से दूसरों का पीड़ा देने का षड्यन्त्र रचा करते हैं।

१०. सब विद्वान् मित्र लोग उस ब्रह्म को जानने हारे हैं, सभा-चतुर, यशःस्वी मित्र मिलकर समृद्ध होते हैं। वह पाप विनाशक अन्नादि से समृद्धिकारक ज्ञानी इनकी उन्नति करता है।

११. यज्ञानुष्ठान में एक तो ऋचाओं का पाठ करता है, एक सामगान करता है, एक ब्रह्मा चतुर्वेद-ज्ञाता समय-समय पर वेद का सन्देश देता है और एक यज्ञ की रचना व व्यवस्था करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

तत्पश्चात् स्विष्टकृत् आहुति—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ॥

आश्व० गृह्य०

मन्त्र से देकर प्रातः कालीन अग्निहोत्र की आहुतियां पूर्णाहुति पर्यन्त देवें।

तत्पश्चात् पूर्णाहुति करके सब जने निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ें[1]—

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ॥
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥१॥

ऋ० १।९०।९॥

ओं नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु अवतु, मामवतु वक्तारम् ॥२॥

---

२. सबका मित्र श्रेष्ठतम न्यायकारी परमैश्वर्यवान्, वेद-ज्ञान का अधिष्ठाता, सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमें कल्याण देवे। मैं परमात्मा की स्तुति करता हूं। हे सर्वव्यापक परमात्मन्! नमस्कार हो, तुम्हीं प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, मैं तुम्हें ही एक मात ब्रह्म कहूंगा। सदा ऋत बोलूंगा और सत्य कहूंगा। आप मेरी, आपकी स्तुति व प्रवचन करने वाले की रक्षा करें।

---

१. पारस्कर गृह्यसूत्रानुसार प्राचीनकाल में इस समय दही और सत्तू मिलाकर प्रातराश किया जाता था। आजकल आर्यसमाज में ऐसा नहीं होता। वर्त्तमान काल में पर्व की समाप्ति पर समस्त पारिवारक जनों का प्रातराश करना समीचीन प्रतीत होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके पश्चात् आचमन करके ओ कार महाव्याहृति पूर्वक गायत्री मन्त्र को उपस्थित नर-नारी पुरोहित के साथ मिलकर तीन वार पढ़ें। तत्पश्चात् चारों वेदों के आदि और अन्त के निम्न ८ मन्त्रों का पाठ करें[1]—

ऋग्वेदः—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥२॥

यजुर्वेद—

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥३॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओं खं ब्रह्म ॥४॥

सामवेद—

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥५॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

---

१. पुरोहित सबसे मन्त्र बुलवावे या पुस्तक देख कर पढ़े। हो सके तो इनका अर्थ पुरोहित समझावे और अन्य सब सावधान चित्त होकर सुनें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथर्ववेद—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥७॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रशंसा ऊतये गविष्टौ सर्वाँ२ इत् तां उपयाता पिबध्यै ॥८॥[1]

इस मन्त्रों के पाठ के पश्चात्—

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥७॥

मन्त्र का पाठ करके शान्तिपाठ करें।

[उपाकर्म का परिशिष्ट पृष्ठ ५९२ पर देखें]

॥ इति उपाकर्मविधिः समाप्तः ॥

---

१. इस प्रकरण में हमने आर्यपर्वपद्धति में दिये मन्त्रों से भेद किया है। सामवेद के पूर्वार्चिक का अन्तिम और उत्तरार्चिक का प्रथम मन्त्र छोड़ दिया है। यदि पूर्वार्ध उत्तरार्ध के आद्यन्त मन्त्र देना आवश्यक हो, तो सभी वेदों के पूर्वार्ध उत्तरार्ध उत्तरार्ध या काण्डों अध्यायों आदि के अनेक मन्त्र देने चाहियें। इसी प्रकार अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र 'शं नो देवी' दिया है, उसे के स्थान पर 'ये त्रिषप्ता' दिया है। 'शं नो देवी' मन्त्र पैप्पलाद शाखा का आदि मन्त्र है, न कि उस संहिता का जिसका अन्तिम मन्त्र 'पनाय्यं' ग्रन्थकार ने दिया है। इसी प्रकार "सह नोऽस्तु सह नोऽवतु सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद् वेद येन, यथा न विद्विषामहे के स्थान में तैत्तिरीय आरण्यक का अतिप्रसिद्ध 'सह नाववतु' मन्त्र रखा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट

जिस स्थान, नदीतट या गृहस्नानागार पर स्नान किया जाव, प्रथम उसकी निम्न वचन से छाड़ व पानी से शुद्धि कर लेवें—

आपः पुनन्तु पृथिवीं, पृथिवी पूता पुनातु माम् ।
पुनातु ब्रह्मणस्पति, ब्रह्म पूता पुनातु माम् ॥१॥

नारायणोपनि० ४.३०॥

पश्चात् स्नान आरम्भ करें—

ओं वाक् वाक् ॥१॥ इससे दान्त, जीभ

ओं प्राणः प्राणः ॥२॥ इससे नाक, नथुने

ओं चक्षुः चक्षु ॥३॥ इससे दोनों नेत्र,

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ॥४॥ इससे दोनों कान,

ओं नाभिः ॥५॥ इससे पेट, नाभि आदि

ओं हृदयम् ॥६॥ इससे हृदय छाती

ओं कण्ठः ॥७॥ इससे कण्ठ गला कन्धे आदि

ओं शिरः ॥८॥ इससे शिर मस्तक आदि

ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ॥९॥ इससे दोनों भुजायें, हाथ की कोहनी, कलाई पौंहचा आदि

ओं पद्भ्यां यशोबलम् ॥१०॥ इससे दोनों जाघें व पैर आदि

ओं करतलपृष्ठम् ॥११॥ इससे दोनों हाथों की अंगुलियों के मध्य सन्धियों पर किसी मलशोधक उबटन साबुन आदि लगावें। पश्चात् निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए बायें हाथ में जल लेकर अंगे-पांगों को जल से मार्जन=स्वच्छ करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये ।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः ।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

पश्चात् पृ० २६० पर लिखे प्रमाणे 'ओम् आपो हि०.....' ऋग्वेद के तीन मन्त्रों से अथवा

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

इस मन्त्र से सब शरीर पर जल डालकर स्नान करें।

यदि नदी तड़ाग व समुद्रादि में स्नान करना हो, तो डुबकी लगाकर स्नान करें, और अन्त में निम्न मन्त्र बोलें—

ओं सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि च वयं द्विष्मः ॥ यजुः ३५।२२ ॥

॥ इति उपाकर्मविधि-परिशिष्टम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाणिज्यकल्प-विधिः

या

व्यापारसूत्र-पद्धतिः

जब किसी व्यक्ति ने 'वाणिज्य' के लिए दुकान, कारखाना, शिल्प आदि व्यापार सम्बन्धी कार्य को प्रारम्भ करना हो, तो उस दिन निम्न विधि करें—

[प्रथम विधि—यज्ञारम्भ]

जो दिन पण्यस्थापन का निश्चित किया हो, उस दिन प्रातः काल यजमान, अपनी पत्नी को दक्षिण बाजू बैठा, पृ० २६ से पृ० १०६ तक लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण से लेकर आघारावाज्य भागाहुति पर्यन्त सब क्रिया करें।

[द्वितीय विधि—रयिमान् बनने का संकल्प]

पश्चात् पुरोहित यजमान से निम्न मन्त्र बुलवावे—

ओं नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१॥[1]

मैं धनों का केन्द्र अर्थात् विधि और समान स्थिति वालों= सखाजनों में प्रमुख होजाऊं।

ओं मूर्धाऽहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥२॥[2]

२. मैं धनियों का सिरमौर और समान गुण-कर्म स्वभाव वाले जनों में शिरोमणि बनूं।

ओं शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥३॥[3]

---

१. अथर्व १६।४।१ ॥ २. अथर्व १६।३।१ ॥ ३. अथर्व ३।२४।५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरोहित वणिक् यजमान को समझावे—

हे दो हाथ वाले पुरुष ! तू सौ हाथ वाला होकर धनैश्वर्य संगृहीत कर, परन्तु हजार हाथ वाला बनकर त्याग कर। अपने 'कृत' और 'क्रियमाण' दोनों के उत्तम विस्तार=फल को अच्छी प्रकार प्राप्त कर।

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् ॥४॥ अथर्व ८।१।६ ॥

हे पुरुष ! सदा तेरी उन्नति=व्यापार में वृद्धि होवे, कभी अवनति=व्यापार में हानि न हो।

[तृतीय विधि—ईश्वर का उपस्थान]

पश्चात् निम्न तीन मन्त्रों से यजमान 'सब धनों के दाता' परमात्मा का उपस्थान करे—

ओम् ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥[1]

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥[1]

ओं दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥३॥[2]

---

३. हे यज्ञरूप ! सब जगत् के 'इष् व ऊर्ज्' अर्थात् अन्न-वस्त्र-निवास द्वारा जीवन के व्यवस्थापक राजन् ! आप कृपा करके आकाश से, महिमा देने वाली पृथिवी से और विशाल अन्तरिक्ष [उत्पन्न पदार्थों] से [सम्बद्ध] द्रव्य ऐश्वर्य से तू हमारे दोनों हाथों को लबालब भर दे। हे परमात्मन् ! दक्षिण और वामपार्श्व से भी सर्व सुखदायक धन प्रदान कर। (विष्णवे) संघ के लिये हम तुझ से प्रार्थना करते हैं।

---

१. यजुः ४०।१, २ मन्त्रार्थ पृ. ५६१ पर ॥ २. यजुः ५।१९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—प्रधान होम]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत और शाकल्य की आहुति दें—

ओम् अन्नानां पतये नमः स्वाहा ॥१॥

ओं क्षेत्राणां पतये नमः स्वाहा ॥२॥

ओम् ओषधीनां पतये नमः स्वाहा ॥३॥

ओं नमो मन्त्रिणे वाणिजाय स्वाहा ॥४॥

ओं नमऽआयच्छद्भ्यो नमो विसृजद्भ्यः स्वाहा ॥५॥

ओं नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च स्वाहा ॥६॥

यजुः १६।१८, १९, २२, २३, ३२ ॥

ओम् इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुर एता नो अस्तु । नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यं स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय इदन्न मम ॥१॥

१-६. अन्न की वृद्धि रक्षा करने वाले के लिये……, क्षेत्र-पति अर्थात् राजाओं के राजा किसान के लिये……' मन्त्री तथा वणिक् =व्यापरी के लिये……' माल का आयात करने वाले और निर्यात करने वाले अथवा संग्राहक व उत्पादक के लिये…' ज्येष्ठ व कनिष्ठ के लिये……इन सबके लिये (नमः) [राष्ट्र की ओर से] अन्न-भाग, यथाभोग्य समान अधिकार व प्रतिष्ठा मिले ।

१. व्यापार करने का उपदेश करते हैं—मैं 'कृषि-गोरक्ष-वाणिज्य' द्वारा संसार का उपकार चाहने वाला व्यक्ति, धनी व्यापार-कुशल पुरुष को प्रेरणा करता हूं कि वह हमारे पास आये और हमारे सामने (एता) अग्रनायक=मुख्य-पुरुष होकर रहे । वह (अरातिं) [समय पर माल] न देने वाले को (परिपन्थिनं) [व्यापार के] मार्ग में व्यवस्था के उल्लङ्घन करने वाले, लूट-चोरी करने वाले को (मृगं) अस्थिर चंचल वृत्ति [व्यापारी] पुरुष को (नुदत्) दण्डित करता हुआ, वश में रखता हुआ मुझे धन का देने वाला होवे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति । ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि स्वाहा ॥२॥[1]

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥३॥[1]

ओं येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध स्वाहा ॥४॥[1]

---

२. जो बहुत से मार्ग व पद्धतियां उपकारी विद्वानों व्यवहार-कुशल जनों के जाने के योग्य भूमि व आकाश के मध्य में नाना दिशाओं में जाते हैं; वे मुझे जल और घृतादि पुष्टिकारक पदार्थों से प्राप्त हों अर्थात् मार्ग में व्यापारी को कभी खान-पान का कष्ट न हो । ताकि मैं दूर देश में जाकर नानाविध पदार्थ खरीद कर धन अपने स्थान व देश में ले आऊं ।

३. हमारा (प्रपणं) अपने पदार्थ का मोल भाव व दर, विक्रय और (प्रतिपणः) दूसरे के माल का भाव या दर नियत करना, ये सब व्यवहार (शुनं) हमारे लिये शुभ व शीघ्र हों, 'मुझे' सफल अर्थात् लाभ प्राप्त करने में समर्थ करें । तुम क्रेता-विक्रेता अर्थात् ग्राहक-व्यापारी दोनों इस (हव्यं) लेन-देन [=डीलिंग] को अच्छी प्रकार परस्पर सोच समझकर प्राप्त करो, जिससे हमारा (चरितं) चलान किया गया माल और (उत्थितं) उठाया गया माल हमें शुभ व शीघ्र मिलने वाला हो ।

४. मैं व्यापारी, हे विद्वान् उत्तम पुरुषो ! धन से धन को चाहता हुआ, जिस पूंजी से (प्रपणं चरामि) व्यापार, विनिमय, लेन-देन का व्यवहार करता हूं, वह मेरी पूंजी बहुत अधिक हो, जाय कभी कमती

---

१. अथर्व ३।१५।१, २, ४।५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तस्मिन्मु इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः स्वाहा ॥५॥[1]

ओं पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् । ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्यमुपतिष्ठन्तं रायः स्वाहा ॥६॥[2]

ओं मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी स्वाहा ॥७॥[2]

न हो। हे अग्ने ! साक्षिन् ! या मध्यस्थ आढ़ती (सातघ्ताः) लाभ या लेन-देन में प्रतिबन्धक (देवान्)[3] मदकारी, प्रजापीड़क, क्रीड़ा=रेसकोर्स व जुवा आदि में धन का नाश करने वालों को (हविषा) उचित कर लगाकर रोक।

५. हे विद्वानों !.....उस पूंजी में (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली परमात्मा, शासक व अपना आत्मा सदा (रुचिः) उत्साह, लगाव, रुझान को खूब बढ़ावे। वह इन्द्र, समस्त प्रजाओं का=इन्द्रियों का स्वामी है, उन्नति में प्रेरक व उत्पादक सब जगह से लाभ निकालने वाला, उन्नायक नेता है।

६. समर्थ धनीमानी को चाहिये कि वह सहायेच्छुक व अशक्त पुरुष के लिये अवश्य अन्नादि की सहायता देवे; सर्वदा दीर्घमार्ग अर्थात् सबको उदार भाव से देखे, क्योंकि धन निश्चय से ही रथचक्र के समान ऊपर नीचे घूमते रहते हैं। ये धन सम्पत्तियां वैभव एक के पास ही न रहकर दूसरे के पास रहने लगती है।

७. जो [अच्छी कमाई करके साधन सम्पन्न होकर भी (आर्य-

---

१. अथर्व ३।१५।६ ॥

२. ऋक् १०।११७।५, ६ ॥ विस्तृत अर्थ द्र. 'पंचमहायज्ञ-प्रदीप' पृ. ५८, ५९ ॥

३. सामान्यतः 'देव' पद सद्गुणवाची है, परन्तु 'देव' का अर्थ हीन भी है। दिवु क्रीड़ा···मद···गतिषु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः स्वाहा ॥८॥[1]

ओं पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं स्वाहा ॥९॥

ओं जयतं च प्रस्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं स्वाहा ॥१०॥

ओं हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तं स्वाहा ॥११॥[2]

मणं) अपने शासक को [समय पर करादि देकर] तथा (सखायं) समानकर्मी व्यापारी को [समय पर पैसा देकर] पुष्ट नहीं करता बढ़ावा नहीं देता, वह व्यर्थ ही कमाता है। सच कहता हूं, यह उसके विनाश का कारण बनता है। स्वयं-भोगी केवल पाप-भोगी होता है।

९. सद् व्यापार से पुण्या लक्ष्मी कमाकर हे पुरुषो! तुम (पिबतं) 'पय', 'घृत' और 'मधु' पीओ; तृप्त रहो; (गच्छतं) ज्ञानपूर्वक व्यवहार करके लाभ प्राप्त करो।.....

१०. (जयतं) होड़ में विजय प्राप्त करो (प्रस्तुतं) जो 'प्रस्तुत है' अर्थात् सामने विद्यमान जमा पूंजी है, उसकी रक्षा करो।.....

११. (शत्रून्) तुम्हें 'शतधा विभक्त करने वाले' अर्थात् नाना उपायों से हानि पहुंचाने वाले विरोधियों को नष्ट करके दूर भगाओ और (मित्रिणः) मिलाने वाले सहयोगियों को (यततं) यत्नपूर्वक साथ रक्खो। इस प्रकार प्रजा की रक्षा करो और धनों का संग्रह करो।

---

१. ऋक् १०।३४।१०॥ अर्थ द्र. पृ. ५६१, ५६२।

२. ऋक् ८।३५।१०, ११, १२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन्वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥१२॥[1]

ओम् अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा ।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः स्वाहा ॥१३॥

ओं पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जं शतक्रतो स्वाहा ॥१४॥

---

१२. इस (सुगं) धर्म-पूर्वक व्यापार के सुगम और कल्याण करने वाले मार्ग से हम चलें। जिस पर आरुढ़ रहने से (वीरः) सन्तान को कभी कष्ट-हानि नहीं होते अर्थात् सन्तान नहीं बिगड़ती और वह सन्तान दूसरों के लिये भी धन की प्राप्ति करता हूं।

१३. हे कर्मचारियो! कार्मिको! वाणी से परस्पर सुख-अनुकूलता देते हुए काम किया करो। इस प्रकार सब देवों=प्रजाओं के लिये काम या सेवा करके एक दूसरे के सहाय से अथवा परस्पर सङ्गी होकर उन्नत=सामर्थ्यवान् होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर को जाया करो।

कर्मचारियों को एक दूसरे के सुख दुःख का ख्याल करके मिलकर कर्म=व्यापार करना चाहिये।

१४. (दर्वि) देने योग्य पदार्थों को अपने भीतर ग्रहण करने वाली पात्रिके [अथवा तोलनी तराजू]! तू ठीक-ठीक माल से भरी दूसरे [ग्राहक] के पास जा और (सुपूर्णा) अर्थात् पूरे पूरे मूल्य से भरी फिर हमारे पास आ। हे (शतक्रतो!) असंख्यात कर्म व प्रज्ञा वाले ऐश्वर्यशालिन्! (वस्ना इव) पण्य-क्रिया अर्थात् वैश्यों के व्यवहारों के समान ही हम दोनों 'ग्राहक और व्यापारी' [क्रेता-विक्रेता], अन्नादि पदार्थ व अन्य जीवन को गतिशील करने वाले पदार्थों की खरीद-फरोख्त विनियम करें।

व्यापार में तोल-मोल दोनों ठीक होने चाहिये।

---

१. अथर्व १४।२।८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥१५॥[1]

[पञ्चम विधि—पापी लक्ष्मी निवारण होम]

पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत और शाकल्य की आहुति दें—

ओं प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा संजामसि स्वाहा ॥
इदं लक्ष्म्यै—इदं न मम ॥१॥[2]

ओं या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।

---

१५. इस मन्त्र में व्यापार के लेन देन का नियम दर्शाया है। तुम अपना पदार्थ या ठीक मूल्य मुझे दो; मैं अपना पदार्थ या मूल्य तुम्हें देता हूं। तुम मेरा माल हिसाब अपने पास रक्खो, मैं तुम्हारा माल या हिसाब अपने पास रक्खूंगा। अथवा मेरा माल गिरवी रक्खे, तो मैं तेरे माल को भी अपने पास रक्खूं। यदि तू मेरी मूल्य से खरीदने योग्य वस्तु को लेगा, तो मैं तेरे से भी मूल्य देकर खरीदूंगा। अथवा यदि तू मेरी वस्तु का मूल्य दे, तो मैं तेरी वस्तु का मूल्य भी चुका दूं। (स्वाहा) इस प्रकार सत्यवाणी व सत्यक्रिया द्वारा व्यापार करें।

सब मनुष्यों को देना-लेना, पदार्थों का रखना-रखवाना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये।.....ऐसे व्यवहारों के बिना किसी [व्यापारी] मनुष्य की प्रतिज्ञा व कार्य-सिद्धि नहीं होती।

१. हे (पापि !) पाप पैदा कराने वाली (लक्ष्मि !) कलङ्क लगवाने वाली लक्ष्मि ! तू हमारे [व्यापार संस्थान] से परे जा; इस प्रदेश से ही भाग जा; उस दूर देश से भी परे चली जा। तुझ परस्पर द्वेष कराने वाले पाप धन को तपे लोहे के दाग से दूर कर सजा देते हैं।

२. ऐसी लक्ष्मी जो पतन कराने वाली है, प्रीतिपूर्वक सेवा व्यवहार में बाधा पैदा करती है और [सुखादेने वाले] 'बन्दन' नामक

---

२. यजुः ३।४७, ४९, ५० ॥ द्र, ऋषि दयानन्द-भाष्य ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः स्वाहा ॥
इदं लक्ष्म्यै—इदं न मम ॥२॥

ओम् एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वाजनुपोऽधि जाताः । तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ स्वाहा ॥ इदं लक्ष्म्यै—इदं न मम ॥३॥

ओम् एता एना व्याकरं खिले या विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशं स्वाहा ॥
इदं लक्ष्म्यै—इदं न मम ॥४॥[1]

[षष्ठ विधि—स्थालीपाकाहुति]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से दो स्थालीपाक की आहुति दें—

विष वेल के वृक्ष को चिपटने की तरह मुझे (अधिचस्कन्द) चारों ओर से घेरे है, उसको हे सत्कर्म-प्रेरक परमात्मन् व न्याय-कारी राजन् ! यहां से कहीं और हमसे पृथक् रख और हितकारी आश्रय अथवा सुवर्णादि हितकर रमणीय पदार्थों का अधिकारी तू हमें उत्तम धन दे ।

३. इस मर्त्य के (तन्वा साकं) व्यापार तन्त्र के साथ, प्रारम्भ से ही एक सौ अर्थात् बहुत प्रकार के (लक्ष्म्यः) भाग्यप्रदर्शक विषय उच्च-नीच घातक बातें उत्पन्न हो जाती हैं । उनमें से पापिष्ठों को हम यहां से या इस मनुष्य के पास से सर्वथा प्रयत्न पूर्वक दूर करें और हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! कल्याण-कारिणी लक्ष्मी को हमें प्रदान कर ।

४. (खिले) बाड़े में एकत्र स्थित गौओं को पहिचानने की तरह मैं इन लक्ष्मियों को पृथक् पृथक् जानूं । सब मदों की राशियों को पहचानूं । जो पुण्य लक्ष्मी है, वे ही मेरे घर में रमण करें; जो पापी लक्ष्मी है, उन्हें मैं निकाल कर दूर कर दूं ।

---

१. अथर्व ७।११५।१-४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यन्मे किञ्चिदुपेत्सितं तस्मिन् कर्मणि वृत्रहन् ।
तन्मे समृध्यतां सर्वं जीवतः शरदः शतं स्वाहा ॥१॥
ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः
प्रजामिहावतु स्वाहा ॥२॥ पार. गृ. २।१७ ॥

[सप्तम विधि--यज्ञसमाप्त]

पश्चात् पृ० ४८९ से पृ० ४९१ पर लिखे प्रमाणे 'त्वं नो अग्ने०-की मंगलाष्टाज्याहुति पर्यन्त क्रिया करें।

पश्चात् पृ० ५२६ से पृ० ५२७ पर्यन्त लिखे प्रमाणे दैनिक-अग्निहोत्र विधि से यज्ञ समाप्त करें।

[अष्टम विधि--मङ्गल कामना]

पश्चात् पृ० १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्य गान कर, वणिक् अर्थात् यजमान परमात्मा का स्मरण कर निम्न मन्त्र से सबको नमस्कार करे—

ओं वसुमद्भिरण्यवत् वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥
साम० । उत्त० २ । मं०३ (४) ।

जाते समय सब जने निम्न मन्त्र से यजमान के लिये मंगल-कामना करें।

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! इस यजमान के लिये उत्तम धन, चातुर्य की बुद्धि, सौभाग्य, धनों की वृद्धि, उत्तम आरोग्य, मधुर-वाणी और अच्छे दिन अपनी कृपा से प्राप्त करा।

॥ इति वाणिज्यकल्प-विधिः समाप्तः ॥

१-२. हे दरिद्रता के नाश करने हारे परमात्मन् ! इस वाणिज्य कर्म में जो मेरी इच्छित कामनायें हैं वे सब पूर्ण आयु तक जीते हुए की पूर्ण होवें और सम्पत्ति-कल्याण-वृष्टि-ज्येष्ठता-श्री और प्रजा प्राप्त होवें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अक्षरारम्भ-विधिः

सामान्य भाषा में अक्षरारम्भ को 'पट्टी-पूजन' भी कहते हैं। आज कल चार-पांच वर्ष में ही सन्तान को 'शिक्षुशिक्षण' केन्द्रों में भेजने की परिपाटी चल पड़ी है। गृह पर शिक्षित माता-पिता भी सन्तान को स्वयं अक्षराभ्यास प्रारम्भ नहीं कराते, यह ठीक नहीं। ऋषि दयानन्द का कथन सत्य है कि—"वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् [हों, सन्तानको स्वयं विद्योपदेश करते] हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी [अन्य] से नहीं।"[1] "बालकों की माता सदा उत्तम शिक्षा करे,.....जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा पर जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे।.....जब पांच वर्ष के लड़का-लड़की हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।"[2]

भूमण्डल के सब स्त्री पुरुषों को चाहिये कि अपनी सन्तान की विद्या का आरम्भ 'देववाणी' अर्थात् संस्कृत भाषा से और अक्षरारम्भ 'देवनागरी'-अक्षरों से करे। क्योंकि संस्कृत भाषा सब मानवों की आदि मातृ-भाषा और देवनागरी वर्णमाला सबसे अधिक वैज्ञानिक है।

जिस दिन अक्षरारम्भ कराना हो, उस दिन बालक को स्नान करा, उत्तम शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहना, माता-पिता अपने दक्षिण बाजू बैठा, यज्ञ वेदी पर बैठें।

यथाविधि ऋत्विग्वरण करें। पश्चात् बृहद् यज्ञ करना हो, तो सामान्यप्रकरणोक्त सब विधि करें। अन्यथा नैत्यिक होम करें।

---

१. द्र. सत्यार्थप्रकाश २ समु. पृष्ठ ३६। गोविन्दराम हासानन्द संस्क.।
२. वही पृष्ठ ३८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् निम्न सामवेद की पावमानी ऋचाओं से घृत और शाकल्य की आहुति दें—

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना स्वाहा ॥१॥ १२९८॥

पावमानीर्योऽध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकं स्वाहा ॥२॥ १२९९ ॥

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितं स्वाहा ॥३॥ १३००॥

---

१. जो (पावमानीः) अन्तःकरण को पवित्र करने वाली वेद की ऋचाओं को (अध्येति) विचारता है, स्मरण करता है, अथवा उनके अन्दर जाकर उनके अर्थ को देखता है, वह (ऋषिभिः) ऋषियों के द्वारा (संभृतम्) भले प्रकार धारण अथवा उत्तमता से पुष्ट किये हुए और (मातरिश्वना) ब्रह्मनिष्ठ आप्त धार्मिक वेद-विद्वान् से (स्वदितम्) चखे हुए (सर्वं पूत रसं) सारे पवित्र रस को (अश्नाति) खाता है, भोगता है।

२. जो पवित्र वेद की ऋचाओं को (अध्येति) विचारता है (ऋषिभिः) और ऋषियों से (सम्भृतम्) धारण किये (रसम्) रस का स्वाद लेता है (सरस्वती) ज्ञानाधार उसके लिये (क्षीरम्) जीवन रस रूप दूध (सर्पिः) शरीर में गतिदायक घी (मधु) इन्द्रियों को आनन्द देने वाला मधु, शहद (उदकम्) रोग नाशक शुद्ध मीठा जल दोहती है, देती है।

३. सचमुच वेद की पवित्र ऋचायें (स्वस्त्ययनीः) कल्याण प्राप्त कराने वाली (सुदुघाः) उत्तम रीति से फल देने वाली (घृतश्चुताः) तेज प्राप्त कराने वाली हैं। यह (ऋषिभिः) अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों द्वारा (संभृतः) बृहस्पति प्रभु से धारण कराया गया (रसः) आनन्ददायक ज्ञान-रस है और मानों वह ब्रह्मज्ञानियों में (अमृतम्) जीवन अथवा मोक्ष सुख रखा हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्द्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः स्वाहा ॥४॥ १३०१॥
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः स्वाहा ॥५॥ १३०२॥
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति स्वाहा ॥६॥[1]
१३०३॥

पश्चात् पिता माता व अध्यापक अपने लड़का लड़कियों का पहिले अर्थ सहित निम्न गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। पीछे एक सौ आठ बार या कम से कम दश बार इसी गायत्री मन्त्र से आहुति देदें—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥[2] यजुः ३६।३६ ॥

---

४. वेद की पवित्र ऋचायें हमारे लिये इस लोक के सब सुखों=अभ्युदय को और उस परलोक के सुखों=निःश्रेयस को धारण करावें। निष्काम विद्वानों द्वारा अथवा वेद-प्रापक ऋषियों द्वारा (समाहृताः) भली प्रकार लाई गईं (देवीः) दिव्य गुणों वाली ये पावमानी ऋचायें हमारी कामनाओं को समृद्ध करें, फलीभूत करें।

५. निष्काम-ज्ञानी जिस (पवित्रेण) पवित्र करने वाले ज्ञान के द्वारा सदा अपने को, आत्मा को (पुनते) पवित्र करता है, उस (सहस्र-धारेण) हजारों धाराओं वाले ज्ञान के द्वारा ये वेद की पवित्र ऋचायें हमें पवित्र करती रहें॥

६. वेद की पवित्र ऋचायें उत्तम अवस्था प्राप्त कराने वाली हैं उनके द्वारा मनुष्य (नान्दनम्) आनन्द को, हर्ष को प्राप्त होता है और पुण्य अर्थात् अन्तःकरण व इन्द्रियों को पवित्र करने वाले (भक्षान्) भोगों को खाता-खिलाता है और मुक्ति को प्राप्त करता है।

---

१. साम० उत्तरा० अ० १०, खं० ७, मं० १-६ ॥
२. द्र० सत्यार्थप्रकाश ३। पृष्ठ ४८ व ५३ ॥ अर्थ द्र० २४२ पृष्ठ वेदा० संस्कारे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् "ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" से तीन बार पूर्णाहुति करके पृ० १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्य गान करे।

पश्चात् बालक का हाथ पकड़ पट्टी पर सबसे पूर्व ईश्वर का निज नाम 'ओम्' पश्चात् 'वेदोऽसि'[1] और बालक का नाम लिखावें।

पश्चात् बालक के कण्ठ में सुन्दर पुष्प माला डाल उसे खड़ाकर उससे सब सज्जनों का नमस्ते द्वारा अभिनन्दन करावें। माता-पिता आचार्य सम्बन्धी इष्टमित्र सब सज्जन मिल के निम्न मन्त्र बोल—

ओं मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा ॥१॥[2]

निम्न वचन से आशिर्वाद दें—

१. हे बालक ! त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः। आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी श्रीमान् विद्यावान् गुणवान् भूयाः।

हे बालिके ! त्वं जीव शरदः शतं वर्धमाना। आयुष्मती तेजस्विनी वर्चस्विनी श्रीमती विद्यावती गुणवती भूयाः।

॥ इत्यक्षरारम्भविधिः समाप्तः ॥

---

१. यजुः २।२१ ॥ २. अर्थ द्र० पृष्ठ १६८। जातकर्मणि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्या-सुभगकरण-विधिः

ऋषि दयानन्द ने संस्कार-विधि की भूमिका के अन्त में लिखा है कि "……जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से [सब स्त्री-पुरुष] धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्य को उत्तम होने के लिये गर्भाधान से……अन्त्येष्टि……पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं।"

स्पष्ट है कि संस्कार शरीर के विकास व कलापूर्ण जीवन बनाने के साधन हैं। मनुष्य के शरीर में 'वृद्धि-क्षय' के रूप में परिवर्त्तन होता है। इन विशेष परिवर्त्तनों के समय भी कुछ संस्कार किये जाते हैं।

प्राचीन काल में बालकों के लिये 'केशान्त या गोदान' नामक एक संस्कार सोलहवें वर्ष में होता था। यह अवस्था तारुण्य के प्रारम्भ की सूचक है। इस समय मुख पर मूंछ दाढ़ी आने लगती है। उस समय संस्कार करके प्रथम वार मूंछ दाढ़ी के केश काटे जाते हैं। तत्पश्चात् समावर्त्तन संस्कार के समय क्षौर-कर्म होता था। ऐसी तारुण्य दशा का प्रारम्भ कन्या के जीवन में बारह से चौदह वर्ष की आयु में होता है। स्त्री के जीवन में यह महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन का स्पष्ट द्योतक है। गृह्य-सूत्रकारों ने ऐसे समय के लिये कन्या के लिये क्यों किसी विशेष संस्कार का विधान नहीं किया, ज्ञात नहीं। परन्तु समस्त दक्षिण भारत में ऐसे समय में विशेष समारोह मनाया जाता है। हमारी सम्मति में कन्या के लिये यह विशेष संस्कार उचित और आवश्यक है। इस दृष्टि से हमने यह विधि कल्पित की है।

[प्रथम विधि—प्रथमवार राजस्वला-स्नान]

जब कन्या प्रथम वार रजःस्वला हो, तो उसके माता-पिता को चाहिये कि तत्काल उसको पृथक् बैठा, उसका आहार व्यवहार सब बदल दें। पश्चात् चौथे दिन व फिर सातवें दिन स्नान करावें।

CC-0.Ranini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाथ पैर के नंख भी वपन करा दें। निम्न मन्त्र से जलघट को कन्या ले—

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदुष्टरिन्द्रियहा अति तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥१॥[1]

निम्न मन्त्र को बोल स्नान करे—

ओम् तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥२॥[2]

[द्वितीय विधि—यज्ञारम्भ]

जिस दिन कन्या को स्नान कराना हो, उससे पूर्व यज्ञ की सब तय्यारी करें। पुष्पमाला व शृंगार साधन सामग्री व आभूषणादि पास रखें। कन्या को नवीन शुद्ध वस्त्र पहना यज्ञवेदी पर कार्यकर्त्ता या माता-पिता अपने दक्षिण बाजू या मध्य में बैठावें। आचमन ऋत्विग्वरण करके कन्या को नवीन यज्ञोपवीत धारण करावें। पश्चात् यथा विधि पृष्ठ ९४ से पृष्ठ १०६ तक लिखे प्रमाण अग्न्याधान से लेकर आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सब क्रिया करें।

[तृतीय विधि—प्रधान होम]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियां कन्या से घृत की दिलवावें—

ओम् ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्। यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्। यत्सत्यं तद् दृश्यतां स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम[3] ॥१॥

---

१. पा. गृह्य २।६।१० ॥

२. मन्त्रार्थ द्र. पृष्ठ २९२ तथा २९५।

३. मन्त्रार्थ द्र. पृष्ठ २८२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतं स्वाहा ॥२॥[1]

ओं यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे स्वाहा ॥३॥[2]

ओम् अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ स्वाहा ॥४

ऋक् ८।३३।१९ ॥

---

२. जो वर्चस् या प्रभाव (अक्षेषु) पासों, रथ के धुरे य आखों में होता है, जो बल (सुरायां) स्त्री या जलधारा में भरा होता है और जो वर्च अर्थात् घृत दुग्धादि से पुष्टि गवादि में विद्यमान है उन सब तीनों प्रकार के 'वर्चस्' से (अश्विनौ) हे माता-पिताओं ! तुम दोनों इस 'पुष्पवती' कन्या को (अवतम्) सुशोभित करो, सुरक्षित करो ॥ निम्न भाव भी है—

(क) रथ के धुरे का वर्च. उस धुरे का रथ का 'आधार' होता है। कन्या 'गृहस्थी रथ का आधार बने'।

(ख) जल का वर्च, उसका शीतलता गुण है। कन्या के जीवन में सरित् सी शान्ति रहे।

(ग) गौ का वर्च, उसका बल बुद्धि वर्धक दुग्ध है। यह कन्या शक्ति व बुद्धि देने वाली बने।

३. सर्वाङ्ग रूपवती व शुभांगी या अनवद्य कन्याओं के जो भीतर चित्त में होता है, वही बाहर आकृति या वाणी से प्रकट होता है। और जो वे बाहर प्रकट करती हैं, वही अन्तःकरण में होता है। हे जीवन की ओषध रूप कन्ये ! तू सदा अपने मन को ग्रहण कर अर्थात् अन्तरात्मा के अनुसार आचरण किया कर।

४. हे कन्ये ! आज से सदा नीचे देख [कर चलना]; ऊपर न देख अर्थात् आंखे उठा चपलता न दिखाना। (सन्तरां) गम्भीरता

---

१. अथर्व १४।१।३५ ॥ २. अथर्व २।३०।४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् इळे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् स्वाहा ॥४॥ यजुः ८।४३ ॥

ओं ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति स्वाहा ॥६॥

अथर्व ११।५।१८ ॥

ओम् इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु स्वाहा ॥७॥ अथर्व २।३६।३ ॥

से अर्थात् देख समझकर कदम उठाना। (ते कशप्लकौ) तेरे अंग किसी को दिखाई न दें। क्योंकि निश्चय से स्त्री ही (ब्रह्मा बभूविथ) ब्रह्मा के 'यज्ञ' की विधियों के अधिष्ठाता होने के समान, गृह-यज्ञ की ब्रह्मा हुई है अर्थात् स्त्री ही गृह मर्यादाओं की रक्षिका है।

५. हे (अघ्न्ये) सदा अतिरस्करणीय कन्यादेवि! अन्नपूर्णे रमणीया अर्थात् मनोहारिणी प्रीतियोग्य, दान और आदान स्वीकार करने योग्य, कमनीय या कान्तिमति, अह्लादकारिणि ज्योतिष्मति या ज्योतिर्मयि, अविनाशिनी व अखण्डचरित्रे, सरस्वति! महति! और विश्रुति! अर्थात् अपने विविध गुणों से प्रसिद्ध व विविध विद्याओं में कुशल कन्ये! ये सब तेरे ही नाम अर्थात् तेरे ही स्वरूप हैं। विद्वानों के सामने (सुकृतं) अपने इस उत्तम गुण-कर्म स्वभाव को (मा ब्रूतात्) न कहना अर्थात् बड़ों के सामने डींग न मारना।

६. [रजस्वला होने के बाद तीन वर्ष तक] ब्रह्मचर्य पालन अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवति हो कन्या अपने तुल्य पूर्ण युवावस्था वाले पति को [मिलने की योग्यता] प्राप्त करती है। ब्रह्मचर्य के धारण से ही वृषभ और अश्व संज्ञक पुरुष (घासं) भोग्य पदार्थों का भोग कर सकते हैं।

७. हे अग्रेणी परमात्मन्! यह [कन्यापन छोड़ बनी] नारी आगे उत्तम पति को प्राप्त करे। वीर्यवान् पुरुष इसे सौभाग्यवती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[चतुर्थ विधि—दोषनिवारक होम]

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से घृत सिंचित भात से आहुति दें—

ओम् अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि स्वाहा ॥१॥

अथर्व १४।२।६९ ॥

ओं यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा। सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु स्वाहा ॥२॥ अथर्व १।१८।३ ॥

[पञ्चम विधि—यज्ञ समाप्ति]

पश्चात् पृ० ४८९ से ४९१ पर लिखे प्रमाणे 'त्वं नो अग्ने०...' की मंगलाष्टाज्याहुति पर्यन्त किया करें।

पश्चात् पृ० ५२६ से पृ० ५२७ पर्यन्त लिखे प्रमाणे दैनिक अग्निहोत्र विधि से यज्ञ समाप्त करें।

[षष्ठ विधि—कन्या अलङ्करण]

तत्पश्चात् चक्षु मुख और नासिका के छिद्रों का निम्न वचन से कन्या स्पर्श करे—

ओम् प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥१॥

करता है। भविष्य में पुत्रों को पैदा करके यह महिमामयी बने। पति को प्राप्त अर्थात् विवाहित हो सौभाग्यवती बन विराजे।

१. हम परिवार के जन इस कन्या के एक एक अङ्ग से रोगों =दोषों को दूर करें।

२. हे कन्ये या नारि! जो तेरे अन्दर शरीर में, केशों तथा शिर में और आंखों में (घोरं) विकार या दोष या बाधक तत्त्व है, उस सबको हम तेरे हितैषी बन्धु-बान्धव पितृजन अपने वाणी के उपदेश से दूर विनष्ट करते हैं, भगा देते हैं। हे कन्ये! सविता देव परमात्मा तुझे सत्कर्म में प्रेरित करे।

१. हे जलो! व आप्त विद्वानों! मेरे प्राण-अपान की केन्द्र नाक, मेरी आखों और मेरे कानों को तृप्त करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् निम्न मन्त्र से कंघे से बालों को संवारे—

ओं कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमपं शीर्षण्यं लिखात् ॥१॥

अथर्व १४।२।६८ ॥

पश्चात् निम्न वचनों से सुन्दर अतिश्रेष्ठ उप-वस्त्र अर्थात् ओढ़नी धारण करे—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभि संव्ययिष्ये ॥१॥[1]

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पतिः । यशो भगश्च मा विदत् यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥२॥[1]

पश्चात् निम्न वचन से सुगन्धित पुष्पों की माला ग्रहण करे—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रति गृहणामि यशसा च भगेन च ॥३॥[1]

पश्चात् निम्न वचन से माला धारण करे और उस समय कन्या की वेणी में फूल लगावें

पश्चात् निम्न वचन से अलंकार धारण करे—

ओम् अलंकरणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥४॥[1]

निम्न वचन से आंखों मे अंजन करे -

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥५॥[1]

पश्चात् निम्न मन्त्र भाग बोल,

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥५॥

निम्न वचन से दर्पण में मुख अवलोकन करे—

---

१. आज से वह कन्या कंघी से बालों को संवारा करे । जो यह सैकड़ों दातों वाला कृत्रिम अर्थात् हाथ का बना (कण्टकः) कंघा है वह इस कन्या के सिर और केशों के मल—दोष को बिल्कुल बाहर निकाल कर दूर करे ।

---

१. अर्थ द्र. पृष्ठ २६२-२६६ तक तथा पृष्ठ २९६-२९८ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं रोचिष्णुरसि ॥७॥[1]

पश्चात् कन्या निम्न मन्त्रों का जाप करे—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳ सुवर्चा मुखेन। सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥८॥

ओं मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥९॥

अथर्व १।३।३ ॥

[सप्तम विधि—कन्या द्वारा नमस्कार व कन्या को आशीर्वाद]

पश्चात् ४. १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्य गान करके, कन्या के माता-पिता सब बन्धु-बान्धवों इष्ट मित्रों से कन्या के लिये शुभ-कामना की प्रार्थना करें। कन्या व माता-पिता हाथ जोड़ सबको नमस्कार करें और माता-पिता निम्न मन्त्र बोले—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥१॥

अथर्व १४।२।२८ ॥

ओं या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥२॥

---

८. मैं आंखों से दर्शनीय आकृति, मुख से वर्चस्विनी=सौम्य आकृति और कानों से अच्छा सुनने वाली बनूं।

९. कन्या कामना करे कि, हे परमात्मन्! तेरे अनुग्रह से मेरा 'मर्यादाचरण' व 'कार्यसमाप्ति' दोनों अथवा आना-जाना अर्थात् प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों मधु के समान सुखकारी हों। मैं सदैव मीठी वाणी बोलूं। मैं सब प्रकार से मधु के समान देखने व दीखने हारा व्यक्ति बन जाऊं।

१. हे सज्जन स्त्री-पुरुषो! 'वधू' बनने योग्य यह कन्या मंगल स्वरूपिणी है। इसको शुभ दृष्टि से देखिये। इसके लिये [सौभाग्य का आशीर्वाद देकर इसे दौर्भाग्यपन से पृथक्=बचाये रक्खें।

२. यहां जो दुःखहारिणी युवतियां और जो अनुभवी वृद्ध स्त्रियां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब जने निम्न मन्त्रों से कन्या को उज्जल भविष्य का आशीष दें—

ओं नवो नवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥३॥
अथर्व १४।१।२४ ॥

ओम् इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ॥४॥
ऋक् १०।८५।४५ ॥

॥ इति कन्यासुभगकरण-विधिः समाप्तः ॥

हैं, वे भी इस कन्या को निश्चय से (वर्चः सं दत्त) वर्चस्विनी होने अर्थात् पढ़ी हुई विद्या को विचार से जीवन में सफलता पाने का उपदेश व आशीष देकर ही अपने-अपने घर को जावें।

३. हे (चन्द्रमः) चन्द्रमुखी कन्ये ! प्रकाश की प्रज्ञापक होकर तू बढ़ती हुई [नित्य] नवीन-नवीन [रूप सौन्दर्य वाली] होती जाती हैं; तू उषः काल के पूर्व जागने वाली है। तू ही विद्वान् अतिथि आदि के लिये (भागं) अन्न-वस्त्र आदि सेवन योग्य पदार्थ की विशेष व्यवस्था करती है। तू ही सबको दीर्घ आयु (प्रतिरसे) प्रधान रूप से देती है अर्थात् आह्लादकारिणी स्त्री के साम्राज्य=नियन्त्रण, व्यवस्था से ही सब गृहजनों को दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

४. हे परमैश्वर्यवान् (मीढ्वः) सब सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मन् ! तू अपने अनुग्रह से इस कन्या को उत्तमपुत्र युक्त होने योग्य सुन्दर सौभाग्यवाली बनाओ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दत्तकस्वीकरण-विधिः

अथर्व ८।२१।३ के अनुसार जगद्रचयिता विश्वकर्मा परमात्मा ने पुत्रकाम्या स्त्री के लिये, पुत्रकाम पुरुष को इसीलिये सम्बद्ध किया है, ताकि पत्नी पुत्र को जने।' अथर्व ५।२५।८ में लिखा है— 'प्रजायै त्वा नयामसि।' हे नारि! सन्तानोत्पादन के लिये तुझे पास लाते हैं। ऋक् ५।४।१० में लिखा है—'प्रजाभिरग्ने अमृतत्व मश्याम्।' 'हे परमात्मन्! सन्तानों द्वारा मैं अमर बनूं।'

शास्त्र में लिखा है—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च पुरुषः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्या सहोदितः॥

—मानव. ध. शा. अ. ८॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥

मानव. ध. शा. अ. ९॥

लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः॥

याज्ञ. स्मृ.। अ. १॥

शतपथ ब्रा. ५।२।१।१० में लिखा है—मनुष्यलोक अर्थात् लोकयात्रा 'पुत्र' के होने से जीती जाती है, किसी अन्य कर्म से नहीं।[1]

इससे स्पष्ट है कि पुरुष जीवन की 'पूर्णता', स्त्री प्राप्त कर पुत्रवान् होने से ही है।[2] क्योंकि वह दुःख से तारता

---

१. सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यः, नाऽन्येन कर्मणा॥

२. ...यावज्जायां न विन्दते, नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि भवति। अथ यदेव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते; तर्हि हि सर्वो भवति॥ शत. ५।२।१।१०॥ तुलना शत. ८।७।२।३। तथा तैत्ति० ६।१।८५॥ यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान्। नार्द्धं प्रजायते, पूर्णः प्रजायतेत्यपि श्रुतिः॥ महा. अनु. १९।२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[पृष्ठ ६१७ पंक्ति ११ से आगे]

दत्तक की आयु

सर्वोत्तम यह है कि उपनयन-संस्कार किये जाने से पूर्व ही किसी बालक-बालिका को दत्तक-रूप से ग्रहण करना चाहिये। ऋषि दयानन्द के मतानुसार दत्तक की आयु आठ वर्ष से कम होनी चाहिये। क्योंकि वे आठवें वर्ष में सन्तान का यज्ञोपवीत मानते हैं (द्र. सं. वि. १०९)। दत्तक का उपनयन गोद लेने वाले माता-पिता के घर में किया जाना सर्वोत्तम है।

स्व वर्णस्थ या अपने से उत्तम वर्णस्थ बालक को गोद लेना चाहिये।

क्योंकि गोत्र बदल जाता है, गोत्र-परिवर्त्तन विधि भी अवश्य करानी चाहिये।

२. विशेष स्थिति में 'अनाथ-सन्तानों' के गोद लिये जाने पर आयु का प्रतिबन्ध ढीला किया जा सकता है।

३. किसी कारण बड़ी उमर वाले को गोद लेना हो, तो भी विवाहित स्त्री-पुरुष को गोद नहीं लिया जाना चाहिये।

[विधि—गोत्र-परिवर्तन]

पश्चात् दत्तक का गोत्र परिवर्तन करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है।[1] ऐसा विचार भूतल के सब मानववर्गों में है। सन्तान होने से स्त्री-पुरुष अपना जीवन सफल समझते हैं।

यदि किसी के सन्तान न हो. तो उत्तम मार्ग है नियोग द्वारा एक दूसरे के लिये दो-दो तक सन्तान पैदा कर लेना। मध्यम मार्ग है, किसी 'बालक' को गोद ले लेना। इसमें भी ज्ञात-कुल के सन्तान को, अज्ञात कुल के सन्तान की अपेक्षा, गोद लेना अच्छा समझा जाता हैं।

यह गोद लेना **'दत्तक-स्वीकरण'** कहा जाता है। जो गोद जाता है, उसे 'दत्तक' कहते हैं। अमुक बालक या अमुक बालिका को दत्तक सन्तान बनाने से पूर्व, यह बात भली भांति देख लेनी चाहिये कि इसको दत्तक बनाया जा सकता है या नहीं।

पश्चात् दोनों पक्ष एक नागरिक भवन या धर्म मन्दिर में एकत्र हों। दत्तक लेने वाले स्त्री-पुरुष यजमान बनें और सन्तान देने वाले माता-पिता या अनाथालय के संचालक भी प्रीतिपूर्वक उसमें भाग लें। यजमान पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठें। दत्तक देने वाले माता पिता दक्षिण में उत्तराभिमुख बैठें। पत्नी पति के दक्षिण बाजू बैठे।

[प्रथम विधि—यज्ञारम्भ]

'दत्तक' को प्रातः काल स्नान करा उत्तम शुद्ध स्वदेशी वस्त्र [illegible]ता माता-पिता अपने मध्य में या दक्षिण बाजू बैठावें। पश्चात् [illegible]ान पृ० २६-२९ लिखे प्रमाणे ऋत्विग्वरण करे। पश्चात् सब [illegible]जनें पृ० ३० से पृ० १२१ तक लिखे प्रमाणे **'ओं त्वन्नो०...'** की मङ्गलाष्टाज्याहुति पर्यन्त सब विधि करें।

[द्वितीय विधि—यजमान द्वारा 'दत्तक-स्वीकरण' संकल्प]

पश्चात् यथाविधि तीन आचमन कर यजमान दत्तक की ओर देखता हुआ निम्न मन्त्र का पाठ कर संकल्प करे—

---

१. पुदिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः।
पुदि त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च॥

बोधा. गृ. परि. सूत्रे १।२।४॥

अन्य स्मृति पुराणादिकों में भी ऐसा ही माना गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥१॥[1]

ओ३म् । तत्सत् परमात्मने सच्चिदानन्दाय नमो नमः । अद्य··· वैक्रमाब्दे,···शकाब्दे,···दयानन्दाब्दे,···मासस्य···तिथौ दिनाङ्के वा, ···प्रदेशस्य···ख्ये नगरे,···स्थाने,

गोत्रोत्पन्नः, सपत्नीकः,·····नाम्नः पुत्रः,···नाम्नः पौत्रः,····· नामाऽहं,

चतुर्वर्गसाधनार्थं, वंशविवृद्ध्यर्थं च, दत्तकस्वीकरणसंकल्पं करोमि प्रीयतामनेनाऽग्निर्देवः सविता परमात्मा प्रीतिभावनः ।

[तृतीय विधि—दत्तकजनक तथा यजमान द्वारा प्रतिग्रहण-संकल्प]

पश्चात् यथाविधि आचमन कर दत्तक के माता-पिता दत्तक लेने वाले की ओर देख, निम्न संकल्प करें—

ओ३म् । तत्सत् परमात्मने·····, ···नामाऽहं·····गोत्रोत्पन्नाय, सपत्नीकाय, ···नाम्नः पुत्राय, ···नाम्न पौत्राय,

जनं सालंकृतं दैव्यं, कुल-वंशसमृद्धये ।
श्रीमतेऽस्मै प्रयच्छामि, मोक्षकामार्थधर्मणे ॥ प्रतिगृह्यताम् ।

ऐसा कह कर दत्तक को अपने पास से उठावे । उस समय यजमान दम्पन्ती निम्न मन्त्रस्थ वाक्य को बोल दत्तक को आदर दृष्टि से देखें ।

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥१॥[2]

और निम्न मन्त्र को बोल पुष्पमाला पहना दोनों हाथों से दत्तक को स्वीकार करे और अपने अङ्क में बैठावें ।

---

१. हे व्रतपते ! मैं जो निश्चय कर रहा हूं, वह निभे और वह मेरे लिये सिद्धिप्रद हो । मैं अनृत=असत्-अर्थात् पुत्रभावजनित स्थिति से सत्य अर्थात् पुत्रवान् स्थिति को तेरे अनुग्रह से प्राप्त होता हूं ।

---

१. यजुः १।५ ॥ २. काण्व मं० २।३।४ ॥ अर्थ पृ० ३१० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥२॥ यजुः १।२४॥

ओम् आ मागन् यशसा संसृज वर्चसा ॥३॥

[चतुर्थ विधि—स्थालीपाक की आहुतियां]

पश्चात् अग्नि को प्रदीपन करके निम्न दो मन्त्रों से स्थालीपाक की आहुति यजमान देवे—

ओं कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते स्वाहा ॥१॥[1]

ओं कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोऽसि स्वाहा ॥२॥*

[पञ्चम विधि—यज्ञसमाप्ति]

पश्चात् पृ० ५२६-५२७ में लिखे प्रमाणे दैनिक अग्निहोत्र विधि से यज्ञ समाप्त करें। पृ० १२२-१२३ में लिखे प्रमाणे महा-

---

२. सविता देव के शासन नियम में मैं तुझे विशाल बाहुओं तथा बलिष्ठ हाथों से स्वीकार करता हूं। आददे=प्रतिगृह्णामि=स्वीकरोमि।

३. तू मेरे पास पूर्णता से आ, यश और कान्ति से मुझे संयुक्त कर [पार. १।३।१५ के आधार पर]।

*हे जीव ! [यहां दत्तक] कौन तुझे विशेष भाव से छोड़ता है। वस्तुतः (सः) वह परमात्मा ही तुझे (विमुञ्चति) एक से विमुक्त करता है। तुझे किस प्रयोजन के लिये छोड़ता है। (तस्मै) उस ['अदृष्ट' फलभोग] के लिये तुझे छोड़ता है। क्योंकि (रक्षसां) [फलभोग] करने वालों के (पोषाय) पुष्टि आदि गुण के लिये [यह विमोचन] (भागः) अंश होता है। भाव यह है कि जो जीव फलभोग के लिये जिससे सम्बद्ध होता है, उसी के साथ उसका सम्बन्ध होता है।

---

१. अर्थ पृ. ३१५ विवाहप्रकरणे टिप्पण्याम् ॥ २. यजुः २।२३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वामदेव्यगान करके संस्कार में आई स्त्रियां वा दत्तक के जनक माता-पिता, ऋत्विग्, सम्बन्धी, इष्टमित्र सब मिल के दत्तक को आशीर्वाद दें—

त्वम् अस्मिन् गृहे जीव शरदः शतं वर्द्धमान
आयुष्मान् तेजस्वी वर्च्चस्वी गुणवान् पुरुषार्थी
प्रतापी परोपकारी श्रीमान् धीमान् सुप्रजा भूयाः ।

त्वम् अस्मिन् गृहे जीव शरदः शतं वर्द्धमाना
आयुष्मती तेजस्विनी गुणवती पुरुषार्थिनी परो-
पकारिणी श्रीमती धीमती सुभगा भूयाः ।

॥ इति दत्तकस्वीकरण-विधिः समाप्तः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द-
सरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण वेदविहिताचार-
धर्मनिरूपकेण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
प्रकल्पितं विधिमनुसृत्य

तद्भक्तेन मदनमोहन-विद्यासागर-वेदालङ्कारेण विदुषा
विरचितोऽयं सरस्वतीभाष्यसहितः संस्कारसमुच्चय-
नामा ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

शिवमस्तु, शुभं भवतु, कल्याणं भवतु
कर्मणः कर्तृणां कारयितृणां च

—मदनमोहन-विद्यासागर-वेदालंकारेण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कार-बधाई-गीत

बधाई हो बधाई हो

यह शुभ दिन आज का आना, बधाई हो बधाई हो ।
रखा है नाम बालक का, बधाई……॥

है जैसा नाम बालक का, प्रभु दे इसको गुण वैसे ।
बने यह जग में गुणशाली, बधाई……॥ यह शुभ०

[कराया अन्न का प्राशन, प्रभु दे इसको बल बुद्धि ।
हुआ संस्कार मुण्डन है, प्रभु दे उसको बल बुद्धि ।
हुआ है कर्ण का बेधन, प्रभु दे इसको बल बुद्धि ।]
सुखी माता-पिता इसके, सदा देखें सुखी इसको ।
हो लम्बी आयु बालक की, बधाई……॥ यह शुभ०

बड़ों की और गुरु आज्ञा, धरे सिर पर हमेशा यह ।
करे यह कुल को उजियारा, बधाई……॥ यह शुभ०

प्रभु दो बुद्धि ऐसी कि, करे उपकार सब जगका ।
करे यह देश की सेवा, बधाई……॥ यह शुभ०

सर्व-ऋतु-सामान्य हवन-सामग्री का योग

चन्दन पूरा सफेद	भाग	६	गुल सुर्ख	भाग	८
अगर	"	४	छुआरा	"	८
गूगल	"	८	इन्द्र जौ	"	४
जायफल	"	१	कपूर कचरी	"	४
जावित्री	"	१	आंवला	"	४
तालीसपत्र	"	४	किशमिश	"	८
पानड़ी	"	४	बाल छाड़	"	८
लौंग	"	२	नाग केशर	"	२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बड़ी इलायची	भाग	२	तुम्बुरु	भाग	७
गोला	"	८	सुपारी	"	७
नागरमोथा	"	८	नीम के पत्ते	"	१५
दालचीनी	"	२	बूरा खांड	"	१०
तगर	"	४	घी	"	१५

कपूर, घी, मेवे और अधिक मूल्य की सब वस्तुएं हवन के समय ही सामग्री में मिलावें। ये पदार्थ पहले मिलाकर नहीं रखने चाहियें ॥

2613

भजन-संग्रह

[१]

यज्ञ नाम प्रभो हमारे भाव उज्जल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिये ॥१॥

वेद की बोलें ऋचाएं, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें ॥२॥

अश्वमेधादिक रचायें, यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को ॥३॥

नित्य श्रद्धा भक्ति से, यज्ञादि सब करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के, सन्ताप सब हरते रहें ॥४॥

कामना मिट जाय मन से, पाप अत्याचार की।
भावनायें पूर्ण होवें, यज्ञ से नर नार की ॥५॥

लाभकारी हो हवन, सब जीवधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किये ॥६॥

स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
'इदं न मम' का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो ॥७॥

ध्यान धर कर शुद्ध मन से, वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[२]

आज मिल सब गीत गाओ, उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं, गन्धर्व मुनि जन धन्यवाद ॥१॥
मन्दिरों में कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगा तार सौ-सौ, बार मुनिवर धन्यवाद ॥२॥
करते हैं जङ्गल में मङ्गल पक्षिगण हर शाख पर।
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं, स्वर भर धन्यवाद ॥३॥
कूवें में तालाब में, सागर की गहरी धार में।
प्रेम रस में तृप्त हो, करते हैं जलचर धन्यवाद ॥४॥
उत्सवों में कीर्त्तनों में, यज्ञ और संस्कार पर।
मीठे स्वर से चाहिये, करें नारी-नर सब धन्यवाद ॥५॥
गान कर अमीचन्द, भजनानन्द ईश्वर की स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद ॥६॥

[३]

जय-जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादि कारण मुक्ति प्रदाता ॥१॥ जय०
अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्त्ता संहर्त्ता ॥२॥ जय०
सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता ॥३॥ जय०
मैं ललित व पालित हूं पितृस्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ से ताता ॥४॥ जय०
करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को।
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ॥५॥ जय०
मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता ॥६॥ जय०
बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता ॥७॥ जय०
"अमी" रस पिलाओ, कृपा करके मुझको।
रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ॥८॥ जय०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आरती

ओम् जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे । ओं० ॥१॥

जो ध्यावे फल पावे दुःख विनशे मन का ।
सुख सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का । ओं० ॥२॥

मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी । ओं० ॥३॥

तुम पूर्ण परमात्मा तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी । ओं० ॥४॥

तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्त्ता ।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भर्त्ता । ओं० ॥५॥

तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपति ।
किस विध मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति । ओं० ॥६॥

दीनबन्धु दुःख हरता तुम रक्षक मेरे ।
अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे । ओं० ॥७॥

विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा । ओं० ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

2613

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[illegible] कृत मूल ग्रन्थ [illegible]

१. (दुर्गभाष्य-विवरण, [illegible] भाग) महर्षि दयानन्द [illegible]
[illegible] के [illegible] अध्याय पर ऋषि [illegible] वेद [illegible]
[illegible] विवरण सहित। [illegible]
[illegible] उक्त। [illegible]

२. ऋषि दयानन्द [illegible] का आत्म-चरित्र [illegible]

३. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन [illegible]
[illegible] ७-७५।

४. [illegible] आवृत, [illegible]
[illegible]

[illegible] — ऋषि [illegible]
[illegible] मूलमात्र
[illegible] ऋषि [illegible] गुटका सजिल्द
[illegible] ७-०० ।

६. [illegible] — मूल्य [illegible]

७. [illegible] रत्नमाला — मूल्य [illegible]

८. [illegible] (आदेश-[illegible])
[illegible]
[illegible] ने नहीं दिये थे उनके [illegible]
दिये गये हैं। मूल्य २-०० ।

९. [illegible] ऋषि दयानन्द भा[illegible]

[illegible] चीज बिना मूल्य मंगवा[illegible]

[illegible] धन्नालाल [illegible]
[illegible]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.